महापण्डित राहुल सांकृत्यायन
का
सर्जनात्मक साहित्य

[पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़ को पी-एच०डी० उपाधि के लिए स्वीकृत शोध-प्रबन्ध]

डॉ० रवेल चन्द आनन्द
एम०ए० पी-एच० डी०

मुखबन्ध

महापण्डित राहुल साकृत्यायन भारतीय वाङ्मय के प्रतिष्ठित व्यक्तित्व हैं। अपने विराट् व्यक्तित्व एवं उज्ज्वल कृतित्व की दृष्टि से वे हिन्दी साहित्य में अप्रतिम स्थान के अधिकारी हैं। उनका जीवन निरन्तर गतिमय एवं अप्रतिहत साधना का जीवन था। वे सच्चे मानव थे और मानव को सुख-सम्पन्न देखने के लिए लालायित महामानव भी। उनका समस्त जीवन सत्यान्वेषण एवं प्रयोगशीलता में व्यतीत हुआ। ब्राह्मण-परिवार में उत्पन्न होकर ज्ञान की प्रज्वलित क्षुधा लेकर उन्होंने किशोरावस्था में ही गृहत्याग किया। वे केदारनाथ पाण्डे से रामउदार साधु हुए, आर्यसमाज से उन्होंने नवप्रकाश प्राप्त किया, बौद्धधर्मानुयायी राहुल साकृत्यायन बने और अन्त में, एक पूर्ण नास्तिक मार्क्सवादी बन गये और आजीवन मानवतावाद का स्वप्न देखते रहे। उनका जीवन क्रान्ति का प्रतिरूप था। निरन्तर सत्यान्वेषण, गत्यात्मकता, अनुसन्धानप्रियता एवं रूढ़िधर्मता पर कुठाराघात उनके व्यक्तित्व की कुछ संज्ञाएँ-मात्र हैं। वस्तुतः उनके सम्पूर्ण व्यक्तित्व एवं कृतित्व को कोई एक अभिधान आयत्त नहीं कर सकता।

राहुल साकृत्यायन सर्वतोमुखी प्रतिभा-सम्पन्न प्रगतिशील विचारक थे। बहुभाषाविद्, भाषाशास्त्री, दर्शनशास्त्री, इतिहासकार एवं पुरातत्त्व की अनेक शाखाओं के प्रकाण्ड पंडित, यायावर, राजनीतिज्ञ, बौद्ध-दार्शनिक, साम्यवादी तथा हिन्दी भाषा के अनन्य उपासक एवं प्रतिम साहित्यकार राहुल ने आजीवन साहित्य-सर्जना-द्वारा ज्ञान की परिधि का अनवरत विस्तार किया। उनकी कला के छोर अत्यन्त विस्तीर्ण हैं। उपन्यास, कहानी, यात्रा-साहित्य, निबन्ध, जीवनी, आत्मकथा, संस्मरण, नाटक प्रभृति सर्जनात्मक गद्य-विधाओं के अतिरिक्त इतिहास, पुरातत्त्व, विज्ञान, धर्म, दर्शन, राजनीति, समाज-शास्त्र-विषयक उपयोगी साहित्य की रचना-द्वारा राहुल ने हिन्दी-भारती के कोश को सम्पन्न बनाया। उनकी साहित्यिक रचनाओं का वैशिष्ट्य यह है कि उन्होंने प्राचीन इतिहास एवं वर्तमान जीवन के उन अछूते अंगों का संस्पर्श किया है, जिनकी ओर साधारणतया लोगों की दृष्टि नहीं गई थी। साहित्य की जिस विधा का उन्हें हिन्दी में अभाव दृष्टिगत हुआ, उसी में उन्होंने अपनी लेखनी का चमत्कार दिखलाया। राहुल की कृतियाँ उनके अनथक पुरुषार्थ, दृढ़ मनोबल, अध्यवसाय एवं सुनियोजित कार्य-पद्धति का परिणाम हैं। इस एव

व्यक्ति ने जितना बृहत् कृतित्व प्रस्तुत किया, वह किसी एक संस्था-द्वारा भी सहज सम्भव नहीं है। देश-विदेश की यायावरी तथा भारतीय राजनीति में व्यस्त रहने पर भी उन्होंने हिन्दी-साहित्य को जिस गुणात्मक एवं परिमाणात्मक विशदता से कृतित्व प्रदान किया है, उसे देखकर कोई भी आश्चर्यान्वित हुए बिना नहीं रह सकता।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध का विवेच्य विषय 'महापंडित राहुल सांकृत्यायन का सर्जनात्मक साहित्य' है। हिन्दी भाषा में रचित राहुल के समग्र साहित्य पर किसी अनुसंधानात्मक एवं विवेचनात्मक कृति का अभी तक अभाव ही बना हुआ है। उनके व्यक्तित्व-सम्बन्धी कुछ संस्मरणात्मक लेख यत्र-तत्र 'धर्मयुग', 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान', 'दृष्टिकोण', 'उपमा' आदि पत्रिकाओं में अवश्य प्रकाशित हुए हैं, परन्तु उनमें उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर अपेक्षित विश्लेषणात्मक दृष्टि से विवेचन नहीं है और न ही उनमें महापंडित के समग्र प्रदेय का ही मूल्यांकन हो सकता है। राहुल सांकृत्यायन जी के साहित्य पर शोधकर्त्ताओं का ध्यान भी उनके केवल कथा-साहित्य की ओर ही गया है। उन के विराट् व्यक्तित्व से अन्वित उनके बृहत् सर्जनात्मक साहित्य का विश्लेषण अभी तक नहीं हुआ। इस दृष्टि से राहुल के व्यक्तित्व एवं समग्र सर्जनात्मक कृतित्व-उपन्यास, कहानी, जीवनी, आत्मकथा, संस्मरण, यात्रा-साहित्य एवं निबन्ध जैसी महत्त्वपूर्ण साहित्यिक विधाओं का विश्लेषण तथा मूल्यांकन मेरी ओर से पहला मौलिक प्रयास है। इस प्रबन्ध में मेरा यह प्रयत्न रहा है कि राहुल के व्यक्तित्व के परिप्रेक्ष्य में उनके सर्जनात्मक साहित्य का विश्लेषण किया जाए। राहुल की रचनाएँ उनके व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति हैं, उनके व्यक्तित्व से वे अनुस्यूत हैं, उन्हें पृथक् करके देखना सहज नहीं। उनके सर्जनात्मक साहित्य का विश्लेषण करते समय उनके विराट् व्यक्तित्व की ओर हमारा ध्यान सदैव बना रहा है। इस प्रबन्ध में राहुल जी की कृतियों की संख्या, उनके प्रतिपाद्य एवं गद्य-रूपों से सम्बन्धित जो अनेक भ्रान्तियाँ बनी हुई हैं, उनको दूर करने का यथासम्भव प्रयास किया गया है। राहुल जी की सर्जनात्मक विधाओं के विश्लेषण से पूर्व प्रत्येक परिवर्त के आरम्भ में विधा-विशेष का संक्षिप्त सैद्धान्तिक विवेचन भी है और वही उनके सर्जनात्मक साहित्य की परख का निकष भी रहा है। प्रत्येक परिवर्त के अन्त में विधा-विशेष में राहुल के स्थान-निर्धारण का भी प्रयत्न किया गया है।

प्रस्तुत प्रबन्ध पाँच खण्डों में विभाजित है, जिसमें नौ परिवर्त हैं। इस शोध-प्रबन्ध का प्रथम खण्ड 'व्यक्ति, मनीषी, साहित्यकार और भाषा-तत्त्ववेत्ता' राहुल से संबन्धित है। इसके अन्तर्गत दो परिवर्त हैं। पहला परिवर्त है 'महापंडित राहुल सांकृत्यायन का व्यक्तित्व एवं कृतित्व'। इसके दो भाग हैं—(क) महापंडित राहुल का व्यक्तित्व, (ख) राहुल सांकृत्यायन का कृतित्व। प्रथम भाग में राहुल के व्यक्तित्व के बहिरंग एवं अन्तरंग का विवेचन है; उनके विराट् व्यक्तित्व की विविधोन्मुखता एवं उसके क्रमिक विकास का संक्षिप्त निदर्शन है। राहुल की आत्मकथा 'मेरी जीवन-यात्रा' तथा राहुल-विषयक उनके सुहृदों एवं समीक्षकों के संस्मरणा-

त्मक-विवेचनात्मक लेखों के आधार पर राहुल का विराट व्यक्तित्व मुझे जिस रूप में अनुमेय हो सका है, उसको विविध अभिधानों एवं विशेषणों में बांधने का प्रयत्न किया गया है। राहुल के प्रभावपूर्ण व्यक्तित्व को 'यायावर राहुल','राहुल एक राजनीतिक कार्यकर्त्ता', 'राहुल जी की धर्मदृष्टि', 'महापंडित राहुल' तथा 'महामानव राहुल' शीर्षकों के अन्तर्गत विवेचित किया गया है और उनके व्यक्तित्व के इन रूपों के उनके साहित्य में प्रतिफलन का संक्षिप्त परिचय दिया गया है। राहुल के व्यक्तित्व की सर्वोपरि विशिष्टता उसकी गत्यात्मकता है। महापंडित का जीवन सत्य के प्रयोगों में व्यतीत हुआ और उन्होंने वैज्ञानिक भौतिकवाद के रूप में जिस चिरन्तन सत्य की उपलब्धि की—उस तक पहुँचने के विविध सोपानों का उनके जीवन की घटनाओं के संक्षिप्त उल्लेख के साथ विश्लेषण इस भाग का प्रतिपाद्य है परिवर्त का दूसरा भाग राहुल के कृतित्व-परिचय से सम्बन्धित है। इसके अन्तर्गत साहित्य के उपयोगी एवं सर्जनात्मक इन दो रूपों का विश्लेषण एवं तारतम्य स्थापित किया गया है और इस आधार पर राहुल के उपयोगी एवं सर्जनात्मक साहित्य की वर्ण्य-विषय एवं गद्य-रूपों के आधार पर सूची प्रस्तुत की गई है। हमारे अध्ययन की सीमा राहुल का हिन्दी में रचित सर्जनात्मक साहित्य है। अतः उसे विधा-रूप में वर्गीकृत कर समग्र सर्जनात्मक रचनाओं का संक्षिप्त परिचय इसी परिवर्त में दिया गया है।

दूसरा परिवर्त 'राहुल जी की भाषा-सम्बन्धी मान्यताएँ एवं उपलब्धियाँ' शीर्षक है। इसमें राहुल की रचनाओं में व्यक्त उनकी भाषा-सम्बन्धी मान्यताओं के उल्लेख एवं उनके सर्जनात्मक साहित्य में उनके प्रयोग का आलोचनात्मक अध्ययन है। राहुल हिन्दी भाषा के प्रबल समर्थक एवं शिल्पी हैं। उन्होंने अपने कई भाषणों एवं लेखों में उसके राष्ट्रभाषा होने के अधिकार को घोषित किया है। हिन्दी भाषा एवं उसके साहित्य की गरिमा के उल्लेख के साथ-साथ उसकी त्रुटियों एवं अभावों की ओर भी राहुल ने संकेत किया है तथा उसे प्रौढ़ भाषा के रूप में विकसित करने के लिए अनेक सुझाव भी दिये हैं। संस्कृत के प्रकाण्ड पंडित होते हुए भी राहुल भाषा के विषय में कहीं दुराग्रही नहीं हैं—सर्वत्र सहज एवं विषयानुसारिणी भाषा के प्रयोग के साथ-साथ वे विदेशी-भाषाओं के शब्दों के व्यवहार के पक्ष में भी हैं। राहुल भाषा-सुधार के क्षेत्र में आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी तथा हिन्दी के राष्ट्रभाषा रूप के समर्थक मुंशी प्रेमचन्द की परम्परा में गण्य हैं।

प्रस्तुत प्रबन्ध का द्वितीय खण्ड 'आत्मकथा, जीवनीकथा और पृथ्वीकथा' है। राहुल जी के जीवनीपरक एवं यात्रा-सम्बन्धी साहित्य का अध्ययन इस खण्ड में है। इसके अन्तर्गत तीसरे परिवर्त—'राहुल जी का जीवनीपरक साहित्य'—में राहुल के जीवनी-साहित्य का मूल्यांकन किया गया है। इसके तीन भाग हैं – (क) राहुल जी का जीवनी-साहित्य, (ख) राहुल जी की आत्मकथा, (ग) राहुल जी का संस्मरण-साहित्य। परिवर्त के प्रारम्भ में जीवनीपरक साहित्य के महत्त्व का निर्देश है। प्रथम भाग में साहित्यिक विधा के रूप में जीवनी के स्वरूप का विश्लेषण है। जीवनी केवल

ऐतिहासिक कहानियो मे उनके इतिहास-तत्व की विशेष रूप से विवेचना की गई है। राहुल की कहानियों की शिल्प-विधि के समीक्षात्मक परिचय के अनन्तर कहानीकार के रूप मे राहुल की ऐतिहासिक एव सामाजिक कहानीकारों से तुलना की गई है। ऐतिहासिक कथाकार के रूप में राहुल हिन्दी के अप्रतिम लेखक हैं। उन जैसी युग-युगान्तर तक पहुँचने वाली सूक्ष्म एवं विशाल दृष्टि हिन्दी के किसी अन्य साहित्यकार को प्राप्त नही है,'इस दृष्टि से उनकी 'वोल्गा से गगा एक अद्वितीय एवं युगान्तरकारी रचना है।

छठा परिवर्त राहुल के उपन्यास-साहित्य से सम्बन्धित है। इसमे राहुल के मौलिक ऐतिहासिक एवं सामाजिक-राजनीतिक उपन्यासों का विश्लेषण किया गया है। राहुल को सामाजिक उपन्य.नो की अपेक्षा ऐतिहासिक उपन्यासो की रचना मे अधिक सफलता प्राप्त हुई है। सामाजिक-राजनीतिक उपन्यासों मे 'जीने के लिए' अपने राजनीतिक विचारो तथा 'बाईसवी सदी' अपने कल्पात्मक उपन्यास-रूप के लिए अवश्य ही महत्त्वपूर्ण हैं। राहुल के व्यक्तित्व एव विचारो के प्रतिमूर्त उनके ऐतिहासिक उपन्यास हैं और वस्तुत उनके सर्जनात्मक साहित्य में सर्वाधिक मूल्यवान् प्रदेय उनकी ऐतिहासिक कथा-कृतियाँ ही हैं। अत इस परिवर्त मे विशदरूप से उनका विश्लेषण है। राहुल की ऐतिहासिक उपन्यासकार के रूप मे विवेचना करते हुए हमने ऐतिहासिक उपन्यास के स्वरूप-निर्धारण, इतिहास और उपन्यास में अन्तर, इतिहास और कल्पना की सीमा एवं राहुल की ऐतिहासिक उपन्यास-विषयक मान्यताओ का स्पष्टीकरण किया है तथा उनके ऐतिहासिक उपन्यासो मे इतिहास एव कल्पना की समीक्षा की है। 'राहुल जी की उपन्यास-कला' इस परिवर्त का मुख्य भाग है। इसमे राहुल के औपन्यासिक शिल्प की विस्तृत समीक्षा की गई है तथा उनके जीवन-दर्शन एवं विचारधारा विशेषत बौद्ध-दर्शन एवं द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के तारतम्य एवं राहुल जी की प्रगतिशीलता पर विचार किया गया है।

इस खण्ड के सातवें परिवर्त 'राहुल जी के अनूदित उपन्यास' मे राहुल जी के अंग्रेजी से रूपान्तरित एवं ताजिक से अनूदित उपन्यासो का संक्षिप्त परिचय दिया गया है एवं अनुवादों की कतिपय विशेषताओं का उल्लेख है। अनुवादक के रूप में राहुल जी ने एक ओर रोमाचक उपन्यासों की सर्जना का पथ-निर्देश किया है और दूसरी ओर ताजिक भाषा के सर्वप्रमुख उपन्यासकार सदरुद्दीन ऐनी की कृतियों से परिचित करवाया है।

चतुर्थ खण्ड 'विचारबंध और निबंध' के अन्तर्गत आठवें परिवर्त 'राहुल जी के निबन्ध' मे निबन्ध के स्वरूप, तत्व एवं वर्गीकरण आदि के सैद्धांतिक विवेचन के अनन्तर राहुल जी के निबन्ध-साहित्य की समीक्षा की गई है। विषय-वैविध्य की दृष्टि से राहुल के निबन्ध महत्त्वपूर्ण है ही, साथ-ही वे शैली की दृष्टि से भी गौरवपूर्ण हैं। राहुल प्रमुख रूप से विचारक हैं और उनके निबन्ध एक प्रकार से विचारबन्ध हैं। उनके निबन्धो मे साहित्य, राजनीति, भाषा, यात्रा, धर्म, ईश्वर, इतिहास, पुरा-

तत्त्व, संस्कृति आदि विविध-विषयों पर गम्भीर विचार मिलते हैं. साथ ही उनके निबन्धों में भावतत्त्व का भी सुन्दर समन्वय हुआ है। इस प्रकार इस परिवर्त में राहुल के निबन्धों के वर्गीकरण एवं उनमें प्राप्य विचार-तत्त्व, भाव-तत्त्व एवं शैली-तत्त्व की दृष्टि से विवेचन कर निबन्धकार के रूप में उनके योगदान पर विचार किया गया है।

पंचम खण्ड 'समापन' के अन्तर्गत नौवाँ परिवर्त 'उपसंहार' के रूप में है। इसमें राहुल जी की हिन्दी साहित्य में उपलब्धि तथा उनके सर्जनात्मक साहित्य की सीमाओं एवं सम्भावनाओं पर विचार किया गया है। हिन्दी-साहित्य में उनका स्थान निर्धारित करते हुए हमारा यह सहज विश्वास है कि राहुल वर्तमान-आज तथा भविष्य-कल के सफल कलाकृती तथा संस्कृति-सारथी हैं। इस तरह पूरा प्रबन्ध पाँच खण्डों तथा नौ परिवर्तों में विभाजित है।

शोध-प्रबन्ध के अन्त में चार परिशिष्ट भी हैं जिनमें सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची के अतिरिक्त राहुल के व्यक्तित्व को मुखरित करने वाले कतिपय अन्य पक्षों का विवेचन किया गया है। ऐसे तीन परिशिष्ट हैं—(१) साहित्येतिहासकार राहुल (२) राहुल जी के भोजपुरी नाटक तथा (३) शोधकर्त्ता के नाम पत्र। 'साहित्येतिहासकार राहुल' शीर्षक परिशिष्ट में उनकी शोधपूर्ण ऐतिहासिक प्रतिभा का मूल्यांकन है। राहुल का भोजपुरी भाषा के प्रति प्रेम उनके नाटकों से प्रकट होता है। 'राहुल जी के भोजपुरी नाटक' में राहुल जी के आठ नाटकों के वर्ण्य-विषय एवं भोजपुरी भाषा को उनकी देन पर विचार किया गया है। 'शोधकर्त्ता के नाम पत्र' में प्रस्तुत प्रबन्ध के लेखनकाल में डॉ० कमला सांकृत्यायन, डॉ० महादेव साहा तथा भदन्त आनन्द कौसल्यायन से किये गये पत्र-व्यवहार से प्राप्त पत्रों का संकलन है, जिनमें राहुल के साहित्य से सम्बन्धित कुछ सूचनाएँ हैं।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध डॉ० रमेश कुन्तल मेघ, एम०ए०, पी-एच०डी० के सुयोग्य निर्देशन में सम्पन्न हुआ है। शोध-प्रबन्ध की रूपरेखा से लेकर शोधकार्य की परिसमाप्ति तक उनके सत्परामर्शों से मैं लाभान्वित हुआ हूँ। उनकी तत्परता, पाण्डित्यपूर्ण निर्देशन एवं अनुग्रह के बिना इस अनुष्ठान की पूर्ति सम्भव न थी। उन के प्रति शाब्दिक आभार-प्रदर्शन-मात्र से मैं उऋण नहीं हो सकूँगा। आचार्य हजारी-प्रसाद द्विवेदी, डॉ० इन्द्रनाथ मदान, डॉ० कमला सांकृत्यायन, डॉ० महादेव साहा, भदन्त आनन्द कौसल्यायन, डॉ० गणपतिचन्द्र गुप्त, डॉ० कृष्णदेव झारी, डॉ० धर्मेन्द्र कुमार गुप्त, प्रो० रामनाथ माथन, प्रो० कृष्णकुमार पवन, डॉ० मदन गुलाटी, डॉ० लीलाधर वियोगी, डॉ० चौधरी राम नागपाल, डॉ० वासुदेव शर्मा, डॉ० रामप्रकाश आदि गुरुजनों, विद्वानों एवं मित्रों से मुझे समय-समय पर बहुमूल्य परामर्श प्राप्त होते रहे हैं, इन सभी के प्रति मैं हृदय से आभारी हूँ।

—रवेलचन्द आनन्द

पी० जी० डी० ए० वी० कॉलेज (सान्ध्य)
नई दिल्ली—११०००१

अनुक्रम

तृतीय खण्ड : पुराना जनगाथिन और नया उपन्यासकार

पंचम खण्ड : समापन

प्रथम खण्ड / पहला पारवल

महापण्डित राहुल सांकृत्यायन का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

(क) महापण्डित राहुल का व्यक्तित्व

"पद्मभूषण" अन्तर्राष्ट्रीय युगपण्डित राहुल सांकृत्यायन ने हिन्दी भाषा और साहित्य को जितना कुछ दिया है, उतना शायद ही किसी अकेले व्यक्ति ने दिया हो। हिन्दी-साहित्य का कोई भी ऐसा अंग नहीं जिसको उन्होंने अपनी कृतियों द्वारा सम्पन्न न बनाया हो। उनका साहित्य विपुल है, उनका व्यक्तित्व विराट् और विचित्र। उन जैसा अद्भुत एवं विलक्षण व्यक्तित्व रखने वाले साहित्यकार विरले ही होते हैं। पण्डित रामगोविन्द त्रिवेदी के शब्दों में, "महापण्डित राहुल जी अपनी शैली के अद्वितीय पुरुष हैं। उनका साहस अनुपम था, उनकी धर्म-भावना विचित्र थी, उनका व्यवहार अनूठा था। उनका सामाजिक विचार अनोखा था और आर्य-संस्कृति के प्रति उनकी दृष्टि अपूर्व थी। वैदिक साहित्य, हिन्दू आचार-विचार, हिन्दू-सभ्यता, भारतीय-इतिहास, नागरी-लिपि, हिन्दी भाषा आदि के सम्बन्ध में उनका मनन विलक्षण और विचक्षण था। मतलब यह कि राहुल जी वैलक्षण्य के आकर थे।"[1] वस्तुतः राहुल जी का व्यक्तित्व बहुमुखी था, उसकी अन्वितियाँ विविध थी। वह महामानव थे, जिनका देश-प्रेम हिन्दी-निष्ठा में जीवित प्रवाह पा गया था, जिनका स्नेह मृत्यु तक आप्यायित और अतृप्त बना रहा, जिनके पाण्डित्य की हिमानी के नीचे लोक-हृदय की निर्झरिणी निरन्तर झरती रही, जिनको ज्ञान की पूर्णता से अधिक ज्ञान की निरन्तरता की चिन्ता थी, जिनकी विस्मृति भी निश्छल ममता की धारा बन गई।[2] राहुल जी का व्यक्तित्व किसी विशेषण-विशेष की परिधि में नहीं बाँधा जा सकता। बौद्ध, कम्युनिस्ट, आर्यसमाजी, यायावर, इतिहासज्ञ, दार्शनिक—ये सब विशेषण राहुल जी के व्यक्तित्व को आयत्त करने में असमर्थ हैं। राहुल जी का व्यक्तित्व गत्यात्मक है, सत्य का अनुसन्धित्सु है। डॉ० शिवप्रसाद सिंह के शब्दों में 'राहुल ने किसी भी मत को मत के लिए स्वीकार नहीं किया। उन्हें बुद्ध का यह कथन सदा याद रहा, 'मैंने तुम्हें नदी पार करने के लिए नाव दी थी। पार हो जाने पर उसे सर पर उठा कर ढोने के लिए नहीं'। राहुल ने इस कथन की वास्तविकता को समझा ही नहीं, अपने कार्यों में भली-भाँति उतार भी लिया था। उनकी नावें स्पष्ट थी, किन्तु जहाँ

उन नावों ने वाहन नहीं, वाहक बनना चाहा, राहुल ने उन्हें झटक कर एक तरफ फेंक दिया।'[3] प्रस्तुत परिवर्त में राहुल-जी के शारीरिक, मानसिक एवं बौद्धिक विशिष्टताओं से युक्त विनिर्माण, "विविधांगगुणी एवं सत्यात्मक व्यक्तित्व की झलक प्रस्तुत है।

भव्य व्यक्तित्व

राहुल जी का बाह्य (शारीरिक) व्यक्तित्व अत्यन्त भव्य एवं आकर्षक था। उन्हें शारीरिक संपदा—स्वस्थ तन और गौर वर्ण—निसर्ग-प्राप्य था। राहुल का शारीरिक गठन "कामायनी" के मनु की स्मृति ला देता है—

"उसी तपस्वी से लम्बे थे,
देवदारु दो चार खड़े।
... ...
अवयव की दृढ़ मांस पेशियाँ,
ऊर्जस्वित था वीर्य अपार।
स्फीत शिराएँ, स्वस्थ रक्त का,
होता था जिनमें संचार।" (कामायनी, पृ० ३-४)

राहुल जी के मित्रों एवं आलोचकों ने राहुल जी की शारीरिक-सम्पदा के भव्य-चित्र दिये हैं। 'गौर वर्ण, उन्नत ललाट, विशाल भूधराकार शरीर राहुल जी अनायास ही प्राचीन आर्यों का हमें स्मरण दिलाते हैं।'[4] 'लम्बा-कद, भरा गठा शरीर, गौर वर्ण, ऊँचा ललाट और प्रसन्न-शान्त मुख-मुद्रा। उनके चेहरे में सबसे प्रभावपूर्ण उनकी दूर तक देखती आँखें थीं और सबसे आकर्षक उनके रहस्यों को अपने में छिपाये से उनके होंठ थे, जिन पर मुस्कान निखरी ही रहती थी।'[5] ऐसा था राहुल का शारीरिक व्यक्तित्व। रत्नाकर पाण्डेय के शब्दों में, 'देवदारु के वृक्ष-सा लम्बा-चौड़ा शरीर, कतान के रंग का गौर वर्ण, चन्दन के लट्ठे-सा विशाल भाल, संघर्ष की चिनगारियाँ झरती आँखें, चाणक्य का हृदय, किन्नर का मन, कल्पना को यथार्थ में परिणत करने की प्रवृत्ति और धृति उनके व्यक्तित्व-निर्माण के मूल स्तम्भ थे।'[6] श्री अमृतराय उनकी देह प्राचीन आर्यों जैसी मानते हैं, 'छः फुट से निकलता हुआ ऊँचा-पूरा शरीर, उन्नत ललाट, प्रशस्त वक्ष, पुष्ट स्कन्ध—प्राचीन आर्यों जैसी वह देह—जिसे देखकर विख्यात प्राच्य विद्या-विशारद सल्वँ लेवी की आँखों के आगे भगवान् बुद्ध का चित्र खिंच जाता था'।[7] भगवतशरण उपाध्याय की दृष्टि में उनका व्यक्तित्व स्तम्भ से उपमित किया जा सकता है।[8] डॉ० सत्यगुप्त ने उन्हें 'बौनों की संस्कृति में विशाल मानव" कहा है।[9] ठाकुर प्रसाद सिंह उन्हें बरगद का विशाल झूमता हुआ वृक्ष मानते हैं और उनकी भुवनमोहिनी मुस्कान और पीठ पर हथेलियों का दबाव आज भी स्मरण करते हैं[10]। अवनीन्द्र कुमार विद्यालंकार के लिए उनके रूप का दर्शन पारसमणि था[11]। राहुल जी की गौर-वर्ण काया पर कभी भिक्षुओं-की वेशभूषा सजी

और कभी यूरोप और रूस में रहते हुए देशकालानुकूल उन्होंने परिधान धारण किया—परन्तु श्वेत धोती-कुर्ता और चादर के विनीत-वेष में वे बहुत ही मोहक लगते थे। राहुल जी की विमोहिनी काया की इस प्रकार अनेक उपमाएँ हैं और अनेक विशेषण हैं और सभी सत्य एवं यथार्थ हैं। उनकी बलिष्ठ एवं मनोहारिणी देह की सम्पत्ति भव्य एवं अपार है। वे आने वाले लोगों के लिए किसी कल्पित कहानी के नायक प्रतीत होंगे—यह असंदिग्ध है। कुमारिल पन्त उन्हें दीप्तिमान सोन तथा बोधिवृक्ष-सा पवित्र कहते है[१२]।

यायावर राहुल

राहुल लेखक पर्यटक अथवा पर्यटक लेखक थे।[१३] उनके व्यक्तित्व की सबसे उभरती हुई विशिष्टता उनकी यायावरी यावृत्ति थी। घुमक्कडी राहुल के लिए जीवन का धर्म था और "जयतु-जयतु घुमक्कड़ पन्था" उनका उद्‌घोष था। घुमक्कडी धर्म को वे विश्व की सर्वश्रेष्ठ वस्तु मानते थे—"मेरी समझ में दुनिया की सर्वश्रेष्ठ वस्तु है घुमक्कड़ी। घुमक्कड़ी से बढ़कर व्यक्ति और समाज का कोई हितकारी नहीं हो सकता[१४]।" इस घुमक्कडी धर्म के प्रति प्रेम राहुल के मन में बचपन में सुनी नाना रामशरण पाठक की दक्षिण भारत की यात्रा-सम्बन्धी कथाओं से जागृत हुआ[१५]। बचपन में यज्ञोपवीत के समय चाचा के साथ विन्ध्याचल जाते हुए केदार बनारस में ठहरा और चोरी ही बाजार भाग कर बनारस शहर घूमकर पाँच-सात किताबें खरीद लाया—यही केदार (राहुल) की पहली यात्रा थी[१६]। केदारनाथ के मन में यात्रा-प्रेम को जागृत करने वाला दूसरा कारण था—नवाजिदा वाजिदा की कहानी "खुदराई का नतीजा" का प्रस्तुत शेर—

सैर कर दुनिया की गाफिल जिन्दगानी फिर कहाँ ?
जिन्दगी गर कुछ रही तो नौजवानी फिर कहाँ ?

राहुल जी स्वयं स्वीकारते हैं, 'इस शेर ने मेरे मन और भविष्य के जीवन पर बहुत गहरा असर डाला[१७]।' इस शेर से केदार प्रोत्साहित हुआ और घुमक्कड़-राज राहुल के रूप में विख्यात हुआ और इस शेर को वे देश के सभी युवकों को पढ़ाना चाहते है[१८]। घुमक्कड़ी राहुल के लिए किसी बड़े योग से कम सिद्धिदायिनी नहीं है[१९]। इस योग की प्राप्ति के लिए भारी से भारी त्याग की आवश्यकता है—"यह मैं अवश्य कहूँगा, कि यह दीक्षा वही ले सकता है, जिसमें बहुत भारी मात्रा में हर तरह का साहस है—तो उसे किसी की बात नहीं सुननी चाहिए, न माता के आँसू बहने की परवाह करनी चाहिए, न पिता के भय और उदास होने की, न भूल से विवाह लाई अपनी पत्नी के रोने-धोने की फिक्र करनी चाहिए[२०]"। राहुल स्वयं इस योग में दीक्षित हुए और उसके लिए वांछित त्याग किया तथा आजीवन इसी योग के साधक बने रहे।

यायावर राहुल ने "निस्त्रैगुण्ये पथि विचरतः को विधि निषेधः" शंकराचार्य

उन नावों ने वाहन नहीं, वाहक बनना चाहा, राहुल ने उन्हें झटक कर एक तरफ फेंक दिया।'[3] प्रस्तुत परिवर्त में राहुल जी के शारीरिक, मानसिक एवं बौद्धिक विशिष्टताओं से युक्त विनिर्माण, विविधोन्मुखी एवं गत्यात्मक व्यक्तित्व की झलक प्रस्तुत है।

भव्य व्यक्तित्व

राहुल जी का बाह्य (शारीरिक) व्यक्तित्व अत्यन्त भव्य एवं आकर्षक था। उन्हें शारीरिक संपदा—स्वस्थ तन और गौर वर्ण—निसर्ग-प्राप्य था। राहुल का शारीरिक गठन "कामायनी" के मनु की स्मृति ला देता है—

"उसी तपस्वी से लम्बे थे,
देवदारु दो चार खड़े।
... ...
अवयव की दृढ़ मांस पेशियाँ,
ऊर्जस्वित था वीर्य अपार।
स्फीत शिराएँ, स्वस्थ रक्त का,
होता था जिनमें संचार।" (कामायनी, पृ० ३-४)

राहुल जी के मित्रों एवं आलोचकों ने राहुल जी की शारीरिक-सम्पदा के भव्य-चित्र दिये हैं। 'गौर वर्ण, उन्नत ललाट, विशाल भूधराकार शरीर राहुल जी अनायास ही प्राचीन आर्यों का हमें स्मरण दिलाते हैं।'[४] 'लम्बा-कद, भरा गठा शरीर, गौर वर्ण, ऊँचा ललाट और प्रसन्न-शान्त मुख-मुद्रा। उनके चेहरे में सबसे प्रभावपूर्ण उनकी दूर तक देखती आँखें थीं और सबसे आकर्षक उनके रहस्यों को अपने में छिपाये से उनके होंठ थे, जिन पर मुस्कान निखरी ही रहती थी।'[५] ऐसा था राहुल का शारीरिक व्यक्तित्व। रत्नाकर पाण्डेय के शब्दों में, 'देवदारु के वृक्ष-सा लम्बा-चौड़ा शरीर, कतान के रंग का गौर वर्ण, चन्दन के लट्ठे-सा विशाल भाल, संघर्ष की चिनगारियाँ झरती आँखें, चाणक्य का हृदय, किन्नर का मन, कल्पना को यथार्थ में परिणत करने की प्रवृत्ति और धृति उनके व्यक्तित्व-निर्माण के मूल स्तम्भ थे।'[६] श्री अमृतराय उनकी देह प्राचीन आर्यों जैसी मानते हैं, 'छः फुट से निकलता हुआ ऊँचा-पूरा शरीर, उन्नत ललाट, प्रशस्त वक्ष, पुष्ट स्कन्ध—प्राचीन आर्यों जैसी वह देह—जिसे देखकर विख्यात प्राच्य विद्या-विशारद सल्वै लेवी की आँखों के आगे भगवान् बुद्ध का चित्र खिंच जाता था'।[७] भगवतशरण उपाध्याय की दृष्टि में उनका व्यक्तित्व स्तम्भ से उपमित किया जा सकता है।[८] डॉ० सत्यागुप्त ने उन्हें 'बौनों की संस्कृति में विशाल मानव" कहा है।[९] ठाकुर प्रसाद सिंह उन्हें बरगद का विशाल झूमता हुआ वृक्ष मानते हैं और उनकी भुवनमोहिनी मुस्कान और पीठ पर हथेलियों का दबाव आज भी स्मरण करते हैं[१०]। अवनीन्द्र कुमार विद्यालंकार के लिए उनके रूप का दर्शन पारसमणि था[११]। राहुल जी की गौर-वर्ण काया पर कभी भिक्षुओं-की वेशभूषा सजी

और कभी यूरोप और रूस में रहते हुए देशकालानुकूल उन्होंने परिधान धारण किया—परन्तु श्वेत धोती-कुर्ता और चादर के विनीत-वेष में वे बहुत ही मोहक लगते थे। राहुल जी की विमोहिनी काया की इस प्रकार अनेक उपमाएँ हैं और अनेक विशेषण हैं और सभी सत्य एवं यथार्थ हैं। उनकी बलिष्ठ एवं मनोहारिणी देह की सम्पत्ति भव्य एवं अपार है। वे आने वाले लोगों के लिए किसी कल्पित कहानी के नायक प्रतीत होंगे—यह असंदिग्ध है। कुमारिल भट्ट उन्हें दीप्तिमान स्रोत तथा बोधिवृक्ष-सा पवित्र कहते हैं[12]।

यायावर राहुल

राहुल लेखक पर्यटक अथवा पर्यटक लेखक थे।[13] उनके व्यक्तित्व की सबसे उभरती हुई विशिष्टता उनकी यायावरी प्रवृत्ति थी। घुमक्कड़ी राहुल के लिए जीवन का धर्म था और "जयतु-जयतु घुमक्कड़ पन्था" उनका उद्घोष था। घुमक्कड़ी धर्म को वे विश्व की सर्वश्रेष्ठ वस्तु मानते थे—"मेरी समझ में दुनिया की सर्वश्रेष्ठ वस्तु है घुमक्कड़ी। घुमक्कड़ी से बढ़कर व्यक्ति और समाज का कोई हितकारी नहीं हो सकता[14]।" इस घुमक्कड़ी धर्म के प्रति प्रेम राहुल के मन में बचपन में सुनी नाना रामशरण पाठक की दक्षिण भारत की यात्रा-सम्बन्धी कथाओं से जागृत हुआ[15]। बचपन में यज्ञोपवीत के समय चाचा के साथ विन्ध्याचल जाते हुए केदार बनारस में ठहरा और चोरी ही बाजार भाग कर बनारस शहर घूमकर पाँच-सात किताबें खरीद लाया—यही केदार (राहुल) की पहली यात्रा थी[16]। केदारनाथ के मन में यात्रा-प्रेम को जागृत करने वाला दूसरा कारण था—नवाजिंदा बाजिंदा की कहानी "खुदराई का नतीजा" का प्रस्तुत शेर—

सैर कर दुनिया की गाफिल जिन्दगानी फिर कहाँ ?
जिन्दगी गर कुछ रही तो नौजवानी फिर कहाँ ?

राहुल जी स्वयं स्वीकारते हैं, 'इस शेर ने मेरे मन और भविष्य के जीवन पर बहुत गहरा असर डाला[17]।' इस शेर से केदार प्रोत्साहित हुआ और घुमक्कड़-राज राहुल के रूप में विख्यात हुआ और इस शेर को वे देश के सभी युवकों को पढ़ाना चाहते हैं[18]। घुमक्कड़ी राहुल के लिए किसी बड़े योग से कम सिद्धिदायिनी नहीं है[19]। इस योग की प्राप्ति के लिए भारी से भारी त्याग की आवश्यकता है—"यह मैं अवश्य कहूँगा, कि यह दीक्षा वही ले सकता है, जिसमें बहुत भारी मात्रा में हर तरह का साहस है—तो उसे किसी की बात नहीं सुननी चाहिए, न माता के आँसू बहने की परवाह करनी चाहिए, न पिता के भय और उदास होने की, न भूल से विवाह लाई अपनी पत्नी के रोने-धोने की फिक्र करनी चाहिए[20]।" राहुल स्वयं इस योग में दीक्षित हुए और उसके लिए वांछित त्याग किया तथा आजीवन इसी योग के साधक बने रहे।

यायावर राहुल ने "निस्त्रैगुण्ये पथि विचरतः को विधि निषेधः" शंकराचार्य

के इन शब्दों को गुरुवाक्य मानकर आजीवन घुमक्कड़ी-धर्म को निभाया[२१]। घुमक्कड़ी उनके लिए काव्यरस अथवा ब्रह्मानन्द से किसी भी प्रकार कम नहीं थी[२२]। इस रस को प्राप्त करने के लिए राहुल आजीवन पिपासु रहे। दस वर्ष की आयु में (१६०३ ई०) बनारस में चोरी ही शहर घूम आना, १६०६ में निजामाबाद में अपनी खाद्य-सामग्री बेचकर पुनः बनारस की सैर और १६०७ और १६०६ में कलकत्ते घूम आना केदार की बचपन की यात्राएँ थीं। इनसे उनके यायावरी-जीवन में प्रवेश का संकेत मिलता है[२३]। पर उनकी नियमित यात्राओं का आरम्भ सन् १६१०की हिमालय यात्रा से होता है[२४]। उत्तराखण्ड की इस यात्रा के उपरान्त सन् १६१० से १६२१ ई० तक उन्होंने भारत के विभिन्न नगरों की यात्रा की। काशी, परसा, तिरुमिशी, तिरुपति, काचीपुर, बंगलौर, विजयनगर, त्र्यम्बक, उज्जैन, अहमदाबाद, अयोध्या, आगरा, लाहौर, कुर्ग आदि स्थानों का भ्रमण किया[२५]। सन् १६२६ में पुनः हिमालय घूम आए[२६]। हिमालय की इस यात्रा में राहुल ने तिब्बत, बुशहर रियासत, सुन्नम्, कनम्, स्पिति आदि पर्वतीय स्थानों में विचरण किया।

सन् १६२३ ई० से राहुल जी की विदेश-यात्राओं का आरम्भ होता है। वे प्रथम बार सन् १६२३ में नेपाल गये। बौद्धधर्म के आकर्षण ने उन्हें सन् १६२७ में लंका-यात्रा के लिए प्रेरित किया, और उन्नीस मास वहीं रहे।[२७] सन् १६३० की दूसरी लंका-यात्रा में 'रामउदार' राहुल सांकृत्यायन के नाम से बौद्धधर्म में प्रव्रजित हुए।[२८] बौद्धधर्म के ग्रन्थों की खोज एवं एतद्विषयक जानकारी राहुल को तिब्बत ले गई। राहुल ने तिब्बत की चार बार यात्रा की।[२९] अपनी यात्राओं में वे तिब्बत की यात्राओं को सर्वाधिक दुर्गम, रुचिकर और साथ ही लाभदायक मानते थे। पाश्चात्य सभ्यता से अवगत होने के लिए राहुल जी ने सन् १६३२ ई० में यूरोप-यात्रा की। इस यात्रा में उन्होंने फ्रांस, जर्मन तथा इंग्लैण्ड के जीवन को देखा।[३०] बौद्ध धर्म एवं संस्कृत भाषा के पाश्चात्य विद्वानों से परिचय उनकी यूरोप-यात्रा की मुख्य विशेषता थी। ऐसा प्रतीत होता है कि राहुल को यूरोप-यात्रा में कोई आकर्षण प्रतीत नहीं हुआ। वे न तो फिर कभी यूरोप ही गये और न ही बौद्ध-धर्म प्रचार के लिए अमेरिका जाना ही स्वीकार किया। तिब्बत के बाद उन्हें सोवियत भूमि से विशेष प्रेम था। सन् १६३५ ई० में वह पहली बार रूस गये[३१] और फिर तीन बार (१६३७, १६४४ १६६२) इस भूमि में विचरण किया।[३२] इस प्रकार लंका, तिब्बत, रूस, इंग्लैण्ड, जर्मन तथा नेपाल के अतिरिक्त लद्दाख, जापान, कोरिया, मंचूरिया, ईरान और चीन की भूमि में विहार कर राहुल जी ने घुमक्कड़ी धर्म का परिचय दिया।[३३] राहुल जी सन् १६०७ से १६६३ ई० तक निरन्तर घूमते रहे। अपने वैवाहिक दिनों में कुछ वर्ष ही वे मंसूरी में एक स्थान पर बन्ध कर रहे थे। उनकी इन यात्राओं को देखकर फाह्यान और ह्यूनत्सांग की स्मृति हो आती है। वे असाधारण घुमक्कड़ थे— इस पथ के अद्वितीय पथिक थे, किसी के अनन्तर वे नहीं थे। प्रथम श्रेणी के घुमक्कड़ों के लक्षण जो उन्होंने 'घुमक्कड़ शास्त्र' में बतलाये हैं, वे उन पर पूर्णरूपेण घटित होते

है।[34] समग्र भारतीय इतिहास में उन जैसा कृतविद्य और कमठ घुमक्कड आज तक नहीं हुआ। उनके पाँव को हीरे की जंजीरें कहीं भी स्थिर नहीं कर सकीं। फेनी मुकर्जी के शब्दों में, "वे भारत के महान् यात्री और घुमक्कड थे। वे इतने दिनों के इस जीवन की अविश्रान्त घुमक्कडी के बाद दूसरे लोक की यात्रा पर चले गये। वहाँ भी वे अपनी घुमक्कड़ी न छोड़ेंगे ऐसा मेरा विश्वास है।"[35] बतासपंछी घुमक्कड़[36] राहुल के विषय में श्री शिवचन्द्र शर्मा के ये शब्द सर्वथा सार्थक है "यायावर अनेक बन सकते हैं, किन्तु उनके लिए यह आवश्यक नहीं है कि वे यायावरी-यावृत्ति को अपनाने में तादात्म्य स्थापित कर सकें।''''''राहुल जी जहाँ होते हैं, बिल्कुल घरैया होकर होते हैं, फिर मोरी तक की बात उनसे छिपी नहीं रहती। गृहस्थ छिद्र तक से अनभिज्ञ नहीं रहते। अपरिचितों के परिवार में भी पारिवारिक सदस्यता हासिल करने वाले ऐसे यायावर सोलहवीं से अठारहवीं शताब्दी तक चीन, जर्मन, अमेरिका और इंग्लैंड में ही देखे जा सकते थे।''''''बीसवीं शताब्दी में विश्व में ऐसे विरले यायावर राहुल ही हो सकते हैं, द्वितीयो नाऽस्ति। उनका पथ पथिक होना, तान्त्रिकों की कृच्छ साधना है जो दूसरों के लिए अमिता की साधना है, अनुल्लंघ्य लंघ्य सहज ही नहीं बन पाता।"[37]

राहुल की यायावरी उनके साहित्यिक व्यक्तित्व को निर्मित करने वाला सर्व-प्रमुख तत्व है। उनका यह व्यक्तित्व उनके यात्रा-साहित्य में तो सर्वत्र प्रदीप्त हो ही रहा है, उनके उपन्यासों एवं कहानियों में भी यह व्यक्तित्व मुखरित है। उनके कथा-नायक प्रायः घुमक्कड़ हैं। उनकी कथाओं के सूत्र यात्रा-विवरणों से विकसित हैं। ऐसा लगता है कि जिन स्थानों का अपने उपन्यासों में राहुल जी ने वर्णन किया है, वे उनके देखे-परखे हैं, इनके पाँव उस भूमि पर विचरण कर चुके हैं। यदि यह कहा जाये कि यात्राओं ने ही राहुल जी को लेखक बनाया है तो अतिशयोक्ति न होगी।

राहुल : एक राजनीतिक कार्यकर्ता

राहुल जी के यायावरी व्यक्तित्व के साथ उनके राजनीतिक कार्यकर्त्ता का व्यक्तित्व विरोधाभास भले ही लगता हो पर उनमें विरोध नहीं है। यदि यह कहा जाए कि उनकी यात्राएँ सोद्देश्य हुआ करती थीं तो अनुचित न होगा। अपने घुमक्कड़ जीवन में समाचार-पत्र पढ़ना उनका नियमित कार्य था, जिसके माध्यम से वे देश-विदेश की राजनीति से सुपरिचित रहते थे। गांधी जी के नेतृत्व में सचालित असहयोग के आन्दोलन के समाचार ने राहुल जी में नवप्रेरणा जागृत की। असहयोग-आन्दोलन के नारे की ध्वनि ने घुमक्कड़ एवं धर्म-प्रचारक राहुल के हृदय में तूफान उठा दिया और यह देशभक्त सेनानी असहयोग आन्दोलन में कूद पड़ा। इस समय राहुल दक्षिण भारत में कुर्ग प्रदेश में थे। वहाँ से लौटते हुए वे खण्डवा में एक गौशाला में ठहरे। यहीं उन्होंने प्रथम राजनीतिक व्याख्यान दिया। दक्षिण से राहुल छपरा पहुँचे—साधु वेश में। अपने राजनीति-प्रवेश की सूचना उन्होंने जिला कांग्रेस कमेटी को दी, जिसे लोगों ने साधु की गुस्ताखी समझा, पर रामउदार को तो कार्य करना था।[38]

कांग्रेस में प्रवेश करके राहुल ने अपना कार्य अपने निवासस्थित गाँव परसा से शुरू किया। छपरा में 'स्वदेशी खद्दर-प्रचार' एवं 'बाढ़ दल-निरोध' के आन्दोलनों में भाग लिया। छपरा के बाढ़-पीड़ितों की सहायता की, स्वयं-सेवक संगठित किये और शिक्षा का प्रचार किया। परिणामतः अंग्रेज सरकार के बंदी बने और छः मास बक्सर जेल में काटे। राहुल जी ने राजनीतिक क्षेत्र में अत्यधिक रुचि एवं उत्साह से काम किया कि सन् १९२३ के चुनाव में वे छपरा जिला कांग्रेस के मन्त्री बन गये। इसी वर्ष कांग्रेस में मतभेद उत्पन्न हो गया और उसके दो दल बन गये—अपरिवर्तनवादी और परिवर्तनवादी। परिवर्तनवादी दल कांग्रेस के कार्यक्रम में परिस्थितियों के अनुकूल परिवर्तन चाहता था। राहुल जी परिवर्तनवादी थे। कांग्रेस में मतभेद के कारण एक वर्ष बाद ही उन्होंने त्याग-पत्र दे दिया और बिहार चले गये। सन् १९२३ ई० में बिहार प्रान्तीय कांग्रेस की एक सार्वजनिक सभा में भाषण दिया और चौरी-चौरा काण्ड में शहीद होने वाले देशभक्तों को श्रद्धांजलि अर्पित की। उनके इस भाषण के कारण उन्हें दो वर्ष का कारावास मिला। ये दो वर्ष हजारीबाग जेल में व्यतीत हुए। जेल से बाहर आने पर उन्होंने छपरा जिले का दौरा किया और मीरगंज के साम्प्रदायिक दंगों में मुसलमानों की जीवन-रक्षा की। कांग्रेस के कार्यक्रम में शिथिलता के कारण सन् १९२७-३० तक वे राजनीतिक कार्यक्रमों में भाग न ले सके।

सन् १९३० में भारतीय रंगमंच पर महात्मा गाँधी के सत्याग्रह की विशेष चर्चा थी। राहुल जी इन दिनों लंका में थे। 'यंग इंडिया' में सत्याग्रह के समाचारों को पढ़ कर वे भारत लौट आए। इस समय बिहार के देश-भक्तों को गांधीवाद से निराशा हो चुकी थी। वे समाजवाद के आधार पर जन-जागृति चाहते थे। सन् १९३१ में 'बिहार सोशलिस्ट पार्टी' की स्थापना हुई और राहुल जी को इसका मन्त्री चुना गया। 'गान्धी-इर्विन' समझौते के बाद सत्याग्रह आन्दोलन साधारण रूप धारण करने लगा और राहुल तीसरी लंका-यात्रा पर चले गये और वहाँ से यूरोप।

यूरोप-यात्रा में राहुल जी ने इंग्लैण्ड और दूसरे यूरोपीय देशों के जीवन का सूक्ष्मता से अध्ययन किया। इस समय तक राहुल कम्युनिस्ट विचारधारा से प्रभावित हो चुके थे। लन्दन में उनका अधिकतर समय मार्क्स, लेनिन और स्तालिन के ग्रन्थों के अध्ययन में व्यतीत हुआ। तदनन्तर सन् १९३८ तक राहुल जी ने तिब्बत, लद्दाख, जापान, कोरिया, मंचूरिया, ईरान तथा सोवियत भूमि की यात्रा की। इस प्रकार सन् १९२७ से १९३८ तक राहुल भारत की सक्रिय राजनीति से दूर रहे। परन्तु इस समय की उनकी यात्राओं एवं साम्यवादी विचारधारा ने उनकी भविष्य की राजनीतिक-दृष्टि को आमूल परिवर्तित कर दिया था। वे सोवियत-भूमि के साम्यवादी जीवन से अत्यधिक प्रभावित हो चुके थे। यह भूमि उन्हें साम्यवाद का मूर्त्त रूप प्रतीत होती थी। फलतः सन् १९३८ में राहुल जी ने जब भारतीय राजनीति में पुनः

प्रवेश किया तो वे पूर्ण साम्यवादी बन चुके थे। सन् १९२१ में छपरा जिले में होने वाले किसान-आन्दोलन में राहुल ने जमींदारों का विरोध किया, जेल भी गये और अपने निःस्वार्थ त्याग के कारण वे किसानों के सच्चे नेता बन गये।[३६] साम्यवाद में प्रवेश को राहुल जी एक नये जीवन का आरम्भ मानते थे।[३७] सन् १९३६ में वर्धा में हुए कम्युनिस्ट पार्टी के अधिवेशन से राहुल जी प्रभावित हुए। इसी वर्ष 'बिहार कम्युनिस्ट पार्टी' की स्थापना हुई और राहुल जी इस पार्टी के सदस्य बन गये।[३८] और तब से आजीवन वे साम्यवादी ही रहे। यद्यपि पार्टी से वे अलग भी हुए मतभेदों के कारण, पर विचारों से वे सदैव साम्यवादी ही बने रहे।[३९]

देश-विदेश की यात्राओं से राहुल जी का साम्यवाद में अडिग विश्वास हो गया था। वे उनके लिए मानवतावाद का पर्याय था। वे मानव-विकास के लिए सर्वश्रेष्ठ मार्ग साम्यवाद को ही मानते थे और भारत के योगक्षेम के लिए उसे अनिवार्य समझते थे। साम्यवाद राहुल को अत्यन्त प्रिय था। वे लिखते हैं—"मुझे व्यक्ति के अलग अलग जीवन की अपेक्षा समष्टि का समूहिक जीवन सदा ही अधिक पसंद रहा। राजनीतिक-कार्यों में पड़ने के बाद तो मुझे और पता लगने लगा कि एक चना भाड़ नहीं फोड़ सकता। क्रान्ति के संचालन के लिए जबर्दस्त सुसगठित सेना होनी चाहिए। मैंने कम्युनिस्ट पार्टी को इसी रूप में पाया।"[४०] कांग्रेस की अपेक्षा मार्क्सवादी साम्यवाद राहुल को इसलिए प्रिय था कि वह आर्थिक समता एवं आर्थिक स्वराज्य की माँग करता है और गरीबों एवं मजदूरों को दुःखों एवं चिन्ताओं से मुक्त करता है। गांधीवाद और भूदान आन्दोलन को वे अनुपयोगी मानते थे। उनकी दृष्टि में अन्तर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय राजनीति में गांधीवादी रास्ता देश के आत्मघात का रास्ता है[४१] और सभी कूड़ा-करकट, सभी दमघोंटू स्थितियों को हटाने का एक ही मार्ग है, वह है लाल भवानी, साम्यवादी क्रान्ति।[४२]

राहुल जी के राजनीतिक व्यक्तित्व की अनेक विशिष्टताएँ हैं। यायावरी की अपेक्षा उन्होंने राजनीति में कम भाग लिया। ऐसा प्रतीत होता है कि जब वे घुमक्कड़ी से निवृत्त होते अथवा परिस्थितियों की माँग सुनते तो राजनीति में कूद पड़ते। इस तथ्य की ओर उन्होंने स्वयं संकेत किया है, "छपरा के मेरे राजनीतिक सहकर्मी अब भी जब-तब मिलने और कभी-कभी कार्यक्षेत्र में आने के लिए जोर भी देते थे। किन्तु ज्ञात पड़ता है, मैं अहर्त्या राजनीति के लिए नहीं बनाया गया—तो भी वर्तमान सामाजिक और राजनीतिक विधान से मैं सन्तुष्ट नहीं था, इसीलिए समय-समय पर मैं अपने को काबू नहीं रख पाता था।"[४३] राहुल जी ने यद्यपि सक्रिय रूप से राजनीति में भाग सन् १९२१-२७ तथा सन् १९३८-४१ में लिया, तथापि अपने घुमक्कड़ी जीवन में भी वे देश की राजनीतिक समस्याओं के प्रति जागरूक रहे।

राजनीति के क्षेत्र में भी राहुल क्रान्तिकारी, प्रयोगशील एवं गतिशील रहे हैं। उन्होंने सन् १९२१ में कांग्रेस में प्रवेश करके राजनीतिक जीवन आरम्भ किया।

सन् २२ में वे कांग्रेस के परिवर्तनवादी गुट में सम्मिलित हुए। सन् ३२ में वे सोशलिस्ट पार्टी के सदस्य बने। सन् १९३९ में वे मार्क्सवादी बने और आजीवन साम्यवादी रहे। इस प्रकार राहुल जी का राजनीतिक व्यक्तित्व गत्यात्मक एवं सत्य के प्रयोगों में व्यतीत हुआ। राहुल को मार्क्सवाद मानवतावाद के सर्वाधिक निकट लगा।[४७] इस प्रकार राहुल ने किसी राजनीतिक मत का अन्धानुकरण नहीं किया। वे जब किसी वाद अथवा मत में खोखलापन देखते, उसे छोड स्वतन्त्र मार्ग अपनाते। जब तक कोई राजनीतिक विचारधारा उन्हें बुद्धिग्राह्य प्रतीत न होती थी, वे कदापि उसका अनुसरण न करते थे। उनके व्यक्तित्व की दो स्पष्टतम विशेषताएँ थीं— सत्यान्वेषण और रूढ़ियों के विरुद्ध संघर्ष। प्रगति की जिस-जिस दिशा में रूढ़ियाँ दीवार बनी, राहुल जी उसे तोड़ते गये। ऐसी ही प्रक्रियाओं के बीच राहुल जी के सबल व्यक्तित्व का निर्माण एवं प्रगतिवादी चेतना का विकास हुआ। "राहुल सत्यजीवी थे, अनुभवों ने उन्हें मार्क्सवाद तक पहुँचाया। सम्भवतः यही कारण है कि उनकी लेखनी सत्य की गाथा लिखते समय इतनी धारदार होती गई है।"[४८]

राजनीतिक क्रान्ति के साथ वे सामाजिक क्रान्ति को भी आवश्यक मानते थे। उन्हें दु:ख होता था जबकि तथाकथित राजनीतिज्ञ अपने आप को जाति-पाति की संकीर्णता से मुक्त न कर पाते थे और निजी स्वार्थों के लिए पेंतरा बदलते रहते थे।[४९] राहुल रूढ़िवाद एवं छूतछात के कट्टर विरोधी थे और राजनीतिक जीवन में इनके प्रवेश को शाप मानते थे।

राहुल जी की राजनीति उनके देश-प्रेम एवं देश-भक्ति की भावना से युक्त व्यक्तित्व को मुखरित करती है। देश की स्वतन्त्रता उन्हें प्राणों से प्रिय थी। उनकी अभिलाषा थी "तुलसी माला फेंककर अब इन हाथों में लगवाऊँगा हथकड़ियाँ और गले में रुद्राक्ष की माला के बदले अगर मर सकूँ फाँसी का फंदा लगवा कर तो समझूँगा कि अपना जीवन धन्य हुआ। अब तक साधु बनकर माँगता फिरता रहा था अपने लिए भीख, और अब लड़ाकू बनकर अपने देश की आजादी वसूल करने के लिए लड़ूँगा। लाखों-करोड़ों भूखों के मुँह में रोटी डालने का संकल्प लेकर चल पड़ूँगा एक तूफान बन कर।"[५०]

राहुल के साहित्यिक व्यक्तित्व को घुमक्कड़ी के अनन्तर प्रभावित करने वाला दूसरा तत्त्व राजनीति है। राजनीतिक विषय उनकी कृतियों में प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष सर्वत्र छाए हैं। 'मेरे असहयोग के साथी' में असहयोग आन्दोलन के उनके कुछ सहयोगियों के संस्मरण हैं। 'बाईसवीं सदी' उनके मार्क्सवादी बनने से पूर्व की रचना है। उनका यह स्वप्न सोवियत जीवन में साकार होता हुआ दिखाई देता है। 'साम्यवाद ही क्यों ?', 'दिमागी गुलामी', 'आज की राजनीति', 'भागो नहीं दुनियाँ को बदलो', आदि रचनाओं में साम्यवाद सम्बन्धी अनेक विषयों पर चर्चा है। 'सिंह सेनापति', 'जययौधेय', 'मधुरस्वप्न', 'जीने के लिए', 'वोल्गा से गंगा' आदि कथाकृतियों में

उनके साम्यवादी विचार अत्यन्त स्पष्ट हैं। राहुल जी के साहित्य में इस प्रकार उनके राजनीतिक विचार सर्वत्र बिखरे हुए हैं।

राहुल जी की धर्म-दृष्टि

राहुल सांकृत्यायन का जन्म वैष्णव परिवार में हुआ। इनके नाना रामशरण पाठक वैष्णव धर्म के अनुयायी थे, पर वे कट्टर वैष्णव नहीं थे। उन्हें केदार के शरीर को स्वस्थ एवं पुष्ट बनाने के लिए मांस-मछली पका कर देने में कोई आपत्ति न थी। राहुल दस वर्ष की अवस्था में अपने पिता के सम्पर्क में आए। उनके पिता गोवर्धन पाण्डे धार्मिक वृत्ति के व्यक्ति थे। पूजा के कड़े नियमों के पालन के कारण वे 'पुजारी' नाम से पुकारे जाते थे। पर वे भी पुरानी परम्पराओं के अन्धानुयायी न थे। 'बाबा वाक्यं प्रमाणम्' उन्हें स्वीकार्य न था। ब्राह्मण होते हुए भी वे चिनगी चमार के शव को गंगा तीर जलाने के लिए ले गए।[४१] विचारों की यही स्वतन्त्रता राहुल के जीवन में आगे चल कर प्रस्फुटित हुई। बचपन में राहुल को नाना और पिता के धार्मिक संस्कार प्राप्त हुए, जिनमें रूढ़िवादिता का कहीं लेश नहीं था। राहुल जी के आरम्भिक धर्म-सम्बन्धी विचारों को प्रभावित करने वाले व्यक्तियों में बाबा परमहंस उल्लेख्य हैं। राहुल के पिता जी की परमहंस जी में आस्था थी। पिता के साथ वे भी परमहंस की कुटिया में जाते थे। इस कुटिया में बाबा हरिकरण दास जी रहते थे, जिन्होंने राहुल को वेदान्त का उपदेश दिया। राहुल १५-१६ वर्ष की आयु में पक्के वेदान्ती बन गये थे। "ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः" के सूत्र को कण्ठस्थ करके वे संन्यासी बनने की धुन में बद्रीनाथ की ओर भाग निकले। वेदान्त और वैराग्य के अतिरिक्त उन्हें सब कुछ असह्य प्रतीत होता था। परन्तु शीघ्र ही राहुल जी के विचारों में परिवर्तन आया। वे वेदान्ती से शिवभक्त बने और रुद्राष्टाध्यायी तथा महिम्न-स्तोत्र का पारायण करने लगे। सन् १९११ में राहुल जी मन्त्र-साधना की ओर आकृष्ट हुए। स्वामी पूर्णानन्द से उन्होंने मन्त्र-साधना सम्बन्धी पुस्तकों का अध्ययन किया और उनकी प्रेरणा से पूरे नियम के साथ आठ दिन तक दुर्गा के दर्शनार्थ मन्त्र-जप किया। पर जगदम्बा के दर्शन न हुए और जीवन व्यर्थ समझ कर आत्महत्या की सोच ली और धतूरे के बीज खा लिए। मरते-मरते बचे। इस मन्त्र-साधना की व्यर्थता को देख राहुल जी में परिवर्तन आया। अपनी इस अवस्था के विषय में वे लिखते हैं, "धार्मिक वायुमण्डल में उड़ने के साथ ठोस पृथ्वी पर भी पैर रखना चाहिए, इधर भी मेरा ख्याल गया।"[४२]

सन् १९१२ में राहुल जी परसामठ के महन्त लछमनदास के सम्पर्क में आए और पुनः वैष्णव बन गये। केदारनाथ से वे 'रामउदारदास' बने। उनका अधिकतर समय साधुओं की-सी दिनचर्या में बीतता परन्तु यहाँ वे असन्तुष्ट से ही रहते थे। परसामठ का निवास राहुल जी के लिए बौद्धिक अनशन था। उन्हें वहाँ

बहुत प्रभावित हुआ। उसके बाद मार्क्स के विचारों को अपनाना मुझे बिल्कुल स्वाभाविक-सा मालूम हुआ।……मार्क्स को दुनिया और उसकी वस्तुओं की व्याख्या नहीं करनी थी, बल्कि उन्हें बदलना था।"[१५] इस प्रकार राहुल जी का धर्म किसी तथाकथित धर्म का रूप नहीं है, वह 'कर्त्तव्य', 'मानवतावाद' एवं 'वैज्ञानिक भौतिकवाद' का पर्यायवाची है।

राहुल जी की धर्म-दृष्टि ने उनके साहित्य-सर्जन को भी प्रभावित किया है। अपने धार्मिक अनुभवों के आधार पर उन्होंने कई रचनाएँ हिन्दी साहित्य को प्रदान की हैं। 'महामानव बुद्ध', 'बौद्ध-दर्शन', 'दर्शन-दिग्दर्शन', 'दीर्घ-निकाय', 'वैज्ञानिक भौतिकवाद' आदि ऐसी ही कृतियाँ हैं। इस क्षेत्र में राहुल जी आधुनिक हिन्दी साहित्य में निस्संदेह अग्रणी हैं।

महापण्डित राहुल सांकृत्यायन

त्रिपिटकाचार्य महापण्डित राहुल सांकृत्यायन बहुज्ञ विद्वान् थे। शैशव से ही केदारनाथ में "उत्कट ज्ञान पिपासा थी, अदम्य महत्त्वाकांक्षा थी, ये विद्यावारिधि बनना ही नहीं चाहते थे, जगतीतल के समस्त विद्यासागरों को घोल कर पी जाना भी चाहते थे।"[१६] आचार्य पंडित रामगोविन्द त्रिवेदी राहुल जी की बहुज्ञता के विषय में लिखते हैं, "राहुल बहुश्रुत और बहुज्ञ थे। बौद्ध धर्म व दर्शन के विद्वान् थे। भारतीय इतिहास, पुरातत्त्व, भाषा-विज्ञान, लिपि-विज्ञान, खगोल-विज्ञान, मनोविज्ञान, समाज-विज्ञान, कोष-विज्ञान, अंग्रेजी, संस्कृत, प्राकृत, ईरानी, अरबी, पाली, हिन्दी आदि दर्जनों भाषाओं, विद्याओं और कलाओं के पण्डित थे। आपके बहुमुख ज्ञान-विज्ञान का पाण्डित्य देख कर ही प्रसिद्ध पंडितों ने आपको महापण्डित की उपाधि दी थी।"[१७] इस प्रकार राहुल विश्वविख्यात असाधारण भारतीय विद्वान् हैं। वे विषय की गहराई में जाकर नवलतम उपलब्धियों के सम्बन्ध में विचार कर तत्त्व दर्शन देने वाले प्रकाण्ड विद्वान् हैं।

राहुल जी अपने विशाल साहित्य-निकेतन के स्वयं निर्माता शिल्पी थे। उनकी योजनाएँ अपनी थीं और उन्हें पूर्ण करने के लिए उनमें अद्‌भुत परिश्रम शक्ति थी। वे निरन्तर ज्ञान की सीमाओं को विस्तीर्ण करते रहे। उनमें ज्ञानार्जन के लिए विलक्षण कर्मठता एवं क्रियाशीलता थी। श्री सन्तराम बी० ए० लिखते हैं, 'राहुल जी में उत्कट ज्ञान पिपासा थी। ज्ञान-वृद्धि के लिए वे कठोर-से-कठोर परिश्रम करने में तनिक भी हिचकिचाते न थे। संस्कृत-साहित्य का गम्भीर अध्ययन करने के उद्देश्य से वे साधु बन गये।'[१८] भदन्त आनन्द कौसल्यायन भी राहुल जी के गुणों में उनकी प्रखर मेधा और स्वतन्त्र चिन्तन को विशिष्ट मानते हैं।[१९] श्री बनारसीदास चतुर्वेदी लिखते हैं, 'राहुल जी में अनेक गुण हैं, अद्‌भुत परिश्रम-शक्ति है, अदम्य पौरुष है, र विद्वत्ता है——कुल मिलाकर हिन्दी जगत् में वे एक बेजोड़ आदमी हैं और उन पर अभिमान कर सकते हैं।"[२०] श्री अमृतराय उनकी कर्मठता के विषय

में कहते हैं, 'राहुल तो एक स्वप्न का नाम है, एक गहरी सामाजिक दृष्टि का—और उसको चरितार्थ करने वाली एक तेजस्वी, एकाग्र, अशेष, हठीली, अनथक क्रियाशीलता का। जितना काम इस आदमी ने अकेले किया है, उतना शायद दस-बीस मिलकर भी न कर सकते।——राहुल एक व्यक्ति नहीं हैं, जिस साधारण अर्थ में हम इस शब्द को ग्रहण करते हैं,——वह एक में अनेक व्यक्ति हैं।'[51] वस्तुतः राहुल के जीवन की सिद्धि उनकी कर्मठता एवं क्रियाशीलता है, यही उनका सबसे बड़ा सुख है और यही उनकी विद्वता एवं पाण्डित्य-उपलब्धि का मूल। डॉ० कमला सांकृत्यायन राहुल जी की कर्मठता के विषय में लिखती हैं 'मेरे पूज्य स्वर्गीय राहुल जी अपने कार्य करने में जितने कर्मठ थे, उतने ही वे दूसरों से भी अपेक्षा रखते थे। उनमें आलस्य नाममात्र को भी न था। आज के कार्य को कल के लिए छोड़ना सदैव उनके स्वभाव के विरुद्ध था। वे अक्सर ये पंक्तियाँ दोहराया करते थे 'काल करे सो आज कर, आज करे सो अब' और उनका सारा जीवन इसी सिद्धान्त पर अटल रहा।'[52] रत्नाकर पांडेय के शब्दों में, 'उन्होंने कई तथा अनेक अवसरों पर ऐसे-ऐसे महान् ग्रन्थों की सृष्टि की, जिसे अनेक महत्त्वपूर्ण संस्थाएँ कई वर्षों के श्रम से भी पूर्ण न कर पातीं। राहुल जी द्वारा बाईस खच्चरों पर ला कर तिब्बत से लाया गया विशाल बौद्ध-साहित्य हमारे शोध के लिए ऐतिहासिक धरोहर है'।[53] वस्तुतः महापण्डित राहुल में जिज्ञासु मेघा, सजग सक्रियता, असीम साहस एवं उद्दाम पौरुष था, जिसके बल पर उन्होंने अनथक ज्ञानार्जन किया एवं विपुल साहित्य साधना की।

महापण्डित राहुल में प्रकाण्ड पाण्डित्य के साथ पण्डितजन-सुलभ विनम्रता, कृतज्ञता एवं सरलता भी थी। उनमें अनथक परिश्रम, सत्य के प्रति अडिग प्रेम और साहस के साथ व्यक्तिगत निश्छल उदारता भी थी। भगवतशरण उपाध्याय के शब्दों में, 'श्री राहुल का व्यक्तित्व सरल और आकर्षक है, यद्यपि उनकी मेघा की गहराइयाँ बहुत हैं। उनका हृदय सर्वथा बाहरी तल पर है, जिसे समझने में किसी को कभी धोखा नहीं हो सकता'[54]।

महापण्डित राहुल कृतज्ञता के साकार रूप थे। उनकी जीवन-यात्रा में जो लोग उनके मानसिक सम्बल बने, जिनसे उन्होंने मार्ग-दर्शन पाया, कुछ भी सीखा, उनके प्रति वे सदा विनयावनत ही नहीं रहे, अनेकों का मौन उपकार भी उन्होंने किया था। जिस किसी से भी राहुल ने प्रेरणा प्राप्त की, उसके वे चिर कृतज्ञ हो गये। इनमें से कई मनीषियों को उन्होंने अपने ग्रन्थ समर्पित किये हैं। अपनी 'जीवन-यात्रा' तथा 'जिनका मैं कृतज्ञ' में उन्होंने अपने बुजुर्गों, बन्धुओं एवं मित्रों के ऐतिहासिक संस्मरण अंकित किए हैं। राहुल सांकृत्यायन कृतज्ञताज्ञापन को कितना महत्त्व देते हैं, उन्हीं के शब्दों में पठनीय है, 'जिनका मैं कृतज्ञ' लिख कर मैं उस ऋण से

—इनमें सिर्फ वही नहीं हैं, जिनसे मैंने मार्ग-दर्शन पाया या कुछ सीखा, बल्कि ऐसे भी पुरुष हैं जिनका सम्पर्क मेरे मानसिक गठन के रूप में जीवन-यात्रा में सहायक हुआ।— — — 'कृतघ्न और कृतवेदी' मनुष्य को सदा होना चाहिए।'[१] वस्तुतः राहुल विद्या-विनय-सम्पन्न महापण्डित थे। विस्तीर्ण संसार में पर्यटन कर यत्र-तत्र बिखरे ज्ञान-कणों को चुनना – यही राहुल का प्रचण्ड व्रत था। जहाँ से भी उन्हें यत्किंचित् ज्ञानोपलब्धि हुई, उसके प्रति श्रद्धावनत होकर उन्होंने कृतज्ञता ज्ञापित की है।

अन्तर्राष्ट्रीय युगपण्डित राहुल ने विदेशों में ह्वेनसांग और फाह्यान की भाँति घूमकर केवल दर्शन का व्यामोह नहीं रखा, अपितु हिन्दी, प्राच्य भारतीय वाङ्मय, तिब्बती, संस्कृत, भाषा-विज्ञान आदि के महत्त्वपूर्ण प्राध्यापक रहकर दो-दो बार लेनिनग्राद और लंका में भारतीय ज्ञान की अजस्र सांस्कृतिक धारा का गुरुवस्रोत भी बहाया। अपनी इस विद्वत्ता और पाण्डित्य के कारण राहुल को भारतीय जनता से, भारतीय विद्वज्जगत् से बहुत प्यार मिला, बहुत सम्मान मिला। भारत के बाहर विदेशी विद्वान् भी राहुल जी के पाण्डित्य की प्रशंसा करते थे। लंका के विद्यालंकार विश्वविद्यालय ने इस 'भारतीय पण्डित' को 'साहित्य चक्रवर्ती' की उपाधि से विभूषित किया[२]। विद्यालंकार विश्वविद्यालय के कुलपति किरिवत्तुडुवे प्रज्ञासार नायकपाद का कथन है, 'राहुल जी हमारे विश्वविद्यालय की शोभा थे, विद्यालंकार का अलंकार थे, उन्होंने अपनी विद्वता, सरलता और सबसे बढ़कर अपनी विनम्रता से हम सब के मन को मोह लिया था[३]।'

राहुल जी की प्रतिभा का क्षेत्र अत्यन्त विशद और बहुरंगी था। उनका लेखन-पथ अत्यन्त बीहड़ एवं कठिन था। वस्तुतः वे अध्ययन और लेखन के बीहड़ पथ के महायात्रिक थे। उन्होंने दर्शन, इतिहास, भाषा-शास्त्र, साम्यवाद, उपन्यास, कहानी, एकांकी, यात्रावर्णन, संस्मरण, जीवनी, काव्य, निबन्ध सभी विषयों पर गम्भीरतापूर्वक लिखा। साथ ही अपने साहस और परिश्रम से रहस्यमयी ऐतिहासिक बहुमूल्य पोथियाँ और साहसिक यात्री की उज्ज्वल जीवन-गाथा छोड़ गये हैं।

राहुल जी ने विशाल साहित्य रचना द्वारा अपने महापाण्डित्य का परिचय दिया है। उनका कृतित्व गुणात्मक एवं परिमाणात्मक वैविध्य से युक्त है। उनकी प्रकाशित-अप्रकाशित, मौलिक व अनूदित रचनाओं की संख्या १५० से कम नहीं है। उनकी रचनाओं में विधाओं की विविधता है, साथ ही वे विषय-वैविध्य भी लिए हुए हैं। 'मध्य-एशिया का इतिहास' उनके गहन इतिहास-प्रेम का परिचायक है तो 'दर्शन-दिग्दर्शन' उनका गम्भीर एवं पाण्डित्यपूर्ण दर्शन-ग्रन्थ है। 'आज की राजनीति' तथा 'भागो नहीं दुनिया को बदलो' में साधारण शैली एवं सरल भाषा में साम्यवाद का सन्देश है। पारिभाषिक कोष निर्माण के द्वारा उन्होंने सरकारी काम-काज के लिए हिन्दी के प्रयोग की नींव रखने का ऐतिहासिक कार्य किया। इसी प्रकार 'वोल्गा से गंगा' उनका कहानी-साहित्य का अनुपम रत्न है तो 'सिंह-सेनापति,' 'जय-यौधेय' तथा

'मधुरस्वप्न' ऐतिहासिक उपन्यास का आदर्श हैं। देश-विदेश की यात्राओं के विवरण उनके यात्रा-साहित्य मे मिलते हैं तो देश-विदेश की महान् विभूतियों का चित्रण उनकी जीवनी सम्बन्धी रचनाओं मे प्राप्त होता है। 'हिन्दी काव्य-धारा' तथा 'दक्खिनी हिन्दी काव्य-धारा' उनकी दो साहित्य के इतिहास से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण रचनाएँ हैं। अभिप्राय यह कि महापण्डित राहुल का साहित्य विषय, गुण एवं परिमाण-सभी दृष्टियों से वैविध्ययुक्त है। उससे हिन्दी साहित्य के भंडार की महत्त्वपूर्ण वृद्धि हुई है।

राहुल जी का कई भाषाओं पर पूर्ण अधिकार था। डॉ० कमला सांकृत्यायन के अनुसार, 'प्रारम्भ में वे ३६ भाषाएँ जानते थे। बाद मे काम न पडने से वे कितनी ही भाषाएँ भूल गये थे। १६ भाषाओं को वे भली प्रकार पढते, लिखते व समझते थे[८८]।' हिन्दी भाषा के प्रति उनका अनन्य अनुराग था। रत्नाकर पाण्डेय के शब्दो मे, 'उनका धर्म हिन्दी के अतिरिक्त कुछ नही था और उनका कार्य हिन्दी धर्म की पूर्णता की ओर सदैव सतत उन्मुख रहा[८९]।' राहुल जी हिन्दी के प्रति कभी कर्त्तव्य-च्युत नही हुए। उन जैसे हिन्दी के निष्ठावान् समर्थक विरले ही होते हैं। वे राष्ट्र-भाषा हिन्दी के लिए जिये और उसी के लिए उन्होंने अपने को होम कर दिया। हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्षपद से उन्होने संस्कृतनिष्ठ हिन्दी के समर्थन मे भाषण दिये[९०]। इसके लिए उन्होंने कम्युनिस्ट पार्टी की घोषित नीति की भी चिन्ता नही की[९१]। उनकी हिन्दी को कितनी देन है, इस विषय मे पण्डित रामगोविन्द त्रिवेदी का कथन ध्यातव्य है, 'उन्होने अपने ज्ञान-विज्ञान से हिन्दी का जो भण्डार भरा है, वह बहुत महत्त्वपूर्ण है। हिन्दी के उद्धार और उन्नयन के लिए उन्होने बड़े-बड़े कष्ट उठाये। इसके लिए उन्होने वन-वन की, निविड़ कान्तारो की खाक छान डाली। वे खाते-पीते, उठते-बैठते, बोलते-बतराते, सदा हिन्दी के विकास की चिन्ता मे रहते थे। वे चाहते थे कि हिन्दी सर्वांगपूर्ण हो—वह सभी विषयो के ग्रन्थों का आगार बन जाय।— ——— वस्तुतः राहुल जी जीते-जागते कोष थे[९२]।'

राहुल जी महापण्डित थे। पर कभी उन्होंने सत्य की प्राप्ति का दावा नहीं किया था—केवल 'सत्य के समीपतम प्रदेश' मे पहुँचने का ही दावा करते थे। उनमे वर्चस्व था, विशिष्ट प्रज्ञा और प्रखर प्रतिभा थी, जिसने सारे हिन्दी संसार को आलोकित कर दिया था। उनके पाण्डित्य और विशिष्ट शोध का लोहा भारत, रूस और तिब्बत के विद्वान् ही नही मानते थे, विश्वविख्यात ज्ञान गार्नेल (लन्दन) मिलवन लेवी (पेरिस) स्टेनकोनो (नारवे), आरेल स्टाइन (इंग्लैण्ड) एन० डी० बर्नेट (लंदन), जार्ज ग्रियर्सन (लंदन), जार्ज ग्रोमर्ग्रि (कम्बोडिया), के० इमदा (टोकियो), माउंग मे (बर्मा), ओटोस्टाइन (चेकोस्लोवाकिया), भ्रांड्रेनबर्ग (रूस), विटरनीत्ज (चेकोस्लोवाकिया), फ्रैंकलिन इजर्टन (अमेरिका), जे० वोगल (हालैंड), जी० तुची (इटली) आदि विद्वान् भी मानते थे[९३]।

महामानव राहुल

राहुल जी महापण्डित ही नहीं, सच्चे अर्थों में महामानव भी थे। उनमें लोभ, मोह एवं अहंकार का लेश भी न था। उनकी बातचीत का ढंग इतना सरल और सहज होता था कि अपरिचित भी चार-छ बातों में ही उनसे आत्मीयता मान बैठता था। निरभिमानिता राहुल जी के प्रत्येक व्यवहार की संगिनी थी। दिखावा उन्हें न तो किसी व्यवहार में स्वीकार था, न व्याख्यान तथा बातचीत के सन्दर्भ में। पण्डित रामगोविन्द त्रिवेदी लिखते हैं, 'उनकी बैठकों की सर्वोपरि उल्लेखनीय कथा है राहुल जी के मनः प्राणों को रस से परिप्लुत करने वाली विनोदप्रियता——— —राहुल जी के लिए 'सम्पूर्ण जगदेव नन्दनवनम्' था। वे जिस परिवार में ठहरते उसके एक सदस्य बन जाते थे। देश में ऐसे अनेक परिवार हैं, जो समझते हैं कि राहुल जी हमारे थे, हमारे परिवार को और परिवार के बच्चों को सबसे अधिक मानते थे[८५]।'

राहुल जी को प्रकृति ने निर्मल मेधा, विलक्षण प्रतिमा, सहज विमोहिनी काया के साथ नवनीत-सा मृदु हृदय प्रदान किया था। उनकी गम्भीर विवेचना से विभासित आँखों में बोधिसत्व की अनन्त करुणा की छाया थी। राहुल जी में पौरुष के साथ भावुकता एवं करुणा भी थी। हिमालय की तरह गम्भीर व्यक्तित्व वाले महापण्डित को भावुकता कभी-कभी परास्त कर देती थी। डॉ० कमला सांकृत्यायन के शब्दों में, 'बाहर से धीर-गम्भीर होने पर भी उनके हृदय में असीम करुणा थी[८६]।' वस्तुतः राहुल लोकोत्तर व्यक्ति थे। जहाँ सामाजिक कुरूपताओं के प्रति वे अत्यधिक कठोर थे, वहाँ व्यक्तिगत स्तर पर वे कुसुम से भी अधिक कोमल थे। जया व जेता के नाम लिखे उनके पत्रों में उनका करुण पितृ-हृदय उमड़ता हुआ दिखाई देता है[८७]।

मानव को सारे गुण देने की संसार-रचयिता की प्रवृत्ति ही नहीं है। सब की गुणावली में कहीं-न-कहीं कुछ कमी रह ही जाती है। इसीलिए तो वह मानव है। राहुल जी में भी कुछ कमियाँ थीं। अभक्ष्य भक्षण की वृत्ति तथा उसका अत्यधिक प्रचार, बौद्ध दार्शनिकों के समकक्ष शंकराचार्य को तुच्छ मानने की प्रवृत्ति, गोस्वामी तुलसी को स्वयंभू का अनुकर्त्ता मानने का पूर्वाग्रह, विरक्तावस्था में रूस में परिणय, तिब्बत में एक तिब्बती युवती से प्रणय-सम्बन्ध, प्रथम परिणीता का परित्याग, बौद्ध-धर्म की तुलना में हिन्दू धर्म को नगण्य स्वीकारना आदि कुछ त्रुटियों की ओर संकेत किया जा सकता है, पर राहुल जी के प्रभूत गुणों में उनकी ये दुर्बलताएँ सहज ही विलुप्त हो जाती हैं। फिर गुण और दोष परस्पर सापेक्ष होते हैं। एक की दृष्टि में जो दुराग्रह है, दूसरे की दृष्टि में वही दृढ़निश्चय का प्रमाण, अतः ये कमियाँ राहुल जी के अपने सिद्धान्तों के अनुसार गुण माने जा सकते हैं। पर इन्हें मानव-सुलभ दुर्बलताएँ मानना ही उचित प्रतीत होता है।

राहुल जी महामानव थे और मानव को जीवन व जगत् का केन्द्र मानते थे।

उनका मानव अपने भाग्य का स्वयं निर्माता है, [illegible] के लिए स्वतन्त्र है। वह वास्तविक जगत् का मनुष्य है। वह वस्तुवादी है, और ठीक-ठीक देखता है, भ्रमों से वह मुक्त है। राहुल जी स्वयं इसी आदमी के प्रतीक महामानव थे।

राहुल जी सर्वतन्त्र स्वतंत्र थे। पारिवारिक व सामाजिक बन्धनों से मुक्त होकर ही वे इतना गुरु कार्य करने में समर्थ हुए। वे विशुद्ध बुद्धिवादी थे। बुद्धि-वैभव के बल पर उन्होंने हिन्दी संसार में धूम मचा दी। वे स्वनिर्मित पुरुष थे, केवल अपने अध्यवसाय से महापण्डित हो गये थे। आचार्य पण्डित रामगोविन्द त्रिवेदी के शब्दों में, 'वे विनय, तप, गाम्भीर्य की मूर्ति थे। स्वाध्याय में लीन दान्त-शान्त ऋषिकुमार थे और ग्रन्थ-प्रणयन में लघुव्यास थे। उनका प्रोज्ज्वल और प्रदीप्त मुखमण्डल ही कहता था कि सभ्य, शिष्ट और अधिकारी विद्वान् थे। उनकी आराध्या शारदा थी, उसी की सेवा में निरन्तर रमण करते थे। वे देश की विशेषतः हिन्दी की विभूति थे। वे उच्चकोटि के मनुष्य थे—चमत्कारी पुरुष, ज्योति-पुंज[59]।' निस्सन्देह वाणी, विचार और कर्म तीनों की विभूतियों से सम्पन्न राहुल का महाप्राण क्रान्तिकारी व्यक्तित्व विश्व में विरल है। अपनी प्रसिद्ध कृति 'घुमक्कड़-शास्त्र' की इन पंक्तियों में राहुल जी ने अपना व्यक्तित्व एवं जीवन-दर्शन ही उड़ेल दिया है—'बिना अपने कलेवर को आगे बढ़ाये, अपने जीवित समय में विश्व को कुछ देना और सदा के लिए शून्य में विलीन हो जाना, यह कल्पना कितनों के लिए भयावह मालूम होगी, किन्तु कितने ही ऐसे भी विचारशील हो सकते हैं, जो अपना काम करने के बाद बालू के पदचिह्नों की भाँति विलीन हो जाने के विचार से भयभीत नहीं, बल्कि प्रसन्न ही होंगे[60]।'

(ख) राहुल सांकृत्यायन का कृतित्व

बहुमुखी प्रतिभा : बहुमुखी कृतित्व

महापण्डित राहुल सांकृत्यायन की प्रतिभा बहुमुखी थी। भारतीय समाज के नवजागरण में उनकी देन अद्वितीय है। राहुल जी ने देश-विदेश का भ्रमण किया, भारतीय राजनीति में भाग लिया, धर्म-संस्थानों में घूम कर तथा संन्यासियों के अखाड़ों में रह कर सार तत्त्व की खोज करते रहे। इतने व्यस्त जीवन में भी उन्होंने विपुल साहित्य-रचना की, जो किसी अध्यवसायी एवं कर्मठ साहित्यकार से ही सम्भव थी। इस क्षेत्र में वे अनन्य हैं। राहुल जी दर्जनों भाषाएँ जानते थे। पाली, संस्कृत, तिब्बती, भाषा-शास्त्र, दर्शन-शास्त्र, इतिहास—ज्ञान की अनेक शाखाओं के प्रकाण्ड, धुरन्धर महापण्डित थे। राहुल जी ने, "दो सौ से अधिक ग्रन्थ लिखे, जिनमें उन्होंने ज्ञान की परिधि का विस्तार किया। उन्होंने उपन्यास लिखे, कहानियाँ लिखीं, गीत लिखे, नाटक लिखे। उन्होंने आत्मकथा लिखी, जीवनियाँ लिखीं, दर्शन-सम्बन्धी

ग्रन्थ लिखे, इतिहास लिखे, यात्रा-वर्णन लिखे, राजनीति पर लिखा। उन्होंने शोध-ग्रन्थ लिखे और हिन्दी के आदिकालीन साहित्य पर नया प्रकाश डाला। वे प्रकाण्ड पण्डित थे और साथ ही कर्मयोगी भी थे। वे दुनिया को समझना ही नहीं चाहते थे, वे दुनिया को बदलना भी चाहते थे।"[५६] वस्तुत: राहुल जी का रचना-कार्य बृहद्, अनेकमुखी एवं प्रेरणाप्रद है, जिसे देख आश्चर्यचकित रह जाना पड़ता है। श्री आदित्य मिश्र के शब्दों में, 'महापण्डित राहुल सांकृत्यायन की साहित्यिक प्रतिभा का उन्मेष, विकास और प्रसार स्वयं एक ग्रन्थ का विषय है। भारतीय नवजागरण में साहित्यकारों का जो सहयोग रहा है, उसमें राहुल का साहित्य अग्रणी रहा है। वस्तुतः उनका कृतित्व इतना विशाल, इतना बहुमुखी और इतनी प्रेरणाओं से उद्भूत है कि उसकी तुलना गत शताब्दी के यूरोपीय विश्वकोषवादियों की प्रतिभा से की जा सकती है।"[६०] और श्री अवनीन्द्र कुमार विद्यालंकार के शब्दों में, 'बहुमुखी प्रतिभा के धनी राहुल जी ने ७० वर्ष की आयु में जो कुछ दिया, वह पृष्ठों की दृष्टि से विपुल है, शब्द-गणना की दृष्टि से महान् है और नया मार्ग बनाने की दृष्टि से अद्भुत है।"[६१]

प्रतिभा-उन्मेष एवं साहित्य-साधना

साहित्य-रचना के क्षेत्र में राहुल जी ने सन् १९२७ में पदार्पण किया। यद्यपि इससे पूर्व सन् १९१५ में उनका प्रथम हिन्दी लेख मेरठ के 'भास्कर' पत्र में प्रकाशित हुआ था और यदाकदा कुछ और भी लेख हिन्दी-पत्रों में प्रकाशित होते रहे, तथापि सन् १९२७ से ही उनके साहित्यिक जीवन का प्रारम्भ माना जाना चाहिए। इस समय वे लंका में थे और लंका के सम्बन्ध में उन्होंने धारावाहिक क्रम से लेख लिखे जो 'सरस्वती' (मासिक), विश्वामित्र' (दैनिक) तथा 'मिलाप' (दैनिक) में छपे थे। तब से उनकी लेखनी अविश्रान्त रूप से चलती रही और सन् १९६१ में गम्भीर रूप से रुग्ण हो जाने पर ही उनकी लेखनी ने विराम लिया। इस प्रकार राहुल जी की साहित्य-साधना की अवधि चौंतीस वर्ष है, और इस अवधि-परिधि में उन्होंने निरन्तर लिखा है। राहुल जी योजनाबद्ध होकर लिखते थे। राहुल जी की लेखन-प्रक्रिया तथा साहित्य-साधना के विषय में प्रकाशचन्द्र गुप्त का कहना है, 'घड़ी देखकर वे काम शुरू करते थे और घड़ी देखकर ही खत्म करते थे।''''''मानों किसी दफ्तर के काम की तरह लिखने का काम समय बाँध कर करते थे।'[६२] इस प्रकार राहुल जी ने निरन्तर योजनाबद्ध होकर लिखा और हिन्दी, संस्कृत एवं तिब्बती भाषाओं में अनेक रचनाओं को प्रस्तुत किया।

राहुल-साहित्य

राहुल जी का साहित्य परिमाण और गुण दोनों दृष्टियों से विपुल है। राहुल जी ने कुल कितनी रचनाएँ लिखी अथवा उनकी संख्या कितनी है, इस विषय में *मतैक्य नहीं। कतिपय विद्वान् उनकी संख्या ६०० तक कहते हैं।*[६३] *अधिकतर विद्वान्* उनकी रचनाओं की संख्या दो सौ से तीन सौ तक बताते हैं। राहुल जी की रचनाओं

की संख्या के विषय में इतना बड़ा मतभेद होने का कारण राहुल जी का निरन्तर लेखन-कार्य था और वह भी हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, तिब्बती, भोजपुरी आदि विभिन्न भाषाओं में। इसके अतिरिक्त उनकी रचनाओं के प्रकाशक विभिन्न थे जिन्होंने अनुमानत. राहुल जी की पुस्तकों की सूची पुस्तकों के आवरण-पत्रों पर दी है, जिसमें संख्या की न्यूनाधिकता होना स्वाभाविक था। श्रीमती कमला सांकृत्यायन के शब्दों से भी इस मत की पुष्टि होती है, 'कुछ श्रद्धालु लेखक उनके ग्रन्थों की संख्या 'तीन सौ' 'सैकड़ों' तक लिख देते हैं। राहुल जी की लेखन-गति, बृहदाकार ग्रन्थों का प्रणयन और विषय-विविधता को देखते हुए उनकी ग्रन्थ-संख्या के बारे में बहुतों को भ्रम होना स्वाभाविक ही है। दूसरों की क्या कहूँ, आज से पहले मुझ से ही यदि कोई राहुल जी के ग्रन्थों की ठीक-ठीक संख्या पूछता तो मेरे लिए भी बताना आसान न होता।'[६४]

राहुल जी की प्रकाशित रचनाएँ

राहुल जी की प्रकाशित रचनाओं की विविध सूचियाँ प्राप्त हैं, जिनमें से कुछ उल्लेखनीय सूचियाँ यहाँ प्रस्तुत हैं।

(१) 'बहुरंगी मधुपुरी' (कहानी-संग्रह) के आवरण-पत्र के पिछली ओर छपी सूची।

(२) 'उपमा' (अगस्त, १९६३) के अन्तर्गत छपी सूची।

(३) 'ज्ञानपीठ' (नवम्बर, १९६३) में प्रकाशित सूची।

(४) 'हिन्दी में उच्चतर साहित्य' पर आधारित सूची।

(५) डॉ० प्रभाशंकर मिश्र द्वारा प्रस्तुत सूची।

(६) श्रीमती कमला सांकृत्यायन द्वारा प्रस्तुत 'राहुल साहित्य' शीर्षक (सम्मेलन पत्रिका, शक १८८७ में प्रकाशित) सूची।

उपर्युक्त सूचियों का तुलनात्मक विश्लेषण इन पंक्तियों में प्रस्तुत है—

(१) **'बहुरंगी मधुपुरी' के आवरण-पत्र पर प्रकाशित सूची**[६५]—इस सूची में राहुल जी के यात्रा, देश-दर्शन, साम्यवाद, राजनीति, विज्ञान, साहित्य, इतिहास, उपन्यास, कहानी, जीवनी, बौद्ध-धर्म, भोजपुरी नाटक, संस्कृत, तिब्बती, कोश आदि से सम्बन्धित १०४ ग्रन्थों की संख्या गिनाई गई है। इसमें राहुल जी की १९५४ तक की ग्रन्थ संख्या आ पाई है। इस पुस्तक की प्रकाशिका स्वयं कमला जी हैं। इसमें 'नेपाल' और 'हिमाचल प्रदेश' के नाम भी हैं जो अभी तक अप्रकाशित हैं। दूसरे, इस सूची में राहुल के आठ छोटे-छोटे नाटकों को आठ पुस्तकें माना गया है जबकि वे दो रचनाओं के रूप में प्रकाशित हैं।

(२) **'उपमा' (राहुल-स्मृति-विशेषांक) के अन्तर्गत छपी सूची**[६६]—इस सूची में भी उक्त विषयों से सम्बद्ध राहुल जी की प्रकाशित एवं अप्रकाशित रचनाओं की

संख्या १३४ दी गई है। इसमे प्रकाशित पुस्तकें १२६ हैं। नाटकों की संख्या यहाँ भी आठ ही गिनाई गई है और उन्हें आठ पुस्तकें माना गया है।

(३) 'ज्ञानपीठ' में प्रकाशित सूची[६७]—इस सूची मे पुस्तकों की संख्या १२५ है। इसमें 'नेपाल' तथा 'हिमाचल प्रदेश' को प्रकाशित दिखाया गया है। 'मेरी जीवन यात्रा' (पहले तीन भाग), 'सोवियत भूमि' (दो भाग), 'मध्य एशिया का इतिहास' (दो भाग)—इन्हें तीन पुस्तकें न दिखाकर सात पुस्तकें दिखाया गया है। इस सूची में सबसे बड़ी त्रुटि यह है कि इसमे 'सप्तसिन्धु' और 'दिवोदास' को दो पृथक् पुस्तकें दिखाया गया है, जबकि यह एक ही औपन्यासिक कृति के दो पृथक् नाम हैं। इस प्रकार ११७ रचनाओं को ही १२५ गिनाया गया है। कुछ रचनाएँ जैसे 'जादू का मुल्क', 'जो दास थे', 'सूदखोर की मौत' तथा 'शादी' इस सूची मे नही हैं।

(४) 'हिन्दी में उच्चतर साहित्य' पर आधारित सूची[६८]—इसमें राहुल जी की केवल ८८ रचनाओं के नाम हैं। यह सूची स्वल्प तो है ही, साथ ही त्रुटिपूर्ण है। इसमें कुछ रचनाओं के नाम दो-दो बार हैं, जैसे तिब्बत मे बौद्ध धर्म' 'विश्व की रूप-रेखा', 'रूस मे पच्चीस मास' तथा 'दार्जीलिंग परिचय'। 'सोवियत-भूमि' तथा 'मेरी जीवन-यात्रा' के दो-दो भागों को पृथक् पुस्तक के रूप में गिना गया है। 'हिमाचल प्रदेश' को भी प्रकाशित दिखाया गया है। वस्तुतः इसमें राहुल जी की प्रकाशित रचनाएँ ८१ ही रह जाती हैं।

(५) डॉ० प्रभाशंकर मिश्र द्वारा प्रस्तुत सूची[६९]—डॉ० प्रभाशंकर मिश्र ने राहुल जी के प्रकाशित ग्रन्थो की संख्या १२६ मानी है। यह ग्रन्थ संख्या 'उपमा' में प्रकाशित तथा कमला जी द्वारा उन्हें दी गई सूचनाओं के आधार पर है। परन्तु इसमें सन् १९६७ तक की उनकी सभी प्रकाशित रचनाओं का समावेश नही हुआ। साथ ही किताब महल, इलाहाबाद द्वारा प्रकाशित 'वीर चन्द्र सिंह गढ़वाली' (१९५७) जो राहुल जी की जीवनी-रचनाओं मे प्रमुख है, का भी उल्लेख नही। इसके अतिरिक्त कई रचनाओं के लेखन-काल भी अशुद्ध हैं। 'रामराज्य और मार्क्सवाद' की भी गणना नहीं हुई। पाठावलि (भाग ३) तथा 'संस्कृत पाठमाला' को दो के स्थान पर आठ पुस्तकें माना गया है।

(६) श्रीमती कमला सांकृत्यायन द्वारा प्रस्तुत सूची[१००]—कमला सांकृत्यायन द्वारा प्रस्तुत यह सूची सर्वाधिक प्रामाणिक एवं उल्लेख्य है। इसमें राहुल जी की रचनाओं की संख्या १२९ दी गई है। इस सूची की कुछ अपनी विशेषताएँ हैं;[१०१] जैसे—

(१) जिन ग्रन्थो के अनेक भाग हैं उन्हें एक ही ग्रन्थ माना गया है।

(२) अन्य विद्वानों के सहयोग से सम्पादित ग्रन्थों का नाम भी नही गिनाया गया।

(३) विभिन्न पुस्तकों के अन्य भाषाओं में अनुवादों का भी उल्लेख है।

(४) अप्रकाशित ग्रन्थ जिनकी पाण्डुलिपियाँ कमला जी के पास हैं, उनकी

गणना भी इसमें है।

इस प्रकार 'राहुल साहित्य' सूची में उन्होंने उन्ही ग्रन्थों का समावेश किया है जिनका समावेश स्वयं राहुल जी पसन्द करते। कमला जी के अनुसार राहुल साहित्य के प्रकाशित पृष्ठ ५०,००० हैं।[१०२] कमला सांकृत्यायन द्वारा प्रस्तुत सूची सर्वाधिक प्रामाणिक होते हुए भी सर्वथा निर्दोष नहीं। इसमें कुछ पुस्तकों के प्रकाशकों का लेखिका को ज्ञान नहीं जैसे 'भीरान' आदि का। इसी प्रकार कुछ पुस्तकों का वर्गीकरण उनके विषय के अनुकूल नहीं।

राहुल जी की अप्रकाशित रचनाएँ

राहुल जी की उपर्युक्त प्रकाशित रचनाओं के अतिरिक्त उनका अप्रकाशित साहित्य भी है। इन रचनाओं की पाण्डुलिपियाँ श्रीमती कमला सांकृत्यायन के पास हैं। ज्ञानपीठ पत्रिका,[१०३] उपमा,[१०४] सम्मेलन पत्रिका,[१०५] में समय-समय पर उन्होंने राहुल जी की अप्रकाशित रचनाओं का उल्लेख किया है—

(१) तिब्बती-संस्कृत-कोश। (२) हिमाचल प्रदेश। (३) नेपाल। (४) तिब्बती-हिन्दी-कोश (यन्त्रस्थ, साहित्य अकादमी)। (५) पालि काव्यधारा। (६) आजमगढ़ की पुरा कथा (सम्मेलन-पत्रिका में प्रकाशित। (७) राहुल जी द्वारा जया और जेता के नाम लिखे गये पत्र।[१०६] (८) पाँच बौद्ध दार्शनिक एवं बौद्ध साहित्य (यन्त्रस्थ)।[१०७] (९) निबन्ध संकलन (हिन्दी)-(आठ-खण्ड) अनुमानित।[१०८] (१०) राहुल पत्रावली (दो खण्ड)।[१०९] (११) संस्कृत निबन्ध (फुटकल) एक-संग्रह[११०] (१२) फुटकल अंग्रेजी निबन्ध-एक संग्रह।[१११]

राहुल जी का सर्जनात्मक साहित्य

राहुल जी के सर्जनात्मक साहित्य पर विचार करने से पूर्व साहित्य के स्वरूप पर विचार करना अपेक्षित है। साहित्य की परिभाषा एवं उसके स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए भारतीय एवं पाश्चात्य मनीषियों एवं समालोचकों ने पर्याप्त विचार किया है। 'साहित्य' अपने व्युत्पत्तिमूलक रूप में सहित+यत् प्रत्यय से बना है अत. 'साहित्य का अर्थ है शब्द और अर्थ का यथावत् सहभाव अर्थात् साथ होना। इस प्रकार सार्थक शब्दमात्र का नाम 'साहित्य' है। साहित्य की यह परिभाषा अत्यन्त व्यापक है और इसमें मनुष्य की सारी बौद्धिक और भावन चेष्टा समाविष्ट हो जाती है तथा समस्त ग्रन्थ-समूह साहित्य के अन्तर्गत आ जाते हैं।[११२] अतः व्यापक अर्थ में साहित्य समस्त वाङ्मय का प्रतीक है, समस्त संचित ज्ञानराशि का समावेश उसमें हो जाता है। साहित्य अपने इस व्यापक अर्थ में अंग्रेजी के 'लिटरेचर' शब्द का पर्यायवाची है। 'काव्य' और 'शास्त्र' दोनों इसके अन्तर्गत आ जाते हैं। काव्य रसात्मक होता है और 'शास्त्र' ज्ञान प्रधान। प्राचीन आचार्यों ने जिसे 'काव्य' और 'शास्त्र' कहा है, उसे आधुनिक शब्दावली में क्रमशः 'ललित साहित्य' या 'सर्जनात्मक साहित्य' और 'उपयोगी साहित्य' की संज्ञा प्राप्त है। डी० क्विन्सी के शब्दों में इन्हें 'लिटरेचर ऑफ

पावर' एवं 'लिटरेचर ऑफ नौलेज' कहा जा सकता है। एक (शास्त्र) का उद्दे सिखाना है, दूसरे (काव्य) का उद्देश्य प्रभावित करना है।[113] सर्जनात्मक साहि (ललित-साहित्य) में 'साहित्य की वे सभी कोटियाँ आएँगी जिनमें बोधपक्ष उत प्रधान नहीं, जितना भावपक्ष, अर्थात् जिनमें बुद्धि की अपेक्षा हृदय को स्पर्श करने सामर्थ्य अधिक है।[114] आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी सर्जनात्मक साहित्य (रच त्मक साहित्य) की प्रमुख विशिष्टता 'लोकोत्तर आनन्द' को मानते हैं। वे लिखते "ये पुस्तकें हमें सुख-दुःख की व्यक्तिगत संकीर्णता और दुनियावी झगड़ों से ऊपर जाती हैं, और सम्पूर्ण मनुष्य जाति के—और भी आगे बढ़कर प्राणिमात्र के दुःख-सु राग-विराग, आह्लाद-आमोद को समझने की सहानुभूतिमय दृष्टि देती हैं। वे पाठ के हृदय को कोमल और संवेदनशील बनाती हैं कि वह अपने क्षुद्र स्वार्थ को भूल प्राणिमात्र के दुःख-सुख को अपना समझने लगता है—सारी दुनिया के साथ आत्म यता का अनुभव करने लगता है।" इससे पाठक को एक प्रकार का ऐसा आन मिलता है जो स्वार्थगत दुःख-सुख से ऊपर की चीज है। शास्त्रकार ने इसी को लोक तर आनन्द कहा है।"[115] इस प्रकार सर्जनात्मक साहित्य में मनुष्य की केवल बौद्धि तुष्टि तथा ज्ञान-प्राप्ति की इच्छा को पूर्ण करने वाली पुस्तकों को ग्रहण नहीं कि जाता, बल्कि मनुष्य के जीवन को सरस, सुखी तथा सुन्दर बनाने वाले साहित्य को लिया जाता है। गद्य और पद्य दोनों में ही सर्जनात्मक साहित्य की सृष्टि सम्भव है शर्त है सर्जनात्मक तत्त्व की, लालित्य एवं सौन्दर्यनिष्ठा की। काव्य, उपन्यास, कहा नाटक, रेखाचित्र, वर्णनात्मक गद्य-पद्य सर्जनात्मक साहित्य के ही अंग हैं। डॉ रामकुमार वर्मा साहित्य की ललित-दृष्टि के विषय में लिखते हैं—'कलात्मकता सौंद से उठती है और साहित्य की उन समस्त दिशाओं में छा जाती है, जिनका सम्ब अन्तर्जगत् की कल्पना और भावना से है। यह वह ललित दृष्टि है, जो वसन्त ऋतु भाँति अग्रसर होती है, जिसमें काव्य, नाटक, कथा, उपन्यास, विविध रंगों के पुष्प की भाँति प्रस्फुटित हो उठते हैं। उनमें मनोभावों की सुरभि, माया की तरंगों प झूमती है और प्रतिक्षण आनन्द और संतोष की दिशा में प्रवाहित होती रहती है।"[11] सर्जनात्मक अथवा ललित-साहित्य में उपयोगिता का सर्वथा निषेध भी नहीं, "य निश्चित है कि ललित साहित्य में कलात्मकता, सौन्दर्यत्व, कल्पनाविलास, भावना परिष्कार आदि का महत्त्व अधिक है और तत्त्वज्ञान, इतिहास, समाज-शास्त्र औ अन्य ज्ञानमूलक साहित्य-चेष्टाओं का बोध है।"[114]

काव्येतर वाङ्मय के रूप में जो भी उपलब्ध है उसे 'शास्त्र' या 'उपयोगि साहित्य' कहा जा सकता है। 'सिद्धान्त-प्रतिपादन या वस्तु-परिगणन सम्बन्धी मान की बौद्धिक तुष्टि के लिए लिखी गई सामग्री केवल मनुष्य की ज्ञान-प्राप्ति का साधन है, वह उसके हृदय को रसप्लावित नहीं कर सकती। इसी कारण ज्ञान-प्राप्ति के ... 'शास्त्र' के अन्तर्गत गृहीत किए जाते हैं।'[115]

'उपयोगी साहित्य' के रूप में आज जो साहित्य प्राप्त होता है वह 'शास्त्र' को आत्मसात् करता हुआ पर्याप्त आगे बढ़ गया है, क्योंकि आधुनिक युग में ज्ञान-विज्ञान के अनेक नये क्षेत्र प्रकाश मे आए हैं। 'उपयोगी साहित्य' को आज हम (१) वैज्ञानिक साहित्य (२) टैक्नीकी साहित्य (३) मानवीय सम्बन्धों के साहित्य जैसे अर्थशास्त्र, समाज-विज्ञान, राजनीति आदि (४) मनोविज्ञान एवं मनोविश्लेषण (५) चिकित्सा-शास्त्र (६) क्रीड़ा और आमोद-प्रमोद का साहित्य (७) साहित्य-शास्त्र (८) दर्शन (९) धर्म और (१०) विविध आदि अनेक वर्गों में रख सकते हैं।[११९] 'हिन्दी साहित्य कोश' में आगे लिखा है—'वर्णनात्मक, विवरणात्मक, विवेचनात्मक एवं वैज्ञानिक तर्कवादी तथा तथ्य-प्रधान शैलियों का उपयोगी साहित्य में विशेष महत्त्व है। भावात्मक, कल्पना सूत्री और लालित्यमय (अलंकृत) शैलियाँ उपयोगी साहित्य के क्षेत्र से बाहर हैं।'[१२०]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि जहाँ उपयोगी साहित्य का लक्ष्य तत्त्वज्ञान एवं बौद्धिक ऊहापोह है, वहाँ विशुद्ध साहित्य का सम्बल रसानुभूति एवं कल्पनानन्द है। दोनों के क्षेत्र और प्रयोजन विभिन्न हैं। पाण्डित्य और कवित्व दो भिन्न वृत्तियों के प्रतिफल हैं और वे अनिवार्यतः अतरावलम्बित नहीं हैं।[१२१] डॉ० रामकुमार वर्मा के शब्दों में दोनों के अन्तर एवं महत्त्व को इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है, 'ज्ञान-विज्ञान में बुद्धि और तर्क है, कला और उसके सौन्दर्य में कल्पना और भावना है। प्रथम स्थूल जगत् से सम्बद्ध है, द्वितीय सूक्ष्म जगत् से, जिसमें मानव को स्फूर्ति और प्रेरणा प्राप्ति होती है और उसका जीवन अधिक संवेदनशील हो जाता है। प्रथम रूप हमारी सभ्यता को प्रशस्त करता है, द्वितीय हमारी संस्कृति को। किसी भी राष्ट्र के विकास में सभ्यता और संस्कृति दोनों ही अपेक्षित हैं। अतः राष्ट्र के साहित्य में उपयोगी और ललित दोनों ही प्रकार के साहित्य की अपेक्षा है।'[१२२] कभी-कभी उपयोगी साहित्य में भी लालित्य और शैली का चमत्कार मिलता है जैसे भारतीय-दर्शन, स्मृति, अर्थ-शास्त्र, काम-शास्त्र, साहित्य-शास्त्र से सम्बन्धित ग्रन्थों में चिन्तन और मनन की गरिमा के साथ वाग्विदग्धता भी है। परन्तु इसे रचयिता की स्वभावगत विवशता ही स्वीकारा जा सकता है।[१२३] अन्त में, यह भी मान्य है कि सर्जनात्मक साहित्य के लिए उपयोगी साहित्य उपजीव्य है। जिस भाषा का उपयोगी साहित्य समृद्ध नहीं, उसके सर्जनात्मक साहित्य का स्तर भी अधिक समुन्नत एवं व्यापक नहीं हो सकता। राहुल जी का हिन्दी साहित्य में इस दृष्टि से गौरवपूर्ण स्थान है क्योंकि उन्होंने उपयोगी एवं सर्जनात्मक दोनों प्रकार की रचनाओं द्वारा हिन्दी साहित्य की अभिवृद्धि की है।

उपयोगी साहित्य

साहित्य के 'उपयोगी साहित्य' तथा 'सर्जनात्मक साहित्य' इन दो विभागों के आधार पर राहुल कृत विज्ञान, समाज-विज्ञान, राजनीति, दर्शन, धर्म, इतिहास,

साम्यवाद, भाषा-व्याकरण, कोश तथा सम्पादन सम्बन्धी रचनाएँ उपयोगी साहित्य अन्तर्गत आती हैं। उपयोगी साहित्य के अन्तर्गत राहुल जी की रचनाएँ हैं :—

(क) विज्ञान :—१. विश्व की रूपरेखा।

(ख) समाज-विज्ञान :—१. मानव समाज।

(ग) राजनीति और साम्यवाद :—(१) सोवियत न्याय, (२) राहुल का अपराध, (३) आज की राजनीति, (४) कम्युनिस्ट क्या चाहते हैं ? (५) क करें ? (६) चीन में कम्यून, (७) सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी का इतिहा (८) रामराज्य और मार्क्सवाद।

(घ) दर्शन—(१) वैज्ञानिक भौतिकवाद, (२) दर्शन-दिग्दर्शन, (३) बौ दर्शन।

(ङ) धर्म—(अ) बौद्ध-धर्म—(१) बुद्ध-चर्या, (२) धम्मपद, (३ मज्झिमनिकाय, (४) विनयपिटक, (५) दीर्घनिकाय, (६) तिब्बत में बौद्ध-ध (७) बौद्ध संस्कृति, (८) पाँच बौद्ध दार्शनिक एवं बौद्ध साहित्य (यन्त्रस्थ)।

(आ) इस्लाम धर्म—(१) इस्लाम धर्म की रूप-रेखा।

(च) देश-दर्शन—(१) सोवियत भूमि, (२) सोवियत मध्य-एशिया, (३ दोर्जेलिङ्, परिचय, (४) कुमाऊँ, (५) गढ़वाल, (६) जौनसार, (७) आजमग की पुराकथा, (८) हिमाचल प्रदेश (अप्रकाशित), (९) नेपाल (अप्रकाशित)।

(छ) कोश—(१) शासन शब्द कोश, (२) राष्ट्रभाषा कोश, (३) तिब्बत हिन्दी कोश (यंत्रस्थ), (४) तिब्बती संस्कृत कोश।

(ज) इतिहास—(१) हिन्दी काव्यधारा (अपभ्रंश), (२) दक्खिनी हिन्द काव्य धारा, (३) आदि हिन्दी की कहानियाँ तथा गीतें (संकलन), (४) सरहपा कृत दोहा कोश, (५) मध्य एशिया का इतिहास (दो भाग), (६) ऋग्वेदिक आर्य (७) अकबर, (८) भारत में अंग्रेजी राज्य के संस्थापक (अनुवाद), (९) पालि साहित्य का इतिहास, (१०) तुलसी रामायण संक्षेप (संकलन), (११) सूत्रकृतांग (१२) संस्कृत काव्यधारा, (१३) पालि काव्यधारा (अप्रकाशित)।

(झ) तिब्बती (भाषा-व्याकरण)—(१) तिब्बती बाल-शिक्षा, (२) पाठा वलि (१, २, ३), (३) तिब्बती व्याकरण।

(ञ) संस्कृत (टीका-अनुवाद)—(१) संस्कृत पाठमाला (पाँच भाग), (२) अभिधर्म कोश, (३) विज्ञप्तिमात्रता सिद्धि, (४) प्रमाणवार्तिक स्ववृत्ति, (५) हेतु-बिन्दु, (६) सम्बन्ध-परीक्षा, (७) निदान सूत्र (परीक्षा), (८) महा-परिनिर्वाण सूत्र।

(ट) संस्कृत ताल पोथी सम्पादन—(१) वाद-न्याय, (२) प्रमाण वार्तिक, (३) अध्यर्द्ध शतक, (४) विग्रह व्यावर्तनी, (५) प्रमाण वार्तिक भाष्य, (६) प्रमाण वार्तिक वृत्ति, (७) प्रमाण वार्तिक स्ववृत्ति टीका, (८) विनय सूत्र।

(ठ) अनुवाद कार्य (उपन्यास)—(१) शैतान की आँख, (२) विस्मृति के

गर्भ मे, (३) जादू का मुल्क, (४) सत्त का ढ्ल, (५) दाखुन्दा, (६) जो दास थे, (७) अनाथ, (८) अदीना, (९) सूदखोर की मौत, (१०) शादी।

सर्जनात्मक साहित्य

सर्जनात्मक साहित्य के अन्तर्गत राहुल जी की मौलिक रचनाओं—उपन्यास, कहानी, जीवनी, यात्रा-साहित्य तथा निबन्ध समाविष्ट हैं। डॉ० प्रभाशंकर मिश्र ने राहुल जी के 'ललित-साहित्य' की परिधि में आने वाली रचनाओं की संख्या ३६ मानी है[२४]। ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होने राहुल जी के निबन्ध-संग्रहो तथा कुछ जीवनियों को सूचीपत्रो मे प्रकाशित विभिन्न शीर्षकों के अन्तर्गत पढकर उन्हे छोड़ दिया है। राहुल जी की निम्नलिखित ५१ रचनाएँ उनके सर्जनात्मक साहित्य के अन्तर्गत मानी जानी चाहिएँ। जिनमे ४९ हिन्दी में और २ भोजपुरी मे हैं।

(क) उपन्यास—(१) बाईसवीं सदी (सन् १९२३-लेखन काल) (२) जीने के लिए (सन् १९४०), (३) सिंह सेनापति (सन् १९४४), (४) जय यौधेय (सन् १९४४), (५) भागो नही दुनिया को बदलो (सन् १९४४), (६) मधुर स्वप्न (सन् १९४९), (७) राजस्थानी रनिवास (सन् १९५३), (८) विस्मृत यात्री (सन् १९५४), (९) दिवोदास (सन् १९६०)।

(ख) कहानी—(१) सतमी के बच्चे (लेखन काल-सन् १९३५), (२) वोल्गा से गंगा (सन् १९४४), (३) बहुरंगी मधुपुरी (सन् १९५३), (४) कनैला की कथा (सन् १९५५-५६)।

(ग) जीवनी-आत्मकथा-संस्मरण—(१) मेरी जीवन-यात्रा (पांच भाग), (२) सरदार पृथ्वीसिंह (सन् १९५५), (३) नये भारत के नये नेता (दो भाग) (सन् १९४२), (४) बचपन की स्मृतियाँ (सन् १९५३), (५) अतीत से वर्तमान (केवल प्रथम खण्ड, सन् १९५३), (६) स्तालिन (सन् १९५४), (७) लेनिन (सन् १९५४), (८) कार्लमार्क्स (सन् १९५४), माओ-चे-तुंग (सन् १९५४), (१०) घुमक्कड़ स्वामी (सन् १९५६), (११) मेरे असहयोग के साथी (सन् १९५६), (१२) जिनका मैं कृतज्ञ (सन् १९५६), (१३) वीर चन्द्रसिंह गढ़वाली (सन् १९५६), (१४) सिंहल घुमक्कड़ जयवर्धन (सन् १९६०), (१५) कप्तान लाल (सन् १९६१), (१६) सिंहल के वीर पुरुष (सन् १९६१), (१७) महा-मानव बुद्ध (सन् १९५६)।

(घ) यात्रा-साहित्य—(१) मेरी लद्दाख यात्रा (सन् १९२६), (२) लंका (सन् १९२६-२७), (३) मेरी यूरोप-यात्रा (सन् १९३२), (४) मेरी तिब्बत यात्रा (सन् १९३७), (५) यात्रा के पन्ने (सन् १९३४-३६), (६) जापान (सन् १९३५), (७) ईरान (केवल द्वितीय भाग) (सन् १९३५-३६), (८) रूस मे पच्चीस मास (सन् १९४४-४७), (९) किन्नर देश (सन् १९४८), (१०) तिब्बत में सवा वर्ष (सन् १९३१), (११) घुमक्कड़ शास्त्र (सन् १९४९),

(१२) एशिया के दुर्गम भूखण्डों में (सन् १९५६), (१३) चीन में क्या देखा ? (सन् १९६०)।

(ङ) निबन्ध साहित्य—(१) साहित्य निबन्धावलि (सन् १९४९), (२) पुरातत्त्व निबन्धावली (सन् १९३६), (३) दिमागी गुलामी (सन् १९३७), (४) तुम्हारी क्षय (सन् १९३७), (५) आज की समस्याएँ (सन् १९४४), (६) साम्यवाद ही क्यों ? (सन् १९३४), (७) अतीत से वर्तमान (केवल द्वितीय खण्ड) (सन् १९५३)।

(च) भोजपुरी नाटक—(१) तीन नाटक (सन् १९४२), (२) पाँच नाटक (सन् १९४२)।

निम्न पंक्तियों में राहुल जी की उपर्युक्त सर्जनात्मक कृतियों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत है।

(क) उपन्यास :—

(१) **बाईसवीं सदी** :—'बाईसवीं सदी' को हिन्दी का प्रथम यूटोपिया माना जा सकता है। इस कथाभास में लेखक का प्रतिपाद्य है साम्यवाद के बिना मानवता के विकास का कोई रास्ता नहीं है। लेखक का विश्वास है कि भारत भी साम्यवादी हो जाएगा। बाईसवीं सदी के साम्यवादी भारत के ग्रामों, नगरों, कृषि, गोपालन, उद्योग-धन्धों, यातायात, शिक्षा आदि का इसमें बहुत ही सुन्दर चित्रण है। भावी भारत की सभ्यता और संस्कृति की सजीव कल्पना इसमें है। साथ ही वर्तमान भारत की दयनीय दशा भी इसमें अंकित है।

(२) **जीने के लिए**—राहुल जी का यह राजनीतिक उपन्यास है। इस उपन्यास में बीसवीं शती के प्रारम्भ से लेकर सन् १९३९ तक के भारत की राजनीतिक एवं सामाजिक अवस्था का अच्छा दिग्दर्शन हुआ है। प्रथम विश्व-युद्ध के उपरान्त भारतीयों द्वारा स्वातन्त्र्य-प्राप्ति के लिए किये गये प्रयत्नों, आन्दोलनों तथा कृषकों और जमींदारों के मध्य भूमि-अधिकार सम्बन्धी झगड़ों को लेकर इस उपन्यास की रचना की गई है। लेखक का झुकाव स्पष्टतः साम्यवाद की ओर है।

(३) **सिंह सेनापति**—'सिंह सेनापति' राहुल जी का प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यास है। सेनापति "सिंह" को कथा का केन्द्र-बिन्दु मानकर लेखक ने आज से पच्चीस सौ वर्ष पहले के लिच्छवि गणतन्त्र के सामाजिक जीवन को प्रस्तुत किया है। यह युग स्वच्छन्दता का युग था। वीरता और विलासिता की रम्य कहानी इस उपन्यास में संकलित है।

(४) **जय यौधेय**—'जय यौधेय' में राहुल जी गुप्त साम्राज्य की तुलना में यौधेय गण की प्रतिष्ठा स्थापित करते हैं। यह उपन्यास जय की आत्मकथा के रूप में ढाला गया है। यह उपन्यास 'सिंह सेनापति' की अपेक्षा प्राचीन भारत की अधिक व्यापक झाँकी देता है। एक प्रकार से यह कथा जय की भारत-यात्रा का वर्णन है।

हिमवन्त से सिंहलद्वीप तक जय यौधेय की यह विराट् यात्रा राहुल के अपने जीवन का स्मरण दिलाती है। इस ऐतिहासिक कथा के माध्यम से राहुल जी पाठक को आधुनिक दिव्य दृष्टि भी प्रदान करना चाहते हैं।

(५) भागो नहीं दुनिया को बदलो—संवादात्मक शैली में लिखा यह उपन्यास उपन्यास की अपेक्षा "कथाभास" है। इसमें लेखक ने साम्यवाद के सिद्धान्तों का सरल भाषा में आख्यान किया है।

(६) मधुर स्वप्न—"मधुर स्वप्न" में राहुल प्राचीन ईरान का इतिहास कथा के रूप में उठाते हैं। लेखक ईरानी राजदरबार और वहाँ की सामाजिक रीति-नीतियों का वर्णन गहरी अन्तर्दृष्टि से करता है। इस उपन्यास का उद्देश्य भी प्राचीन ईरान के जीवन द्वारा मार्क्सवादी सिद्धान्तों का समर्थन करना है। मज्दकियों के साम्यवादी विचारों के माध्यम से राहुल जी ने अपने विचारों की सशक्त अभिव्यक्ति दी है।

(७) राजस्थानी रनिवास – इस ऐतिहासिक कथाकृति में राजस्थान की सात पर्दों में रहने वाली रानियों और ठाकुरानियों की बेबसी, दुखगाथा और वहाँ के पुरुषों की स्वेच्छाचारिता का वर्णन किया गया है। लेखक ने यद्यपि इसे उपन्यास की संज्ञा देना उचित नहीं समझा तथापि इसे 'कथाभास' तो माना ही जा सकता है। हतभागिनी गौरी का करुणापूर्ण चित्रांकन इसमें हुआ है।

(८) विस्मृत यात्री—'विस्मृत यात्री' राहुल जी का ऐतिहासिक उपन्यास है। इसमें छठी शताब्दी के भारत का चित्रण है। इसमें नरेन्द्रयश की यात्राओं एवं बौद्ध धर्म-प्रसार सम्बन्धी गतिविधियों का अंकन है। नरेन्द्र यश राहुल जी की मार्क्स-वादी विचारधारा का पोषक है। वह आर्थिक वैषम्य को समाप्त कर साम्यवादी समाज की स्थापना चाहता है। प्राकृतिक वातावरण का अंकन इस उपन्यास में सजीव बन पड़ा है।

(९) दिवोदास—"दिवोदास" सप्तसिन्धु के १२-१३वीं शती ई० पूर्व के आर्यों के जीवन को लेकर लिखा गया ऐतिहासिक उपन्यास है। ऋग्वैदिक ऋचाएँ इस उपन्यास का आधार हैं। ऋग्वैदिक आर्यों की सभ्यता का अंकन ही उपन्यास का लक्ष्य है। आर्यों और असुरों के संघर्ष का कलात्मक चित्रण 'दिवोदास' की विशेषता है।

(ख) कहानी

(१) सतमी के बच्चे—'सतमी के बच्चे' राहुल जी का प्रथम कहानी-संग्रह है। इसमें दस कहानियाँ हैं—'सतमी के बच्चे', 'डीह बाबा', 'पाठक जी', 'पुजारी', 'स्मृतिज्ञानकीर्ति', 'जैसिरी', 'राजबली', 'रामगोपाल', 'धुरविन', तथा 'दल सिंगार'। 'स्मृतिज्ञानकीर्ति' के अतिरिक्त अन्य सभी कहानियों में राहुल जी ने समसामयिक समाज की आर्थिक एवं सामाजिक परिस्थितियों से पीड़ित व्यक्तियों के जीवन-चित्र

प्रस्तुत किये हैं। इन कहानियों के प्रायः सभी पात्र उनके जीवन-अनुभव में आए व्यक्ति हैं। अधिकतर कहानियाँ ग्रामीण-जीवन से सम्बद्ध हैं।

(२) वोल्गा से गंगा—'वोल्गा से गंगा' राहुल की ऐतिहासिक कथाकृति है। इस संग्रह में बीस कहानियाँ हैं—निशा, दिवा, अमृताश्व, पुरुहूत, पुरुधान, अंगिरा, सुदास, प्रवाहण, बन्धुल मल्ल, नागदत्त, प्रभा, सुपर्ण यौधेय, दुर्मुख, चक्रपाणि, बाबा नूरदीन, सुरैया, रेखा भगत, मंगलसिंह, सफदर तथा सुमेर। इस कथासंग्रह की सर्वप्रमुख विशेषता इसकी ऐतिहासिकता है। लेखक के व्यापक दृष्टिविस्तार ने आठ सहस्र वर्षों तक प्रसरित मानव जीवन के विकास का साक्षात्कार इन कहानियों के माध्यम से करवाया है। इनमें कहानीपन कम एवं ऐतिहासिकता अधिक है।

(३) बहुरंगी मधुपुरी—इस संग्रह में विलासपुरी मधुपुरी (मसूरी) से सम्बद्ध २१ कहानियाँ हैं। ये कहानियाँ काल्पनिक न होकर वास्तविक जीवन के आधार पर लिखी गई है। कहानियों के शीर्षक है--'बूढ़े लाला' 'हाय बुढ़ापा' 'कुमार दुरंजय', 'मेम साहब', 'महाप्रभु', 'पेड बाबा', 'ठाकुर जी', 'लिपिस्टिक', 'राय बहादुर', 'गुरु जी', 'मीनाक्षी', 'गोलू', 'रूपी', 'राउत', 'कमल सिंह', 'डोरा', 'बिसुन', 'मुलतान', 'मास्टर जी', 'चम्पो', 'तथा', 'काठ के साहब'। इस संग्रह की कहानियों में मसूरी के जीवन से सम्बन्धित सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक आदि विविध पहलुओं का यथार्थ अंकन है। 'रूपी' शीर्षक से इस संग्रह की नौ चुनी हुई कहानियों का पृथक् प्रकाशन भी हुआ है।

(४) कनैला की कथा—'कनैला की कथा' राहुल का चौथा कहानी-संग्रह है। डॉ० प्रभाशंकर मिश्र इस संग्रह को इतिहासात्मक निबन्ध-संग्रह मानते हैं।[१२५] परन्तु वास्तविकता इसके विपरीत है। इस कहानी-संग्रह में इतिहास तत्त्व की प्रधानता अवश्य है जैसा कि 'वोल्गा से गंगा' में भी। परन्तु इसमें कथा, कल्पना व चरित्र-चित्रण को देखते हुए इसे कहानी-संग्रह ही माना जाना अधिक समीचीन है। राहुल जी ने स्वयं भी इस संग्रह की कहानियों के शीर्षकों के साथ 'कहानी' शब्द का प्रयोग किया है।[१२६] डॉ० महादेव साहा भी इसे कहानी-संग्रह ही स्वीकारते हैं—'कनैला की कथा' में जहाँ-तहाँ इतिहास का पुट है, मगर वह ऐतिहासिक रचना नहीं है। बंगला अनुवाद के प्रकाशक ने इसे 'वोल्गा से गंगा' (भाग २) के नाम से प्रकाशित किया है।'[१२७] श्रीमती कमला सांकृत्यायन ने भी इसे कहानी-संग्रह ही माना है।[१२८] इस संग्रह में नौ कहानियाँ हैं 'त्रिवेणी', 'काशीग्राम', 'बड़ी रानी', 'देवपुत्र', 'कलाकार', 'सैयद बाबा', 'नरमेध', 'सन् ५७' तथा 'स्वराज्य'। इन कथाओं में १३०० ई० पूर्व से लेकर १९५७ ई० तक का कनैला के जनजीवन का इतिहास निहित है।

(ग) जीवनी-आत्मकथा संस्मरण

(१) मेरी जीवन-यात्रा (पाँच भाग)—आत्मकथापरक-साहित्य में राहुल द्वारा लिखित 'मेरी जीवन-यात्रा' एक महत्त्वपूर्ण कृति है। पाँच भागों में लिखित इस

यात्रा में कुल पृष्ठ संख्या २८१४ है। 'मेरी जीवन यात्रा' में राहुल के जीवनवृत्त के साथ उनके समसामयिक जीवन और जगत् की भिन्न-भिन्न गतियाँ और विचित्रताएँ अंकित हैं। कहीं राहुल अपने व्यक्ति-वृत्त को प्रस्तुत करते हैं, कहीं साधारण यात्री की तरह गाथाएँ सुनाते हैं, कहीं दार्शनिक की तरह प्रश्न पर प्रश्न उठाते हैं और कहीं महान् भाषाशास्त्री व पुरातत्त्ववेत्ता की तरह इतिहास और वर्तमान की समस्याएँ प्रस्तुत करते हैं। लेखक इसमें बड़ी-से-बड़ी और छोटी-से-छोटी सभी वस्तुओं से परिचय करवाता चलता है, सर्वत्र सहज भाव से। शिवचन्द्र शर्मा के शब्दों में, 'अपनी जीवन-यात्रा में वे स्वयं कम हैं, दूसरे अधिक। उनकी जीवन-यात्रा एक प्रकार से देश-विदेश के व्यक्तियों के समूह का, राजनीतिक, सामाजिक तथा साहित्यिक परिस्थितियों से उत्पन्न वातावरण का वास्तविक विश्वकोश है।'[१२६]

(२) सरदार पृथ्वीसिंह—'सरदार पृथ्वीसिंह' देश की स्वतन्त्रता के निर्भीक सेनानी पृथ्वीसिंह का जीवन-चरित्र है। देश की स्वतन्त्रता के लिए सरदार ने भयंकर कष्टों का सामना किया और लोमहर्षक स्थितियों में भी उनकी अदम्य आत्मा ने पराजय स्वीकार नहीं की। सरदार पृथ्वीसिंह शान्ति के पुजारी हैं। इस जीवनी में पृथ्वीसिंह के समय-समय के मानसिक उतार-चढ़ाव हैं, पर वे संचारी भाव हैं। स्थायी भाव है अद्भुत उत्साह, जो जीवनीनायक में सर्वत्र दिखाई देता है। सरदार पृथ्वीसिंह तूफानों के बीच नाव खेते रहने वाले नाविक की कहानी है। जीवन-चरित के साथ-साथ बीसवीं शती के पूर्वार्ध की देश की राजनीतिक अवस्था का भी इसमें अंकन हुआ है।

(३) नये भारत के नये नेता (दो भाग)—'नये भारत के नये नेता' लेखक का एक तरह से 'वोल्गा से गंगा' के साथ का ग्रन्थ है। जहाँ 'वोल्गा से गंगा' का विस्तार आठ हज़ार वर्षों के विस्तृत काल में है, वहाँ इस ग्रंथ का क्षेत्र वर्तमान काल की विस्तृत भारत भूमि है।[१३०] इस ग्रन्थ के जीवनी-नायक हैं—शेर कश्मीर शेख अब्दुल्ला, कामरेड यूसुफ, स० द० भारद्वाज, श्री निवास ग० सरदेसाई, स्वामी सहजानन्द सरस्वती, श्रीपाद अमृत डांगे, कल्पनादत्त जोशी, बंकिम मुकर्जी, पी० सुन्दरैय्या, क० केरलियन, रामचन्द्र व० मोरे, डॉ० गंगाधर अधिकारी, डॉ० कुंवर मुहम्मद अशरफ, पूरनचन्द्र जोशी, सोहराब शा० बाटलीवाला, मुहम्मद शाहिद, सैयद जमालुद्दीन बुखारी, फज्लइलाही कुर्बान, मुबारक सागर आदि। लेखक ने इन जीवनी-नायकों को देश की परिस्थितियों से सम्पृक्त करके देखा है। ये जीवनियाँ भारत की विविध समस्याओं एवं संघर्षों को साकार रूप में प्रस्तुत करती हैं। राहुल जी की इस पुस्तक की एक विशेषता यह है कि लेखक ने प्रत्येक जीवनी-नायक से सम्पर्क स्थापित करके एतद्विषयक सामग्री को संचित किया है।

(४) बचपन की स्मृतियाँ—रूप-विधान की दृष्टि से निबन्ध, कहानी तथा रेखाचित्र की अनेक विशेषताओं से समन्वित 'बचपन की स्मृतियाँ' राहुल जी की एक

उत्तम संस्मरण-कृति है। रचना-शीर्षक की सार्थकता एवं प्रतिपाद्य-विषय इसके प्रथम संस्मरण 'इतिहास' की प्रथम पंक्तियों से ही व्यक्त हैं— "जन्मभूमि सबको प्यारी होती है। मनुष्य बचपन में जिन-जिन वस्तुओं के घनिष्ट सम्पर्क में आता है, वह उसके लिए सहज प्रिय हो जाती हैं।"[13] इस रचना में राहुल जी के बाल्यकाल से सम्बन्धित ३५ संस्मरण हैं। इनमें उन्होंने पन्दहा एवं कनैला में व्यतीत अपने बचपन की मधुर स्मृतियों को प्रस्तुत किया है। जन्मभूमि पन्दहा, पितृभूमि कनैला, शैशव के मित्र, क्रीड़ाएँ, क्रीड़ा-स्थल, उद्यान, सरोवर, विद्यालय के सहपाठी, शिक्षक, बचपन के प्रिय खाद्य तथा पेय, प्रभावित करने वाले व्यक्ति और वस्तुएँ, कौतूहलपूर्ण एवं विस्मयकारी घटनाएँ तथा कथाएँ—बचपन से सम्बन्धित इन सबके संस्मरण राहुल जी ने अंकित किए हैं। बाल्यकाल की इन रम्य स्मृतियों के साथ उन्होंने पन्दहा एवं कनैला के इतिहास, जन-जीवन, भाषा, पर्व-त्योहार, धर्म एवं समाज के विविध स्तर के लोगों की स्थिति आदि का भी चित्रण किया है।

(५) **अतीत से वर्तमान**—'अतीत से वर्तमान' पुस्तक तीन खण्डों में विभक्त है। प्रथम खण्ड में चरित्र एवं संस्मरण हैं, द्वितीय खण्ड में कला, इतिहास और धर्म-सम्बन्धी निबन्ध हैं और तृतीय खंड देश-दर्शन से सम्बन्धित है। प्रमुख चरित हैं—घुमक्कड़राज नरेन्द्रयश, घुमक्कड़ भट्ट दिवाकर, आचार्य दीपंकर श्री ज्ञान, महापर्यटक किन्शुप, भदन्त बोधानन्द महास्थविर, मौलवी महेशप्रसाद, अकदमिक बरन्निकोफ, नेपाली महाकवि देवकोटा, किशोरीलाल वाजपेयी आदि। संस्मरणों में जायसवाल-संस्मरण अत्यन्त रोचक बन पड़ा है। इस प्रकार इस पुस्तक में जिन जीवन-चरितों को रखा गया है वे अतीत से वर्तमान तक के विस्तृत काल से सम्बन्धित हैं। लेखक की रुचि के अनुकूल यह जीवनी-नायक घुमक्कड, बौद्ध-धर्म-प्रचारक इतिहासज्ञ एवं समाज-सुधारक हैं।

(६-९) **कार्ल-मार्क्स, लेनिन, स्तालिन तथा माओ-चे-तुंग**—राहुल जी साम्यवाद को मानव जाति की सारी बीमारियों की एकमात्र रामबाण औषधि स्वीकारते हैं। इसीलिए उन्होंने हिन्दी के पाठकों को साम्यवाद के महान् तत्त्वदर्शियों एवं पथ-प्रदर्शकों कार्लमार्क्स, लेनिन, स्तालिन तथा माओ चे-तुंग की जीवनियों से परिचित करवाने के लिए इन चार जीवन-चरितों को लिखा है। इस प्रकार उन्होंने हिन्दी के एक अभाव की पूर्ति की है। इन जीवनियों में जीवनी-नायकों की जीवन-घटनाएँ मात्र ही नहीं हैं, प्रत्युत इन साम्यवादियों के सिद्धान्त, उनकी विचार-धारा तथा उनके क्रियाकलापों का विशद एवं गम्भीर विवेचन है। राहुल जी के ये जीवनी-नायक नये समाज एवं नव मानवता के निर्माता हैं।

(१०) **घुमक्कड़ स्वामी**:—'घुमक्कड़ स्वामी' राहुल जी द्वारा लिखित स्वामी हरिशरणानन्द का जीवन-चरित है। इसमें राहुल ने 'पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी' के संस्थापक स्वामी हरिशरणानन्द का जीवन-वृत्त प्रस्तुत किया है। स्वामी का व्यक्तित्व

भी लेखक की तरह गत्यात्मक है। वे हरिश्चन्द्र से हरिदास, हरिदास से हरिशरण फिर हरिशरणानन्द बने और फिर पूरे नास्तिक। अन्त में आयुर्वेद के क्षेत्र में अनेक वैज्ञानिक प्रयोग किए। राहुल की तरह घुमक्कड़ी भी उन्हें प्रिय थी। राहुल उन्हें 'भैया' कहते थे। घुमक्कड़ स्वामी हरिशरणानन्द का परिजीवन तथा समसामयिक भारतीय आन्दोलनों—विशेष रूप से जलियाँवाला बाग की घटनाएँ—'घुमक्कड़ स्वामी' में अंकित हैं।

(११) मेरे असहयोग के साथी :—भारतीय-स्वातन्त्र्य-समर में कितने ही लोगों ने तिल-तिल करके अपने आपको मिटाया है, किन्तु उनमें से कितने ही शहीदों के नाम विस्मृति के गहन गर्त में सदा के लिए विलीन हो चुके हैं। सन् १९२१ से १९२६ तक राहुल ने कांग्रेस की ओर से छपरा तथा उसके आस-पास के गाँवों में संगठन एवं प्रचार का कार्य किया। राष्ट्रीय आन्दोलन में यह राहुल की सक्रिय भूमिका थी। इसी समय जो अन्य लोग भी उसी प्रदेश में राष्ट्रीय यज्ञ में आहुति डाल रहे थे ऐसी ही ३८ विभूतियों का परिचय 'मेरे असहयोग के साथी' नामक पुस्तक में दिया गया है। पुस्तक की शैली जीवनी-लेखन की न होकर संस्मरणात्मक है। कुछ संस्मरण-नायकों के नाम हैं—मथुरा बाबू, पं० नगनारायण तिवारी, बाबू मधुसूदन सिंह, बाबू रामनरेश सिंह, बाबू लक्ष्मीनारायण सिंह, बाबू हरिहर सिंह, पं० ऋषिदेव ओझा, बाबू रामउदार राय, पं० गिरीश तिवारी आदि। इन असहयोगी वीरों में से अधिकांश की आर्थिक स्थिति अत्यन्त शोचनीय थी। उन्हें एक ओर दरिद्रता से संघर्ष करना पड़ता था, दूसरी ओर राष्ट्रीय आन्दोलन में सक्रिय भाग लेना वे अपना कर्त्तव्य मानते थे। देश को स्वतन्त्र देखना उनका स्वप्न था, जिसकी पूर्ति के लिए उन्होंने कष्टों एवं काँटों के मार्ग को अपनाया। राहुल के शब्दों में, "खास कर उन लोगों को याद करके तो और भी मन में करुणा आती है, जिन्होंने अपनी जवानी के अनमोल वर्ष देश की आजादी के लिए लड़ने में लगाये। उन्हें जीवन में कोई ऐसी कीर्ति नहीं मिली और हरिहर बाबू की तरह कितनी ही गुमनाम समिधाएँ हमारे देश के स्वतन्त्रता-यज्ञ में चुपचाप पड़ीं। वे व्यर्थ नहीं गईं। उन्होंने उस आग को प्रज्वलित रखा, जो अन्त में अंग्रेजों को देश से बाहर निकालने में सफल हुई।"[१३२]

(१२) जिनका मैं कृतज्ञ—'जिनका मैं कृतज्ञ' में उन ५५ व्यक्तियों के संस्मरण हैं, जिनसे राहुल जी ने मार्ग-दर्शन पाया या कुछ सीखा है। कुछ व्यक्ति तो उनके मानसिक सम्बल के रूप में उनकी जीवन-यात्रा में सहायक हुए हैं। रामदीन मामा, महादेव पण्डित, यागेश, सत्यनारायण कविरत्न, पं० सन्तराम, पं० बलदेव चौबे, पं० भगवद्दत्त, धूपनाथ सिंह, भदन्त आनन्द कौसल्यायन, आचार्य नरेन्द्रदेव, डॉ० सत्यकेतु आदि के प्रति लेखक ने अपनी कृतज्ञता ज्ञापित की है। ये ५५ व्यक्ति विभिन्न देशों के, विभिन्न वर्गों के, विभिन्न शिक्षा-स्तरों के तथा विभिन्न प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व करने वाले हैं।

(१३) वीर चन्द्रसिंह गढ़वाली—'वीर चन्द्रसिंह गढ़वाली' राहुल जी द्वारा लिखित एक बृहत् जीवनी है। सरदार पृथ्वीसिंह की तरह चन्द्रसिंह गढ़वाली भी स्वतन्त्रता-संग्राम के सेनानियों में से हैं। चन्द्रसिंह एक अद्भुत सेनानी एवं जन-नायक थे। लेकिन देश की परिस्थिति ने उन्हें अपनी शक्तियों के विकास और उप-योग का अवसर नहीं दिया। 'पेशावर का विद्रोह' देश की स्वतन्त्रता-हेतु भारतीयों के विद्रोहों की एक शृंखला पैदा करता है और वीर चन्द्रसिंह इसी पेशावर-विद्रोह के अग्रणी थे, वह एक प्रकार से आज़ाद हिन्द फौज का बीज बोने वाले थे। 'वीर चन्द्रसिंह गढ़वाली' राहुल जी की सर्वाधिक सफल एवं सशक्त जीवनी है, जो यथार्थ तथ्यों पर आधारित है। लेखक ने स्वयं गढ़वाली जी से जीवनी के लिए सामग्री एकत्रित की है और उसे अपनी सशक्त भाषा एवं शैली में प्रस्तुत किया है।

(१४) सिंहल घुमक्कड़ जयवर्धन—गुमनाम साहसी यात्री सिंहल घुमक्कड़ जयवर्धन की यह जीवनी १५८ पृष्ठों की है। जयवर्धन लंका के एक पहाड़ी गाँव में पैदा हुए। वे जन्मजात घुमक्कड थे। उनकी यात्राएँ स्वान्तः-सुखाय थी। वे वर्षों निरुद्देश्य घूमते रहे, यद्यपि उनका घूमना अपने लिए सोद्देश्य था। घूमने में उन्हें आनन्द मिलता था। ल्हासा तथा तिब्बत के इस यायावार में कुछ बातें असाधारण हैं। वे निश्चिन्त जीव हैं। रुपये जोड़ने का विचार उन्हें कभी आया ही नहीं। बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध मे भिन्न-भिन्न प्रवृत्ति के लोगों को प्रायः लेखक ने अपनी जीव-नियों का नायक बनाया है। जयवर्धन भी उनमे से एक हैं।

(१५) कप्तान लाल—इस लघु पुस्तिका में कैप्टन जसवन्तचन्द्र लाल का जीवन-वृत्त है। कैप्टन लाल अंग्रेज-सेना के सैनिक थे। रंग-रूप से भी वे अंग्रेज ही लगते थे। परन्तु उनमे हिन्दू-संस्कार, देश-भक्ति, जातीय गौरव, स्वाभिमान तथा निर्भीकता की भावनाएँ विद्यमान थी, जिन्हें लेखक ने इस जीवनी में विशेष रूप से अंकित किया है। 'कप्तान लाल' सरल और सीधी-सादी भाषा मे लिखी गई लघु जीवनी है। इसमे जीवनीनायक की चारित्रिक विशेषताओं के उद्घाटन के साथ-साथ दूसरे महायुद्ध की घटनाओं का भी सजीव चित्रण हुआ है।

(१६) सिंहल के वीर :—'सिंहल के वीर' राहुल जी की एक लघु रचना है। इसमे राहुल ने सिंहल मे रहकर जिन सात महापुरुषों के जीवन का गहन अध्ययन किया था, उसे रोचक शैली में प्रस्तुत किया है। 'सरदार पृथ्वीसिंह' अथवा 'वीर चन्द्रसिंह गढ़वाली' की तरह यह एक बड़ी जीवनी नहीं, प्रत्युत सात लघु जीवन-वृत्त हैं। सिंहल के ये सात वीर हैं—विजय (सिंहल का प्रथम वीर), महेन्द्र (सिंहल में बौद्ध धर्म का प्रचारक), दुष्ट ग्रामणी (सिंहल का अजेय वीर), विजयबाहु (सिंहल का त्राणकर्ता), महापराक्रमबाहु, टिकरी मण्डार (पोर्तुगीज-दलन-कर्ता) तथा श्री भण्डार नायक। इस प्रकार 'सिंहल के वीर' में सात सिंहल-निर्मायकों के व्यक्तित्व-अंकन के साथ-साथ सिंहल का इतिहास भी चित्रित है। ई० पू० पाँचवीं शती से

बीसवीं शती तक की राजनीतिक उथल-पुथल की झाँकी इस पुस्तक में प्राप्य है, जो इतिहासवेत्ता राहुल की निजी विशेषता है।

(१७) महामानव बुद्ध—महात्मा बुद्ध के जीवन की भिन्न-भिन्न घटनाओं पर इस पुस्तिका में प्रकाश डाला गया है। महात्मा बुद्ध की २५वीं शताब्दी के उपलक्ष्य में लेखक के विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित लेखों का संकलन 'महामानव बुद्ध' में हुआ है। बुद्ध जनवाणी के सर्वप्रथम आश्रयदाता थे। उनके जीवन, वाणी और दर्शन का दिग्दर्शन इस पुस्तक में है।

(घ) यात्रा-साहित्य

(१) मेरी लद्दाख-यात्रा—राहुल जी की 'मेरी लद्दाख-यात्रा' सन् १६३६ ई० में इण्डियन प्रेस इलाहाबाद से प्रकाशित हुई। इस पुस्तक में लेखक ने अपनी लद्दाख यात्रा का सुन्दर वर्णन किया है। लेखक ने मेरठ से यह यात्रा प्रारम्भ की है। पंजाब, मुलतान, डेरागाज़ीखां, सीमान्त, पुँछराज्य, कश्मीर आदि के भ्रमण के उपरान्त लेखक जोजीला पार कर लद्दाख पहुँचता है। लाहुल और कुल्लू का वर्णन भी इस रचना में है। राहुल जी ने यात्रा में आए स्थानों की भौगोलिक स्थिति, प्राकृतिक-सुषमा, वहाँ के लोगों की वेशभूषा, आचार-व्यवहार, सभ्यता, भाषा तथा परम्पराओं का कलात्मक वर्णन किया है।

(२) लंका—'लंका' के कुछ अंश देश-दर्शन सम्बन्धी हैं और कुछ यात्रा-वर्णन के रूप में। अनुराधपुर, पोलन्नारुव (पुलस्त्यपुर), काण्डी आदि के वर्णन में लेखक की ऐतिहासिक प्रतिभा जागरूक है। लंका के इन नगरों से सम्बन्धित पुराने इतिहास को रोचक रूप में प्रस्तुत किया गया है। 'कोलम्बो की सैर' तथा 'समन्तकूट' शीर्षक के अन्तर्गत यात्रा-वर्णन हैं। इस पुस्तक का 'लंका' नाम से पृथक् प्रकाशन किताब महल, इलाहाबाद से हुआ है। 'राहुल यात्रावली (भाग १)' में भी यह रचना संगृहीत है।

(३) मेरी यूरोप-यात्रा—राहुल सांकृत्यायन की 'मेरी यूरोप-यात्रा' का प्रथम संस्करण सन् १६३५ में साहित्य सेवक संघ, छपरा से प्रकाशित हुआ था। इसमें राहुल जी की १६३२ ई० की यूरोप-यात्रा का वर्णन है। कोलम्बो से राहुल जी भदन्त आनन्द कौसल्यायन के साथ यूरोप को प्रस्थान करते हैं। कोलम्बो से सागरीय यात्रा करते हुए वे यूरोप पहुँचते हैं। 'यूरोप की झाँकी' 'लंदन टावर' 'कैम्ब्रिज' 'ऑक्सफोर्ड', 'पेरिस' तथा 'जर्मनी' के रोचक वर्णन इस पुस्तिका में मिलते हैं।

(४) मेरी तिब्बत-यात्रा—'मेरी तिब्बत-यात्रा' सन् १६३७ में छात्रहितकारी पुस्तकमाला, दारागंज, प्रयाग से प्रकाशित हुई थी। इसमें १६८ पृष्ठ हैं। डायरी-शैली में लिखी इस पुस्तक में ल्हासा, ग्यांची, सक्य, शलू, नेपाल आदि की यात्राओं का सुन्दर वर्णन है।

(५) यात्रा के पन्ने—'यात्रा के पन्ने' सन् १६५२ में साहित्य-सदन, देहरादून

से प्रकाशित हुई'। इसमें ४४० पृष्ठ हैं। इस ग्रन्थ में राहुल जी की तीसरी तिब्बत-यात्रा का वर्णन है। नेपाल, काठमाण्डू तथा तिब्बत की यात्राएँ इसमें सम्मिलित हैं। तिब्बत की यात्राएँ राहुल जी ने वहाँ के मठों में सुरक्षित पुस्तकों, तालपत्रों आदि की खोज के लिए की हैं। इस पुस्तक में यात्राओं के साथ वे पत्र भी संगृहीत हैं, जो उन्होंने भदन्त आनन्द कौसल्यायन को लिखे थे। साथ ही 'राजस्थान-विहार' शीर्षक के अन्तर्गत लेखक की राजस्थान के विभिन्न स्थानों की यात्राओं का वर्णन भी संकलित है।

(६) जापान—'जापान' का प्रकाशन छपरा के अच्युतानन्द सिंह ने किया। 'जापान' में लेखक की सिंगापुर, हाङ्-कांङ्, शाङ्-हैई, कोबे, तोक्यो, कोयासान की यात्राओं का वर्णन है।

(७) ईरान—'ईरान' में दो भाग हैं—प्राचीन ईरान तथा नवीन ईरान। प्राचीन ईरान में लेखक ने ईरान के राजवंशों का इतिहास प्रस्तुत किया है और 'नवीन ईरान' में लेखक की सोवियत रूस से भारत लौटते हुए ईरान की यात्रा का वर्णन है। इसमें बाकू, तेहरान, इस्फहान, शीराज का वर्णन है।

(८) रूस में पच्चीस मास—यात्रा-साहित्य सम्बन्धी ४१७ पृष्ठों की यह पुस्तक आलोक प्रकाशन, बीकानेर से सन् १९५२ में प्रकाशित हुई थी। सन् १९६७ में राजकमल प्रकाशन से यह पुस्तक 'मेरी जीवन-यात्रा (३)' के नाम से प्रकाशित हुई है। राहुल जी की यह तीसरी रूस-यात्रा थी जो १७ अगस्त, १९४७ को समाप्त हुई थी। इस पुस्तक में ईरान, तेहरान, रूस, लेनिनग्राद आदि की यात्राओं का वर्णन है।

(९) किन्नर देश—'किन्नर देश में' सर्वप्रथम इण्डिया पब्लिशर्स प्रयाग द्वारा सन् १९४८ में प्रकाशित हुई। सन् १९५९ में इसका दूसरा संस्करण किताब महल, इलाहाबाद से प्रकाशित हुआ। इसमें लेखक की सन् १९४८ की मई-अगस्त में की गई यात्रा का विवरण है; साथ ही हिमालय के इस उपेक्षित भाग का परिचय भी है। इस यात्रा में उन्होंने नवीन भारत के नव-निर्माण की दृष्टि से वस्तुओं का वर्णन किया है। किन्नर-प्रदेश की यात्रा के साथ वहाँ की भाषा के कुछ उद्धरण और लोकगीत भी इसमें संगृहीत हैं।

(१०) तिब्बत में सवा वर्ष—महापण्डित राहुल जी की यह पुस्तक शारदा मन्दिर, दिल्ली से प्रथम बार सन् १९३३ में प्रकाशित हुई। 'राहुल यात्रावली' (भाग-१) में भी यह यात्रा संकलित है। इसमें भारत के बौद्ध खण्डहरों, कन्नौज, कौशाम्बी, सारनाथ, वैशाली, लुम्बिनी से लेकर नेपाल, शीगर्ची, ग्यांची, ल्हासा तक की यात्रा का वर्णन है। इसमें लेखक ने तिब्बत-यात्रा एवं बौद्ध-धर्म-सम्बन्धी ग्रन्थों की खोज का विवरण दिया है। यह लेखक की पहली तिब्बत-यात्रा है।

(११) घुमक्कड़-शास्त्र—'घुमक्कड़-शास्त्र' राहुल जी की अत्यन्त महत्वपूर्ण रचना है। इस रचना का उद्देश्य युवकों में घुमक्कड़ी का अंकुर पैदा करना मात्र ही

नही, प्रत्युत जन्मजात अंकुरों की पुष्टि, परिवर्द्धन तथा मार्ग-दर्शन भी इसका लक्ष्य है। घुमक्कड़ों के लिए अनेक उपयोगी बातें इस ग्रन्थ में आई हैं। इस ग्रन्थ की रचना शास्त्र-पद्धति के रूप में हुई है, इसीलिए इसका नाम लेखक ने 'घुमक्कड़-शास्त्र' दिया है। घुमक्कड़ी को लेखक दुनिया की सर्वश्रेष्ठ वस्तु मानता है और इस धर्म को अनादि सनातन धर्म कहता है। घुमक्कडी-रस राहुल के लिए काव्य-रस तथा ब्रह्मानन्द से किसी भी प्रकार कम नहीं।

(१२) **एशिया के दुर्गम भूखण्डों में**— 'एशिया के दुर्गम भूखण्डो में' लेखक की १९३३ से १९३७ ई० तक की कुछ यात्राओं का संकलन है। इस पुस्तक मे राहुल जी की चार यात्राएँ हैं। पहली है लद्दाख यात्रा जो 'मेरी लद्दाख यात्रा' के रूप में पृथक् प्रकाशित है। दूसरी यात्रा है 'तिब्बत की यात्रा'। इसमें ल्हासा, चाङ्, सक्य, ञेनम् तथा नेपाल का वर्णन है। यह लेखक की सन् १९३४ मे की गई दूसरी तिब्बत-यात्रा है। इसमे पत्र-शैली का प्रयोग किया गया है। तीसरी यात्रा ईरान से सम्बन्धित है जो 'ईरान' नामक पुस्तक में अलग से प्रकाशित है। इस सग्रह मे चौथी यात्रा अफगानिस्तान की है। यह यात्रा लेखक ने सन् १९३७ में की थी।

(१३) **चीन में क्या देखा ?** —'चीन मे क्या देखा ?' मे सन् १९५८ की लेखक की चीन-यात्रा का वर्णन है। चीन-बौद्ध-संघ के निमन्त्रण पर लेखक ने चीन की यात्रा की। इस पुस्तक मे रंगून, पेकिंग, मंचूरिया, तुङ्हवान तथा मध्य चीन की यात्रा का वर्णन है। साम्यवादी चीन की प्रगति से पाठकों को परिचित करवाना लेखक का ध्येय प्रतीत होता है।

उक्त यात्रा-ग्रन्थों के अतिरिक्त राहुल जी के कुछ और यात्रा-ग्रन्थ हैं, जिनमे वर्णित यात्राएँ प्राय: ऊपर की रचनाओं मे आ गई हैं। जैसे—'राहुल यात्रावली' मे लेखक की 'मेरी लद्दाख यात्रा,' 'लंका' तथा 'तिब्बत मे सवा वर्ष' - ये तीन यात्राएँ संकलित हैं। अतः इस पुस्तक का पृथक् से परिचय देना अनावश्यक है।

इसी तरह कुछ पुस्तकें देश-दर्शन से सम्बद्ध हैं परन्तु उनके कुछ अंश यात्रा-वर्णन के रूप में हैं। जैसे 'दोर्जेलिङ् परिचय' तथा 'हिमालय परिचय (१) गढ़वाल।' 'दोर्जेलिङ् परिचय' मे दार्जीलिंग का परिचयात्मक वर्णन है। इस प्रदेश के प्राकृतिक रूप, इतिहास, निवासी, कृषि, उद्योग, व्यवसाय, यातायात, शिक्षा, प्रसिद्ध नगरों तथा यात्रा-स्थानों का वर्णन है। 'हिमालय यात्रा की तैयारी' में इस प्रदेश की यात्रा के लिए आवश्यक साधनों का उल्लेख है। इस प्रकार यह रचना हिमालय के यात्रियों के सर्वांगीण पथ-प्रदर्शन के लिए एक बड़े अभाव की पूर्ति करती है।

'हिमालय परिचय-गढ़वाल' के १२ अध्यायों में गढ़वाल का परिचय दिया गया है। पहले दस अध्यायों मे देश का परिचयात्मक वर्णन है। ग्यारहवें अध्याय में लेखक की 'केदार यात्रा' तथा 'बदरीनाथ की यात्रा' के वर्णन हैं जिनका राहुल जी के यात्रा-साहित्य मे विशिष्ट स्थान है। पुरातत्त्व की दृष्टि से ये यात्राएँ महत्त्वपूर्ण हैं। बारहवें अध्याय मे जन-साहित्य संकलित है।

'हिमालय परिचय' की भाँति 'कुमाऊँ' में भी इस प्रदेश के भू-भाग के परिचय के अतिरिक्त लेखक की मानसरोवर तथा दूसरी यात्राओं का वर्णन है।

(ङ) निबन्ध साहित्य

(१) साहित्य-निबन्धावलि—'साहित्य-निबन्धावलि' में राहुल जी के हिन्दी साहित्य, हिन्दी भाषा एवं देश-दर्शन सम्बन्धी १६ निबन्ध संगृहीत हैं। अधिकतर निबन्ध भाषण के रूप में लिखे गये हैं। लेखक इन निबन्धों में हिन्दी के भविष्य के प्रति अत्यधिक आशान्वित है :—'हिन्दी अपने उस लक्ष्य पर पहुँच रही है, जिसे इस शताब्दी के आरम्भ के मनीषी दूर का स्वप्न समझते थे।...... यह स्वतन्त्र भारत की राष्ट्रभाषा होकर रहेगी। हमें अपने साहित्य को सब तरह के ज्ञान-विज्ञान से समृद्ध करना है[173]।' इन निबन्धों में लेखक की विचारगत दृढ़ता एवं प्रौढ़ता दर्शनीय है।

(२) पुरातत्त्व निबन्धावली—'पुरातत्त्व निबन्धावली' में राहुल जी के पुरातत्त्व-सम्बन्धी १८ निबन्धों का संकलन है। हिन्दी में पुरातत्त्व-साहित्य की बड़ी आवश्यकता है। भारत के सच्चे इतिहास के निर्माण के लिए पुरातत्त्व की सामग्री अत्यन्त उपयोगी है। लेखक की यह रचना हिन्दी में पुरातत्त्व-साहित्य के अभाव की पूर्ति का एक प्रयत्न है। राहुल जी के इस संकलन के निबन्ध समय-समय पर विभिन्न पत्रों में प्रकाशित हुए थे। कुछ निबन्धों के शीर्षक हैं—पुरातत्त्व, काल-निर्णय में ईंटें और गहराई, जेतवन, मागधी हिन्दी का विकास, तिब्बत में भारतीय साहित्य और कला आदि।

(३) दिमागी गुलामी—'दिमागी गुलामी' ८० पृष्ठों का एक लघु निबन्ध-संग्रह है। इसमें राजनीतिक एवं शिक्षा-सम्बन्धी राहुल जी के विचार प्राप्त होते हैं। कुल निबन्ध दस हैं, जिनके शीर्षक हैं—(१) दिमागी गुलामी, (२) गान्धीवाद, (३) हिन्दू-मुस्लिम-समस्या, (४) शिक्षा में आमूल परिवर्तन, (५) मत-निर्माण, (६) जमींदारी नहीं चाहिए, (७) किसानो सावधान, (८) अछूतों को क्या चाहिए? (९) [illegible]-मजदूर तथा (१०) रूस में ढाई मास। इन निबन्धों में लेखक ने साम्यवादी ढंग से भारत की विविध समस्याओं पर विचार किया है। उनके विचार अत्यन्त स्पष्ट एवं सुन्दर ढंग से प्रकट हुए हैं।

(४) तुम्हारी क्षय—'तुम्हारी क्षय' हजारा जेल में लिखी राहुल जी की एक लघु निबन्ध-रचना है। भारतीय समाज की विविध कुरीतियाँ एवं उनके विधानों का लेखक समूल क्षय चाहता है। भारतीय समाज के धर्म, भगवान्, न्याय एवं शोषक वर्ग के कारण ही भारत की निर्धन जनता दरिद्रताग्रस्त है। इस वैषम्यपूर्ण समाज में सुन्दर सांस्कृतिक जीवन का विकास सम्भव नहीं। अतः इस समाज पर अत्यन्त तीव्र शब्दों में राहुल जी ने प्रहार किया है। पुस्तक में छः विषय हैं—(१) तुम्हारे समाज की क्षय (२) तुम्हारे धर्म की क्षय, (३) तुम्हारे भगवान् की क्षय, (४) तुम्हारे [illegible] क्षय, (५) तुम्हारी जात-पाँत की क्षय, (६) तुम्हारी जोंकों की क्षय।

भाव, विचार एवं भाषा की उग्रता इस पुस्तक की विशिष्टता है।

(५) आज की समस्याएँ—'आज की समस्याएँ' में राहुल जी के चार निबन्ध हैं—(१) पाकिस्तान की समस्या, (२) मातृभाषाओं की समस्या, (३) प्रगतिशीलता का प्रश्न (४) आज का साहित्यकार। राहुल जी प्रगतिशील विचारक एवं कलाकार हैं। इस संग्रह के अंतिम तीन निबन्धों में उनकी भाषागत एवं साहित्यगत प्रगतिशील विचारधारा का सुन्दर निदर्शन हुआ है। प्रगतिशील साहित्यकार के विषय में उनका कथन है, "साहित्यकार अपने वाक्यों में रस, अपने पदों में लालित्य, अपनी उक्तियों में सूक्ष्म सबल ध्वनि ही नहीं प्रदान करता, बल्कि वह भविष्य का भी संकेत करता है, भविष्य के निर्माण में साक्षात् या उत्तराधिकारियों द्वारा हाथ बटाता है[१३४]।"

(६) साम्यवाद ही क्यों?—यह रचना राहुल जी ने ल्हासा में रहते हुए सन् १९३४ में लिखी थी। इसे साम्यवादी विचारों को समझने के लिए प्रवेशिका माना जा सकता है। 'पूँजीवाद की उत्पत्ति,' 'साम्यवाद क्यों पैदा हुआ,' 'क्या पीछे लौटा जा सकता है?,' 'हमारे सामाजिक रोग और साम्यवाद' आदि १२ निबन्ध इस पुस्तक में हैं।

इन निबन्ध-संग्रहों के अतिरिक्त 'अतीत से वर्तमान' के द्वितीय व तृतीय खण्ड में राहुल जी के इतिहास, कला, दर्शन व देश-दर्शन से सम्बन्धित निबन्ध संगृहीत हैं। राहुल जी के अप्रकाशित निबन्धों के संग्रह भी कम-से-कम आठ हैं जिनमें राहुल जी ने राजनीति, दर्शन, धर्म, भाषा, साहित्य आदि विषयों पर विचार प्रकट किये हैं।

राहुल जी के भोजपुरी में लिखित 'तीन नाटक' तथा 'पाँच नाटक' भी उनके सर्जनात्मक साहित्य के अन्तर्गत लिए जा सकते हैं। इन नाटकों में भी राहुल जी की साम्यवादी विचारधारा प्रकट है। भोजपुरी में लिखित ये नाटक लेखक के भोजपुरी भाषा-प्रेम के सूचक हैं। इस भाषा द्वारा वे अपने मातृभाषा-प्रदेश के लोगों में—जनसाधारण में—जागृति लाना चाहते हैं।

राहुल जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के परिचय के उपरान्त यह सहज ही कहा जा सकता है कि महापण्डित राहुल सांकृत्यायन विराट्-व्यक्तित्व-सम्पन्न साहित्यकार हैं और उनका कृतित्व-सर्जनात्मक एवं उपयोगी-बृहत् एवं अनेकमुखी है। हिन्दी-साहित्य के इतिहास में उन जैसा समर्थ एवं सशक्त व्यक्तित्व सहज सुलभ नहीं। उनका प्राणवान् व्यक्तित्व पर्यटक-परिव्राजक, असीम-ज्ञान सम्पन्न विद्वान्, राजनीतिज्ञ, महान् अन्वेषक एवं अनेक दर्शनों के दिग्दर्शक महापण्डित, क्रान्तिकारी, समाज-सुधारक एवं महामानव के रूप में जाना जाता है। उनका यह व्यक्तित्व उनके कृतित्व में सर्वत्र अनुस्यूत है। उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व की अद्भुत विलक्षणता, विचित्रता एवं विशालता दर्शनीय है। उनका प्रदेय महत् एवं उपादेय है। हिन्दी के ग्रन्थ-भण्डार को उन्होंने १२५ कृतियों से सम्पन्न एवं समृद्ध बनाया है। वस्तुतः राहुल जी हिन्दी के गौरव हैं।

———

सन्दर्भ

१. सम्मेलन पत्रिका (भाग ५२), पृ० ३० ।
२. धर्मयुग (१२ मई, १९६३), पृ० ८ ।
३. धर्मयुग (२६ मई, १९६३), पृ० ४१ ।
४. आज का हिन्दी साहित्य-प्रकाशचन्द्र गुप्त, पृ० २१८ ।
५. धर्मयुग (१ अगस्त, १९६५), पृ० १८ ।
६ स्वतन्त्रता और साहित्य-रत्नाकर पाण्डेय, पृ० १७७ ।
७. उपमा (अगस्त, १९६३), पृ० ६६ ।
८. प्रतीक (अंक १०, हेमन्त), पृ० ६३ ।
९. माया (र्त्रैमासिक, सितम्बर, १९६४), पृ० १०१ ।
१०. उपमा (अगस्त, १९६३), पृ० ४६-४८ ।
११. वही, पृ० ८८ ।
१२ आजकल (मासिक, मार्च, १९६४), पृ० २० ।
१३. 'दिनमान' (साप्ताहिक, पर्यटन-विशेषांक-२१ अक्तूबर, १९६६), पृ० ४५ ।
१४. घुमक्कड़ शास्त्र-राहुल साङ्कृत्यायन, पृ० १ ।
१५. मेरी जीवन-यात्रा (१), पृ० २६ ।
१६. वही, पृ० २१ ।
१७. वही, पृ० ३२ ।
१८. घुमक्कड़ शास्त्र, पृ० ११ ।
१९. वही, पृ० ७ ।
२०-२१. वही, पृ० ११ ।
२२. वही, पृ० ३९ ।
२३. मेरी जीवन-यात्रा (१), पृ० २९, ५०, ५३ ।
२४. वही, पृ० ६४ ।
२५. मेरी जीवन-यात्रा (१), पृ० १२९, १३०, १७४, १८५, १९५, २२५, २४१, २६०, ३६६ ।
२६. वही, पृ० ४४८, ४७१ ।
२७. मेरी जीवन-यात्रा (२), पृ० १, ६ ।
२८. वही, पृ० १०६ ।
२९. वही, पृ० २९, २२९, ३८३, ४८३ ।
३०. वही, पृ० १२७ से १७५ ।
३१. वही, पृ० ३४९ ।
३२. मेरी जीवन-यात्रा (२), पृ० ४४७-४७२ तथा मेरी जीवन-यात्रा (३) ।
३३. मेरी जीवन-यात्रा (२), पृ० १७९-२२८, ३०६-३३७, ३३८-३४९, ३६३-३८४ ।
३४. घुमक्कड़ शास्त्र, पृ० २७, ३८, ४१, ५१ के आधार पर ।
३५. सरस्वती (दिसम्बर, १९६६), पृ० ५०५ ।
३६. मेरी जीवन-यात्रा (४), पृ० ४९६ ।
३७ आलोचना (अक्तूबर, १९६७), पृ० १३७-१३८ ।
३८. मेरी जीवन-यात्रा (भाग १), पृ० ३८२-८३ ।
३९. मेरी जीवन-यात्रा (२), पृ० ५३५ ।
४०. वहीं, पृ० ५३६ ।

४१ मेरी जीवन-यात्रा (२), पृ० ५३८ ।
४२ मेरी जीवन-यात्रा (४), पृ० ६५ ।
४३. मेरी जीवन-यात्रा (२), पृ० ५३७ ।
४४. मेरी जीवन-यात्रा (४), पृ० ६७ ।
४५ मेरी जीवन-यात्रा (५), पृ० ३४१ ।
४६. मेरी जीवन-यात्रा (२), पृ० २०६ ।
४७. मेरी जीवन-यात्रा (४), पृ० ५ ।
४८ उपमा (राहुल-स्मृति-विशेषांक), पृ० १६ ।
४९ मेरी जीवन-यात्रा (२), पृ० २०९ ।
५०. सरस्वती (फरवरी, १९६४), पृ० १५५ ।
५१ सतमी के बच्चे-राहुल सांकृत्यायन, पृ० ३६ ।
५२. मेरी जीवन-यात्रा (१), पृ० १४१ ।
५३. वही, पृ० १७४ ।
५४. वही, पृ० २३६ ।
५५. वही, पृ० २४९ ।
५६ वही, पृ० २३९ ।
५७ वही, पृ० २६६ ।
५८. वही, पृ० २६७ ।
५९. वही, पृ० ४३३ ।
६०. मेरी जीवन-यात्रा (२), पृ० ८ ।
६१. स्वतन्त्रता और साहित्य, पृ० १९३ ।
६२. सम्मेलन पत्रिका (भाग ५२), पृ० ३१ ।
६३. वैज्ञानिक भौतिकवाद-राहुल सांकृत्यायन, पृ० ८२ ।
६४. वही, पृ० ९ ।
६५ मेरी जीवन-यात्रा (४), पृ० ४-५ ।
६६ सम्मेलन पत्रिका (भाग ५२), पृ० ३० ।
६७. वही, पृ० ४२ ।
६८. साप्ताहिक हिन्दुस्तान (९ अप्रैल, १९६७), पृ० २७ ।
६९. धर्मयुग (१४ जुलाई, १९६३), पृ० ३१ ।
७०. रेखाचित्र-श्री बनारसीदास चतुर्वेदी, पृ० १८५ ।
७१ उपमा, पृ० ६६-६७ ।
७२. राष्ट्र-भारती (अप्रैल, १९६४), पृ० १५७ ।
७३. स्वतन्त्रता और साहित्य, पृ० १७७ ।
७४. प्रतीक (शरद्, ९), पृ० ६४ ।
७५. जिनका मैं कृतज्ञ, पृ० प्राक्कथन ४ ।
७६ राहुल सांकृत्यायन-भदन्त आनन्द कौसल्यायन, पृ० १०६ ।
७७ धर्मयुग (१४ जुलाई, १९६३), पृ० १९ ।
७८. राहुल सांकृत्यायन का कथासाहित्य, पृ० २७२ ।
७९. स्वतन्त्रता और साहित्य, पृ० १८६ ।
८०. मेरी जीवन-यात्रा (४), पृ० ४, ६१ ।
८१ वही, पृ० ५४-५५ ।
८२. सम्मेलन-पत्रिका (भाग ५२), पृ० ४६ ।
८३. वही, पृ० ४८ ।

८४. सम्मेलन-पत्रिका (भाग ५२), पृ० ३२।
८५. उपमा (राहुल-स्मृति-विशेषांक), पृ० २६।
८६. वही, पृ० २८।
८७. सम्मेलन-पत्रिका (भाग ५२), पृ० ४६।
८८. घुमक्कड़-शास्त्र, पृ० ११३-११४।
८९. आज का हिन्दी साहित्य-प्रकाशचन्द्र गुप्त, पृ० २१६।
९०. उपमा (राहुल-स्मृति-विशेषांक), पृ० ३७।
९१. वही, पृ० ८८।
९२. आज का हिन्दी साहित्य, पृ० २१८।
९३. उपमा (राहुल-स्मृति विशेषांक), पृ० ३३।
९४. सम्मेलन-पत्रिका (भाग ५१), पृ० १६६।
९५. बहुरंगी मधुपुरी (संस्करण, १९५४), आवरण पत्र।
९६. उपमा (अगस्त, १९६३), पृ० १८०-१८४।
९७. ज्ञानपीठ (नवम्बर, १९६३), पृ० १४-१६।
९८ हिन्दी का उत्तर साहित्य (विक्रमी संवत् २०१४), पृ० ४४८ तथा अन्य।
९९. राहुल सांकृत्यायन का कथा-साहित्य, पृ० ५५-६०।
१००. सम्मेलन पत्रिका (भाग ५१), पृ० १७१-१७२।
१०१-१०२. वही, पृ० १६६।
१०३. ज्ञानपीठ (सितम्बर, १९६५), पृ० ५५-५७।
१०४. उपमा (राहुल-स्मृति-विशेषांक), पृ० १८३-१८४।
१०५. सम्मेलन पत्रिका (पौष-ज्येष्ठ, शक १८८७), पृ० १६६-१७४।
१०६. वही (भाग ५१), पृ० १७०।
१०७ द्रष्टव्य : परिशिष्ट-५।
१०८. सम्मेलन-पत्रिका, पृ० १७०।
१०९. राहुल जी द्वारा अपने मित्रों तथा अन्य व्यक्तियों को लिखे गये पत्र।
११०-१११. ज्ञानपीठ (सितम्बर, १९६५), पृ० ५७।
११२. हिन्दी साहित्य कोश-स० डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, पृ० ८४६।
११३. दि मेकिंग ऑफ लिटरेचर-आर० ए० स्काट जेम्स, पृ० २२ पर उद्धृत।
११४. हिन्दी साहित्य कोश, पृ० ६८२।
११५ साहित्य-सहचर : आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० २।
११६. साहित्य-शास्त्र : डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १९।
११७. हिन्दी साहित्य कोश, पृ० ६८२।
११८. साहित्य विवेचन-क्षेमचन्द्र सुमन, पृ० २।
११९. हिन्दी साहित्य कोश, पृ० १५९।
१२०-१२१. वही, पृ० १६०।
१२२. साहित्य-शास्त्र, पृ० २०।
१२३. हिन्दी साहित्य कोश, पृ० १६०।
१२४. राहुल सांकृत्यायन का कथा-साहित्य, पृ० ६३।
१२५. वही, पृ० ८१।
१२६. मेरी जीवन-यात्रा (५), पृ० ३९३-९४।
१२७-१२८. द्रष्टव्य : परिशिष्ट-५।
१२९. आलोचना (१९६७), पृ० १३७।
१३०. नये भारत के नए नेता, पृ० 'ख'।
१३१. बचपन की स्मृतियाँ, पृ० १।
१३२. मेरे असहयोग के साथी, पृ० २१।
१३३. साहित्य निबन्धावलि, प्राक्कथन।
१३४. आज की समस्याएँ, पृ० ५६।

दूसरा परिवर्त

राहुल जी की भाषा-सम्बन्धी मान्यताएँ एवं उपलब्धियाँ

भाव और भाषा का सम्बन्ध आकस्मिक न होकर अनिवार्य है। सृष्टि के आदि से ही जब मानव ने अपने हर्ष-विषाद की भावनाओं को प्रकट करना चाहा होगा, तभी से उसे भाषा के माध्यम की आवश्यकता पड़ी होगी, क्योंकि अभिव्यंजना का सहज एवं प्रमुख माध्यम भाषा है। अपनी अनुभूतियों को दूसरों तक पहुँचाने का सर्वाधिक सबल एवं समर्थ मार्ग यही है। भाषा भावों की वाहिका है। इसलिए जिन भावों का स्पष्टीकरण भाषा को करना है, उनकी स्पष्ट एवं प्रभावशाली व्यंजना भाषा पर ही अवलम्बित है। अतएव भावो के साथ-ही-साथ भाषा के प्रयोग मे भी अधिक-से-अधिक सौन्दर्यगत अनुपात रखना आवश्यक हो जाता है[1]।

किसी भी साहित्यिक रचना की महत्त्वप्रदायिनी शक्ति भाषा है। यही कारण है कि भारतीय आचार्यों ने भाषा को साहित्य का शरीर मानकर उसे सौष्ठव प्रदान करने वाले उपकरणो पर विशद विचार किया है। साधारण बोलचाल की भाषा से साहित्य की भाषा अधिक परिमार्जित एवं कलात्मक होती है। भाषा का सर्वोपरि गुण यह है कि उसमे लेखक के भावों को प्रकट करने की पूर्ण क्षमता हो। जिस भाषा में यह शक्ति नहीं, वह व्यर्थ है। भाषा का संगठन इस प्रकार होना चाहिए कि पाठक को भाव-ग्रहण मे अल्पतम समय लगे और लेखक का अभिप्राय स्वल्प शब्दों में व्यक्त हो जाये। इस प्रकार जो भाषा भाव-प्रेषण में समर्थ हो, पाठक को सहज मार्ग से उस भाव तक तत्काल पहुँचा दे, साथ ही भाव-प्रेषण के लिए अनावश्यक शब्दों का भी आश्रय न ले, वही उत्तम भाषा है। ऐसी भाषा मे स्वाभाविक प्रवाह, सरलता, मृदुलता, लोच, स्थैर्य एवं गाम्भीर्य के दर्शन होगे। खड़ीबोली को उत्तम भाषा का रूप प्रदान करने में जिन लेखकों का महत्त्वपूर्ण योगदान है, महापण्डित राहुल सांकृत्यायन उनमें से एक हैं।

महापण्डित राहुल सांकृत्यायन दर्जनों भाषाओं के ज्ञाता थे। संस्कृत, पालि, प्राकृत, भोजपुरी एवं तिब्बती में भी उन्होंने ग्रन्थ-रचना की है, पर हिन्दी के उद्धार एवं उन्नयन के लिए उन्होंने बड़े-बड़े कष्ट उठाये हैं। वे हिन्दी को सर्वांगपूर्ण देखना चाहते थे और इस दिशा में उन्होंने भरसक प्रयत्न किया। वस्तुतः राहुल जी हिन्दी

की विभूति थे। हिन्दी के विकास में देश का उत्थान निहित है, यह घोषणा उन्होंने अनेक बार की। इसीलिए वे चाहते थे कि "कलम के धनी हिन्दी-भाषा-भाषी अपनी कृतियों की चिरस्थिति और अधिक उपयोगिता के लिए हिन्दी की ओर ध्यान दें[१]।" वे समय-समय पर हिन्दी साहित्य के निर्मायकों को उनके उत्तरदायित्व के प्रति सचेत करते रहते थे। उन्हें वे संयम, गम्भीरता, सहिष्णुता एवं स्निग्धता से काम लेने को कहते थे[२]। राहुल जी ने हिन्दी को सम्पन्न एवं समृद्ध बनाने का अनथक प्रयत्न किया है। अनेक भाषाओं के ज्ञाता होने पर भी उन्होंने अधिकांशतः अपनी कृतियाँ हिन्दी के माध्यम से प्रस्तुत की हैं। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति-पद से उन्होंने हिन्दी के समर्थन में अनेक वक्तृताएँ दी हैं और हिन्दी की पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। यहाँ राहुल जी की भाषा सम्बन्धी मान्यताओं एवं उपलब्धियों पर प्रकाश डालना अभीप्ट है। शब्द-चयन एवं भाषा-प्रयोग की दृष्टि से राहुल जी की भाषा के निम्नलिखित प्रयोग दृष्टव्य हैं—

संस्कृत-निष्ठ हिन्दी

खड़ीबोली के विकास तथा उसे स्थैर्य एवं प्रौढ़ता प्रदान करने वाले गद्य-लेखकों में राहुल जी का नाम उल्लेख्य है। वे संस्कृत-निष्ठ हिन्दी के पोषक थे। इसलिए नहीं कि वे संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् थे, इसलिए भी कि वे संस्कृत-निष्ठ हिन्दी को सारे भारत के लिए ग्राह्य समझते थे—"संस्कृत हिन्दी की जननी है। हिन्दी की विभक्तियाँ तथा क्रियापद तक संस्कृत पर अवलम्बित हैं। इस प्रकार यदि विचार करके देखा जाए तो संस्कृत का यह स्वाभाविक अधिकार है, कि हिन्दी-कोष को अपने शब्द-कोष से भरे।"[४] वस्तुतः राहुल जी की यह स्पष्ट घोषणा थी कि 'संस्कृत-निष्ठ हिन्दी ही भारत-संघ की एकमात्र भाषा हो सकती है।'[५] 'मेरी जीवन-यात्रा' में वे अनेकत्र संस्कृतनिष्ठ भाषा का समर्थन करते हैं और इसे राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकारते हैं—'हमारे देश की सभी साहित्यिक भाषाओं में संस्कृत के एक ही तरह के शब्द प्रयुक्त होते हैं, जिनके कारण हम एक दूसरे की भाषा को बहुत कुछ समझ लेते हैं।'[६] पारिभाषिक एवं विज्ञान-विषयक शब्दों के निर्माण के लिए वे सामान्यतः संस्कृत शब्दावली को ही उपयुक्त समझते हैं।[७] राहुल जी की रचनाओं में संस्कृत-निष्ठ हिन्दी का भव्य प्रयोग मिलता है। उपन्यास, कहानी, यात्रा, आत्मकथा एवं निबन्ध सभी सर्जनात्मक विधाओं में उन्होंने संस्कृत-निष्ठ भाषा का सहज प्रयोग किया है। एक-दो उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

(१) स्नेह बुरा नहीं है, क्योंकि यह आदमी को उत्सर्ग करना सिखलाता है, . . की सीमा को तोड़ने की शक्ति देता है, लेकिन हमें समझना चाहिए हुए संसार के चलते हुए पथिक हैं, जिनमें संयोग-वियोग अवश्यम्भावी .. है मैं पका फल हूँ, किसी वक्त यह वृन्त छोड़ सकता हूँ। लेकिन वत्स! ।पी है उसके लिए चिन्ता नहीं करनी चाहिए। (जय यौधेय, पृ० ११६)

(ख) लेकिन चाणक्य की अप्रतिम बुद्धि की सहायता से स्थापित और व्यवस्थित मौर्य-साम्राज्य भी बहुत दिनों नहीं चला। विक्रमादित्य और कुमारगुप्त के वंशज भी यावच्चन्द्रदिवाकर शासन नहीं करेंगे, फिर उन्होंने प्रजा के शासन के चिह्नों तक को जो मिटा दिया, यह किस धर्म-काम के लिए ? क्या अनादिकाल से चले आते गणों में प्रजा-शासन का उच्छेद करना महान् अधर्म नहीं है। (वोल्गा से गंगा, पृ० २२३)।

(ग) सन्ध्या के समय प्रतीची को अरुण राग से रंजित कर एक ओर सूर्य का रोहित मण्डल लुप्त होने को था और दूसरी ओर पूर्णचन्द्र के प्राची के क्षितिज पर आगमन की प्रतीक्षा के सारे लक्षण दिखाई पड़ रहे थे। पक्षिगण अपनी कुलायों पर पहुँच कर रात्रि के मौन और विश्राम के पहले कलरव कर रहे थे। (मधुर स्वप्न, पृष्ठ २८३)।

उपर्युक्त तीन उदाहरण उनकी कथा-कृतियों से उद्धृत हैं। तीनों में संस्कृतनिष्ठ शब्दावली का प्रयोग है, परन्तु कहीं क्लिष्टता नहीं, कृत्रिमता नहीं। सर्वत्र सहज स्वाभाविकता एवं सुन्दरता है। उद्धरणों के वाक्य सुगठित हैं। भाषा में प्रवाह और नाटकीयता है। अभिव्यक्ति में गरिमा है। परन्तु कहीं-कहीं ऐसे उद्धरण भी हैं जहाँ भाषा जटिल हो गई है, भाव-ग्रहण श्रमसाध्य हो गया है। 'मधुर स्वप्न' में महापत द्वारा अनाहिता के सौन्दर्य-वर्णन का प्रसंग[८] तथा 'वोल्गा से गंगा' में निशा आदि नायिकाओं का नखशिख-वर्णन[९] तत्सम शब्दों की भरमार के कारण दुरूह बन गये हैं। राहुल जी की भाषा में कठिन तत्सम शब्दों की प्रचुरता है। ऐसे कुछ शब्द द्रष्टव्य हैं—अद्रोघवाच, आघ्राण, कपर्द, तुंदि, स्तोक-तनय, चरिष्णु, आयसी[१०], उद्वाहिका, अधिकरण, मेरय[११], आप्यायित, रोप्यधार, परिष्वंग, सुगतालय[१२], चर्व्य, चोष्य, लेह्य, पेय, अनिक्षा, आपदेवता[१३], उदुम्बरवर्णा, समज्या, सुवा[१४], वधिष्णु[१५], जघन्य, जुगुप्सित[१६], असूर्यम्पश्य[१७], नातिविशाल, आवेष्टित, कुण्डलित वलय, ईषत्, तक्षक, उत्कीर्ण, पुरश्चरण[१८] आदि।

राहुल जी ने अपनी कृतियों में संस्कृत के शब्दों का ही नहीं, संस्कृत के वाक्यांशों एवं वाक्यों का भी प्रयोग किया है। ऐसे प्रयोग उन्होंने प्रायः अपनी बात के समर्थन के लिए ही किये हैं, पर संस्कृत न जानने वाले पाठक के लिए ऐसे वाक्यांश थोड़े जटिल हो जाते हैं। कुछेक उदाहरण प्रस्तुत हैं—

(१) मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद् यतति सिद्धये। (घुमक्कड़ शास्त्र, पृ० १३)
(२) निस्त्रैगुण्ये पथि विचरतः को विधि-निषेधः (घुमक्कड़ शास्त्र, पृ०२२)
(३) एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः।

(घुमक्कड़ शास्त्र, पृ० ६७)

(४) सूपं भूमिष्ठं मदनीव्व नाम मासं यथा पुरा। (दिवोदास, पृ० ११०)
(५) मनसा, वाचा कर्मणा। (बहुरंगी मधुपुरी, पृ० ३०)

(६) द्रव्येण सर्ववशाः। (बहुरंगी मधुपुरी, पृ० ८५)

इस प्रकार राहुल जी की भाषा में संस्कृत तत्सम शब्द, वाक्यांश एवं उद्धरण अनेक स्थलों पर प्रयुक्त हैं, जिससे भाषा में कहीं-कहीं जटिलता आ गई है। संस्कृत-निष्ठ भाषा की दृष्टि से राहुल जी की 'दिवोदास' औपन्यासिक कृति सर्वाधिक प्रौढ़ है। ऋग्वैदिक आर्यों से सम्बन्धित इस रचना में भाषा का रूप अत्यन्त संयत, परिमार्जित एवं परिष्कृत है। इसमें ग्रामीण शब्दों का सर्वथा अभाव है। 'मेरी जीवन-यात्रा' के चौथे एवं पाँचवें भाग में भी भव्य संस्कृत-निष्ठ भाषा के सफल प्रयोग द्रष्टव्य हैं। इस कृति से उनकी प्रवाहमयी संस्कृतनिष्ठ भाषा का एक उदाहरण देखिये—'पुराने युग और आज के युग में कितना अन्तर है ? आज किसी भी वर्धिष्णु संस्था को नगर से दूर ले जाना भ्रूण-हत्या के समान हैं। हाँ, यदि देश समृद्ध हो, हरेक व्यक्ति को जीवन-सामग्री पर्याप्त परिमाण में सुलभ हो और उसके बाद भी पैसा हाथों में रहे, तो ऐसे स्थान कुछ व्यक्तियों को कुछ दिनों के लिए उपयोगी हो सकते हैं, यहाँ वे वन-भोज कर सकते हैं, वन-गोष्ठी भी रचा सकते हैं।' (मेरी जीवन-यात्रा (४), पृ० १०६)।

निष्कर्ष यह कि राहुल जी संस्कृतनिष्ठ हिन्दी के समर्थ लेखक हैं। दार्शनिक विचारों की अभिव्यक्ति में, गूढ़ भावों के निदर्शन में, व्यक्ति-चित्र प्रस्तुत करने में एवं प्राचीन भारतीय वातावरण को अंकित करने में राहुल जी ने प्रायः ऐसी ही भाषा का प्रयोग किया है।

सरल हिन्दी

सरल हिन्दी में किन्हीं विशेष प्रकार के शब्दों के प्रति आग्रह नहीं रहता। यहाँ शब्दों की कसौटी भावगत-उपयुक्तता होती है। शब्दों का प्रयोग सप्रयास नहीं होता। 'सतमी के बच्चे', 'बहुरंगी मधुपुरी', 'कनैला की कथा', 'जीने के लिए', 'मेरी जीवन यात्रा' तथा अन्य जीवनी एवं यात्रा-ग्रन्थों की भाषा प्रायः सरल हिन्दी है। अपने जीवन-अनुभवों को राहुल जी ने सरल हिन्दी में ही पाठकों तक प्रेषित किया है। एक उदाहरण देखिये—'रायबहादुर के लिए सेठों के इन अतिथि-प्रासादों से होड़ करना आसान काम नहीं था। रायबहादुर दस-बीस लाख के आदमी रह गये थे, जबकि जगत्-सेठों को हर साल करोड़ों का नफा था। वह अपने अतिथि-प्रासादों में देवताओं का सत्कार-सम्मान जितनी शाहखर्ची से कर सकते थे, उतना रायबहादुर के बस की बात नहीं थी। लेकिन कुछ बातें रायबहादुर के पक्ष में थीं, जो सेठों को मयस्सर नहीं थी।' (बहुरंगी मधुपुरी, पृ० ९९-१००)।

इस उद्धरण में हिन्दी और उर्दू के शब्दों के सहज समन्वय द्वारा सरल हिन्दी का रूप प्रस्तुत है। राहुल की भाषा में यह रूप सामान्यतया मिलता है। 'कनैला की कथा' से एक और सरल हिन्दी का उदाहरण द्रष्टव्य है जिसमें न तो तत्सम शब्दों की भरमार है, न ही उर्दू के—"इसे शान्ति की तरह मनुष्य का बढ़ना चाहिए, पर आदमी तभी शान्ति का रास्ता पकड़ता है, जब उसके स्वार्थ के लिए खतरा न हो।

शान्ति से अपने स्वार्थ-पूर्ति का अधिक अवसर मिले, तभी मनुष्य उसे अपनाता है।' (कनैला की कथा, पृ० १०)

संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् होते हुए भी सरल भाषा में भावाभिव्यक्ति राहुल जी की विशिष्टता है। वस्तुतः वे प्रगतिशील लेखक थे जिनका लक्ष्य जन-समाज में जागृति लाना था। और यह तभी सम्भव है जबकि वे सरल हिन्दी में अपने विचार प्रकट करते। इस प्रकार सरल हिन्दी के प्रयोग मे राहुल जी की प्रगतिशीलता दर्शनीय है।

उर्दू-मिश्रित-हिन्दी

उर्दू खड़ी-बोली का वह साहित्यिक रूप है, जिसमें अरबी-फारसी शब्दों का बाहुल्य है। राहुल जी संस्कृत-निष्ठ हिन्दी के प्रयोग के पक्ष में थे। अतः उन्होंने कहीं-कहीं मुसलमान पात्रों के मुख से भी संस्कृत शब्दो का उच्चारण करवाया है। 'मधुर स्वप्न' की भाषा इसीलिये अस्वाभाविक एवं बोझिल प्रतीत होती है। 'दिवोदास' तथा 'जय यौधेय' मे जहाँ संस्कृत-निष्ठ भाषा तत्कालीन वातावरण को साकार रूप प्रदान करने के कारण भाषा का गुण बन गई है, वहाँ 'मधुर स्वप्न' में उसे दोष ही माना जाएगा। परन्तु राहुल जी की भाषा सर्वत्र संस्कृत-निष्ठ भी नहीं है। 'जीने के लिए' उपन्यास, 'सफदर', 'बाबा नूरदीन', 'सुरैया' (वोल्गा से गंगा), 'मुलतान' (बहुरंगी मधुपुरी), 'सैयद बाबा' (कनैला की कथा) आदि कहानियों के मुसलमान पात्रों की भाषा उर्दू है। इन कहानियो में स्वयं राहुल जी ने घटनाओं के वर्णन में अरबी-फारसी शब्दो का प्रयोग किया है। फारसी के विषय मे राहुल जी का कहना है—"अरबी भाषा की अपेक्षा फारसी के शब्द हिन्दी मे अधिक आसानी से घुस सकते हैं, क्योंकि ये दोनों भाषाएँ एक कुल की हैं।" (साहित्य निबंधावली, पृ० ३१) राहुल जी की रचनाओं मे प्रयुक्त फारसी-अरबी के शब्दो के कुछ उदाहरण निम्न-लिखित हैं —

(१) फारसी शब्द—आखिर, दस्तावेज़, दरिन्दा, अफ़सोस, तनख्वाह, पसन्द,[१९] अन्देशा, ख्वाहिश, जिन्दगी, बर्दाश्त, हफ्ता।[२०]

(२) अरबी शब्द—आलीशान, ग़नीमत, फिक्र, मददगार,[२१] कत्लेआम, कायम, जुल्म, नज़ारा, मुकाम, मुस्तहक़, यकीन आदि।[२२]

'साहित्यिक निबन्धावली' में अनेक स्थलों पर लेखक ने ऐसे उद्धरण प्रस्तुत किये हैं जिनमे अरबी-फारसी के शब्दों की प्रचुरता है।[२३] ऐसे स्थल हिन्दी-पाठकों के लिए दुरुह ही कहे जाएँगे।

अंग्रेज़ी शब्दों का प्रयोग—

विदेशी भाषाओं के शब्द ग्रहण करने मे भी राहुल जी को कोई आपत्ति नहीं है। वे लिखते हैं, 'मेरी यही धारणा रही, कि हमें नये शब्दों को ज्ञात से अज्ञात की

प्रक्रिया से गढ़ना चाहिये और बहुप्रचलित विदेशी शब्दों को भी स्वीकार करने से परहेज़ नहीं करना चाहिए।'[२४] पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित वातावरण को अंकित करने के लिए एवं शिक्षित पात्रों के संवादों में अंग्रेज़ी के शब्दों का व्यवहार राहुल जी ने किया है। ये शब्द विशेष कठिन नहीं और जन-साधारण के प्रयोग में आने वाले हैं। 'मेरी यूरोप यात्रा', 'बहुरंगी मधुपुरी' की अधिकांश कहानियों एवं 'जीने के लिए' उपन्यास में अंग्रेज़ी के शब्दों का प्रचुर प्रयोग है – अण्डरग्राऊण्ड, वर्क-हाउस, बीइंग, बीकमिंग, गाइड,[२५] नेटिव, टॉवर, कैंसल, नर्सरी, सोसाइटी गर्ल, ह्वाइट वे, पार्टीशन, एडवांस, रिजर्व,[२६] ड्यूटी, पॉकेट आदि।

कहीं-कहीं अंग्रेज़ी के वाक्यों एवं वाक्यांशों का भी प्रयोग है—अप-टू-डेट, व्हाट नान् सेंस[२७] आदि—

अन्य भाषाओं का प्रयोग—

राहुल जी अनेक विदेशी भाषाओं के ज्ञाता थे। यत्र-तत्र अरबी-फारसी और अंग्रेज़ी के अतिरिक्त अन्य विदेशी भाषाओं के शब्दों का प्रयोग भी उन्होंने किया है, विशेषकर यात्रा-साहित्य में। अपनी यात्राओं का वर्णन करते समय लेखक ने विदेशी भाषाओं के कुछ शब्द व्यवहृत किये हैं।

तिब्बती शब्द—अनी (भिक्षुणी), जोङ् (इलाका), रेपा (सूती कपड़े वाला), लाँ (डाँडा), चाम कुशो (भद्र महिला),[२८] गौवा, खम्बा।[२९] इस प्रकार के अनेक तिब्बती शब्दों का उनकी तिब्बत-सम्बन्धी यात्राओं के वर्णन में आना स्वाभाविक है।

रूसी शब्द—'रूस में पच्चीस मास' तथा 'मेरी जीवन-यात्रा (३)' में राहुल जी ने रूसी शब्दों का भी प्रयोग किया है—तियात्र (रंगमंच), बोल्शेविक, इन्तूरिस्तरुग, प्रोरेक्तर (उपकुलपति), रूबल (सिक्का) ऐसे ही शब्द हैं।[३०]

फ्रेंच शब्द—'मेरी यूरोप-यात्रा' तथा 'जीने के लिये' में कहीं-कहीं फ्रेंच भाषा के भी शब्द व्यवहृत हैं। गार द-नोह (उत्तरी स्टेशन), मदाम, परी (पैरिस),[३१] मैरसी बकू (धन्यवाद), पुइ (थोड़ी)[३२] आदि इस प्रकार के शब्द हैं।

इसी प्रकार राहुल जी ने 'चीन में क्या देखा' में चीनी भाषा के कुछ शब्दों का प्रयोग किया है। विदेशी भाषाओं के शब्दों का प्रयोग करते समय लेखक कोष्ठकों में उनका हिन्दी में अर्थ भी देता है। विदेशी भाषाओं के शब्दों का यात्रा-साहित्य में प्रयोग राहुल जी के लिए सहज एवं स्वाभाविक है। इससे वहाँ के परिवेश-चित्रण में उन्हें विशेष सफलता मिली है।

स्थानीय बोलियों का प्रयोग—

राहुल जी हिन्दी के कोश को समृद्ध करने के लिए स्थानीय भाषाओं एवं बोलियों के शब्द ग्रहण करने के पक्ष में हैं। यहाँ तक कि वे स्थानीय भाषाओं में रचना के भी समर्थक हैं।[३३] राहुल जी का कथन है कि 'जहाँ संस्कृत शब्दों को

न ग्रहण किया जा सके वहाँ स्थानीय भाषाओं के शब्द व्यवहृत करने लगें।'[३४]
राहुल जी ने अपने उपन्यासों एवं कहानियों में ग्रामीण पात्रों के संवादों में स्थानीय बोलियों को स्थान दिया है। इससे उनकी भाषा में स्वाभाविकता एवं सजीवता आई है। 'जीने के लिए' उपन्यास, 'बाबा नूरदीन', 'रेखा भगत' (वोल्गा से गंगा) तथा 'बूढ़े लाला' (बहुरंगी मधुपुरी) आदि कहानियों में स्थानीय बोलियों के उदाहरण प्राप्त होते हैं। 'बहुरंगी मधुपुरी' से एक उदाहरण देखिए—

"पण्डित जी, क्या पूछते हो, इन तो में पहाड़ी भी चालाक हो गये। किनस्तर का किनस्तर डालडा तो ले जावें और फिर घी के भाव साढ़े चार रुपया सेर बेच जावें।" (बहुरंगी मधुपुरी, पृ० ३)

प्रस्तुत उद्धरण में हरियाणवी भाषा का पुट है। इसी प्रकार 'जीने के लिए' उपन्यास में ग्रामीण पात्रों के संवादों का अंश नीचे उद्धृत है—

'हाँ, तीन साल बाद अब की एक रुपया बढ़ा। चावल दाल महँगा है, इस लिए महँगाई दो रुपया और मिलता है। क्या पूछते हैं, बाबा, यहाँ रामपुर में क्या दुनिया जहान की खबर मिलती है। कलकत्ता में रोज संसार भर की खबर आती है और कागज छप-छप कर दो-दो चार-चार पैसे में बिकता है। आजकल दो बादशाहतों का कचकावध लड़ाई हो रही है।'[३५] 'सन् ५७' शीर्षक कहानी में भोला और मँगरू के संवाद भी ग्रामीण भाषा के हैं।[३६] भाषा में कहीं-कहीं पंजाबीपन का भी पुट है।[३७]

राहुल जी ने जिन ग्रामीण शब्दों को बहुलता से प्रयुक्त किया, उनमें से कुछ हैं—गासरा, मजूर, चहेती, धगड़,[३८] रछपाल, पिछुआ, पनिभौवा,[३९] अबेर, कलेऊ, गमरू, गमछी, भगत, नाज आदि।[४०]

कहीं-कहीं ग्रामीण लोकोक्तियों एवं मुहावरों का भी सुन्दर प्रयोग है। जैसे—पूस जाड़ा न माघ जाड़ा, जब्बे हवा तब्बे जाड़ा,[४१] घर फूटा गंवार लूटा[४२] आदि।

इस प्रकार राहुल जी की भाषा बहुत स्थलों पर लोक-भाषा के समीप पहुँच जाती है। लोक-भाषा की पुट से एक ओर उनकी भाषा में स्वाभाविकता आ गई है, साथ ही उनकी रचनाओं में एकरसता के स्थान पर वैविध्य की सृष्टि हुई है। राहुल जी द्वारा ग्रामीण शब्दों, मुहावरों एवं लोकोक्तियों का प्रयोग यह स्पष्ट करता है कि वे लोक-भाषाओं में कितनी अधिक रुचि रखते थे।

स्वनिर्मित शब्द—

राहुल जी खड़ीबोली को समृद्ध बनाने के लिए शब्दों के नये प्रयोगों एवं स्वनिर्मित शब्दों के व्यवहार के पक्ष में हैं। वे लिखते हैं – 'हमारी भाषा में कोमलता तथा लोच लाने के लिए ऐसे शब्दों की बड़ी आवश्यकता है। आज से तीस वर्ष पहले इन्हीं शब्दों का अभाव ही कारण था जिससे कि लोग समझ रहे थे कि खड़ीबोली में सुन्दर कविता नहीं हो सकती।' (साहित्य निबंधावली, पृ० ५७)

राहुल जी ने अपनी कृतियों में अनेक स्वनिर्मित शब्दों का भी प्रयोग किया है। ऐसे शब्दों को उन्होंने संस्कृत के तत्सम एवं तद्भव शब्दो के आधार पर गढ़ा है। कुछेक उदाहरण प्रस्तुत हैं—प्रतिसंस्कार (मुरम्मत के अर्थ में)—(वोल्गा से गंगा, पृ० ८४), घमतप्पी (धूप तापने के अर्थ में)—(दिवोदास, पृ० १४०), दीपयष्टि (मशाल का पर्याय) — (वोल्गा से गंगा, पृ० १४४), शिखरित (शिखर का विशेषण) —(कनैला की कथा, पृ० २२), अग्रसोची—(बहुरंगी मधुपुरी, पृ० ६७, २८८), निष्फ़िकिर—(घुमक्कड़ स्वामी, पृ० ४५), सकली (नकली के विपरीत)—(बहुरंगी मधुपुरी, पृ० १२), अंगनई—(मेरी यूरोप-यात्रा, पृ० १०१), श्वेत-शालिग्राम—(मेरी यूरोप-यात्रा, पृ० ३८)।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि राहुल जी की रचनाओं में विविध प्रकार के शब्दों का सम्यक् प्रयोग हुआ है। वे संस्कृत शब्दों से हिन्दी के कोश की वृद्धि तो करते ही हैं, अरबी-फारसी, अंग्रेजी आदि विदेशी भाषाओं तथा स्थानीय शब्दों के प्रयोग में भी उन्होंने कहीं हिचकिचाहट नहीं दिखाई। इतना ध्यान अवश्य रखा है कि उन्हीं विदेशी एवं स्थानीय शब्दों को राहुल जी ने प्रयुक्त किया है, जो प्रचलित हैं, अप्रचलित एवं क्लिष्ट शब्दों से यथासम्भव उन्होंने अपने को दूर रखा है। कहीं-कहीं ऐसे अवतरण भी हैं जहाँ कई भाषाओं के शब्द एक साथ प्रयुक्त हैं—'हम चारों भाइयों के नाम नाना ने अपनी स्थावर सम्पत्ति हिब्बा लिख दी। ऐसा करके उन्होंने अपने मनीजों विशेषकर बड़े भाई के लड़कों को युद्ध का अल्टीमेटम दे दिया। इस वक्त अभी कानाफूसी हो रही थी, खुला संघर्ष नहीं हो रहा था, तो भी भविष्य संकटापन्न दीख पड़ता था।' (मेरी जीवन-यात्रा (१), पृ० ६२) इस उद्धरण में संस्कृत, उर्दू, अंग्रेजी आदि के शब्दों का एक साथ प्रयोग द्रष्टव्य है।

मुहावरों का प्रयोग—

प्रवाहमयी प्रांजल भाषा में मुहावरों का प्रयोग प्रचुर रहता है। शब्द की लक्षणा शक्ति को मुहावरों के रूप में देखा जा सकता है। भाषा के अन्तर्गत मुहावरों की महत्ता के विषय में पण्डित विश्वनाथ प्रसाद मिश्र लिखते हैं—'मुहावरे एक प्रकार से लाक्षणिक प्रयोग ही हैं। प्रयोजन को लेकर लाक्षणिक प्रयोग होते हैं, उन्हें चाहे कोई भाषा के घर से हटाकर भाव की सम्पत्ति कहे, पर वह प्रयोग तो भाषा का ही वैभव है।'[1] इससे स्पष्ट है कि मुहावरों का निर्माण अनुभवों को लेकर होता है। मुहावरों के प्रयोग से भाषा के अर्थ में चमत्कार आता है और भाषा प्रवाहमयी बन जाती है। कुशल मुहावरे भाषा की सरसता और सजीवता बढ़ाने में सहायक होते हैं। राहुल सांकृत्यायन भाषा की समृद्धि के लिए मुहावरों एवं लोकोक्तियों की आवश्यकता पर बल देते हैं—'वर्णन, चमत्कार किस दृष्टि से भी देखिए भाषा को समृद्ध बनाने में बहुत-से मुहावरों का बड़ा भारी हाथ है। वस्तुतः भाषा निर्जीव यान्त्रिक तौर से या सीधे अनुवाद करने वाले शब्दों के द्वारा हमारे भावों को प्रकट करने में समर्थ नहीं होती।......भाषा में चमत्कार तभी आती है जब उसमें निर्जीव शब्दावलियों की जगह

मजीव मुहावरे वाले वाक्य लाये जायें।'[४४] राहुल जी ने अपनी कृतियों मे सहस्रों मुहावरों का प्रयोग किया है। कुछेक उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

ईंट से ईंट बजाना—(कनैला की कथा, पृ० ७६, रूस मे पच्चीस मास, पृ० ८१), साँप और नेवले का सम्बन्ध—(कनैला की कथा, पृ० ८१), आस्तीन का साँप – (बहुरंगी मधुपुरी, पृ० १६), बाल बाँका करना—(वही, पृ० ३०), ढोल गले में पड़ना—(वही, पृ० ३२), गूलर के फूल—(वही, पृ० ५३), छत्तीस का सबध—(वही, पृ० ५६), जान से हाथ धोना—(वही, पृ० ८६), अण्डा फोड होना—(जीने के लिए, पृ० ३३०), आँखें चार होना—(वही, पृ० २६५), आग बबूला होना—(वही, पृ० १३०), रोयाँ खड़ा होना—(वही, पृ० १७), धावा मारना—(साहित्य निबन्धावलि, पृ० १८३), छठी का दूध याद करना – (घुमक्कड स्वामी, पृ० ३५), कोल्हू का बैल – (वही, पृ० १०), चारों खाने चित्त करना—(घुमक्कड शास्त्र, पृ० ६), रक्त के आँसू बहाना—(वही, पृ० ६), आँख बचाना—(वही, पृ० १८)।

लोकोक्तियों का प्रयोग

मौखिक लोक-साहित्य में लोकोक्ति का बहुत महत्त्व है। लोकोक्ति मे गागर में सागर भरने की प्रवृत्ति काम करती है। इसमे जीवन के सत्य बडी खूबी से प्रकट होते हैं। लोकोक्तियाँ ग्रामीण जनता का नीतिशास्त्र है। 'लोकोक्तियाँ मानवी ज्ञान के घनीभूत रत्न हैं जिन्हे बुद्धि और अनुभव की किरणें फूटने वाली ज्योति प्राप्त होती है।······सांसारिक व्यवहार-पटुता और सामान्य बुद्धि का जैसा निदर्शन कहावतों मे मिलता है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है।'[४५] अभिव्यंजना मे सौष्टव लाने के लिए मुहावरों की तरह लोकोक्तियों का प्रचुर प्रयोग राहुल जी ने अपनी रचनाओं मे किया है। हिन्दी, संस्कृत, उर्दू तथा स्थानीय बोलियों से उन्होंने लोकोक्तियों का चयन किया है।

(क) हिन्दी लोकोक्तियाँ—दूध का जला छाछ को फूंक-फूंक कर पीता है—(तिब्बत देश, पृ० ५१), यथाशक्ति तथा भक्ति—(रूस मे पच्चीस मास, पृ० ४), न घर का न घाट का—(घुमक्कड़ शास्त्र, पृ० २७), दान की बछिया के दाँत नहीं देखे जाते—(बहुरंगी मधुपुरी, पृ० १६), सिर ढाँके तो पैर नंगा पैर ढाँके तो सिर नंगा—(वही, पृ० ३२), कभी गाड़ी नाव पर कभी नाव गाड़ी पर—(बहुरंगी मधुपुरी, पृ० ४२), सब धान बाईस पसेरी—(घुमक्कड़ स्वामी, पृ० १६३), न नौ मन तेल होगा न राधा नाचेगी—(वही, पृ० २१४), एक करेला दूसरा नीम चढ़ा – (वही, पृ० १४६), आठ कनौजिये नौ चूल्हे—(वही, पृ० ३), हल्दी लागे न फिटकरी, रग चोखा आवै – (वही, पृ० ६३), देशी चिड़िया मराठी बोल—(वही, पृ० १२६), मरता क्या न करता—(दिवोदास, पृ० ६५), हाथी के दाँत खाने के और दिखाने के और – (जीने के लिए, पृ० ३२२), अब पछताय क्या होत जब चिड़ियाँ चुग गईं खेत—(वही, पृ० २६२), काजी जी दुबले सहर के अन्देसे—(मेरी जीवन-यात्रा (४), पृ० ६४) धोबी बसि के का करे दीगवर के गाँव—(सतमी के बच्चे, पृ० ३५)।

(ख) संस्कृत लोकोक्तियाँ—प्राप्ते तु षोडशे गर्दभी ह्यप्सरायते—(बहुरंगी मधुपुरी, पृ० १६१), व्यापारे वसति लक्ष्मी—(वही, पृ० १२७), बुभुक्षितो किं न करोति पापम्—(वही, पृ० १४७), मुण्डे-मुण्डे मतिर्भिन्ना—(जीने के लिए, पृ० २५०), यदहरेव विरजेत् तदहरेव प्रव्रजेत्—(घुमक्कड़ शास्त्र, पृ० २८), प्रथमे ग्रासे मक्षिका- पाता—(मेरी यूरोप-यात्रा, पृ० ४४) आदि।

(ग) ग्रामीण लोकोक्तियाँ—घोखन्त विद्या खनन्त पानी—(बहुरंगी मधुपुरी, पृ० ११०), घर फूटा गँवार लूटा—(जीने के लिए, पृ० २८४), एक लगावें नब्बे पावें—(बहुरंगी मधुपुरी, पृ० ६३) आदि।

(घ) अरबी-फारसी की लोकोक्तियाँ—देर आयद दुरुस्त आयद (बहुरंगी मधुपुरी, पृ० २५७), जर बरसरे फौलाद निही नर्म शबद (वही, पृ० ८६) आदि।

सूक्तियों का प्रयोग

मुहावरों एवं लोकोक्तियों की तरह सूक्तियों का प्रयोग भाषा को चमत्कारपूर्ण तथा अर्थ को गौरवपूर्ण बनाने में सहायक होता है। सूक्तियों में साहित्य तथा लोकानुभूति का समन्वय रहता है। इनका प्रयोग कथन को नीतिपरक बनाने के लिए किया जाता है। राहुल जी ने हिन्दी और संस्कृत की अनेक सूक्तियों का प्रयोग अपनी रचनाओं में किया है। जैसे—परदेस कलेसु नरेसहु को (बहुरंगी मधुपुरी, पृ० ११०, घुमक्कड़ शास्त्र, पृ० २३), का वर्षा जब कृषि सुखाने, (बहुरंगी मधुपुरी, पृ० १३१), जल्दी का काम शैतान का है (वही, पृ० १६२), करनव वायस भेग मराना (घुमक्कड़ स्वामी, पृ० ६०), बीती ताहि बिसार दे आगे की सुधि लेय (तुम्हारी क्षय, पृ० २६), यत्ने कृतेऽपि यदि न सिध्यति कोऽत्र दोषः (मेरी जीवन-यात्रा (४), पृ० ४७१), यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः (घुमक्कड़ शास्त्र, पृ० ८५), सर्वे गुणा काञ्चनमाश्रयन्ति, (बहुरंगी मधुपुरी, पृ० ९६), द्रव्येण सर्वे वशा, (वही, पृ० ८५), सर्वसङ्ग्रहः कर्तव्य, (घुमक्कड़ शास्त्र, पृ० ४६), प्राप्ते तु षोडशे वर्षे पुत्रं मित्रवदाचरेत्, (घुमक्कड़ शास्त्र, पृ० १८), परद्रव्येषु लोष्ठवत् (रूस में पच्चीस मास, पृ० २७)।

विशेषणों का प्रचुर प्रयोग

'मधुर स्वप्न', 'जय यौधेय' तथा 'वोल्गा से गंगा' रचनाओं में राहुल जी की भाषा में एक प्रमुख प्रवृत्ति यह लक्षित होती है कि नायिकाओं के सौन्दर्यांकन में विशेषणों की इतनी भरमार है कि वाक्य बोझिल एवं जटिल हो गये हैं। राहुल जी का विशेषणों का चयन यद्यपि बड़ा सार्थक एवं सतर्क होता है, पर विशेषणों की बहुलता कहीं-कहीं भाषा को प्रभावोत्पादक नहीं बना सकी। 'मधुर स्वप्न' में नायिका के रूप-वर्णन का एक उदाहरण द्रष्टव्य है—'पीन कटि, उन्नत वक्ष, [illegible] लम्बा, लघु [illegible], लघु [illegible], हिमश्वेत शरीर वर्ण, [illegible] कपोल, [illegible] [illegible], [illegible], [illegible] लाल [illegible], दीर्घ पक्ष्म नेत्र, [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] के रूप में [illegible] [illegible] [illegible] किया [illegible] था।'[1]

राहुल जी की विशेषण-प्रयोग के प्रति यह रुचि बाणभट्ट की 'कादम्बरी' की स्मृति ला देती है। इसी प्रकार 'जय यौधेय' में समुद्रगुप्त के रनिवास की सुन्दरियों के वर्णन में[४७] तथा 'वोल्गा से गंगा' में निशा[४८] आदि नायिकाओं तथा जयचन्द[४९] के वर्णन में लेखक ने प्रचुर विशेषणों का एक-साथ प्रयोग किया है। विशेषण प्रायः तत्सम शब्द हैं, इसलिए भाषा में दुरूहता आ जाना स्वाभाविक है। यहाँ लेखक की पाण्डित्य-प्रदर्शन की प्रवृत्ति प्रबल हो उठी है।

वाक्य-विन्यास

राहुल जी वस्तु-वर्णन अथवा घटना-वर्णन बड़े विशद रूप से करते हैं। एक-एक बात को कई-कई बार दोहराते जाते हैं। कई स्थलों पर तो वाक्यों को उसी रूप में दोहराने लगते हैं। मधुपुरी में ग्रीष्म-ऋतु की चहल-पहल का वर्णन दो-ढाई पृष्ठों में आया है[५०]। इस उद्धरण में लेखक 'पंजाब के सैलानी तो वस्तुतः जुलाई में ही आते हैं' तथा 'जुलाई-अगस्त में भी पंजाबी सैलानी मधुपुरी में अधिक दिखाई देते हैं।'—इन दो वाक्यों द्वारा एक ही भाव को दोहराता है। साथ ही अपने भाव को स्पष्ट करने के लिए 'इसका मतलब यह नहीं', 'जो भी हो,' 'इसमें शक नहीं,' 'जिसका यह अर्थ नहीं,' 'यह तो इसी से मालूम है', 'हाँ इतना जरूर है' आदि वाक्यांशों का प्रयोग करता है। ऐसे स्थलों का वाक्य-विन्यास शिथिल ही माना जाएगा।

राहुल जी की वाक्य-योजना का सर्वत्र यही रूप नहीं है। कहीं-कहीं वाक्य-योजना संक्षिप्त, मार्मिक एवं प्रभावपूर्ण है। 'अब भी मुझे मालूम होता था कि वह मेरी नासिका द्वारा भीतर प्रविष्ट होकर दिमाग को भीनी-भीनी सुगन्ध से भर रही है। उन जगमगाते शिवालयों में सर्वत्र सौन्दर्य, कला और स्वच्छता का अखंड राज्य था। सभी वस्तु शिवं, सुन्दरम् थी।'[५१] राहुल जी की वाक्य-योजना का प्रायः यही रूप है। वस्तुतः राहुल जब वस्तुओं का वर्णन करते हैं तो विस्तार का लोभ संवरण नहीं कर पाते, अन्यथा अन्य स्थलों पर उनकी वाक्य-योजना सुगठित एवं सुगुम्फित है। ऐसी वाक्य-योजना का एक और उदाहरण उनकी 'मेरी जीवन-यात्रा' से देखिए—'किन्नर देश के देवता न मिट्टी-पत्थर के हैं और न निष्क्रिय निर्जीव। वे विमानों पर ही सोते और विमानों पर ही टहलने के लिए निकलते हैं। विमान छोटी-सी खुली पालकी जैसा होता है, जिसके भीतर से चार-पाँच हाथ लम्बी भुर्ज की सीधी बल्ली डाली जाती है, जो स्प्रिंग की तरह इशारे पर लटकती है।'[५२]

चित्रोपमता

चित्रोपमता राहुल जी की भाषा का अनन्य गुण है। राहुल जी के व्यक्ति-चित्र, व्यंग्य-चित्र, वस्तु-चित्र, प्रकृति-चित्र, भाव-चित्र इतने सटीक एवं सजीव बन पड़े हैं कि उनकी भाषा की चित्रोपमता की सराहना किये बिना नहीं रहा जा सकता। भाषा की यह चित्रमयता उनके भाषा पर पूर्णाधिकार की परिचायिका है। 'मधुर स्वप्न,' 'वोल्गा से गंगा,' 'जय यौधेय,' 'सिंह सेनापति' एवं उनके यात्रा-सम्बन्धी ग्रन्थों की भाषा में यह विशेषता, विशेष रूप से दृष्टिगोचर होती है। कुछ

उदाहरण द्रष्टव्य हैं—'इस महाद्वार में लगे महाकपाट, उसके विशाल काष्ठ और सुनहली घण्टियों की पंक्तियां राजधानी के वैभव को बतलाने के लिए काफी थी, लेकिन उन पर सोने, चान्दी और रंग-बिरंगे रत्नों के कार्य ने उसे कई गुना बढ़ा दिया था। द्वार पर कवचधारी भट भाला हाथ मे लिए अपनी विशाल भूरी दाढ़ियों के कारण और भी भयंकर मालूम होते थे। किसको इस महाद्वार के भीतर प्रवेश करने का साहस हो सकता है।' (मधुर स्वप्न, पृ० २)

राहुल जी का यह वस्तुचित्र यद्यपि परिगणनात्मक शैली मे अंकित है तथापि राजप्रासाद का सजीव रूप प्रस्तुत करने मे सफल है। एक व्यक्ति-चित्र देखिए। राहुल जी ने रेखांकन-मात्र किया है, पर चित्र साकार बन गया है—'सैंकड़ों मोमबत्तियों के प्रकाश में उसकी लम्बी-भूरी दाढ़ी स्पष्ट दिखलाई पडती थी। गौरमुख पर श्येनाकार तुंग नासा, बड़ी-बड़ी आंखें, प्रशस्त ललाट उसे अधिक सुन्दर और सुकान्त बना रहे थे।' (मधुर स्वप्न, पृ० १२) राहुल जी व्यक्ति-चित्र-निर्माण में अत्यन्त सिद्धहस्त हैं। वे व्यक्ति के बाह्य रूप-रंग, वेश-भूषा, आकार-प्रकार का विशद चित्र प्रस्तुत करते हैं। 'मीनाक्षी' (बहुरंगी मधुपुरी) की विशाल आंखों का विशद चित्रण उल्लेखनीय है[२३]।

राहुल जी की भाषा की यह चित्रोपमता वातावरण-चित्रों मे भी देखी जा सकती है। ऐतिहासिक उपन्यासों एवं कथाओं में राजनीतिक, सामाजिक आदि परिस्थितियों के चित्रण में राहुल जी की भाषा चित्रात्मक हो गई है। ये चित्र कुछ लम्बे अवश्य हैं, परन्तु राहुल जी के प्रकृति-चित्र अत्यन्त भव्य एवं मनोहर हैं। प्रकृति के वर्णन भी अधिकांशतः तथ्यपरक हैं, पर हैं अत्यन्त सजीव। एक उदाहरण देखिए— 'सघन नील-नभ के नीचे पृथ्वी कर्पूर-सी श्वेत हिम से आच्छादित है। चौबीस घंटे से हिमपात न होने के कारण, दानेदार होते हुए भी हिम कठोर हो गया है। यह हिमवसना धरती दिगन्तव्याप्त नहीं है, बल्कि यह उत्तर से दक्षिण की ओर कुछ मील लम्बी रुपहली टेढ़ी-मेढ़ी रेखा की भांति चली गई है, जिसके दोनों किनारों की पहाड़ियों पर काली वन-पंक्ति है।'[२४] इसी प्रकार का एक अन्य प्रकृति-चित्र 'दिवा' कहानी मे मिलता है[२५]। यात्रा-ग्रंथों मे राहुल जी के प्रकृति-चित्र विशेष रूप मे द्रष्टव्य है।

राहुल जी ने भावात्मक चित्र भी अंकित किये हैं, पर कम। वस्तुतः राहुल जी वर्णनात्मक शैली के कलाकार हैं, उनका ध्यान तथ्य एवं वस्तु-परिगणना की ओर रहता है, अधिक-से-अधिक कहने की प्रवृत्ति उनकी विशेषता बन गई है। राहुल जी के भावात्मक चित्र भी सर्वत्र अनुभूति-प्रधान नहीं—उनमें वर्णन का अंश अधिक है। कुछेक स्थलों पर उनके भावात्मक चित्र अत्यन्त मार्मिक हैं। अश्वघोष की करुणापूर्ण स्थिति का अंकन राहुल जी ने 'प्रभा' कहानी में किया है[२६]। 'हिमाचल परिचय' में हरगौरी का भावमय चित्र भी सुन्दर बन पड़ा है—'मैं, मंगलगढ़ की नागिन हर-गौरी मूर्ति से बहुत प्रभावित था, किन्तु यहां मैंने सौम्य और सौन्दर्य में अद्वितीय

हरगौरी मूर्ति को देखा। इसकी कोमल बंकिम रेखाओं में वही सौन्दर्य भरा था, जो कि अजन्ता के चित्रों में दिखाई पड़ता है, बल्कि पत्थर में ऐसा तन्वंग उत्कीर्ण सम्भव हो सकता है, इस पर आँखें विश्वास नहीं करती थी। ललितासनस्थ हर के वामांक में अनुपम सौन्दर्य-राशि की मूर्ति बन कर भूधरसुता विराजमान हैं।' (हिमाचल परिचय, पृ० ४४१)

कहीं-कहीं राहुल जी की भाषा गतिमान चित्रों को अंकित करने में अत्यन्त सफल हुई है। यथा—'रास्ते में पुनीत पंचाल के हरे खेत, ग्रामों के बगीचे, देहाती हाट, फटी धोतियाँ, कृश शरीर, नटखट और भविष्य की आशा ग्रामीण विद्यार्थी समूह को देखते ठीक समय फर्रुखाबाद पहुँचा'। (राहुल-यात्रावली, पृ० १६४)

राहुल जी ने भाषा द्वारा सजीव व्यंग्य-चित्र भी अंकित किये हैं। वे साम्राज्यवाद, ब्राह्मणवाद तथा आडम्बरवाद के विरोधी थे। उनकी रचनाओं में इन सब पर तीव्र प्रहार मिलते हैं। ये प्रहार कहीं स्मित के साथ हैं और कहीं-कहीं बड़े उग्र एवं प्रचण्ड बन पड़े हैं। 'जीने के लिए' में अंग्रेज शासकों से सम्बन्धित व्यंग्य-चित्र बड़ा सुन्दर बन पड़ा है—'अंग्रेज धन-सम्पत्ति दुहने में सबसे बढ़कर हैं। बड़े-बड़े अत्याचारी शासक भी देश का खून चूस कर उसे उतना गरीब नहीं बना सके जितना कि अंग्रेज। वे छुरी से कलेजा चीर कर या तलवार से गर्दन काटकर खून नहीं निकालना चाहते, उनका तरीका बहुत सूक्ष्म है। वह जोंक की तरह हमारा खून इस तरह से चूसते हैं कि खून भी पूरा निकल आये और हम जीते रहकर हमेशा दुधार गाय बने रहें।' (जीने के लिए, पृ० २६४)

आलंकारिक भाषा

आलंकारिक भाषा अभिव्यंजना में चमत्कार की सृष्टि करती है। डॉ० रामकुमार वर्मा लिखते हैं, 'शब्दालंकारों में शब्द-चातुर्य है, अर्थालंकारों में अर्थ-कौशल। यदि यह कहा जाय कि शब्दालंकार में भाषा की चित्र-शाला है और अर्थालंकार में भावों की मुस्कान तो अत्युक्ति न होगी। वस्तुतः अलंकारों का प्रयोग भाषा और भावों का सौन्दर्य-दृष्टि से सचय करने में तथा उनके द्वारा जीवन के कार्य-व्यापारों को आकर्षक बनाने में है।......अलंकार एक ओर भाषा का परिष्कारक है तो दूसरी ओर भावों के प्रयोजन की अन्तर्दृष्टि का सूचक है।'[४] अनुप्रास, यमक आदि शब्दालंकारों से भाषा में चमत्कृति आती है और उपमा, उत्प्रेक्षा आदि अर्थालंकारों एवं अप्रस्तुत-विधान से प्रभावोत्पादकता उत्पन्न होती है और साथ ही भाव सहज ग्राह्य बन जाता है। अप्रस्तुत-विधान के अन्तर्गत सादृश्यमूलक अलंकारों का आश्रय लेकर लेखक वस्तु, गुण अथवा क्रिया की तीव्र अनुभूति करवाता है। इस प्रकार अलंकारों के प्रयोग से भाषा सजीव, प्रभावोत्पादक एवं रमणीय बनती है।

राहुल जी ने भाषा में चमत्कार उत्पन्न करने के लिए तथा भावप्रेषणीयता के लिए शब्दालंकारों एवं अर्थालंकारों का उपयोग किया है। उनकी कृतियों में शब्दालंकारों में अनुप्रास तथा अर्थालंकारों में उपमा का प्रयोग बाहुल्य से हुआ है।

उपमाएँ—(१) 'उसके सिर की सफेद चादर निमक गई थी, जिसमें भ्रमर से काले द्विधा-विभक्त केशों के बीच हिमालय की भरस्थानी से बहती गंगा की रुपहली धारा दिखी हुई थी।' 'भ्रमर' और 'गंगा की रुपहली धारा' ये दोनों उपमान परम्परायुक्त हैं।'[८८]

(२) 'एक बुढ़िया जिसके सन जैसे धूमिल श्वेत केश उलझे तथा जटाओं के रूप में इस तरह बिखरे हुए हैं कि उसका मुँह उनमें ढका हुआ है।'[८९] 'सन जैसे धूमिल श्वेत केश' उपमान सार्थक है तथा उपमान लोक-जीवन के क्षेत्र से गृहीत है।

(३) 'प्रभा सूर्य-प्रभा की भाँति अश्वघोष के हृदय-पद्म को विकसित रखती थी। दूध-सी छिटकी चान्दनी के प्रकाश में दोनों अक्सर सरयू की रेत में जाते।'[९०] यहाँ रूपक और उपमा का प्रयोग है—चान्दनी की उज्ज्वलता को दूध से उपमित किया गया है। इसी प्रकार कुछ और उपमाएँ द्रष्टव्य हैं—क्षीर जैसे श्वेत श्मश्रु (दिवोदास, पृ० ८), 'नर्गिस में शबनम की तरह आँसू' (वोल्गा से गंगा, पृ० २९८), 'कोढ़ी के घाव के सुन्न होने की तरह दिल का सुन्न होना' (सतमी के बच्चे, पृ० ७१), 'घड़ी के पुर्जे की तरह मन से' (सतमी के बच्चे, पृ० ८१), 'प्रसूता स्त्री की भाँति अशक्त' (जीने के लिए, पृ० २१०)। प्रस्तुत उपमान प्रायः नये हैं। नयी कहानी और नयी कविता में जैसे उपेक्षित उपमानों को ग्रहण किया जा रहा है, राहुल जी के उपमान भी नये व यथार्थ जीवन से गृहीत हैं। इस दिशा में वे प्रयोगशील कहे जा सकते हैं। राहुल जी ने जहाँ सौंदर्यसूचक परम्परागत उपमानों का चयन किया है, वहाँ नये उपमानों का ग्रहण उनके अप्रस्तुत-विधान की विशिष्टता मानी जायेगी।

शब्दालंकारों में अनुप्रास एवं पुनरुक्तिप्रकाश का यत्र-तत्र प्रयोग राहुल जी ने किया है। यहाँ एक उदाहरण देना पर्याप्त होगा—'मैं आकृष्ट होता था, उसके अगर-तगर की धूप-धूमों और फूलों की नाना प्रकार की मधुर-सुगन्धियों से जो आज से डेढ़ हजार वर्ष पहले के मन्दिरों में उड़ती थी।'[९१]

गुण

माधुर्य, ओज और प्रसाद काव्य के तीन गुण माने जाते हैं। इन तीनों गुणों के काव्य में समाविष्ट करने के लिए वैदर्भी, गौड़ी और पाँचाली रीतियों का प्रयोग किया जाता है जिसका अभिप्राय है कि विशिष्ट-प्रकार की शब्द-रचना के द्वारा काव्य में उक्त गुणों का समावेश किया जाता है। राहुल जी की गद्य-भाषा में भी उपयुक्त शब्द-प्रयोग के कारण माधुर्य, ओज और प्रसाद गुणों का सहज ही समावेश हो गया है।

माधुर्य गुण की मुख्य विशेषता हृदय को आह्लादित और द्रवित करना है। इसका अधिकांशतः प्रयोग संयोग शृंगार, करुण एवं शान्त रस के लिए किया जाता है। वर्णवर्ग टवर्ग वर्णों का इसमें अभाव होता है। अतः कोमल भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए माधुर्य गुण का प्रयोग होता है। राहुल जी के उपन्यासों में नायक-नायिकाओं के प्रणय-प्रसंगों में माधुर्य गुण प्राप्य है[९२]। 'हिमालय-परिचय' के अन्तर्गत

'बदरीनाथ-यात्रा' के प्रसंग मे राहुल जी ने हरगौरी का बड़ा माधुर्यमय चित्र अंकित किया है[१३]। राहुल जी जहाँ समाज के पाखण्डो का खण्डन करते हुए अत्यन्त उग्र भाषा का प्रयोग करते हैं, वहाँ कोमल भावों की अभिव्यक्ति के लिए माधुर्य-गुण सम्पन्न कोमलकान्त पदावली का भी साधिकार प्रयोग करते है।

माधुर्य के बाद ओज गुण का महत्त्व है। चित मे उत्साह भाव को उद्दीप्त करना ओज गुण का लक्ष्य होता है। इसमे संयुक्ताक्षरो, द्वित्व वर्णो एवं टवर्ग-युक्त शब्दों की प्रधानता रहती है। 'तुम्हारी क्षय' के निबन्धो की भाषा प्रायः उग्र एवं ओजगुणमयी है।[१४] राहुल जी सामाजिक विषमता को समाप्त करने के लिए अत्यन्त ओजस्वी शब्दों का प्रयोग करते हैं।[१५]

प्रसाद गुण का प्रयोग रस-विशेष की सीमा मे आबद्ध नही होता। इसकी स्थिति सभी रसों में हो सकती है। भाषा की सरलता इसका मुख्य अभीष्ट है। "किन्नर देश" मे राहुल जी लिखते हैं—'किन्नर या किंपुरुष देवयोनि है। उनके देश की यात्रा का अर्थ है देवलोक मे जाना। फिर पाठको को मेरी इस यात्रा पर सन्देह हो सकता है। किंतु साथ ही यह भी कहा जा सकता है कि जिस देश मे कभी देवता रहते हैं, वहाँ पीछे पिछड़े मनुष्य रहने लगे और जो पिछड़े मनुष्यो का देश हो, वह फिर देवलोक बन जायगा।" (किन्नर देश, पृ० १)

भाषा और व्याकरण

हिन्दी-व्याकरण के विषय मे राहुल जी का मत है, हिन्दी-व्याकरण को अब हमे भाषा के सार्वदेशिक रूप को ध्यान में रखकर कुछ जोड़ना-घटाना होगा— "इसका यह अर्थ नही कि गलत-सही जैसे भी लिंग या उच्चारण किये जा रहे हैं, उन सभी को हमें स्वीकार कर लेना चाहिये।" (साहित्य निबंधावली, पृष्ठ १४) एक अन्य स्थल पर भी राहुल जी ने व्याकरण के प्रति उदार बनने की सिफारिश की है।[१६] पर साथ ही राहुल जी ऐसे प्रयोगों का निषेध करते हैं जो लिंग-भेद अथवा वचन-भेद को सर्वथा मिटा दें।[१७]

राहुल जी की भाषा व्याकरण-सम्मत एवं परिमार्जित है। फिर भी कहीं-कहीं उसमे व्याकरण सम्बन्धी दो-चार त्रुटियाँ आ गई हैं। व्याकरण सम्बन्धी उदार दृष्टि-कोण के पोषक होने पर भी ये त्रुटियाँ व्याकरण की असंगतियाँ ही मानी जायेंगी।

(क) लिंग-सम्बन्धी असंगतियाँ—राहुल जी की कृतियों मे लिंग-सम्बन्धी कुछ असंगतियाँ दिखाई देती हैं जैसे (१) 'व्यक्तियाँ मरेंगी, लेकिन जातियाँ अमर रहेंगी।'[१८] व्यक्ति पुंलिंग है, राहुल जी ने उसे स्त्रीलिंग मे प्रस्तुत किया है। (२) 'तर्ज बड़ा सुन्दर था।'[१९] हिन्दी में तर्ज स्त्रीलिंग के रूप मे प्रयुक्त होता है पर राहुल जी ने अरबी की तरह उसे पुंलिंग रूप मे ही प्रयुक्त किया है। (३) "अब तो ढोल गले मे पड़ चुकी थी[२०]।" ढोल पुंलिंग है, इसे भी स्त्रीलिंग के रूप मे प्रयोग किया गया है। 'उसकी सम्पत्ति थे दो पुराने छोटे-छोटे खपड़ैल के घर।'[२१] "सम्पत्ति थे" की जगह 'सम्पत्ति थी' चाहिए।

(ख) काल-सम्बन्धी असंगतियां—"जिस देश में कभी देवता रहते हैं।"[३२] के स्थान पर "रहते थे" का प्रयोग होना चाहिए।

(ग) अशुद्ध प्रयोग—"सकली अगला बनाया गया था'[३]।" यहाँ नकली के विपरीतार्थक के रूप मे सकली का प्रयोग अप्रचलित एवं असंगत है। "ईमानदारी के लिए बहुत प्रसिद्ध ही नहीं, दुख्यात भी थे।"[३४] यहाँ 'दुख्यात' का प्रयोग ठीक नहीं है। "सभी वस्तु शिवं सुन्दरम् थी।"[३५] सभी वस्तुएँ शिवं सुन्दरम् थी का प्रयोग चाहिए।

राहुल जी के सर्जनात्मक साहित्य मे अभिव्यक्ति-पक्ष की अपेक्षा विषय-प्रतिपादन का अधिक महत्त्व रहा है। भाषा को सजाने-सँवारने का उन्होंने अधिक प्रयत्न नहीं किया। सम्भवतः ऐसा करने के लिए उनके पास अवकाश ही न था। वे निरन्तर बोलकर किसी से लिखवाया करते, संशोधन का उनके पास अवसर ही कहाँ था। उनके साहित्य की भाषा हम सरल हिन्दी कह सकते हैं। उपमाओं, मुहावरों, लोकोक्तियों एवं सूक्तियों के प्रयोग द्वारा उन्होंने भाषा को प्रभावोत्पादक एवं समर्थ बना दिया है। कहीं-कहीं विशेषणों के प्रचुर प्रयोग उनके पाण्डित्य-प्रदर्शन का संकेत अवश्य करते हैं, पर ऐसे प्रयोग अधिक नहीं हैं। भाषा की स्वाभाविकता की रक्षा उन्होंने सर्वत्र की है। विशेषकर ग्रामीण जीवन से सम्बद्ध रचनाओं से वातावरण की स्वाभाविकता के लिए उन्होंने सीधी-सादी भाषा, चुभते हुए व्यंग्य, देहाती मुहावरे और लोकोक्तियों का प्रयोग किया है। "सतमी के बच्चे" तथा "जीने के लिए" की भाषा स्वाभाविक बोलचाल की है। पात्र, स्थिति एवं भाव-परिवर्तन के अनुकूल राहुल जी की भाषा मे परिवर्तन भी दृष्टिगोचर होता है। डॉ० नगेन्द्र लिखते हैं—"राहुल जी ने भाषा का प्रयोग देशकाल के अनुसार किया है। आदिम युग का मानव पूरे वाक्य नहीं बोलता। पूरक संज्ञाएँ उसकी भाषा मे नहीं हैं। वैदिक काल का मानव जो भाषा बोलता है उसमें वैदिक संस्कृत की शब्दावली की प्रचुरता है। मुसलमानों के आगमन के बाद भाषा मे अरबी-फारसी का पुट आने लगता है।"[३६] इस प्रकार "सतमी के बच्चे" (१९३५) से लेकर "दिवोदास" (१९६१) तक की भाषा में हिन्दी भाषा के विविध रूप दर्शनीय हैं।

राहुल सांकृत्यायन हिन्दी-गद्य के प्रमुख निर्मायकों मे से हैं। उनकी रचनाओं में प्रयुक्त भाषा के विविध रूपों के निदर्शन के अनन्तर यह सहज कहा जा सकता है कि महापण्डित राहुल संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् होते हुए भी भाषा के विषय मे दुराग्रही नहीं हैं। उनके लिखने में जैसे संस्कृत, प्राकृत, पाली के शब्द सहज आ जाते हैं, वैसे ही उर्दू-फारसी के या तिब्बती-रूसी तक के शब्द अपने-आप आ जाते हैं। उनकी लेखनी ने जैसे कहीं रुकना जाना ही नहीं। डॉ० भोलानाथ शर्मा ने भी राहुल जी द्वारा प्रयुक्त भाषा के सम्बन्ध मे यही अभिमत प्रकट किया है—"संस्कृत-साहित्य के प्रकाण्ड पण्डित होते हुए उन्होंने जनसाधारण की भाषा को ही अपने निबन्धों मे अपनाया है। राहुल जी

के निबन्धों की एक विशेषता यह है कि इन्होंने गूढ़-से-गूढ़ विचार सरल और सुबोध भाषा में व्यक्त किये हैं······उन्होंने निस्संकोच रूप से उर्दू-फारसी तथा अंग्रेजी के शब्दों को अपनाया है।"[८७] डॉ० प्रभाकर माचवे राहुल जी के लेखन की विशेषताएँ बताते हुए उनकी भाषा को "सरल सहज प्रवाहमयी भाषा" कहते हैं।[८८] रामप्रताप त्रिपाठी राहुल जी की भाषा की स्वाभाविकता के विषय में लिखते हैं—"ऐसा लगता था जैसे वह किसी से खुलकर बातचीत कर रहे हों। गम्भीर-से-गम्भीरतम विषयों को भी वह इस ढंग से प्रतिपादित करते थे और लेखन-शैली में भी उनकी यही वशेषता थी। अनावश्यक क्लिष्ट शब्दों का जाल फैलाकर वर्ण्य-विषय को ढंक देने वाली अथवा विशेष भूमिका बांधने वाली भाषा-शैली का प्रयोग वह नहीं करते थे। जिस विषय पर वह बोलते या लिखते थे, सीधे एक वाक्य में उसी की चर्चा करना उन्हें पसन्द था। पाण्डित्य-प्रदर्शन की अथवा पाठकों को आतंकित करने की उनकी आदत कभी नहीं थी।'[८९] इस प्रकार राहुल ने भाषा का जो स्वरूप प्रस्तुत किया है, वह न तो प्रसाद की भाषा की तरह संस्कृतनिष्ठ ही है और न ही सर्वथा ग्राम्य। उनकी भाषा संस्कृत-निष्ठ होते हुए भी क्लिष्ट नहीं है और ग्रामीण जीवन के वातावरण को अंकित करती हुई भी अनगढ़ नहीं। भाषा की सहजता, सरलता एवं स्वाभाविकता की उन्होंने सर्वत्र रक्षा की है। उनकी भाषा में अकृत्रिमता, प्रांजलता एवं प्रवाहमयता का सहज संगम उपस्थित हुआ है।

३५ जीने के लिए, पृ० ५ ।

३६ कनैला की कथा, पृ० ११२ ।

३७. मधुर-स्वप्न, पृ० ८६ तथा मेरी यूरोप-यात्रा, पृ० ३६ ।

३८. बहुरंगी मधुपुरी, पृ० ७४, १६३, २६, ५६ ।

३९. सतमी के बक्ने, पृ० १६, २, ४ ।

४० जीने के लिए, पृ० १६, २२, ३१, २७१, १३ ।

४१. बहुरंगी मधुपुरी, पृ० २१७ ।

४२. जीने के लिए, पृ० २८४ ।

४३ पद्माकर-पंचामृत-सम्पादक प० विश्वनाथ मिश्र, पृ० १०२ ।

४४ आज की समस्याएँ, पृ० ४६ ।

४५ हिन्दी-साहित्य-कोश, पृ० ६६२-६६३ ।

४६. मधुर स्वप्न, पृ० २१ ।

४७ जय यौधेय, पृ० ६ ।

४८ वोल्गा से गंगा, पृ० ४ ।

४९ वही, पृ० २५४ ।

५० बहुरंगी मधुपुरी, पृ० १५ ।

५१ हिमालय परिचय, पृ० ४३० ।

५२. मेरी जीवन-यात्रा (४), पृ० १५४ ।

५३ बहुरंगी मधुपुरी, पृ० १२३-१२४ ।

५४. वोल्गा से गंगा, पृ० १ ।

५५ वही, पृ० १७ ।

५६. वही, पृ० २०८-२०६ ।

५७ साहित्य-शास्त्र, पृ० ११८-११६ ।

५८. वोल्गा से गंगा, पृ० २८५ ।

५९. वही, पृ० ३ ।

६० वही, पृ० १६४ ।

६१. हिमालय-परिचय, पृ० ४३० ।

६२ सिंह सेनापति, पृ० ४१ ।

६३. हिमालय-परिचय, पृ० ४४१ ।

६४. तुम्हारी क्षय, पृ० १७-१८ ।

६५. वीर चन्द्रसिंह गढ़वाली, पृ० ३१२ ।

६६. साहित्य-निबन्धावली, पृ० ५५, ५७ ।

६७ वही, पृ० ५७ ।

६८. जीने के लिए, पृ० १०७ ।

६९. वही, पृ० १२ ।

७० बहुरंगी मधुपुरी, पृ० ३२ ।

७१. सतमी के बच्चे, पृ० १।
७२ किन्नर देश, पृ० १।
७३ बहुरंगी मधुपुरी, पृ० १२।
७४ वही, पृ० ३।
७५ हिमालय-परिचय, पृ० ४३०।
७६ विचार और विवेचन, पृ० १२८।
७७ हिन्दी-निबन्ध का विकास, पृ० २२१।
७८ हिन्दी निबन्ध, पृ० ६०।
७९ उपमा (राहुल-स्मृति-विशेषांक), पृ० १२७।

द्वितीय खण्ड/तीसरा परिवर्त

राहुल जी का जीवनीपरक साहित्य

जीवनीपरक साहित्य

मनुष्य का सर्वाधिक आकर्षण-केन्द्र मनुष्य स्वयं है तथा साहित्य मे इसी मनुष्य का ही अध्ययन होता है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी साहित्य का लक्ष्य मनुष्य को ही स्वीकारते हैं। उनके शब्दों में, 'वास्तव मे हमारे अध्ययन की सामग्री प्रत्यक्ष मनुष्य है। आपने इतिहास मे इसी मनुष्य की धारावाहिक जय-यात्रा की कहानी पढ़ी है, साहित्य मे इसी के आवेगों, उद्वेगों और उल्लासों का स्पन्दन देखा है, राजनीति मे इसी की लुकाछिपी के खेल का दर्शन किया है, अर्थशास्त्र में इसी की रीढ़ की शक्ति का अध्ययन किया है। यह मनुष्य ही वास्तविक लक्ष्य है।'[1] अभिप्राय यह कि साहित्य मे मानव-जीवन की विशद विवेचना रहती है, जीवन की गूढ़ समस्याओं एवं गुत्थियों का, उसके सौन्दर्य एवं विभूतियों का उसमे अध्ययन होता है। सामान्यतः सभी प्रकार के साहित्य में मानव-जीवन का अध्ययन रहता है। किंतु जीवनीपरक साहित्य में यह अध्ययन अधिक प्रत्यक्ष एवं गहरी छाप लेकर प्रकट होता है।

विश्व मे प्रत्येक व्यक्ति का अपना पृथक् अस्तित्व होता है, व्यक्तित्व एवं महत्व होता है। इस व्यक्तित्व का अध्ययन एक गूढ़ एवं रोचक विषय है। विलियम हेनरी हडसन के शब्दों मे, 'जीवन साहित्य का उद्‌गम स्थान है और व्यक्तिगत जीवन मे विशेष रूप से साहित्य के गूढ़ तत्त्व ढूँढे जा सकते हैं।'[2] मनुष्य के इसी व्यक्तिगत जीवन का विशेष रूप से अध्ययन जीवनी-परक साहित्य की विशिष्टता है। लिटन स्ट्रैची ने जीवनी को सभी प्रकार की कलात्मक विधाओं मे सर्वाधिक ललित एवं मानवीय विधा माना है[3]। जीवनीपरक-साहित्य के मुख्य पाँच प्रकार हैं—(क) जीवनी, (ख) आत्मकथा, (ग) संस्मरण, (घ) दैनन्दिनी तथा (ङ) पत्र। राहुल जी ने इन पाँचों रूपों मे जीवनीपरक साहित्य की रचना की है। यहाँ उनके रचना-रूप मे प्रकाशित प्रथम तीन प्रकार के जीवनी-रूपों का मूल्यांकन प्रस्तुत है।

(क) राहुल जी का जीवनी-साहित्य

जीवनी : स्वरूप-विवेचन

हिंदी मे जीवनी को जीवनचरित अथवा जीवनचरित्र की संज्ञा भी प्राप्त है।

मूलत. इनमें कोई अन्तर नहीं। कुछ लोग जीवनी और जीवन-चरित्र में यह भेद बतलाते हैं कि पहले मे तथ्यो और दूसरे में चरित्र-विश्लेषण पर अधिक बल दिया जाता है, परन्तु यह भेद सर्वमान्य नही। ड्राइडन ने सर्वप्रथम जीवनी को इन शब्दों मे परिभाषित किया है—'व्यक्ति-विशेष के जीवन का इतिहास ही जीवनी है।'[४] 'हिन्दी-साहित्य-कोश' में व्यक्ति-विशेष के जीवन-वृत्तान्त को जीवनी की संज्ञा दी गई है[५]। 'दि न्यू इनसाइक्लोपीडिया अमेरिकना' मे जीवनी का स्वरूप इस प्रकार प्रस्तुत है—'व्यक्ति के जीवन का इतिहास तथा उसके जीवन की घटनाओं का इतिहास एवं उसके मत, विचार और समय की व्याख्या[६]।' टी० शिप्ले भी जीवनचरित को अपने आदर्श रूप में एक विचारपूर्ण इतिहास मानते हैं[७]। इन कोशगत परिभाषाओं से जीवनी साहित्यिक विधा के स्वरूप की व्याख्या स्पष्ट नही हो पाती। इनके अनुसार जीव[नी] इतिहास की एक शैली है, जिसका सम्बन्ध व्यक्तिगत इतिहास से है। परन्तु आधुनि[क] युग में जीवनी को एक सहित्यिक विधा के रूप में ग्रहण किया जाता है और जीव[नी] तथा इतिहास मे स्पष्ट अन्तर स्वीकार किया गया है। जीवन के संघर्षों द्वा[रा] मनुष्य की आत्मा का निर्दोष चित्रण जीवनी का उद्देश्य है[८]। इतिहास में मनुष्य [को] व्यक्तिगत रूप में चित्रित न करके, उसको सामूहिक अथवा जातीय रूप मे वर्णि[त] किया जाता है। जीवनी घटनाओं का अंकन मात्र नही है वरन् चित्रण है, सर्वोप[रि] वह कलात्मक विधा है। एडगर जॉनसन के अनुसार, 'जीवनी का एक प्रमुख एवं स्प[ष्ट] गुण उसका साहित्यिक विधा होना है। उसमें तथ्यों को साहित्यिक रूप में प्रस्[तुत] किया जाता है[९]।' वस्तुतः जीवनी में इतिहासकार का सत्य और उपन्यासकार [का] सर्जनात्मक दृष्टिकोण होता है। ऐतिहासिक तथ्य एवं विवरण साहित्यिक जीवनी [का] रूप तभी धारण कर सकते हैं जब वे लेखक की वैयक्तिक श्रद्धा एवं सहानुभूति [से] अनुप्राणित हों। इतिहास की दृष्टि से जीवनी आलोचनात्मक प्रज्ञा, तटस्थ जिज्ञास[ा] विवरणों के औचित्यपूर्ण विश्लेषण एवं चयन पर बल देती है और साहित्य की दृ[ष्टि] से उसमें अवयव-सम्बन्धी एकसूत्रता रहती है। इसमें अपने रूपविधान एवं शैली द्वार[ा] सहृदयों की सौन्दर्यात्मक वृत्ति की परितुष्टिकारिणी विशेषता पाई जाती है।[१०] '[दि] कोलम्बिया इनसाइक्लोपीडिया' में जीवनी को एक व्यक्ति के जीवन का आलेखन तथा उसके व्यक्तित्व का पुनर्सर्जन माना गया है—'जीवनी मनुष्य के वैयक्तिक रू[प] के अध्ययन की कलात्मक विधा है जिसमें उसकी आशा-आकांक्षा का विश्लेषण रहत[ा] है[११]।' साहित्यिक विधा के रूप मे लिमों एडल द्वारा प्रस्तुत जीवनी की परिभाष[ा] पर्याप्त स्पष्ट है—'जीवनी शब्दों में गृहीत ज्ञात-प्रमाण है जिसमें मानवीय स्वभाव एवं भावनाओं का ऐसा प्रवाहपूर्ण वर्णन होता है जैसे किसी पारे जैसे तरल पदार्थ का बहाव हो[१२]।' इस प्रकार जीवनी मनुष्य के अन्तः-बाह्य जीवन का कलात्मक चित्रण है।

उक्त विवेचना के अनन्तर जीवनी को इन शब्दो में रूपायित किया जा सकता है—जब कोई लेखक किसी महत्वपूर्ण व्यक्ति के जीवन के अन्तर्बाह्य स्वरूप का

यथार्थ घटनाओं के आधार पर कलात्मक रूप में चित्रण करता है तो साहित्य का वह रूप जीवनी का अभिधान पाता है।

जीवनी के तत्त्व

जीवनी साहित्य की महत्त्वपूर्ण विधा है, अतः इसमें अन्य साहित्यिक-विधाओं की तरह इन पाँच तत्त्वों का होना अनिवार्य है १. वर्ण्य-विषय, २. चरित्र-चित्रण, ३. वातावरण-सृष्टि, ४ उद्देश्य और ५. भाषा-शैली। नायक के चरित्र का वास्तविक घटनाओं के आधार पर संश्लेषण-विश्लेषण एवं विवेचन जीवनी के वर्ण्य-विषय का निर्माण करता है। वर्ण्य-विषय में वास्तविकता, ऐतिहासिक सत्यता, लेखक की तटस्थता, वैज्ञानिकता, रोचकता, सम्बद्धता एवं संक्षिप्तता का होना जीवनी के मुख्य गुण हैं। चरित्र-चित्रण में प्रधान पात्र के अन्तः-बाह्य स्वरूप का निरूपण रहता है। इस में जीवनी-नायक के गुण-दोषों का सहृदयतापूर्ण वर्णन होता है। वातावरण-सृष्टि का तत्त्व नायक के जीवन को उभारने के उद्देश्य से जीवनी में आवश्यक है पर यह गौण रूप में होना चाहिए, अंगी तो जीवनी-नायक ही होता है। जीवनी का उद्देश्य अपने जीवनी-नायक को अमरत्व प्रदान करना एवं पाठकों को उसके जीवन-चरित से प्रेरणा देना है। जीवनी की शैली में सुसंगठितता एवं एकान्विति तथा उसकी भाषा में सुबोधता तथा सजीवता के साथ साहित्यिक माधुर्य का होना आवश्यक है। इन्हीं तत्त्वों से युक्त जीवनी साहित्यिक विधा का रूप धारण कर सकती है, अन्यथा वह ऐतिहासिक विवरण-मात्र होगी और उसे निकलसन के शब्दों में 'अशुद्ध जीवनी' ही माना जायेगा। जीवनी के उक्त तत्त्वों का समाहार डॉ० जॉनसन के इस कथन में प्राप्य है—'जीवनी-लेखक का उद्देश्य जीवनी की उन घटनाओं और क्रिया-कलाप का वर्णन करना होता है, जो व्यक्ति-विशेष की बड़ी-से-बड़ी महत्ता से लेकर छोटी-से-छोटी घरेलू बातों तक से सम्बन्धित होती हैं। जीवनी में व्यक्ति-विशेष के साथ ही उस काल की सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक तथा आर्थिक स्थिति का सच्चा चित्र भी देखने को मिलता है। जीवनी लिखने के लिए एक विशेष प्रकार के बौद्धिक कौशल की आवश्यकता होती है क्योंकि जीवनी केवल घटनाओं का सकलन-मात्र नहीं होती अपितु उसमें साहित्य की शक्ति भी होती है[१३]।'

राहुल जी की जीवनी-कृतियाँ

राहुल जी के सर्जनात्मक-साहित्य में कथा एवं यात्रा साहित्य की तरह जीवनी-साहित्य का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। हिन्दी में जीवनी की कलात्मक विधा के प्रमुख उन्नायकों में उनकी गणना की जा सकती है। 'सफल जीवन-चरित-लेखन उतना ही कठिन है जितना कि एक सफल जीवन को अपने जीवन में निवाह ले जाना'[१४] के अनुसार जीवनी लिखना एक अत्यन्त उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य है। राहुल जी ने पूर्ण निष्ठा से इस उत्तरदायित्व का निर्वाह किया है एवं हिन्दी जीवनी-साहित्य को अपनी कृतियों द्वारा सम्पन्न बनाया है। राहुल जी की जीवनी-कृतियाँ हैं—१. सरदार पृथ्वीसिंह, २. घुमक्कड़ स्वामी, ३. वीर चन्द्रसिंह गढ़वाली, ४ सिंहल घुमक्कड़ जय-

वर्धन, ५. कप्तान लाल, ६. मार्क्स, ७. लेनिन, ८. स्तालिन, ९. माग्रो-त्से-तुंग, १०. सिंहल के वीर, ११. नये भारत के नये नेता, १२. महामानव बुद्ध। इस सूची से स्पष्ट है कि राहुल जी का जीवनी-साहित्य परिमाण में प्रचुर है, साथ ही विविध क्षेत्रों से सम्बन्धित महत्वपूर्ण व्यक्तियों के जीवनचरित होने के कारण उसमें विषयगत वैविध्य भी विद्यमान है। राहुल जी की जीवनी-कला भी पर्याप्त समृद्ध है, उसकी साहित्यगत विशिष्टताओं का मूल्यांकन यहाँ अभीष्ट है।

वर्ण्य-विषय

जीवनी के वर्ण्य-विषय में चरितनायक के जीवन की विविध घटनाएँ रहती हैं। लेखक उनका अन्वेषण एवं संचयन कर उन्हें एकसूत्रता में बाँध जीवनी का रूप प्रदान करता है। राहुल सांकृत्यायन के जीवनी-साहित्य के वर्ण्य-विषय में सर्वप्रथम विशेषता के रूप में वर्ण्य-विषय के वैविध्य को लिया जा सकता है। उन्होंने विभिन्न क्षेत्रों से सम्बन्धित विशिष्ट व्यक्तियों के जीवनचरित लिखे हैं। वर्ण्य-विषय के आधार पर राहुल जी के जीवनी-साहित्य को पाँच वर्गों में बाँटा जा सकता है—१. क्रान्तिकारी देशभक्तों की जीवनियाँ। २ यायावरों की जीवनियाँ। ३. राजनीतिक नेताओं की जीवनियाँ। (४) ऐतिहासिक महापुरुषों की जीवनियाँ। (५) धार्मिक पुरुषों की जीवनियाँ। वीर चन्द्रसिंह गढ़वाली तथा सरदार पृथ्वीसिंह राष्ट्रीय-स्वातन्त्र्य-संग्राम के सेनानी हैं, जिन्होंने राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के लिए क्रान्तिकारी जीवन का मार्ग अपना कर स्वतन्त्रता के लिए अपना सर्वस्व न्योछावर किया है। कप्तान अमरजनचन्द लाल में भी देश-भक्ति की उमंगें, जातीय गौरव एवं स्वाभिमान की भावनाएँ हैं। इस प्रकार इन तीन चरितनायकों से सम्बन्धित राहुल जी के जीवनचरित क्रान्तिकारी देशभक्तों की जीवनियाँ कही जा सकती हैं। सिंहल घुमक्कड़ जयवर्धन तथा घुमक्कड़ स्वामी हरिशरणानन्द की जीवनियाँ यायावरों की जीवनियाँ हैं। राजनीतिक नेताओं से सम्बन्धित जीवनियों में राहुल जी ने भारतीय एवं विदेशी राजनीतिज्ञों की जीवनियाँ प्रस्तुत की हैं। 'नये भारत के नये नेता' में भारतीय राजनीतिज्ञों की लघु जीवनियाँ हैं तथा 'कार्ल मार्क्स,' 'लेनिन,' 'स्तालिन' तथा 'माओ-त्से-तुंग' ये चार जीवनियाँ साम्यवादी विचारधारा के प्रचार-प्रसार के लिए लिखी गई विदेशी राजनीतिक पुरुषों की जीवनियाँ हैं। राहुल जी हिन्दी में विदेशी नेताओं के जीवन-चरित लिखने वालों में उल्लेखनीय हैं। 'सिंहल के वीर' चार सिंहली ऐतिहासिक वीरों की जीवनियों का संग्रह है और 'महामानव बुद्ध' बौद्ध धर्म के प्रवर्तक महात्मा बुद्ध का जीवन-वृत्त है। इस प्रकार विभिन्न क्षेत्रों से सम्बन्धित नायकों के जीवन-वृत्त लिखने के कारण राहुल जी के वर्ण्य विषय में विविधता का समावेश हुआ है। जीवनी-साहित्य के वर्ण्य विषय की विविधता राहुल जी के अपने जीवन एवं व्यक्तित्व की विविधमुखता की ओर संकेत करती है क्योंकि उनकी मान्यता के अनुसार जीवनी लेखक के लिए आत्म-प्रकाशन का साधन है। जीवनीकार स्वयं अपने भावों तथा अनुभवों को चरितनायक के जीवन को माध्यम बनाकर प्रस्तुत करता है[4]। राहुल जी यायावर, राजनीतिज्ञ,

इतिहासज्ञ, क्रान्तिकारी देश-भक्त, साम्यवादी एवं बौद्ध धर्म के अनुयायी थे। अतः इन विविध क्षेत्रों से चरितनायकों का चयन करना उनके लिए स्वाभाविक एवं सहज था।

जीवनी का वर्ण्य-विषय प्रामाणिक एवं यथार्थ घटनाओं पर आधारित होना चाहिए। इतिहास और जीवनी में अन्तर होने पर भी जीवनी में इतिहास तत्त्व का निषेध नहीं होता, प्रत्युत जीवनी-लेखक भी इतिहास-लेखक की भाँति तथ्यों एवं तिथियों के अन्वेषण एवं उनके सक्रिय क्रमिक निदर्शन के प्रति सजग रहता है। जीवनीकार कल्पनाशील बन सकता है, पर उसकी सामग्री कल्पित नहीं होनी चाहिए, उसे बीती हुई घटनाओं का सम्मान करना चाहिए[१६]। डॉ० जॉनसन प्रत्येक कथा का मूल्य उसकी सत्यता पर निर्भर मानते हैं[१७] और आन्द्रे मॉरवा तथ्यों को सर्वोपरि महत्त्व देते हैं[१८]। जीवनी-विषयक प्रामाणिक तथ्यों के संचय के लिए आन्द्रे मॉरवा पूर्ववर्ती तद्विषयक रचनाओं, मौलिक पत्रों एवं डायरियों के रूप में उल्लिखित ज्ञान-प्रमाणों का अध्ययन आवश्यक मानते हैं[१९]। टी० शिप्ले जीवनचरित लिखने के लिए चरितनायक द्वारा लिखित दस्तावेजों को महत्त्वपूर्ण उपादान स्वीकारते हैं[२०]। जीवनी के लिए प्रामाणिक-सामग्री संचय के लिए कैसेल ने पूर्ववर्ती सम्बन्धित-साहित्य आदि आवश्यक स्रोतों का निर्देश किया है[२१]। इसलिए जीवनी-लेखन बोस्वाल के अनुसार साहित्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा श्रमसाध्य है[२२], क्योंकि जीवनी-लेखक अपने कार्य का आरम्भ लिखित एवं मुद्रित पत्रों के समूह एवं ज्ञात-प्रमाणों के ढूँढने तथा अनुसन्धान की छानबीन से करता है[२३]।

राहुल जी ने अपने जीवनी-नायकों के जीवन-वृत्त की प्रामाणिकता का पूरा ध्यान रखा है। जीवन-वृत्त के संचय के लिए उन्होंने चरितनायक से साक्षात् सम्पर्क के अतिरिक्त अन्य सभी उपादानों का भी समुचित उपयोग किया है। वीर चन्द्रसिंह गढ़वाली के वृत्त-संचय के सम्बन्ध में राहुल जी का कथन है—'इस जीवनी के लिखने में प्रायः सारी सामग्री हमें गढ़वाली जी से मिली। १९३६ में बरेली जेल में पहुँचने तक अपनी जीवनी को बड़े भाई ने स्वयं लिखकर भदन्त आनन्द कौसल्यायन को दिया था, जिन्होंने उसे बहुत कुछ सुधार दिया था। पीछे की भी कितने ही वर्षों की जीवनी उन्होंने लिखी थी, लेकिन वह लेखक को मिल नहीं सकी, और बड़े भाई को बारह दिन लेखक के पास रह कर सारी बातें बतानी पड़ी[२४]।' इसके अतिरिक्त इस जीवन-वृत्त की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण घटना पेशावर-काण्ड के सम्बन्ध में राहुल जी ने गढ़वाल के साप्ताहिक पत्र 'देवभूमि' में १५ नवम्बर, १९५३ को प्रकाशित पेशावर-काण्ड के मुकद्दमे से सम्बन्धित बैरिस्टर मुकुन्दी लाल के लेख को भी भूमिका में उद्धृत किया है[२५]। 'सिंहल घुमक्कड़ जयवर्धन' की सभी घटनाएँ लेखक ने चरितनायक के मुख से सुनी हैं।[२६] 'घुमक्कड़ स्वामी' की समस्त सामग्री भी राहुल जी ने स्वामी हरिशरणानंद से संचित की है। 'नये भारत के नये नेता' के प्राक्कथन में राहुल जी लिखते हैं—'सुनी-सुनाई बातों के भरोसे इन जीवनियों में से एक भी नहीं लिखी गई। यहाँ लिखी

जीवनियों की सामग्री मैंने नायकों के मुख से संचित की थी[२७]।' 'सरदार पृथ्वीसिंह' की प्रामाणिकता के विषय में किंचित् भी संदेह नहीं हो सकता क्योंकि चरितनायक का इस विषय में आत्मकथन है, '१९४५ में मेरी लिखी दास्तान महापंडित राहुल सांकृत्यायन के हाथ में चढ़ गई। उन्हें जीवन-वृत्तान्त पसन्द आया और उन्होंने इसे पुस्तक का रूप देने का विचार कर लिया[२८]।' कार्ल मार्क्स, लेनिन, स्तालिन तथा माओ-चे-तुंग की जीवनियाँ लिखने के लिए राहुल जी ने इन नायकों से सम्बन्धित पूर्व लिखित विदेशी एवं भारतीय लेखकों की पुस्तकों, लेखों एवं इन नायकों के समकालीन व्यक्तियों के संस्मरणों से सहायता ली है। सिंहल के वीरों के वृत्तान्त-लेखन के लिए राहुल जी ने बौद्धधर्म-सम्बन्धी ग्रन्थों, ऐतिहासिक पुस्तकों, शिलालेखों एवं परम्परागत कथाओं का आश्रय लिया है[२९]। निष्कर्ष यह कि कैसेल आदि द्वारा निर्दिष्ट जीवन-वृत्त-संग्रह के सभी स्रोतों से सहायता लेकर राहुल जी ने अपने वर्ण्य-विषय की यथार्थता एवं प्रामाणिकता का परिचय दिया है।

विषय-संचयन के अनन्तर जीवनीकार अपने जीवनीनायक से सम्बन्धित तथ्यों की कालक्रमानुसार शृंखला तैयार करता है और उसके सम्पूर्ण जीवन का चित्र प्रस्तुत करता है। किन घटनाओं का विस्तार तथा किनको संक्षिप्तता देनी है, इस ओर ध्यान रखता हुआ वह सम्पूर्ण जीवन-वृत्त को सुसम्बद्ध रूप में प्रस्तुत करता है। आन्द्रे मॉरवा आवश्यक घटनाओं के चुनाव[३०] तथा उनके कालक्रमानुसारी सम्बद्ध वर्णन[३१] को कलात्मक जीवनी के लिए अनिवार्य मानते हैं। राहुल जी ने निबन्धाकार लघु जीवन-वृत्तों को छोड़कर शेष सभी जीवनियों में चरितनायकों के सम्पूर्ण जीवन-वृत्त को कालक्रमानुसार एवं सुसम्बद्ध रूप में प्रस्तुत किया है। 'घुमक्कड़ स्वामी' में हरिशरणानन्द जी के जन्म सन् १८८९ ई० से लेकर उनके जीवन की ५२ वर्षों की घटनाओं का सुसंगठित, कलात्मक एवं प्रभावात्मक वर्णन है। 'सरदार पृथ्वीसिंह', 'वीर चन्द्रसिंह गढ़वाली' तथा 'सिंहल घुमक्कड़ जयवर्धन' में प्रायः चरितनायकों के सम्पूर्ण जीवन-वृत्त अंकित हैं। लेखक ने बड़े मनोयोग से चरितनायकों के जीवन-वृत्त का विकास, घटनाचक्र, घात-प्रतिघात एवं मानसिक द्वन्द्वों का सजीव चित्रण किया है। राहुल जी ने उन सभी घटनाओं का कलात्मक रूप से संगुम्फन किया है जो उनके चरितनायकों के जीवन की महत्ता एवं विशिष्टता की द्योतक हैं। उदाहरणार्थ सरदार पृथ्वीसिंह के हृदय में किन परिस्थितियों एवं घटनाओं से देश-प्रेम की भावना का स्फुरण होता है, इसका सुन्दर रूप में चित्रण राहुल जी ने 'सरदार पृथ्वीसिंह' में किया है। शिशु पृथ्वीसिंह के हृदय में वर्मा में चौथी श्रेणी में पढ़ते हुए स्कॉट की एक कविता ने देश-प्रेम की भावना को जागृत किया और भारत लौटने पर अल्पवय में ही पृथ्वीसिंह ने कहा था, 'वह आदमी मृतात्मा-सा साँस ले रहा है जिसने कभी अपने नहीं नहीं कहा यह मेरी अपनी मातृभूमि है[३२]।' आठवीं श्रेणी के इस विद्यार्थी में राष्ट्रीयता की भावना और प्रबल हो उठी और 'जापान' पर एक निबन्ध में इस बालक ने लिखा—'अगर जापान जैसा छोटा-सा देश रूस को हरा सकता है तो हिन्दुस्तान ऐसे

बड़े मुल्क का इंग्लैंड जैसे छोटे-से मुल्क को हराना बिल्कुल छोटी बात है[33]।' तदन्तर अमेरिका में पृथ्वीसिंह को कठोर परिश्रमपूर्वक जीवन व्यतीत करना पड़ा, इससे उनमें कर्मठता एवं कर्मण्यता के गुणों का विकास हुआ। विदेशों में स्वतन्त्र जीवन की झलक देखकर भारत की स्वतन्त्रता के लिए उनमें अदम्य इच्छा जागृत हुई जो एक टीस बनकर उन्हें सदा झकझोरती रही। राहुल जी ने पृथ्वीसिंह के जीवन की उन समस्त परिस्थितियों का चित्रण किया है जिनमें पृथ्वीसिंह के जीवन का इस रूप में विकास हुआ है कि वह देश की स्वतन्त्रता के लिए भयंकर कष्टों एवं लोमहर्षक स्थितियों का सामना अदम्य साहस से कर पाये। अमेरिका में गदरपार्टी से सम्बन्ध होने के कारण दस वर्ष का कठोर कारावास, अण्डमान में काला पानी की सजा तथा जेल-अधिकारियों द्वारा किये गए बर्बर पशुवत् व्यवहार सभी को निर्भीकतापूर्वक सहन करते हुए इस कर्मठ क्रान्तिकारी ने कण्टकाकीर्ण मार्ग पर बढ़ते रहना ही अपना कर्त्तव्य माना। अन्त में पुलिस वालों को चकमा देकर वे मुक्त गगन के नीचे स्वतन्त्रतापूर्वक विचरण करने लगे। गुप्तवेश में अज्ञातवास करते हुए रूस की यात्रा कर आये और मार्क्सवाद से प्रभावित हुए। रूस के स्वतन्त्र जीवन से भारत की स्वतन्त्रता का फिर ख्याल आया और स्वातंत्र्य-संघर्ष में कूद पड़े। परिणामतः काबुल की जेल में उन्हें नारकीय यातनाएँ सहन करनी पड़ीं। इस प्रकार 'सरदार पृथ्वीसिंह' में पृथ्वीसिंह के निरन्तर संघर्षशील जीवन तथा क्रान्तिकारी देश-भक्त की उमंगों एवं निर्भीकता की कहानी है। इस जीवनी की सभी घटनाएँ क्रमिक, शृंखलाबद्ध एवं सुसम्बद्ध रूप में वर्तमान हैं और कलात्मक जीवनी में जिन गुणों की अपेक्षा होती है, वे इसमें विद्यमान हैं।

'वीर चन्द्रसिंह गढ़वाली' राहुल जी की सांगोपांग जीवनी है। इसमें गढ़वाली जी के समग्र जीवन एवं क्रान्तिकारी व्यक्तित्व की झाँकी है। बाल्यकाल, तरुणाई की उषा, फौज में, फ्रांस को, फाईरिंग लाइन में, देश में, मोसोपोटेनामिया युद्ध-क्षेत्र, फिर देश में, असहयोग का जमाना आदि २६ प्रकरणों में वीर चन्द्रसिंह गढ़वाली के व्यक्तित्व-विकास की कथा अंकित है। उसके जीवन की अनेक छोटी-बड़ी घटनाएँ अत्यन्त मर्मस्पर्शी बन पड़ी हैं। इनका जीवन भी अदम्य साहस, निर्भीकता, त्याग एवं बलिदानों की एक लम्बी शृंखला है। राष्ट्रीय स्वातन्त्र्य-समर में इनका योगदान अभूतपूर्व एवं विशिष्ट है। एक सैनिक से असहयोग कार्यकर्त्ता और फिर पृथ्वीसिंह की तरह साम्यवाद में दीक्षा और एक साम्यवादी कार्यकर्त्ता के रूप में गढ़वाल में प्रसिद्धि आदि का वर्णन इसमें अत्यन्त विशद रूप से हुआ है। 'वीर चन्द्रसिंह गढ़वाली' राहुल जी की सर्वोत्कृष्ट जीवनी मानी जा सकती है। उन्होंने बड़े मनोयोग से गढ़वाली जी के जीवन की छोटी-बड़ी घटनाओं को सुसम्बद्ध एवं शृंखलाबद्ध रूप में चित्रित किया है। एक घटना दूसरी घटना को जन्म देती है, कार्य-कारण की शृंखला आगे बढ़ती है, घटनाक्रम में कहीं कोई व्यतिक्रम नहीं। इसी प्रकार 'सिंहल घुमक्कड़ जयवर्धन,' 'घुमक्कड़ स्वामी,' 'कार्ल मार्क्स',

'माओ-त्से-तुंग,' 'लेनिन' एवं 'कप्तान लाल' में घटनाओं का सांगोपांग एवं कालक्रमानुसार सुसम्बद्ध वर्णन है। 'स्तालिन' में स्तालिन के वैयक्तिक जीवन की घटनाओं का अभाव है, पर उनके राजनीतिक जीवन के कृत्यों का क्रमबद्ध वर्णन मार्मिक बन पड़ा है। 'महामानव बुद्ध' भिन्न-भिन्न अवसरों पर लिखे गए लेखों का संग्रह है। इसमें बुद्ध के जीवन के सभी पहलुओं पर प्रकाश डाला गया है, परन्तु जीवनी के अनुकूल सुसम्बद्धता का अवश्य ही इसमें अभाव है। 'नये भारत के नये नेता' तथा 'सिंहल के वीर' लघु निबन्धाकार जीवनियाँ हैं, इनमें वृत्त-वर्णन में क्रमबद्धता तो है, पर सांगोपांग वृत्त नहीं। निष्कर्ष कहा जा सकता है कि राहुल जी के अधिकांश जीवनचरितों में जीवनी-नायकों के जीवन का कालक्रमानुसारी, सुसम्बद्ध एवं यथार्थ वर्णन है। वर्ण्य-जीवन की प्रमुख घटनाओं पर बल देना, उनके कारणों एवं परिणामों की खोज करना[३४] और अप्रधान घटनाओं को छाँट कर उसके जीवन का क्रमिक विकास प्रस्तुत करना—जीवनी के वर्ण्य-विषय से सम्बद्ध ये सभी आदर्श राहुल जी की जीवनी-कृतियों में प्राप्य हैं।

चरित्र-चित्रण

जीवनी में केवल घटनाओं का उल्लेख ही नहीं वरन् चरितनायक का चरित्र-चित्रण भी मिलता है। आधुनिक जीवनियों में तो विशेष रूप से चरित्र-विश्लेषण को महत्त्व प्राप्त है। उपन्यासादि साहित्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा जीवनी में नायक के यथार्थ चरित्रांकन के कारण उसका पाठक पर प्रभाव भी अधिक होता है। इसीलिए जीवनी-लेखक जीवन-चरित में वृत्तों एवं घटनाओं के माध्यम से नायक के चरित्र की विशेषताओं को अंकित करता है। परिस्थितियों के बीच उसके चरित्र-विकास को दर्शाता है और साथ ही उसकी मनोदशा का विश्लेषण करता है। यह सब तभी सम्भव है जब लेखक जीवनी-नायक से घनिष्ठता का सम्बन्ध रखता हो।

राहुल जी ने जीवनीनायकों के चरित्र का मार्मिक एवं प्रभावशाली [illegible] प्रस्तुत किया है। उन्होंने अपने चरितनायकों की विशिष्टता उनके अन्तर्बाह्य रूप के चित्रण द्वारा प्रस्तुत की है। बाह्य घटनाओं का नायक के मन पर क्या प्रभाव पड़ता है, उसके मन में उस घटना के प्रति क्या प्रतिक्रिया होती है, इसका एक उदाहरण [illegible] युद्ध-क्षेत्र के वर्णन में द्रष्टव्य है। [illegible] भूमि पर नजर डाली। [illegible] कोई उनकी [illegible] था। [illegible] प्रदान की। [illegible] नहीं की। [illegible] था। [illegible]

सोच रहे थे—आखिर ये सब रुपया कमाने के लालच से ही हमारी तरह जान देने आये। इन्होंने अपनी माता, अपनी स्त्री, अपने बच्चों की मुहब्बत पर लात मार कर आज इस दिन को देखा। इन्हें इस लड़ाई से क्या लाभ था? चन्द्रसिंह को ही इस लड़ाई से क्या फायदा था? अंग्रेज अपने मुल्क के लिए लड़ रहे थे, पर हिन्दुस्तानी हिन्दुस्तान के लिए थोड़े ही लड़ रहे थे। चन्द्रसिंह इस नजारे को देख कर स्तम्भित हो गये थे। शोक का वेग इतना ऊँचा हो गया था कि उनकी आँखों से आँसू निकल रहे थे। दम भर में ये सारे ख्याल उनके दिमाग में आए लेकिन वह वहाँ शोक-प्रकाशन के लिए नहीं भेजे गए थे।' (वीर चन्द्रसिंह गढ़वाली, पृ० ६५-६६)

उक्त उद्धरण से चन्द्रसिंह की मनोव्यथा का, उसकी मानवीय संवेदना एवं राजनीतिक चेतना का और साथ ही कर्त्तव्य-परायणता की भावना का एक-साथ दिग्दर्शन हो जाता है। इसी प्रकार नायक के चरित्र की महत्ता का एक अन्य निदर्शन प्रस्तुत है। जेल की कोठरी में बन्द, मृत्यु-दण्ड की पूर्ण आशंका वाले, काली-अन्धेरी रात में जेल का द्वार खुले रहने पर किसी भी बन्दी के मन में क्या-क्या भावनाएँ जाग सकती हैं, इसका उल्लेख राहुल जी ने इस प्रकार किया है—'एक दिन रात को ९ बजे चन्द्रसिंह को पेशाब लगी। वह कोठरी के भीतर पेशाब नहीं किया करते थे। उन्होंने गोरे सार्जेन्ट को बुलाया। बाहर दरवाजे के सामने पेशाब के लिए गमला रखा था। गोरे लोग हाथ पकड़ कर पेशाब कराके फिर कोठरी में बन्द कर देते थे। पहरे पर आए गोरे अफसर शराब पीकर मस्त रहते। एक दिन एक गोरे सिपाही ने चन्द्रसिंह को पेशाब कराके कोठरी के अन्दर बन्द कर दिया। वह नशे में चूर था, ताला लगाना भूल गया और जाकर अपने दूसरे साथियों से गप-शप करने लगा। भागने के लिए इससे अच्छा मौका और कौन मिल सकता था? चन्द्रसिंह के सिर पर मौत मण्डरा रही थी। एक बार उन्हें भागने का ख्याल आया फिर सोचा मैं यहाँ की पश्तो जबान नहीं जानता, जरूर पकड़ लिया जाऊँगा। बदनामी होगी—'प्राणों के मोह से चन्द्रसिंह भागना चाहता था।' न भी पकड़ा जाऊँ तो भी यह मौका कब हाथ आयेगा। मैंने देश के लिए बलिदान हुए शहीदों के बारे में बहुत सुना-पढ़ा है। यही तो समय है उनके पद के अनुसरण करने का। उन्होंने आये ख्याल को तुरन्त हटा दिया और दिमाग में उसे फिर न आने देने के लिए सार्जेन्ट को आवाज दी—'देखो, आप लोग ताला लगाना भूल गए। कोई अफसर आ गया तो बुरा होगा। दरवाजे में ताला लगा दो।' (वीर चन्द्रसिंह गढ़वाली, पृ० १६०) इस उद्धरण से चन्द्रसिंह के मन की कितनी स्पष्ट झाँकी मिल जाती है। आन्तरिक द्वन्द्वों का कितना मर्मस्पर्शी चित्रण यहाँ हुआ है।

राहुल जी द्वारा प्रणीत जीवनियों में नायकों का चरित्र गत्यात्मक है और उनका विकास अत्यन्त स्वाभाविक एवं मनोवैज्ञानिक आधार पर हुआ है। घटनाएँ एवं परिस्थितियाँ ऐसी आती हैं कि नायक के चरित्र को अग्रसर कर जाती हैं। पृथ्वीसिंह, चन्द्रसिंह गढ़वाली और हरिशरणानन्द ऐसे ही चरित-नायक हैं जिनका

जीवन निरन्तर विकसित होता है। चन्द्रसिंह गढ़वाली के सम्बन्ध में राहुल जी का कथन द्रष्टव्य है—ज्ञान के साथ उनके विचारों में भी परिवर्तन-परिवर्तन होने लगा। पहले वह पुराने ढंग के हिन्दू थे। नवयुवकों में हिन्दू-धर्म-प्रचार करने के लिए उन्होंने जो काम किया था उसके बारे में हम बतला आये हैं। महाशय देवचन्द्र शर्मा की संगत से उन्हें आर्य-समाज की हवा लगी। वह पर्दे-पुजारियों को लुटेरा समझने लगे। पत्थरों की पूजा, उनके सामने बकरे, भैंस की बलि, श्रद्धा का अन्न खाकर ब्राह्मणों की स्वर्ग में जाने की ठेकेदारी, फलित ज्योतिष, जन्मपत्री, ऊँच-नीच, जाति का भेद-भाव, बालविवाह, कन्या बेचकर रुपया लेना आदि-आदि रिवाजों को वह बहुत बुरा समझने लगे ·······प्रशंसा करने पर 'सत्यार्थ प्रकाश' को भी उन्होंने पढ़ा। फिर वह पूरे आर्य-समाजी हो गए। (वीर चन्द्रसिंह गढ़वाली, पृ० ६६) 'घुमक्कड़-स्वामी' के चरितनायक स्वामी हरिशरणानन्द का व्यक्तित्व तो अपने जीवनीकार की तरह ही गत्यात्मक है। हरिनन्द, हरिराम, हरिशरण और स्वामी हरिशरणानन्द – घुमक्कड़ स्वामी के नामों का यह परिवर्तन उनके जीवन की परिवर्तित परिस्थितियों का तो द्योतक है ही, साथ ही इन नामों में उनके विचारगत परिवर्तनों की रोचक कथा अन्तर्निहित है। परन्तु घुमक्कड़-स्वामी के व्यक्तित्व का विकास यहीं पर आकर ही नहीं रुका। ५२ वर्ष की आयु में उन्होंने राहुल जी के समान साम्यवादी विचारधारा में जीवन के चरम सत्य की उपलब्धि की। इसी प्रकार पृथ्वीसिंह और जयवर्धन का चरित्र भी पर्याप्त गत्यात्मक है। मार्क्स, लेनिन, स्तालिन तथा माओ-चे-तुंग की चरित्रगत गतिशीलता भी राहुल जी ने निदर्शित की है।

राहुल जी ने अपने जीवनी-नायकों के बहिरंग एवं अन्तरंग का कुशलता अंकन किया है। बहिरंग-वर्णन में उनकी आकृति, वेशभूषा एवं कार्यों का उल्लेख तथा उनके अन्तरंग-चित्रण में उनकी मनोदशाओं, स्वभाव एवं गुण-दोषों का निरू है। चरित्र-चित्रण में राहुल जी का दृष्टिकोण सर्वत्र तटस्थ वैज्ञानिक के समान है वे पात्रों की सबलताओं एवं दुर्बलताओं दोनों का उद्घाटन करते चलते हैं। राहुल ने अपनी जीवनियों में चरितनायकों के चरित्रांकन के लिए इन पाँच विधियों आश्रय लिया है—(क) चरितनायक के क्रिया-कलाप-वर्णन द्वारा। (ख) चरितनाय के वक्तव्यों द्वारा। (ग) चरितनायक के संवादों द्वारा। (घ) अन्य व्यक्तियों संस्मरणों द्वारा (ङ) लेखकीय वक्तव्य द्वारा।]

(क) चरितनायक के क्रिया-कलाप-वर्णन द्वारा—इस चित्रण-विधि द्वा राहुल जी चरितनायक के जीवन की घटनाओं एवं कार्यों का उल्लेख कर उनके चरि के किसी पक्ष का उद्घाटन करते हैं। 'वीर चन्द्रसिंह गढ़वाली' में ऐसी अने घटनाओं का सजीव वर्णन है, जिनसे नायक की देशभक्ति, शूरवीरता, अदम्य साहस ...ान आदि गुणों को अभिव्यक्ति मिली है। पिता के विरुद्ध होते हुए भी चन्द्रसि ...ी कर लेना[34] उनके विद्रोही व्यक्तित्व का परिचायक है। उनकी यह विद्रोह
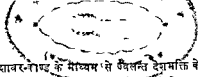
भावना सेना में जागरूक होकर पेशावर-काण्ड के माध्यम से ज्वलन्त देशभक्ति के रूप में परिणत होती है। उन्होंने भारतीय मुसलमानों और पठानों पर गोली चलाने से इन्कार कर दिया और सेना में भी विद्रोह की ज्वाला प्रज्वलित कर दी[३६]। इसी प्रकार मौत के मुँह में पड़ कर साहस से युद्ध करना[३७] तथा जेलों में क्रूर अत्याचारों का अदम्य साहस से सामना करना आदि कितनी ही घटनाएँ चरित्रनायक के व्यक्तित्व की गरिमा को व्यंजित करती हैं। 'सरदार पृथ्वीसिंह' में जीवनी-नायक के अस्खलित आत्मविश्वास और अदम्य साहस का परिचय तीन कान्सटेबलों से घिरे रहने पर भी हथकड़ी-बेड़ी पहने हुए दौड़ती हुई गाड़ी से कूदने की घटना द्वारा दिया गया है। इसी प्रकार माओ-चे-तुंग के देश-प्रेम, त्याग एवं बलिदान को राहुल जी ने घटनाओं के माध्यम से व्यंजित किया है[३८]। वस्तुतः किसी व्यक्ति के क्रिया-कलाप ही उसके व्यक्तित्व एवं चरित्र को साकार करने वाले होते हैं और राहुल जी ने जीवनीनायकों के कार्यों एवं घटनाओं द्वारा उनका व्यक्तित्व रेखांकित किया है।

(ख) चरितनायक के वक्तव्यों द्वारा – चरित-नायकों के वक्तव्य भी उनके चरित्र को प्रकाशित करने में सहायक होते हैं। महान् व्यक्ति की वाणी और क्रिया में साम्य होता है। वह जो कुछ कहता है, वह उसके व्यक्तित्व का ही अंग होता है। लेनिन का एक भाषणांश द्रष्टव्य है—'हमारा कर्त्तव्य है कि अपनी पार्टी की दृढ़ता, एकमनस्कता और शुद्धता को सुरक्षित रखें। हमें पार्टी-सदस्य की उपाधि को और भी ऊँचे स्तर पर उठाने का प्रयत्न करना चाहिए।' (लेनिन, पृ० ७५) इस वक्तव्य से लेनिन की कार्य-निष्ठा का ज्ञान होता है। चन्द्रसिंह गढ़वाली की राजनीतिक चेतना, देशभक्ति एवं उत्सर्ग-भावना का मनमोहक रूप उनके इस वक्तव्य से प्रस्फुटित होता है—'भाइयो! कल आप लोगों ने पेशावर में जो कुछ किया, बहुत अच्छा किया। हमने गढ़वाल की लाज रख ली। लेकिन आज फिर आपको पेशावर शहर में ले जाया जा रहा है। सुनने में आ रहा है, कि खान अब्दुल गफ्फार खाँ और अम्ब रियासत की ओर से शहर की मदद के लिए आदमी आ रहे हैं। आज शहर में उनके ऊपर गोली चलाने के लिए आप लोगों को कहा जायगा। मुझे आशा है गढ़वाल के माथे पर कलंक की टीका नहीं लगने देंगे। आप लोग जानते हैं कि ग्यारह साल पहले जलियाँवाला बाग में नं० ६ गोरखा बटालियन ने निहत्थी जनता के ऊपर गोली चलाई थी। आज तक उसके नाम के खिलाफ काली झण्डी दिखाई जाती है········ यहाँ पेशावर में कांग्रेस के नाम पर अपनी जान दे दें तो हम दुनियाँ में हमेशा ज़िन्दा रहेंगे और हमारे गढ़वाल का मुँह सदा के लिए उज्ज्वल रहेगा।' (वीर चन्द्रसिंह गढ़वाली, पृ० १३८)

भाषण के साथ ही चरितनायक के लेखों से भी उनके व्यक्तित्व का दिग्दर्शन होता है। लेनिन के एक लेख का अंश द्रष्टव्य है—'हम अपने बाप-दादा की अपेक्षा अधिक अच्छी तरह से लड़ रहे हैं। हमारे लड़के और भी अच्छी तरह लड़ेंगे और विजय प्राप्त करेंगे। मजदूर वर्ग नष्ट नहीं होगा। वह बढ़ रहा है, अधिक ताकत हासिल कर रहा है, परिपक्व हो रहा है, एकताबद्ध, समझदार और संघर्षों में फौलादी

बन रहा है। अर्ध-दासता, पूँजीवाद और छोटे उत्पादन के प्रति हम निराशावादी हैं लेकिन मजदूर-आन्दोलन और उसके उद्देश्यों के प्रति हम अत्यन्त आशावादी हैं। इस समय जिस नई इमारत की नींव रख रहे हैं, हमारे लड़के उसे पूरा करेंगे।' (लेनिन, पृ० १२७) प्रस्तुत लेखांश लेनिन की साम्यवाद के उज्ज्वल भविष्य में अडिग आस्था को स्पष्ट प्रतिविम्बित करता है। इसी प्रकार स्तालिन के क्रान्तिकारी व्यक्तित्व को राहुल ने उनके अनेक लेखांशों को उद्धृत करके स्पष्ट किया है।

(ग) **चरितनायक के संवादों द्वारा**—वक्तव्यों की अपेक्षा वार्तालाप के माध्यम से अंकित चरित्रांकन की प्रणाली अधिक कलात्मक होती है। जीवनी में संवाद तत्त्व का पृथक् महत्त्व नहीं, फिर भी यदा-कदा चरितनायक की बातचीत का उसमें समावेश रहता है। इस बातचीत से नायक की उत्कृष्टता-निकृष्टता सहज ही अनुमेय हो जाती है। राहुल जी ने 'सरदार पृथ्वीसिंह', 'सिंहल घुमक्कड़ जयवर्धन' तथा 'वीर चन्द्रसिंह गढ़वाली' में यत्र-तत्र संवादों द्वारा भी शील-निरूपण किया है। पृथ्वीसिंह की निर्भीकता उसके इस संवाद में व्यंजित है। "बारी बोला—'तुम पक्का आदमी है। मुँह पर हँसी रहती है, मगर दिल तुम्हारा साँप-सा है।' इस पर पृथ्वीसिंह का उत्तर है—'हो सकता है जनाब, मेरे हृदय में साँप का हृदय देखते हो, क्योंकि मेरे पास ढकने के लिए चर्बी नहीं है। लेकिन तुम्हारे हृदय में क्या है यह देखना मेरे लिए मुश्किल है, क्योंकि उस पर चर्बी की एक बहुत मोटी तह जमी हुई है और वह भी जिन्दा चर्बी नहीं, मुर्दे की चर्बी।" (सरदार पृथ्वीसिंह, पृष्ठ ७०) इसी प्रकार उनकी देश-प्रेम की भावना उनके इस संवाद से प्रकट है—"अफसर ने पूछा—"तुम किस लिए आये हो?" पृथ्वीसिंह ने ज़रा भी रुके बिना साफ शब्दों में कह डाला—"मैं आया तुमसे यह सीखने कि कैसे हम अपने देश को आजाद कर सकते हैं।" (सरदार पृथ्वीसिंह, पृ १५) इस प्रकार के संवादों से नायकों के शील का सुन्दर निरूपण हुआ है।

(घ) **अन्य व्यक्तियों के संस्मरणों द्वारा**—जीवनी में संस्मरणों का उपयोग केवल जीवनीगत तथ्यों की प्रामाणिकता के लिए ही नहीं, वरन् नायक के चरित्र-निरूपण की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है। 'कार्लमार्क्स', 'लेनिन', 'स्तालिन' तथा 'माओ-चे-तुंग' में राहुल जी ने संस्मरणों के माध्यम से चरितनायकों के व्यक्तित्व एवं चरित्र को अंकित किया है। विदेश में रहकर भी लेनिन रूस की आन्तरिक स्थिति के विषय में कितना जानते थे, इस सम्बन्ध में स्तालिन का कथन है—"रूस में जो लोग रह गये थे उनमें से बहुत कम रूसी हलचल और देश के मजदूर-आन्दोलन से उतने घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध थे जितने लेनिन, हालाँकि परदेश में रहते उन्हें बहुत लम्बा समय बीत चुका था। १६०७-१६०८ और १६१२ में जब-तब विदेश में उनसे मिला, मैंने देखा उनके पास रूस के कर्मठ कार्यकर्ताओं के ढेर-के-ढेर पत्र जमा हैं। लेनिन······रूस में रहने वालों से भी अधिक जानकारी रखते हैं।" (लेनिन,

पृ० ६७) इसी प्रकार स्तालिन के स्वभाव के विषय में ओरेखेलदिवली का संस्मरण है— 'वह अपने विरोधियों को कभी बुरा-भला नहीं कहता था। मेन्शेविक हमें उस समय इतना सता रहे थे कि जब कभी हम अपने भाषण में उन्हें बैठे देखते, तो अपने को उनके ऊपर तीक्ष्ण वाक्-बाण चलाने से नहीं रोक सकते थे। सोसो (स्तालिन) इस तरह के आक्रमण को कभी पसन्द नहीं करता था, कटु वाणी उसके लिए वर्जित हथियार थी।" (स्तालिन, पृष्ठ ११)

(ङ) **लेखकीय वक्तव्य द्वारा**—राहुल जी ने चरितनायकों के सम्बन्ध में अधिकतर अपनी ओर से ही वर्णन किया है। प्रथम पुरुष में अपनी प्रिय ऐतिहासिक शैली में वे अपने पात्रों का चरित्रांकन करते हैं। इस प्रकार वह नायक के अन्तरंग और बहिरंग के मार्मिक चित्र प्रस्तुत करते हैं। विजयबाहु के सम्बन्ध में राहुल जी लिखते हैं—"उसने सारी लंका को स्वतन्त्र और अखण्ड ही नहीं किया था बल्कि कहते हैं— 'यदि वह न होता तो सिंहल जाति आज सिंहल में न होती।" (सिंहल के वीर, पृ० २९) माओ-चे-तुंग के बाह्य व्यक्तित्व के विषय में राहुल जी का कथन है, 'चे-तुंग जैसा असाधारण लड़का आसानी से दूसरों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट कर सकता था। प्रतिभा उसके चेहरे और आँखों से झलकती थी। शरीर से पतला और कपड़े उसके मामूली नीला कोट और पायजामा थे। तो भी यह सादगी तरुण को छिपा नहीं सकती।' (माओ-चे-तुंग, पृ० ३५) इसी प्रकार उन्होंने माओ-चे-तुंग की अध्ययनशीलता, प्रखर मेधा, लक्ष्य पर दृढ़ता, तर्क की तीक्ष्ण शक्ति, सरलता, स्नेह आदि गुणों का उल्लेख किया है। (माओ-चे-तुंग, पृ० ५५-५६) जयवर्धन की यायावरी-वृत्ति के सम्बन्ध में वे कहते हैं—'उन्होंने कितनी बार जीवन में बैठने की कोशिश की किन्तु उनके पैर में चक्र बंधा था। वह एक जगह रह कैसे सकते थे?' (सिंहल घुमक्कड़ जयवर्धन, पृ० २८) इसके अतिरिक्त जीवनियों की भूमिकाओं में भी राहुल जी ने अपने नायकों के महत्त्वपूर्ण गुणों का संक्षिप्त परिचय दिया है। जयवर्धन के स्वभाव का अंकन वे इन शब्दों में करते हैं—'उनका हृदय बहुत साफ है, लेकिन कड़वा सत्य बोले बिना बात नहीं करते। किसी जगह ज्यादा टिकने पर उनके शत्रुओं की संख्या बढ़ जाती है। विशेषकर ऐसे शत्रुओं की, जो उनके द्वारा अपना स्वार्थ सिद्ध करना चाहते।' (सिंहल घुमक्कड़ जयवर्धन, भूमिका)

इस प्रकार राहुल जी ने अपने जीवनी-नायकों के चरित्रांकन के लिए विविध पद्धतियों का आश्रय लेते हुए चित्रण-कुशलता का परिचय दिया है। अपने जीवनी-नायकों के बहिरंग एवं अंतरंग दोनों का सजीव अंकन उनके जीवनी-साहित्य में हुआ है। इस दृष्टि से 'सरदार पृथ्वीसिंह', 'वीर चन्द्रसिंह गढ़वाली' तथा 'घुमक्कड़ स्वामी' विशेष सफल जीवनियाँ हैं।

जीवन में जीवनी-नायक के अतिरिक्त उसके घनिष्ठ सम्पर्क में आने वाले अनेक पात्र होते हैं। राहुल जी ने ऐसे व्यक्तित्वपूर्ण पात्रों की यत्र-तत्र झाँकी दी है। घुमक्कड़ स्वामी के पिता मुन्नीलाल के विषय में राहुल जी का एक रेखाचित्र है—

'वह अधिक पढ़े-लिखे नहीं थे। अपने व्यवसाय के लिए उसकी अधिक आवश्यकता भी नहीं थी। हिन्दी, कुछ उर्दू, कुछ टूटी-फूटी संस्कृत जानते थे, लेकिन बड़े धर्म-भीरु जीव थे। साधुओं की सेवा करते, ठाकुर पूजा और रामायण का पाठ पुन-धर्म समझ कर नित्य करते थे। साधुओं के सत्संग में उन्हें बड़ा आनन्द आता था।' (घुमक्कड़ स्वामी, पृ० ३) माओ-चे-तुंग की जीवनी में माओ के माता-पिता के अतिरिक्त सेनापति चू-तेह का चरित्रांकन हुआ है[११]। 'स्तालिन' में लेनिन और 'लेनिन' में स्तालिन का अंकन साथ-साथ है। 'कार्ल मार्क्स' में लुडविग, जेनी तथा एंगेल्स का चरित्र अत्यन्त सजीव एवं मार्मिक है[१२]। 'कप्तान लाल' में कप्तान लाल के समानान्तर उनके बड़े भाई विक्रम लाल का भी चरित्रांकन हुआ है। 'वीर चन्द्रसिंह गढ़वाली' में गढ़वाली जी के पारिवारिक सदस्यों के अतिरिक्त महात्मा गांधी, जवाहर लाल नेहरू, विजय लक्ष्मी पण्डित आदि अन्य-अन्य नेताओं का चरित्र भी अंकित है। चरितनायक की जीवन-यात्रा के कितने ही अन्य सहचर भी लेखक की सहृदयता के कारण इसमें चित्रित हैं। आर्य समाज की सेवाओं के प्रसंग में प्वाईटमैन रलाराम का जो सजीव एवं करुण रेखाचित्र राहुल जी ने प्रस्तुत किया है, वह लेखक की सहृदयता का ही परिणाम है।

राहुल जी के चरित्रांकन की एक अन्य विशिष्टता उनका तटस्थ एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण है। चरितनायकों का चरित्रांकन करते समय वे उन्हें मानवीय रूप में प्रस्तुत करते हैं। वह उनके जीवन के उज्ज्वल पक्ष एवं कुरूपता का सत्य एवं यथार्थ अंकन करते हैं। घुमक्कड़ स्वामी हरिशरणानन्द के आधुनिक विचारों का होने पर भी अपने शरीर पर औषधियों के प्रयोग तथा पत्रिकाओं में अपने सम्बन्ध में विज्ञापन न देने की प्रवृत्ति का उपहास उड़ाते हुए राहुल जी उनकी इस नीति को आधा तीतर आधा बटेर वाली नीति कहते हैं। इसी प्रकार कैप्टन जसवन्तचन्द्र लाल के गुणों के साथ उसके दोषों की ओर भी संकेत करते हैं। लाल मानसरोवर कैम्प से बीमारी का झूठा बहाना लगाकर माता-पिता से मिलने के लिए पूर्णिया लौट आते हैं। सैनिक अनुशासन के विरुद्ध होने से लाल का यह कार्य अनुचित ही कहा जाएगा। सिंहल घुमक्कड़ जयवर्धन की अबनार्मेलटी (असाधारणत्व), सच्ची-झूठी भविष्यवाणियों को यायावरी का सम्बल बनाना आदि की वे यत्र-तत्र संकेत करते हैं। इससे राहुल जी की चरित्र-चित्रण सम्बन्धी तटस्थता एवं वैज्ञानिकता का परिचय मिलता है। इस प्रकार राहुल जी अपने जीवनी-साहित्य में चरित्र-चित्रण की दृष्टि से अत्यन्त सफल रहे हैं। उन्होंने अपने जीवनीनायकों को मानवीय धरातल पर चित्रित किया है।

वातावरण

जीवनी का चरितनायक देशकाल की सीमा में आबद्ध होता है। उसके कार्य दूसरों के कार्यों से सम्बन्धित एवं उसका जीवन समसामयिक परिस्थितियों से प्रभावित होता है। अतएव वातावरण का अंकन जीवनी-लेखक के लिए अनिवार्य हो जाता है।

राहुल जी में वातावरण-अंकन की अद्भुत क्षमता है। देशकाल के चित्रण में राहुल जी ने जीवनीनायक से सम्बद्ध स्थानों एवं परिवेश का सजीव एवं यथार्थ रूप प्रस्तुत किया है। राहुल जी के जीवनी-साहित्य में देशकाल का फलक अत्यन्त विशद है। 'मार्क्स', 'लेनिन', एवं 'स्तालिन' में रूस एवं यूरोप के विभिन्न प्रदेशों, 'माओ-त्से-तुंग' में चीन, 'सिंहल घुमक्कड़ जयवर्धन' में तिब्बत, लंका एवं नेपाल तथा 'सिंहल के वीर' में प्राचीन एवं आधुनिक लंका के सजीव चित्र हैं। 'वीर चन्द्रसिंह गढ़वाली', 'कप्तान लाल', 'सरदार पृथ्वीसिंह' तथा 'घुमक्कड़ स्वामी' में प्रमुखतः बीसवीं शती के पूर्वार्ध का भारतीय परिवेश चित्रित है।

देश-वर्णन में राहुल जी ने विभिन्न देशों, नगरों एवं गाँवों का भौगोलिक एवं ऐतिहासिक परिचय दिया है। उनके गहन ऐतिहासिक पाण्डित्य एवं पुरातात्विक ज्ञान का सर्वत्र दिग्दर्शन है और साथ ही यात्रा-प्रदेशों का स्वानुभूत परिचय है। 'घुमक्कड़ स्वामी' में हरिशरणानन्द के जन्मस्थान कानपुर के सम्बन्ध में लेखक का वक्तव्य है—'कानपुर आज उत्तर प्रदेश का सबसे बड़ा शहर और उत्तर-भारत की औद्योगिक राजधानी है। पर इसका यह अर्थ नहीं कि वह आज से डेढ़-सौ साल पहले भी कोई प्रसिद्ध बस्ती थी। कानपुर की सारी माया आधुनिक यातायात के साधनों और अंग्रेजी शासन की देन है। कितने ही लालबुझक्कड़ कानपुर पढ़कर इसको यह सम्भ्रान्त नाम देना चाहते हैं, लेकिन कानपुर कर्णपुर से नहीं, बल्कि कैंप या कम्प का बिगड़ा रूप है। वहाँ अंग्रेज सेना का कैंप था। कम्पनी के शासन में छावनियों को कैम्प या डिपो कहते थे।' (घुमक्कड़ स्वामी, पृ० १) 'कप्तान लाल' में पूर्णिया,[४१] 'वीर चन्द्रसिंह गढ़वाली' में कत्यूर भूमि,[४२] 'घुमक्कड़ स्वामी' में उत्तरकाशी,[४३] 'कार्ल मार्क्स' में ट्रेब्स[४४], 'माओ-त्से-तुंग' में शाउ-शाँग[४५] आदि का वर्णन इन नगरों और गाँवों की भौगोलिक स्थिति, उनके ऐतिहासिक महत्त्व आदि का यथार्थ परिचय देते हैं। स्थान-वर्णन में राहुल जी का ध्यान प्राकृतिक सौन्दर्य की ओर भी गया है। यमुना के उद्गम-स्थल का प्राकृतिक दृश्य द्रष्टव्य है—'जमुना यहाँ पहाड़ में भी नीली श्यामला थी। जमुना का कृष्ण जैसा रंग देखकर मन में विचार होता था, क्या कृष्ण के सम्पर्क से ही तो जमुना का यह रंग नहीं हुआ? दृश्य नयनाभिराम था। समतल-सी उपत्यका में किन्तु पत्थरों के बीच से होकर जमुना बह रही थी। उसके दोनों तरफ के पहाड़ उत्तुंग हरे-हरे वृक्षों से ढँके थे, जिसमें इस समय तरह-तरह के पक्षियों के मधुर कलरव सुनाई देते थे।' (घुमक्कड़ स्वामी, पृ० ३८) चन्द्रसिंह गढ़वाली के जन्मस्थान रोणीसेरा के पर्वतीय वैभव[४६] एवं 'सिंहल घुमक्कड़ जयवर्धन' के अन्तर्गत काण्डी के प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन[४७] भी स्थानगत प्राकृतिक सौन्दर्य के परिचायक चित्रण हैं। अनेकत्र राहुल जी देश-वर्णन के अन्तर्गत उस भू-भाग का भौगोलिक परिचय देने के अनन्तर वहाँ के लोगों एवं उनके रीति-रिवाजों का उल्लेख करते हैं। नागा-प्रदेश के चित्रण में राहुल जी नागाओं के विषय में लिखते हैं—'कोहिमा पहला नागा गाँव मिला। पहाड़ी देश, हरा-भरा गाँव, घरों के दरवाजों पर आदमियों के

मुण्ड सजाये गये थे। मालूम हुआ नरमुण्डों को काटकर इस तरह द्वार सजाना नागा लोगों में आमतौर से पाया जाता है।......नागा लोग साँप के विष को बाँस की नली में जमा कर पेड़ में छिपे रहते हैं और दुश्मन के आने पर नली को फूँकते हैं और दुश्मन की देह पर हलका-सा घाव हो जाने पर विष लग जाता है और चार-पाँच कदम बाद आदमी गिर कर प्राण छोड़ देता है। उसी के सिर को काटकर दरवाज़े पर लटका देते हैं।' (कप्तान लाल, पृ० ३७)

काल-वर्णन में राहुल जी ने राजनीतिक, सामाजिक एवं धार्मिक परिस्थितियों का यथार्थ चित्रण किया है। 'माओ-चे-तुंग' में अधिकांशतः शोषक एवं शोषित के संघर्ष का चित्रण है। सन् १६१० के चीन के राष्ट्रीय आन्दोलन के विषय में राहुल जी लिखते हैं—'राष्ट्रीय आन्दोलन की बाढ़ सारे देश में आ गई थी। देश-भर में विदेशियों की गुलामी के प्रति घृणा और विदेशी माल के बायकाट का जबर्दस्त प्रचार हो रहा था। कितनी ही जगहों में सेनाएँ राष्ट्रवादियों की तरफ होकर सरकारी सेना से लड़ रही थी। स्कूलों और कालेजों के विद्यार्थी तथा दूसरे बुद्धिजीवी देश के कोने-कोने में मंचू-शासन के खिलाफ विद्रोह की आग भड़का रहे थे।' (माओ-चे-तुंग, पृ० ४३) 'माओ-चे-तुंग' में द्वितीय महायुद्ध के समय के चीन के चित्रण के अनन्तर वहाँ के जनमुक्ति-युद्ध एवं गणराज्य की स्थापना के क्रान्तिकारी परिवर्तनों को राहुल जी ने अंकित किया है। 'कार्ल-मार्क्स,' 'लेनिन' एवं 'स्तालिन' में ज़ारशाही एवं साम्यवादियों के संघर्ष का विशद चित्रण है। इन साम्यवादी नेताओं के जीवन एवं कृत्यों के वर्णन के साथ-साथ राहुल जी ने रूस की राजनैतिक, सामाजिक एवं धार्मिक परिस्थितियों का सजीव अंकन किया है। राहुल जी की यह विशिष्टता है कि उन्होंने अपने जीवनीनायकों को परिस्थितियों से अपृथक् रूप में देखा है।

'वीर चन्द्रसिंह गढ़वाली,' 'कप्तान लाल,' 'घुमक्कड़ स्वामी' तथा 'सरदार पृथ्वीसिंह' में भारतीय स्वतन्त्रता-संग्राम के चित्र प्रस्तुत करने में राहुल जी विशेष सफल रहे हैं। प्रथम महायुद्ध के अनन्तर भारतीय जनता की राजनीतिक चेतना का चित्रण 'घुमक्कड़ स्वामी' की इन पंक्तियों में द्रष्टव्य है—'लड़ाई समाप्त हो चुकी थी। जाने या अनजाने लोग यही मना रहे थे कि अंग्रेजों की हार हो जाए। वस्तुतः अंग्रेजों को देश से निकालने का उन्हें कोई रास्ता नहीं सूझ रहा था और न अपने में ऐसी शक्ति पाते थे कि ऐसे दुर्धर्ष शत्रु को हटा सकें, जिसने महायुद्ध में इतनी बड़ी विजय प्राप्त की थी। लड़ाई के समय देश के धन-जन को जिस तरह अंग्रेजों ने जबर्दस्ती स्वाहा किया, उसका आर्थिक प्रभाव भी बहुत जबर्दस्त पड़ा। शिक्षित वर्ग में राजनीतिक चेतना तेज़ी से बढ़ रही थी। हर तरफ भीतर-ही भीतर आग सुलग रही थी।' (घुमक्कड़ स्वामी, पृ० १२४) युद्धपूर्व भारतीय राजनीतिक स्थिति का यथार्थ वर्णन 'सरदार पृथ्वीसिंह' में हुआ है। अंग्रेजों द्वारा भारतीयों पर अत्याचार, देशभक्त क्रान्तिकारियों की भारतीय भावनाएँ एवं कानून की आड़ में उन पर अत्याचार आदि

का उल्लेख इस रचना में पठनीय है[१८]। इसी प्रकार द्वितीय महायुद्ध की स्थिति का अंकन 'कप्तान लाल' में हुआ है। 'वीर चन्द्रसिंह गढ़वाली' के अन्तर्गत नमक-सत्याग्रह, पेशावर-काण्ड आदि के उल्लेख-प्रसंग में स्वतन्त्रता-पूर्व भारतीय राजनीतिक चेतना का स्पष्ट वर्णन है[१९]। 'कप्तान लाल' तथा 'वीर चन्द्रसिंह गढ़वाली' में स्वातन्त्र्योत्तर भारत के राजनीतिक वातावरण की भी झाँकी मिलती है।

'घुमक्कड़ स्वामी' तथा 'वीर चन्द्रसिंह गढ़वाली' में भारतीय समाज एवं धर्म के भी अनेक चित्र हैं। 'घुमक्कड़ स्वामी' में रामनवमी के अवसर पर अयोध्या के वर्णन, साधुओं के ढोंगों एवं पाखण्डों का उल्लेख, 'सखी सम्प्रदाय' पर प्रहार तथा हरिशरणानन्द के योगाभ्यास के वर्णन में भारतीय समाज की धार्मिक अवस्था का चित्रण है[२०]। साधुओं के ढोंगों का एक यथार्थ एवं व्यंग्यपूर्ण उल्लेख इन पंक्तियों में द्रष्टव्य है—'पहले दिन छावनी की साधु-मण्डली में निरे तपस्वी, योगी, सिद्ध, महात्मा दिखलाई पड़ते थे। लेकिन वहाँ रहते-रहते दूसरे ही रूप में देखा। भभूत मलकर धूनी रमाने वाले हों, चाहे पद्मासन बनाकर ध्यानावस्थित होने वाले हों। धूप में धूनी तापने वाले या आँख मूँदकर हजारमाला सटकाने वाले, सभी के काम ढोंग के लिए थे। जब वह देखते कि कोई गृहस्थ दर्शन के लिए आ रहा है, तो वह तुरन्त अपने-अपने पूजा-ध्यान में लग जाते। मालूम होता, महात्मा रात-दिन इसी में व्यस्त रहते हैं। जब गृहस्थ चले जाते तो सबकी समाधि खुल जाती। हजारमाला को अपनी जगह रोने के लिए छोड़ दिया जाता। फिर एक दूसरे से पूछने लगते—'भक्त ने क्या चढ़ाया?' 'तुम्हें क्या दे गया?' 'ठाकुर जी के आगे क्या-क्या चढ़ाया?' यदि किसी भक्त ने कुछ नहीं चढ़ाया, तो उसे कंजूस, मक्खीचूस कह कर पीठ पीछे धिक्कारते।' (घुमक्कड़ स्वामी, पृ० १५) इसी प्रकार गढ़वालियों द्वारा पाँच-पांडवों की पूजा के वर्णन में राहुल जी सामान्य लोगों के धार्मिक विश्वासों का उल्लेख करते हैं[२१]। साधारण जन समाज की कठिनाइयों, दास-प्रथा आदि के वर्णन में राहुल जी ने सामाजिक स्थिति का अंकन किया है[२२]।

देशकाल-वर्णन की उक्त विवेचना के अनन्तर यह सहज कहा जा सकता है कि राहुल जी देश और काल के यथार्थ वर्णन में अत्यन्त सफल हैं। देश-वर्णन में राहुल का गम्भीर ऐतिहासिक एवं पुरातात्विक ज्ञान झलकता है, साथ ही अधिकांश स्थानों की राहुल ने स्वयं यात्रा की है, इसलिए उनके वर्णन सजीव, यथार्थ एवं स्वाभाविक प्रतीत होते हैं। परिवेश-वर्णन में राहुल की दृष्टि समाज के सभी रूपों पर टिकी हुई प्रतीत होती है और सभी का वर्णन उनकी जीवनियों में है। इसके अतिरिक्त परिवेश-वर्णन में कहीं-कहीं उन्होंने तुलनात्मक वर्णन भी प्रस्तुत किए हैं। सिंहल की राजनीतिक स्थिति का वर्णन करते हुए राहुल जी समसामयिक भारतीय इतिहास की ओर भी संकेत करते हैं[२३] और भारत के समाज-वर्णन में वे रूसी समाज की उससे तुलना करते चलते हैं[२४]। इस प्रकार राहुल जी जीवनी-कृतियों में वातावरण का चित्रण कर इतिहास का निर्माण करते हैं। 'सिंहल के वीर' में ई० पू० पाँचवीं

अन्तर्द्वन्द्व अंकित करना हो अथवा अपनी विचारधारा की अभिव्यक्ति करनी हो—सर्वत्र राहुल जी की भाषा-शैली समर्थ एवं सशक्त रूप में वर्तमान है, कहीं शिथिलता नहीं। शैली द्वारा ही वे जीवनी के तथ्यों को कथात्मक रूप प्रदान कर सके हैं। विशेषकर उनकी चार कृतियाँ—'वीर चन्द्रसिंह गढ़वाली,' 'सिंहल घुमक्कड़ जयवर्धन', 'घुमक्कड़ स्वामी' तथा 'सरदार पृथ्वीसिंह' की शैली तो औपन्यासिक शैली की तरह ही प्रवाहमयी एवं सरस है। सरल भाषा-शैली में चन्द्रसिंह के विवाह का एक वर्णन द्रष्टव्य है—'हवलदार को भी होनहार तरुण को देखकर ख्याल आया, कि यह शादी अच्छी रहेगी। अन्त में बातचीत तै हो गई। चन्द्रसिंह ने घर आकर चुपके-चुपके सारी तैयारी कर ली। जब दरवाजे पर बाजा बजने को था, तब उन्होंने पिता से राय लेनी चाही। पिता सुनते ही आग-बबूला हो गए और उन्होंने शादी में आने से बिलकुल इन्कार कर दिया। चन्द्रसिंह अपने साथियों के साथ जाकर शादी कर लाये। जिस दिन शादी हो रही थी, उसी दिन पलटन का बुलावा आया। रात को उन्होंने शादी कराई और सवेरे छावनी के लिए रवाना हो गए।' (वीर चन्द्रसिंह गढ़वाली, पृष्ठ ७५)

राहुल जी की शैली में तथ्य-निरूपण एवं वर्णनात्मकता की प्रधानता है, पर प्रवाह सर्वत्र विद्यमान है। भाषा में संस्कृत के तत्सम, तद्भव, देशी, विदेशी शब्द सहज स्वाभाविक रूप से आ जाते हैं तथा उसमें मुहावरों का प्रयोग भी दर्शनीय है। 'सिंहल के वीर' से एक उदाहरण प्रस्तुत है—'वह सिंहल जाति के रक्त-मांस के साथ एक हो गई। आगे ई० पू० प्रथम सदी और पीछे जबर्दस्त प्रहार हुए, जिनमें पुरानी राजधानी अनुराधपुर ध्वस्त हो गई। पोलन्नरुव द्वितीय राजधानी की ईंटों-से-ईंटें बज गईं, जम्बुद्वीप और जयवर्धनपुर के भाग्य भी बेहतर नहीं साबित हुए। अन्त में पोर्तगीजों ने अपने शासन में तो महेन्द्र के लगाये पौधे को उखाड़ फेंकने में जैसे अत्याचार सिंहल के लोगों के साथ किये, वह इतने जघन्य और क्रूर थे कि वह पौधा मर जाता, पर मरा नहीं। किताबें सारी जला दीं, विहार-मन्दिर भूमिसात् कर दिए, हजारों आदमियों को कोलम्बो के केलनिया गंगा के घड़ियालों को खिला दिया गया, पर तो भी महेन्द्र की ज्योति नहीं बुझ सकी।' (सिंहल के वीर, पृष्ठ १७)

जीवनी की घटनाओं में रोचकता का गुण अनिवार्य है। यही रोचकता रसभ-मनरंजिनी शक्ति है जो सहृदय पाठक को रसाप्लावित करती है। जीवनी में यह रोचकता एक तो विषयगत होती है तथा दूसरी शैलीगत। चरितनायक के जीवन-संघर्ष, मानसिक द्वन्द्व, घातप्रतिघात एवं घटनाओं के वैविध्य से राहुल जी की जीवनियाँ रोचक हैं ही, साथ ही शैलीगत रोचकता भी उनमें विद्यमान है। राहुल जी की मार्मिक वर्णनात्मक शैली, प्रवाहमयी भाषा, चित्र-निर्माण की क्षमता और घटनाओं के क्रमिक संयोजन से उनकी जीवनियों में अद्भुत रोचकता एवं सरसता का संचार हुआ है।

इस प्रकार राहुल जी की शैली जीवन-वृत्त के तथ्यों के संश्लेषण-विश्लेषण ... उन्हें सुचारु रूप में संयोजित करती हुई दृष्टिगोचर होती है। तथ्यनिरूपण

एवं वर्णनात्मकता के प्रलोभन का संवरण न करती हुई भी वह आकर्षक, सहज एवं रोचक है। भाषा की सहजता एवं स्वाभाविक माधुर्य उसकी अपनी विशिष्टताएँ हैं।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि राहुल जी की जीवनी-रचनाएँ हिन्दी जीवनी-साहित्य में अपनी अनेक विशेषताओं के कारण विशिष्ट महत्त्व की अधिकारिणी हैं। उनमें तटस्थ, अलिप्त तथा वस्तुपरक दृष्टिकोण से तथ्यों का संकलन और उनका कालक्रमानुसारी सुसम्बद्ध वर्णन, चरितनायक के व्यक्तित्व की प्रभावपूर्ण अभिव्यक्ति, औपन्यासिक कथा का-सा रस एवं प्रवाह, वातावरण का सजीव एवं यथार्थ अंकन, उद्देश्य की गरिमा तथा भाषा-शैली की सरलता, मृदुता एवं मसृणता आदि गुणों का सहज समावेश होने से वे कलात्मक जीवनियाँ बन गई हैं। उन्हें हेराल्ड निकल्सन की शब्दावली में 'विशुद्ध जीवनियाँ' कहा जा सकता है।' 'वीर चन्द्रसिंह गढ़वाली' तथा 'घुमक्कड़ स्वामी' जैसी जीवनियाँ हिन्दी में जीवनी-साहित्य के अभाव की पूर्ति कही जा सकती हैं।

(ख) राहुल जी की आत्मकथा

आत्मकथा : स्वरूप-विश्लेषण

आत्मकथा अथवा आत्मचरित्र जीवनी-साहित्य का विकासशील अंग है। यही एक ऐसा माध्यम है जिसमें लेखक अपने विषय में एवं अपने व्यक्तिगत अनुभवों के सम्बन्ध में कहता है। 'हिन्दी साहित्य कोश' में आत्मकथा के स्वरूप के विषय में में लिखा है, 'आत्मकथा लेखक के अपने जीवन का सम्बद्ध वर्णन है। आत्मकथा के द्वारा अपने बीते हुए जीवन का सिंहावलोकन और एक व्यापक पृष्ठभूमि में अपने जीवन का महत्त्व दिखलाया जाना सम्भव है[२७]।' पाश्चात्य विद्वान् रॉय पास्कल ने आत्मकथा के स्वरूप को अधिक स्पष्ट किया है। उनके अनुसार 'आत्मकथा अपने ही ढंग का पुनर्कथित इतिहास है, साथ ही व्यक्ति के बाह्य विश्व से सम्बद्ध आत्मनिरीक्षण का प्रतिरूप है[२८]।' अपनी परिभाषा की व्याख्या करते हुए वे पुनः कहते हैं, 'आत्मकथा जीवन की अथवा उसके किसी एक भाग की यथार्थ घटनाओं को, जिस समय वे घटित हुईं, उन समग्र चेष्टाओं को पुनर्गठित करती है। मुख्यत: इसका केन्द्र आत्मविवेचन से सम्बद्ध होता है, बाह्य विश्व से नहीं। व्यक्तित्व को अनुपम रूप प्रदान करने के लिए बाह्य विश्व ग्राह्य भी हो सकता है। आत्मकथा बीती हुई घटनाओं से बनती है। इसे वैयक्तिक जीवन की कतिपय स्थितियाँ निर्मित कर देती हैं। साथ ही वह असन्दिग्ध एवं स्पष्ट रूप से अपने एवं बाह्य विश्व के निश्चित एवं दृढ़ सम्बन्ध को प्रकट करती है[२९]।' वेन शुमेकर (Wayne Shumaker) आत्मकथा को इन शब्दों में परिभाषित करते हैं, 'आत्मकथा लेखक द्वारा स्वयं लिखी गई, एक ही रचना के रूप में, उसके वैयक्तिक जीवन का आलेखन है[३०]।' 'एक ही रचना के रूप में' का अर्थ है कि वह पत्र एवं दैनन्दिनी से भिन्न है। पत्रों एवं डायरियों में सुसम्बद्धता का अभाव होता है, पर आत्मकथा में सुसम्बद्धता एक अनिवार्य गुण है।

उक्त परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि आत्मकथा में लेखक अपने ही व्यक्तित्व का निरीक्षण करता है। वह अपने अतीत जीवन का सिंहावलोकन करता है और एक व्यापक पृष्ठभूमि में जीवन का महत्त्व प्रकट करता है। इसमें लेखक का उद्देश्य आत्मनिरीक्षण, आत्मविश्लेषण, आत्मसमर्थन एवं आत्मप्रचार रहता है और वह अतीत की स्मृतियों को पुनर्जीवित करता है। अतः आत्मकथा जीवनसाहित्यान्तर्गत गद्य का वह रूप है जिसमें लेखक जागरूक होकर व्यक्तिगत जीवन का निस्संकोच रूप से विवेचन-विश्लेषण प्रस्तुत करता है और उसमें उसकी बाह्य विश्व से सम्बद्ध मानसिक क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं का यथार्थ रूप में अंकन होता है।

आत्मकथा जीवनी साहित्य के अन्तर्गत होते हुए भी जीवनी से पृथक् एवं स्वतंत्र महत्त्व रखती है। आत्मकथा का लेखक जीवनी-लेखक की अपेक्षा कहीं अधिक अधिकारपूर्ण निजी ज्ञान से अभिव्यक्ति का कार्य करता है। यही साधारण जीवनी से आत्मकथा की विशिष्टता है। वास्तव में एक निष्पक्ष और निष्कपट व्यक्ति की आत्मकथा से प्रामाणिक दूसरे से लिखी जीवनी नहीं हो सकती। मारग्रेट बोटरन के शब्दों में, 'सच्ची आत्मकथा तभी लिखी जा सकती है जबकि इसका लेखक अपने व्यक्तिगत अस्तित्व के विषय में पूर्णतया परिचित हो तथा जीवन के सम्पूर्ण अनुभवों के मध्य अपने कार्यों की प्रवृत्ति को प्रतिबिम्बित करने में समर्थ हो।'[११]

जीवन-चरित की तरह आत्मकथा के भी पाँच तत्त्व हैं।—(१) वर्ण्य-विषय, (२) चरित्र-चित्रण, (३) देशकाल, (४) उद्देश्य और (५) शैली। आत्मकथा के वर्ण्य-विषय में स्पष्टता, रोचकता, यथार्थता, संक्षिप्तता एवं स्वाभाविकता अनिवार्य है। चरित्र-चित्रण में लेखक आत्मचरित का विश्लेषण करता है। साथ ही उन व्यक्तियों का भी चरित्र प्रस्तुत करता है, जिनसे उसका घनिष्ठ सम्पर्क होता है। देश-काल और वातावरण का अंकन आत्मचरित को स्वाभाविक एवं यथार्थ रूप प्रदान करता है। आत्मकथा के उद्देश्य के विषय में डॉ० चन्द्रावती सिंह के शब्दों में कहा जा सकता है, 'आत्मचरित लिखने में अपनी ख्याति, आत्मप्रशंसा और आत्मप्रचार की भावना निहित है।'[१२] साथ ही लेखक का उद्देश्य बाह्य विश्व के साथ अपने सम्बन्ध को अभिव्यक्ति देना तथा अपने व्यक्तित्व से पाठकों को प्रेरणा देना भी हो सकता है। आत्मचरित की शैली में जीवन-चरित की शैली की तरह प्रभावोत्पादकता, रोचकता, सुसंगठन एवं लाघव आदि गुणों का समावेश होना चाहिए।

राहुल जी की आत्मकथा : 'मेरी जीवन-यात्रा'

महापण्डित राहुल सांकृत्यायन की 'मेरी जीवन-यात्रा' (पाँच खण्डों में) आत्मकथापरक कृति है। 'आत्मचरित' के लिए राहुल जी ने 'जीवन-यात्रा' शब्द का प्रयोग किया है। इस विषय में उनका कथन है—'मैंने अपनी जीवनी न लिखकर जीवन-यात्रा लिखी है, यह क्यों ?······अपनी लेखनी द्वारा मैंने उस जगत् की भिन्न-भिन्न गतियों और विचित्रताओं को अंकित करने की कोशिश की है, जिसका अनुमान

हमारी तीसरी पीढ़ी बहुत मुश्किल से करेगी।'[१३] राहुल जी की इस स्वोक्ति से स्पष्ट है कि 'मेरी जीवन-यात्रा' ग्रात्मवृत्त-मात्र नहीं है, वह इससे कुछ बढ़कर है। राहुल यायावर थे, ऐसे यायावर नहीं जो 'स्थान ग्रौर उसकी सार्वजनिकता को जीने में असमर्थ, जन श्रेणी के विभाजनानुसार स्तरों के ग्रनुकूल बरतने में विश्वास करने वाले, चुपचुप-गुमगुम बने रहने वाले, यायावर नाम्ना शब्द के वाहक मात्र होते हैं।'[१४] वे बीसवीं शताब्दी के उन विरले यायावरों में से हैं, जिन्होंने देश-विदेश का पर्यटन कर, वहाँ के विषय में प्रामाणिक एवं विस्तृत जानकारी प्रदान की है। राहुल का आत्मचरित यायावर का ग्रात्मचरित है ग्रौर इसीलिए उनकी 'मेरी जीवन-यात्रा' जीवनी-मात्र नहीं है, वह जीवनी के साथ-साथ यात्रा भी है। राहुल जी केवल अपना वृत्त प्रस्तुत करने तक ही सीमित नहीं रहते, वह बाह्य विश्व की विभिन्न विचित्रताओं को भी अंकित करते चलते हैं। डॉ० सुरेन्द्र माथुर इसे यात्रा-साहित्य की कृति स्वीकारते हैं।[१५] परन्तु यह कृति यायावर-साहित्यकार की ग्रात्मकथा है। यह उनके मधुर-कटु जीवन-ग्रनुभवों की रोचक कथा है[१६] तथा इसमें उनके सम्पर्क में आने वाले व्यक्तियों के सहृदयतापूर्ण चित्र हैं[१७]।

वर्ण्य-विषय

'मेरी जीवन-यात्रा' में राहुल जी के जीवन के ६३ वर्षों का वृत्त है। प्रायः उनके जीवन की पूरी झाँकी है। क्योंकि 'पूर्णता का ग्रर्थ मृत्यु तक का चित्रण कदापि नहीं। जन्म, शैशव एवं पूर्वजों के परिचय के साथ प्रारम्भ एवं विषय के ग्रौचित्य के ग्रनुकूल स्थायित्व ही पूर्णता है। ग्रात्मकथा शिशु की चिल्लाहट से ग्रारम्भ होकर वृद्ध के विश्रान्तिमय जीवन के साथ समाप्त होती है।'[१८] 'मेरी जीवन-यात्रा' के प्रथम खण्ड में लेखक के बाल्यकाल एवं तारुण्य का ग्रंकन है। ग्रपने ग्रारम्भिक जीवन, पारिवारिक सदस्यों एवं प्रारम्भिक-शिक्षा के उल्लेख के ग्रनन्तर लेखक बाल्यकाल में ही यायावरी-जीवन के प्रति अपने ग्राकर्षण को व्यक्त करता है। तारुण्य में इसी का विकास दिखाया गया है ग्रौर राहुल जी के दक्षिण-भारत के पर्यटन का वर्णन है। वह कभी साधु-संन्यासियों की शरण लेता है ग्रौर कभी किसी मठ-ग्राश्रम में निवास करता है। आर्य-समाज के सम्पर्क में आकर उसे नव-प्रकाश प्राप्त होता है। गांधी जी के ग्रसहयोग-ग्रान्दोलन के साथ राहुल जी राजनीति में भी भाग लेते हैं।

दूसरे खण्ड में पर्यटक राहुल का जीवन मुखरित है। इसके ग्रन्तर्गत उनकी लंका, तिब्बत, यूरोप, लद्दाख, जापान, सोवियत-भूमि ग्रादि की यात्राओं का वर्णन है। भारत में ग्राकर राजनीति के क्षेत्र में पुनः पदार्पण ग्रौर किसान-सत्याग्रह के नेतृत्व के परिणामस्वरूप उनके कारावास-जीवन की झाँकी भी इसी खण्ड में है। राहुल के बौद्ध धर्म के अनुयायी होने, तदनन्तर साम्यवाद की ग्रोर उनके झुकाव का सजीव वर्णन भी इसमें प्राप्य है।

तृतीय खण्ड में मुख्य रूप से उनके सोवियत-प्रदेश के निवास का विवरण है।

इसमें ईरान तथा रूस के सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक जीवन की झलक यथार्थ रूप में अंकित है।

चतुर्थ और पंचम खण्ड में राहुल जी की सन् १९४७-१९५६ ई० तक की जीवन-यात्रा है। ये दोनों खण्ड उनकी मृत्यु के बाद प्रकाशित हुए हैं। इस काल में वे मुख्य रूप से भारत में ही रहे हैं। उन्होंने हिन्दी भाषा एवं साहित्य को महत्त्वपूर्ण रचनाएँ प्रदान की हैं और हिन्दी भाषा को राष्ट्रभाषा के पद पर आसीन करवाने के लिए अनथक प्रयत्न किये हैं। पारिभाषिक-शब्द-निर्माण में उनका प्रशंसनीय योग-दान है। श्रीमती कमला से विवाह के उपरान्त वे यायावर से गृहस्थ बने। उनके पारिवारिक जीवन का भी यथार्थ वर्णन इन दो खण्डों में मिलता है। इस प्रकार जीवन के ६३ वर्षों के वृत्त में राहुल जी ने शैशव, तारुण्य एवं प्रौढ़ावस्था के चित्रण में अपने व्यक्तित्व के विभिन्न रूपों—यायावर, राजनीतिज्ञ, दार्शनिक, इतिहासकार, सत्यान्वेषी, साम्यवादी आदि—का सत्यता, स्पष्टता एवं यथार्थता से आलेखन किया है।

आत्मकथा का विषय लेखक के जीवन का इतिहास होता है। उसमें इतिहास की भाँति सही तथ्यों को एकत्र करने और ईमानदारी से उनको प्रेषित करने की चेष्टा होती है। सत्यता एवं यथार्थता आत्मकथा के वर्ण्य-विषय की सबसे बड़ी कसौटी है। आत्मकथागत सत्य के विषय में राय पास्कल के शब्द द्रष्टव्य हैं, "आत्मकथा में सत्य से अभिप्राय विषयगत सत्य से नहीं, कुछ परिमित विषय तक का सत्य है, जिसमें लेखक का जीवन विकास पाता है तथा जिससे उसके विशेष गुण एवं घटनाओं के परिपक्व होने की दृढ़ता तथा व्यावहारिक गुण और आकृति स्पष्ट होती है[१६]।" राहुल जी की 'मेरी जीवन-यात्रा' राहुल जी के जीवन का इतिहास है। उन्होंने सर्वत्र ईमानदारी से अपने गुण-दोषों का उद्‌घाटन किया है। अविश्वसनीय एवं कल्पित बातों से अपने महत्त्ववर्द्धन अथवा वृत्तान्त को रोचक बनाने के प्रयास में उन्होंने 'मेरी जीवन-यात्रा' को आत्मकथाकार के उच्चतम आदर्श से च्युत होकर गल्प अथवा उपन्यास का रूप प्रदान नहीं किया। राहुल जी की आत्मकथा में रोचकता है, यह रोचकता उनके व्यक्तित्व में है, उसकी यथार्थ एवं ईमानदारी से अभिव्यक्ति में है, कपोलकल्पित बातों में नहीं। यही ईमानदारी आत्मकथा की सत्यता की कसौटी है। एडगर जॉनसन लिखते हैं, "आत्मकथा लेखक के लिए ईमानदारी सबसे बड़ी बाधा होती है। अपने विषय में सत्य कहने की प्रतिज्ञा अत्यन्त साहसिक कार्य है। ऐसे वर्णन में लेखक की योग्यता सामान्य मनुष्य से कहीं अधिक अपेक्षित है[२०]।" वे आगे लिखते हैं कि 'वही आत्मकथा उच्चकोटि की है जिसमें उद्देश्य की पवित्रता एवं गहराई है[२१]।' राहुल जी की आत्मकथा इस दृष्टि से निस्सन्देह उच्च कोटि की है। अपने वृत्त के लेखन में राहुल जी ईमानदारी से काम लेते हैं, गुण-दोषों के वर्णन में सत्यता एवं यथार्थता का सर्वत्र परिचय देते हैं।

अपने प्रथम विवाह के विषय में राहुल जी का कथन है, "उस वक्त ११ वर्ष की अवस्था में मेरे लिए यह तमाशा था। जब मैं सारे जीवन पर विचारता हूँ, तो मालूम होता है, समाज के प्रति विद्रोह का प्रथम अंकुर पैदा करने में उसने ही पहिला काम किया। १६०८ ई० में जब मैं पन्द्रह साल का था तो मैं उसे शंका की नज़र से देखने लगा था, १६०६ ई० के बाद से तो मैं गृह-त्याग का बाकायदा अभ्यास करने लगा, जिसमें भी उस तमाशे का थोड़ा-बहुत हाथ जरूर था। १६१०-११ ई० से निश्चित तौर से मैं इसे अपना ब्याह नहीं कहता था—मैंने उसे कभी न ब्याह समझा, न उसकी जिम्मेदारी अपने ऊपर मानी।" (मेरी जीवन यात्रा (१), पृ० ३५) इस उद्धरण से एक ओर राहुल जी के निर्भीक क्रान्तिकारी व्यक्तित्व की ओर संकेत मिलता है तो दूसरी ओर प्रथम पत्नी के परित्याग का यथार्थ एवं सत्य वर्णन। इसी प्रकार माँ की मृत्यु के समय बालक राहुल की आँखों में अश्रु न थे, इस विषय मे उनके कथन की सत्यता द्रष्टव्य है—'मेरे आँसू न ब्रह्मज्ञान के कारण रुके हुए थे और न किसी और तत्त्व-साक्षात् के कारण। मेरी सान्त्वना और धैर्य का कारण एक भोले-भाले ग्रामीण लड़के का सीधा-सादा विश्वास था।' (मेरी जीवन-यात्रा (१) पृ० ३६)

आर्य-समाज एवं भाई महेशप्रसाद के सम्पर्क ने राहुल जी को तारुण्य मे नव-प्रकाश प्रदान किया। इस विषय में वे लिखते हैं—'यहाँ आगरा मे भाई साहब के सम्पर्क में आने पर मालूम हुआ जैसे आदमी अन्धेरी कोठरी से निकल कर सूर्य की रोशनी मे रख दिया जावे, जैसे घुटती काली कोठरी से निकाल शीतल मन्द सुगन्ध वायु परिचालित बाग मे ला रखा जाये। अब मुझे मालूम होने लगा, दुनिया मे ऐसे भी काम हैं जिनके लिए जीवन की आवश्यकता है, ऐसे भी आदर्श हैं जिनके लिए मृत्यु मधुरतम वस्तु है।' (मेरी जीवन-यात्रा (१), पृ० २४५) आर्य-समाज के सम्पर्क मे आने से राहुल के जीवन मे जो परिवर्तन हुआ उसका यथार्थ रूप इस उद्धरण मे प्राप्य है। साम्यवादी होते हुए भी आर्य-समाज के प्रभाव को वे कृतज्ञता-पूर्वक ज्ञापित करते हैं।

बौद्ध धर्म की ओर झुकाव के समय राहुल जी अपना अन्त-विश्लेषण करते हैं—'मैं अकेला घूमना चाहता, और अक्सर अकेला रहता। उस वक्त मेरा अन्तर्द्वन्द्व इतना तीव्र होता कि बाज वक्त मुझे डर लगता, कहीं आगे-पीछे से आने वाली ट्रेन को देखना न भूल जाऊँ।......ईश्वर और बुद्ध साथ नहीं रह सकते, यह साफ़ हो गया और यह भी स्पष्ट मालूम होने लगा कि ईश्वर सिर्फ काल्पनिक चीज है, बुद्ध यथार्थ वक्ता है। तब कई हफ्तों तक हृदय में एक दूसरी बेचैनी पैदा हुई। मालूम होता था, चिरकाल से चला आता एक भारी अवलम्ब लुप्त हो रहा है।' (मेरी जीवन-यात्रा (२), पृ० ८)

राहुल जी 'मेरी जीवन-यात्रा' मे स्थान-स्थान पर अपनी साहित्यिक-कृतियों का उल्लेख करते चलते हैं। इससे उनके साहित्यकार का व्यक्तित्व मुखरित होता

है। अपनी रचना-प्रक्रिया, रचना-स्रोत, प्रेरणा आदि के बारे में उन्होंने यत्र-तत्र संकेत दिए हैं। वे प्रगतिशील साहित्यकार थे। उनकी रचनाएँ रूढ़िवादियों को प्रायः अखरती रही हैं। 'सिंह सेनापति' के विषय में लिखते हैं—'मेरे उपन्यास 'सिंह सेनापति' के कुछ वाक्यों को लेकर कितने ही जैन रूढ़िवादी बहुत उछल-कूद कर रहे हैं। वह अपने गुजराती-हिन्दी पत्रों में लेखक के खिलाफ कितने ही लेख लिख रहे थे। कौन-सी ऐसी बात थी? उपन्यास की नायक-नायिका नहीं, बल्कि एक परिहासशीला पात्रा ने जैन-साधुओं की नग्नता को प्राकृतिक प्राणियों से उपमा दी, बस इसी पर हमारे दोस्त आगबबूले हो गये। जहाँ तक तीर्थंकर महावीर का सम्बन्ध है, उपन्यास के नायक ने उनके प्रति बड़े सुन्दर भाव प्रकट किए हैं। लेकिन नायक की बात कौन पूछता है, वहाँ तो कहीं से कुछ लेकर झगड़ा करने की प्रवृत्ति है। एकाध जगह से धमकी की भी भनक आई। मैंने कहा—कौशाम्बी जी को दिक करके सेठ लोगों का मन चसक तो नहीं गया है। यदि और गोत्रोच्चार न करवाना है, तो ततैया के छत्ते में उंगली न डालें।' (मेरी जीवन-यात्रा (२), पृ० ७१८) यहाँ लेखक की प्रखरता एवं उग्रता दर्शनीय है। इस प्रकार राहुल जी ने सर्वत्र ईमानदारी से अपने जीवन-विषयक तथ्यों को व्यक्त किया है।

आत्मकथा के विषय-संकलन के लिए 'स्मृति तत्त्व' सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। यद्यपि वृत्त की प्रामाणिकता के लिए आन्द्रे मॉरवा दैनन्दिनी के रूप में लिखित विवरणों को महत्त्व देते हैं,[७२] परन्तु आत्मकथा के लिए पास्कल स्मृति को अधिक ग्राह्य मानते हैं।[७३] वे स्मृति को इसलिए भी विश्वसनीय ठहराते हैं क्योंकि आत्मकथा केवल अतीत का पुनर्जीवन मात्र नहीं, उसकी व्याख्या भी है।[७४] उपन्यास और आत्मकथा में अन्तर स्पष्ट करते हुए शुमेकर महोदय भी आत्मकथा के लिए स्मृति-तत्त्व को आधार मानते हैं।[७५] राहुल जी ने 'मेरी जीवन-यात्रा' में अपने जीवन का इतिहास स्मृतिगत रूप में ही प्रस्तुत किया है। साथ ही उसके लिए समय-समय पर लिखे नोटों एवं डायरियों का भी उपयोग किया है। 'मेरी जीवन-यात्रा' (पहले दो खण्ड) प्रमुखतया स्मृति पर आधारित हैं। इस विषय में उनका आत्मकथन है—'उन दो महीनों में मैंने १८६३ ईसवी से १९३४ ईसवी तक की यात्रा को अपनी स्मृति से कागज पर उतारा।' (मेरी जीवन-यात्रा (१) प्राक्कथन) इसी प्रकार हिमालय की प्रथम यात्रा के विषय में राहुल जी लिखते हैं, 'हिमालय की इस यात्रा का वर्णन मानस-पटल पर अंकित सिर्फ उन प्रतिबिम्बों के आधार पर कह रहा हूँ, जो आज से तीस वर्ष पहले पड़े थे।' (मेरी जीवन-यात्रा (१) पृ० ९९) अभिप्राय यह कि राहुल जी ने अपनी आत्म-कथा के प्रथम दो खण्डों में मुख्य रूप से स्मृति के आधार पर वृत्त प्रस्तुत किया है, जिससे उनका जीवनगत इतिहास सुसम्बद्ध रूप में प्रस्तुत है।

'मेरी जीवन-यात्रा' के तीसरे, चौथे और पाँचवें खण्ड में राहुल जी पत्रों एवं ...ं का अधिक उपयोग करते हैं। यहाँ वे आत्मकथा की अपेक्षा जीवनी-लेखन के ... अधिक समीप हैं। कई स्थलों पर तो वे एक-एक दिन का ही नहीं प्रस्तुत करते

और मिनटों का भी विवरण देते हैं। इससे आत्मकथा की कथागत सुसम्बद्धता क्षीण हो गई है और वर्ण्य-विषय में एकान्विति नहीं रही। विवरण-विस्तार की त्रुटि भी इसमें आ गई है और कई स्थलों पर अनावश्यक विवरण एवं पुनरावृत्तियाँ भी खटकने लगती हैं। उदाहरणार्थ एक-दो अंश प्रस्तुत हैं—

(१) २४ तारीख को सवेरे ६ बजे फिर हवाई अड्डे पर पहुँचा। बागडोगरा से कलकत्ता तक किराया ७४ रुपये था और दिल्ली तक का २०३ रुपये था। इण्डियन नेशनल एयरवेज का विमान सतलुज हमें मिला जिसमें २४ सीटें थीं और सभी पर मुसाफिर बैठे हुए थे। यह विमान अधिक स्वच्छ और सजा हुआ मालूम होता था। (मेरी जीवन-यात्रा (४), पृ०३२२)

(२) जबलपुर में हमारी ट्रेन समय से पहले ही पहुँच गई थी। इसलिए स्टेशन पर कोई नहीं मिला। नया परिचय प्राप्त हुआ, और हम ठेकेदार मल्होत्रा जी के साथ उनके घर पर नेपियर टौन में ठहर गये। २ तारीख का बाकी समय वहीं बीता। ३ तारीख को महाकौशल विद्यालय के छात्रों के सामने बोलना पड़ा। (मेरी जीवन-यात्रा (४), पृ० १३४)

इस प्रकार डायरी-शैली का भरपूर प्रयोग इन खण्डों में हुआ है और आत्मकथा के वर्ण्य-विषय की प्रभावात्मकता एवं एकान्विति प्रायः खण्डित हो जाती है। एक-एक दिन के विस्तृत एवं अनावश्यक विवरणों में पाठक रस नहीं लेता। डॉ० रामअवध द्विवेदी लिखते हैं, 'आत्मकथा कोरा तथ्य-निरूपण नहीं, कला की वस्तु है। अन्ततोगत्वा वह सृजनात्मक कल्पना पर निर्भर रहती है। सृजनात्मक कल्पना स्मृतिगत संचित अनुभवों पर अपना कार्य करती है और उसमें जीवन्त एकरूपता प्रदान करती है।'[१] यह एकरूपता डायरी-लेखन में संभव नहीं। इसका यह अभिप्राय नहीं कि डायरी एवं पत्रों का आत्मकथा में स्थान ही नहीं है। डायरी से वर्णन एवं विवरण की सत्यता एवं प्रामाणिकता प्रकट होती है पर साथ ही उसमें न तो अनावश्यक वर्णनों की आवश्यकता है और न ही एक-एक दिन का विस्तृत ब्यौरा देने की। डायरी के प्रयोग के साथ जहाँ राहुल जी अपनी ओर से व्याख्या भी देते हैं, वे अंश आत्मकथा के अधिक समीप प्रतीत होते हैं। हिमालय के प्रति आकर्षण का वे रुचिकर वर्णन करते हैं – 'अब मन किन्नर देश में दौड़ रहा था। उसके सदाहरित देवदारों के घने जंगल याद आते थे, वहीं एक कुटिया बनानी होगी और चिनी के पास वहाँ डाक मिलने का सुभीता रहेगा। रेल से सैंकड़ों मील दूर तिब्बत की सीमा के पास यह निवास पसन्द करने में हिचकिचाहट भी होती थी। फिर आदमी दूर कितना ही हो जाए, उसके असन्तोष के कारण बाहरी दुनिया के साथ सम्बन्ध भी होते हैं। कभी-कभी तो अलग रहने पर भी चित्त की स्थिति गाड़ी के पहिये की तरह ऊपर-नीचे होती रहती है।' (मेरी जीवन-यात्रा (४), पृ० ११५)

वर्ण्य-विषय की दृष्टि से 'मेरी जीवन-यात्रा' में स्पष्टवादिता, रोचकता, यथार्थता एवं स्वाभाविकता के गुण उल्लेखनीय हैं। राहुल जी ने विषय-सामग्री के चयन के लिए

स्मृति, पत्र एवं दैनन्दिनी का आश्रय लिया है। अन्तिम तीन खण्डों में डायरी-शैली के प्रयोग एवं विवरण-मोह के कारण संक्षिप्तता तथा एकसूत्रता का अवश्य ही अभाव है, परन्तु प्रथम दो खण्ड इस दोष से मुक्त हैं।

चरित्र-चित्रण

व्यक्ति के अपने जीवन में अत्यधिक रुचि का परिणाम उसे आत्म-चरित लिखने की प्रेरणा देता है। एच. जी. वेल्स का एतद्विषयक कथन है, 'यदि मैं जीवन में अत्यधिक रुचि न लेता तो आत्म-चरित लिखने का प्रयास न करता। अपने ही जीवन की विवेचना एवं परीक्षण के द्वारा जीवन की गुत्थियाँ समझी जा सकती हैं, अतएव मैंने अपनी आत्मकथा लिखने का प्रयत्न किया है।'[२७] वस्तुतः आत्म-चरित का विश्लेषण ही आत्मकथा का मुख्य तत्त्व है। लेखक की आकांक्षाओं एवं अभिलाषाओं का, सफलता-असफलताओं का तथा उसके क्रिया-कलाप का सजीव एवं यथार्थ रूप में अंकन चरित्र-चित्रण कला की विशिष्टता है। डॉ० रामअवध द्विवेदी के शब्दों में, 'आत्मकथा में जीवनी की अपेक्षा चरित्र-चित्रण पर कहीं अधिक आग्रह रहता है। आत्मकथा में लेखक अपने जीवन की विभिन्न घटनाओं का उल्लेख खास तौर पर इसलिए करता है कि उनके सहारे वह अपने संकल्पों, उद्देश्यों तथा अभिप्रायों का उद्घाटन कर सके। मात्र घटनाएँ निस्सार होती हैं, जब तक उनका संबंध उनके पार्श्वभूमि में स्थित सूक्ष्म विचारों और भावनाओं से स्थापित न किया जाये।'[२८] आत्मकथा में लेखक के निजी व्यक्तित्व के साथ-साथ उसके सम्पर्क में आने वाले व्यक्तियों के जीवन की संक्षिप्त झाँकी भी रहती है।

(क) लेखक का व्यक्तित्व एवं चरित्र

राहुल जी का व्यक्तित्व एवं चरित्र उनकी 'मेरी जीवन-यात्रा' में सर्वत्र अनुस्यूत है। उनकी आत्मकथा का महत्त्व उनके चरित्र में आने वाले परिवर्तन की अभिव्यक्ति के कारण है, घटना-विशेष के कारण नहीं। वह मानव हैं, निरन्तर गत्यात्मक, रूढ़ियों को अनवरत तोड़ने में संलग्न एवं सतत सत्यान्वेषी, प्रयोगशील एवं प्रगतिमार्गी। राहुल जी के व्यक्तित्व की गतिशीलता इन पंक्तियों में द्रष्टव्य है—'आर्य-समाज के स्वतन्त्र विचारों के बाद में बुद्ध के पास पहुँचा और उनके अनीश्वरवाद, विचार-स्वातन्त्र्यवाद, आर्थिक समतावाद से बहुत प्रभावित हुआ। उसके बाद मार्क्स के विचारों को अपनाना मुझे बिल्कुल स्वाभाविक-सा मालूम हुआ।' (मेरी जीवन-यात्रा (१), पृ० ४-५) इस प्रकार निरन्तर स्वच्छन्द विचारों को धारण करना राहुल जी के व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशिष्टता है। उनके व्यक्तित्व का मूल इन शब्दों में व्यक्त है, 'बेड़े की तरह पार उतरने के लिए मैंने विचारों को स्वीकार किया, न कि सिर पर उठाये-उठाये फिरने के लिए'। (मेरी जीवन-यात्रा (२), मुखपृष्ठ) राहुल जी की आत्मकथा एक ऐसे व्यक्तित्वपूर्ण मानव की कथा है, जो बहुरंगी है, अन्तर्मुखी है विराट् है। वह बन्धन की परिधि को स्वीकार नहीं करता है। वह यायावर है, जिसने

बचपन से ही यायावरी-धर्म में दीक्षित होकर आजीवन इस धर्म का निर्वाह किया, जिस के लिए 'नान्यः पन्थ. विद्यतेऽयनाय' की उक्ति सार्थकता प्राप्त करती है। इस यायावर ने देश-विदेश का पर्यटन कर घुमक्कडी-धर्म का तो निर्वाह किया है, साथ ही लेखनी द्वारा यात्रा-साहित्य को भी विकास प्रदान किया और 'घुमक्कड-शास्त्र' जैसी रचनाएँ लिखकर तरुणो को घुमक्कडी की दिशा भी दी। वह दार्शनिक था, उसने बुद्ध को अपना पथ-प्रदर्शक बनाया था। 'दर्शन-दिग्दर्शन' उसकी अद्वितीय दार्शनिक कृति है। 'बौद्ध-दर्शन' एवं 'वैज्ञानिक भौतिकवाद' उसकी दार्शनिक आस्था की प्रतीक रचनाएँ हैं। वह इतिहासज्ञ है, पुरातत्त्ववेत्ता है। 'मध्य एशिया का इतिहास' एवं 'पुरातत्त्व निबन्धा-वली' में उसके व्यक्तित्व का यह रूप प्रदर्शित हुआ है। वह राजनीतिज्ञ है, जिसने गान्धी जी के असहयोग-आन्दोलन के माध्यम से राजनीति में प्रवेश किया और मार्क्स-प्रतिपादित साम्यवाद में राजनीति का चरम विकसित रूप देखा। विविध धार्मिक सम्प्रदायो से सम्बन्ध जोड-तोड कर वह अन्त मे नास्तिक बन गया और क्रान्तिकारी रूढ़िविरोधी एवं सत्यान्वेषी के रूप मे प्रख्यात हुआ।

साहित्यकार के रूप मे राहुल प्रगतिशील साहित्यकार हैं। उनके उपन्यासों, कहानियों, निबन्धों एव यात्रा-रचनाओ मे उनकी प्रगतिशीलता का निदर्शन है। इस प्रकार 'मेरी जीवन-यात्रा' का चरितनायक यायावर, दार्शनिक, इतिहासज्ञ, पुरातत्त्व-वेत्ता, राजनीतिज्ञ एव साहित्यकार है। इतना बहुमुखी व्यक्तित्व हिन्दी साहित्य के इतिहास में निस्सदेह दुर्लभ है। बनारसीदास चतुर्वेदी आत्मकथा के चरितनायक के विषय मे लिखते हैं, 'दूसरे के जीवन मे स्फूर्ति उत्पन्न करने वाला आत्म-चरित लिखना किसी सजीव व्यक्तित्व वाले पुरुष का ही काम है।'[७६] 'मेरी जीवन-यात्रा' का नायक इसी प्रकार का सजीव व्यक्तित्व-सम्पन्न क्रान्तिकारी पुरुष है।

आत्मकथा-लेखक का इतिहास-निर्माण मे महत्त्वपूर्ण योग होता है। अतः वह प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ, धार्मिक नेता अथवा समाज-सुधारक होना चाहिए। ऐसे व्यक्ति के विचार सुनने के लिए सामान्य जन लालायित रहते हैं।[८०] राहुल जी की आत्मकथा ऐसे मानव की आत्मकथा है, जो विभिन्न क्षेत्रों से सम्बद्ध है, एक ही पुरुष में विभिन्न रूपों को समाहित किये हुए है। 'मेरी जीवन-यात्रा' का महान् पुरुष अपने में गतिशील सामूहिक-चेतना-प्रवाह को लिए हुए है, जिसकी विशालता एवं सौन्दर्य पाठक को अभिभूत किये बिना नहीं रह सकते।

आत्मकथात्मक कृति मे चरित्रांकन सहज नही होता। अपने बारे मे लिखते समय लेखक का एकदम तटस्थ और निष्पक्ष रहना अत्यन्त कठिन हो जाता है। आत्मश्लाघा एवं शील-संकोच की प्रवृत्ति इसमे बाधक है।[८१] आन्द्रे मॉरवा लज्जा-संकोच की भावना को आत्मकथा-लेखक के लिए सबसे बड़ी कठिनाई मानते हैं।[८२] निष्पक्ष भाव से अपने गुणों और दोषों की सम्यक् अभिव्यक्ति के लिए आत्मकथा-लेखक मे मन और चरित्र की विशेष शक्तियाँ अपेक्षित हैं। 'मेरी जीवन-यात्रा' में राहुल जी ने तटस्थ होकर 'स्व' का विश्लेषण किया है। उनका गत्यात्मक व्यक्तित्व

उसमें अंकित है जिससे पाठक उनके हृदय, भाव और अनेक क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं से अवगत हो जाता है। अपने चरित्र की सबलताओं के साथ वे उसके दुर्बल पक्ष का भी उद्घाटन करते हैं। अपनी अव्यावहारिकता के विषय में वे स्पष्ट लिखते हैं—'अव्यावहारिकता तो मेरे में होनी चाहिये, क्योंकि सारे जीवन व्यवहार के पथ का अनुसरण नहीं किया।' (मेरी जीवन यात्रा (४), पृ० ४४६) विद्यालंकार-विहार में अध्ययन-अध्यापन का कार्य करते समय एक सुन्दर तरुणी के प्रति अपने आकर्षण का वे निस्संकोच वर्णन करते हैं—'एकाध बार हमारी चार आँखें हुईं, इसके बाद मैं देखने लगा, कि जब भी मैं उधर से गुजरता था, धर्मोपदेश सुनने या पूजा करने वह विहार में आती, तो मेरी ओर निस्संकोच हो, हाँ, दूसरों से दृष्टि बचाकर देखती। मेरा हृदय भी उधर आकर्षित हुआ था, क्योंकि वह गोरी और कुछ सुन्दर-सी थी।' (मेरी जीवन यात्रा (२), पृ० १६)

कमला जैसे विवाह के उपरान्त राहुल जी के सुखमय पारिवारिक जीवन में रूसी पत्नी लोला और पुत्र ईगर के पत्र उन्हें उद्विग्न कर देते थे। इस समय की उनकी मानसिक स्थिति का सच्चा चित्रण इन शब्दों में मिलता है—'मैं कह चुका हूँ कि जया को और तुमको मेरी आवश्यकता है। मैं रूस जाने की इच्छा नहीं रखता। लेकिन, उनकी इच्छा थी, मैं पत्र-व्यवहार करना भी त्याग दूँ। क्या इससे आत्म-हत्या आसान नहीं है। जो पिता ईगर का प्रत्याख्यान कर सकता है, उस पर क्या विश्वास किया जा सकता है? जिस समय कमला से सम्बन्ध स्थापित हुआ, उस समय क्या आशा थी कि रूस से फिर सम्बन्ध स्थापित हो सकेगा? अब यदि यह हुआ, तो ईगर के साथ नाता तोड़ना मानवता के खिलाफ है। यदि कमला यही चाहती है तो कोई भयंकर कदम उठाने से पहले दोनों माँ-बेटी का प्रबन्ध तो कर डालना ही होगा।' (मेरी जीवन यात्रा (५), पृ० २२६) इसी प्रसंग में वे कमला से विवाह-सम्बन्ध का संकेत करते हैं—'कल से मैं अपनी नजर से गिर गया, सारे जीवन के लिए। कमला का समझना बिल्कुल ठीक है। मैंने उसकी असहायावस्था का फायदा उठाया। हाँ, परोपकार, दया दिखाने और क्या-क्या बहाना करके।' (मेरी जीवन-यात्रा (५), पृ० २२६) इस प्रकार राहुल जी ने पारिवारिक परिवेश से उभरने वाली अपनी दुर्बलताओं को यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया है। 'लंका के लिए प्रस्थान' शीर्षक के अन्तर्गत राहुल जी भोजन के लिए छुरी-काँटे के प्रयोग से अनभिज्ञता का रोचक वर्णन करते हैं।[८३] इसी प्रकार स्वयं को किताबी कीड़ा कहना,[८४] शास्त्रीय संगीत के प्रति अरुचि[८५] एवं कविता को अपनी पहुँच से बाहर की वस्तु मानना[८६] आदि दुर्बलताओं एवं अभावों का उन्होंने स्पष्ट संकेत किया है। परिशांकन में यह स्पष्टता राहुल जी की आत्मकथा की प्रमुख विशिष्टता है। शील-संकोच के वशीभूत हो राहुल जी यदि अपनी वैयक्तिक दुर्बलताओं का उद्घाटन न करते, तो वे आत्मकथा-लेखक का निर्वाह न कर पाते।

शारीरिक दुर्बलताओं एवं अभावों की तरह राहुल जी ने अपने गुणों-का,

अपनी मान्यताओं एवं रुचियों-अरुचियों का संयमित एवं सचेत रूप से वर्णन किया है। भारतीय संस्कृति के प्रति अपने प्रेम को वे इन शब्दों में प्रकट करते हैं—"भारतीय संस्कृति के प्रति किसी से कम मेरे हृदय में प्रेम नहीं है। सच पूछिये तो औरों का प्रेम दिखावे का है। उनके लिए ईश्वर, धर्म, वेदान्त, योग, टोटके-टोने आदि अनेक आदर-सम्मान की चीजें हैं, जिनके सामने भारतीय संस्कृति गौण पड़ जाती है। मेरे लिए तो वही सब कुछ है।"[८७] अपनी कार्यनिष्ठा के विषय में राहुल जी का कथन है—"सुबह होती है शाम होती है, उम्र यों ही तमाम होती है।' यह बात मैं दोहरा नहीं सकता था क्योंकि मेरी उम्र यों ही खत्म नहीं हो रही थी। हफ्ते के सातों दिनों काम में जुटा रहता था।"[८८] अपनी निर्भीकता के विषय में वे कहते हैं, "मन के किसी कोने में मृत्यु का भय नहीं है। जीवन की पर्वाह करनी चाहिए, मृत्यु-अभाव के लिए चिन्ता करने की क्या जरूरत"[८६]। अपनी विद्वत्ता एवं शोध-प्रवृत्ति के विषय में राहुल जी लिखते हैं—"छः-सात मास बीतते-बीतते भारतीय संस्कृति की गवेषणाओं के सम्बन्ध में मेरा ज्ञान, गुण और परिमाण दोनों में इतना हो गया था कि जब मारबुर्ग (जर्मनी) के प्रोफेसर रुडाल्फ ओटो 'विद्यालंकार विहार' में आए तो मुझसे बातचीत करके उनको तअज्जुब हुआ कि मैं कभी किसी विश्वविद्यालय का विद्यार्थी नहीं रहा।"[६०] *अभिप्राय यह है कि राहुल जी ने अपने व्यक्तित्व एवं चरित्र के विभिन्न* रूपों का स्पष्ट उल्लेख किया है। वे आत्मचरित्रांकन के प्रति सर्वत्र सजग प्रतीत होते हैं। उन्होंने शील-संकोच एवं आत्म-श्लाघा की प्रवृत्ति में सन्तुलन स्थापित रखते हुए अपने गुण-दोषों का सजीव एवं यथार्थ रूप से विश्लेषण किया है। वहाँ न दुराव-छिपाव है, न स्वयं को महामानव घोषित करने की लालसा।

(ख) अन्य पात्र

आत्मकथा का प्रमुख पात्र लेखक स्वयं ही होता है। पर साथ ही वह उन व्यक्तियों का भी चित्रण करता है जो उसके घनिष्ठ सम्पर्क में आते हैं, जिनसे वह स्नेह-प्रेम प्राप्त करता है तथा जिनसे वह प्रभावित होता है। चरित्र-चित्रण के अन्तर्गत अपने गुण-दोष वर्णन के साथ अपने सम्पर्क में आने वाले व्यक्तियों के सम्बन्ध में यथार्थ मत-प्रकाशन का साहस भी अनिवार्य है। जीवन-यात्रा में घनिष्ठ सम्पर्क में आने वाले व्यक्ति जीवन को मधुर बना देते हैं। उनकी मधुर-स्मृतियां को आत्मकथा-लेखक स्वयं ही अंकित करता है। इस विषय में राहुल जी का आत्म-कथन द्रष्टव्य है, 'आदमी जीवन-यात्रा में कितने ही सहृदय नर-नारियों से मिलता है, उनसे कितनी ही सहायता और सहानुभूति पाता है।'''मैं नहीं समझता, क्यों आदमी की प्रकृति को इतना स्वार्थपूर्ण चित्रित किया जाता है। मैं यह मानता हूँ, कि स्वार्थ के पीछे अन्धे हो गए आदमी भी मिलते हैं, लेकिन यदि आदमी केवल स्वार्थमय होता, तो किसी की जीवन-यात्रा में जरा भी माधुर्य न रह जाता। मैं तो जब अपनी जीवन-यात्रा को याद करता हूँ तो हजारों स्नेह-पूर्ण चेहरे आँखों के सामने घूमने लगते हैं।'[६१] राहुल

जी ने 'मेरी जीवन-यात्रा' में सैकड़ों ऐसे व्यक्तियों के चरित्र की झाँकी प्रस्तुत की है, जिनकी स्मृतियाँ वे आजीवन संजोए हुए थे। ऐसे व्यक्तियों में साहित्यकार, दार्शनिक, इतिहासकार, पुरातत्त्ववेत्ता, बौद्ध-विद्वान्, सन्त-साधु-संन्यासी, आर्य समाज के प्रचारक, समाज-सुधारक, राजनीतिज्ञ, यायावर सभी क्षेत्रों के एवं देश-विदेश के विख्यात व्यक्ति तो हैं ही, जन-साधारण की मधुर-स्मृतियाँ भी उन्होंने चित्रित की हैं। इस प्रकार उनकी जीवन-यात्रा देश-विदेश के व्यक्तियों के समूह का वास्तविक विश्वकोश बन गई है। इनके चरित्र-चित्रण में राहुल जी ने बाह्य व्यक्तित्व—आकृति, वेशभूषा आदि के अंकन के साथ उनके गुण-दोषों एवं महत्त्व से भी परिचित करवाया है। स्वेतस्लाव की पत्नी देविकारानी के बाह्य व्यक्तित्व के विषय में वे लिखते हैं—"आयु ४० की होगी, लेकिन प्रसाधन भी क्या कमाल करता है। देखने में षोडशी मालूम हो रही थी, ओठों पर अधर-राग, मुख पर सूक्ष्म क्रीम, कानों में एक दर्जन कुंचित अलकें, वेश शालीन, आँखों में चमक, मुख पर प्रसन्नता की स्वाभाविक मुद्रा—यह थी देविका रानी जिनके देखने के लिए कलिम्पोंग में भीड़ लग जाया करती थी।"[६२]

हिन्दी के साहित्यकारों में से निराला, महादेवी, दिनकर, शान्तिप्रिय द्विवेदी, प्रभाकर माचवे, नागार्जुन, चन्द्रबली पाण्डे, रांगेय राघव, भगवतशरण उपाध्याय, शिवपूजनसहाय, हजारीप्रसाद द्विवेदी, भदन्त आनन्द कौसल्यायन आदि का सजीव, संक्षिप्त और प्रभावशाली रूप में चरित्रांकन राहुल जी ने किया है। शान्तिप्रिय द्विवेदी के विषय में कुछ पंक्तियाँ देखिए, 'शान्तिप्रिय द्विवेदी का व्यक्तित्व बड़ा सीधा-सादा करुण है और साथ-ही मोहक भी है। उनको देखकर मुनि अष्टावक्र की आकृति सामने आ जाती है। वह बिल्कुल स्वनिर्मित पुरुष और भाषा के तो महान् शिल्पकार हैं। एक-एक शब्द को तोलकर और सँवार कर लिखते हैं। भोले-भाले भी कितने ? पर इसका अर्थ यह नहीं कि प्रतिभा में कमी है। वस्तुतः आदत बुद्धि से भी ऊपर होती है।'[६३] ऐतिहासिक प्रतिभा के धनी काशीप्रसाद जायसवाल के विषय में राहुल जी का कथन है—"यहाँ भारतीय इतिहास का अगाध ज्ञान रखने वाला एक व्यक्ति था, जो प्रथम श्रेणी की प्रतिभा का धनी था, जो चलती बैरिस्टरी के काम से बचा, आवश्यक नींद और विश्राम को तिलांजलि देकर गम्भीर ऐतिहासिक चिन्तन करता, नई-नई बातें निकालता था, किन्तु समाज की राजनीतिक व्यवस्था ने मजबूर किया था कि वह अपने अमूल्य जीवन के सबसे अधिक समय को किसी धनी के इन्कमटैक्स को कम कराने के लिए बड़ी-बड़ी बहसें तैयार करे, क्योंकि उसे अपनी रोजी भी चलानी थी, अपने पुत्रों और पुत्रियों को उच्च शिक्षा दिलानी थी, जिसमें कि वह अपने पिता के कर्त्तव्य से च्युत न समझा जाय।"[६४] नेपाल-यात्रा में राहुल को प्रभावित करने वाले दो व्यक्ति विशेष उल्लेखनीय हैं—महाकवि देवकोटा एवं महिला गुरु। देवकोटा जैसे विस्मृत एवं अज्ञात कवि को नेपाली लोगों से परिचित कराने का श्रेय राहुल जी को है। यायावरों में धर्मानन्द कौसाम्बी, सहजानन्द, हरिशरणानन्द, राजा महेन्द्रप्रताप, अमरसिंह आदि के चरित्र उल्लेखनीय हैं। 'मेरी जीवन-यात्रा (३)' के अन्तर्गत ईरानी मित्रों

सीमियाद और अब्बासी तथा रूसी विद्वानों बरान्निकोफ एवं श्चेर्बात्स्की का सजीव चित्रांकन हुआ है। इन प्रख्यात व्यक्तियों के चरित्रांकन के साथ अपने पारिवारिक सदस्यों एवं प्रारम्भिक शिक्षकों का भी चरित्र-चित्रण राहुल जी ने किया है। अपने पिता गोवर्धन पाण्डे के विषय में राहुल जी लिखते हैं—"पक्के आस्तिक होते हुए भी 'बाबा वाक्यं प्रमाणम्" की अवहेलना करने में वे समर्थ थे। ब्राह्मणों के नियमों के विरुद्ध वे अपने हरवाहे निस्सन्तान चिनगी चमार को मरने पर गंगा तीर जलाने के लिए ले गए। पुरानी प्रथा के विरुद्ध नये कुएँ को बनवाने के लिए विचित्र लम्बाई-चौड़ाई की ईंटें उन्होंने खास तौर से तैयार करवाईं और प्रचलित प्रथा के विरुद्ध कुएँ को नीचे चौड़ा ऊपर संकीर्ण करते हुए बनवाया। साधु-सन्तों में श्रद्धा रखते हुए भी गंजेड़ियों, भंगेड़ियों में वीत-श्रद्ध थे। (मेरी जीवन-यात्रा (१), पृ० ३)

इस प्रकार राहुल जी ने जीवन-यात्रा में आए घनिष्ठ व्यक्तियों का चरित्रांकन सजीव एवं यथार्थ रूप में किया है। घनिष्ठ मित्रों के चरित्र-चित्रण में राहुल जी ने पर्याप्त उदारता से काम लिया है।

विरोधी-नीतियों एवं प्रतिकूल विचार रखने वाले व्यक्तियों का चरित्रांकन भी राहुल जी ने पर्याप्त सहृदयता से किया है। उनकी यह धारणा रही है कि विचार-वैपरीत्य होने पर भी घनिष्टता एवं मित्रता के सम्बन्धों में अन्तर नहीं आता। राहुल जी सामन्तवाद, पूँजीवाद, गान्धीवाद एवं कांग्रेस सरकार की नीतियों के विरोधी रहे हैं।[६५] कई स्थलों पर वे गोविन्दवल्लभ पन्त एवं जवाहरलाल नेहरू की नीतियों की कटु आलोचना भी करते हैं,[६६] पर साथ ही व्यक्ति के रूप में विरोधी विचारों वाले व्यक्तियों का चरित्रांकन राहुल जी ने सहृदयतापूर्वक किया है। गांधी जी की नीति से अप्रभावित होते हुए भी उनकी देश-सेवा के विषय में राहुल जी का कथन है—'गान्धी जी ने देश की जो सेवा की है, वह अद्वितीय है। हमें स्वतन्त्रता, जन-जागरण और कुर्बानियों के कारण मिली, जन-जागरण में सबसे बड़ा हाथ गांधी जी का है।'[६७] राजा महेन्द्रप्रताप के राजनीतिक विचारों से असहमत होते हुए भी राहुल जी उनके चरित्र-चित्रण में अत्यन्त उदार हैं—'यह सब होते हुए भी राजा महेन्द्रप्रताप आग में तपे हुए कुन्दन हैं। आजीवन वह देश के परतन्त्रकर्ता अंग्रेजों के सामने नहीं झुके…देश की आज़ादी के लिए अदम्य विश्वास और अपनी दृष्टि के अनुसार प्रयत्न, अंग्रेजों के प्रति अपार घृणा और सारी बेसरोसामनी के रहते भी अनेक बार दुनिया की परिक्रमा करते प्रथम श्रेणी का घुमक्कड़ होना ये तीन गुण इतने बड़े और इतनी मात्रा में उनमें हैं।"[६८] वस्तुतः राहुल जी भारतीय संस्कृति के प्रतीक चरित्र हैं जिनमें सर्वग्राहकता व गुण-ग्राहकता विशेष रूप से विद्यमान है। उन्होंने 'मेरी जीवन-यात्रा' में सर्वत्र अपना मत प्रस्तुत किया है, विपरीत विचारों वालों के मत का खण्डन भी किया है, परन्तु विरोधियों के प्रति कहीं हल्के शब्दों का प्रयोग नहीं है, प्रत्युत उनके गुणों की प्रशंसा है। राहुल जी ने अन्य पात्रों के चरित्र-चित्रण में पर्याप्त ईमानदारी

से काम लिया है, जो आन्द्रे मॉरवा के शब्दों में आत्मकथा के लेखक के लिए अत्यन्त कठिन कार्य है।

वातावरण-सृष्टि

वातावरण उन समस्त परिस्थितियों का संकुल नाम है जिनमें आत्मकथा-लेखक को जीवन-संघर्ष करना पड़ता है। डॉ० रामग्रवध द्विवेदी के शब्दों में, 'किसी व्यक्ति को हम देश और काल से अलग नहीं कर सकते, क्योंकि उसका जीवन सामयिक और स्थानिक प्रभावों के संघात से ही विकसित होता है। आत्मकथा के लिए काल-क्रम का निर्वाह भी अपेक्षित है।'[९९] आत्मकथा में देशकाल का चित्रण वर्ण्य-विषय की अभिव्यक्ति एवं चरित्रांकन के लिए प्रयोज्य है।

राहुल जी की आत्मकथा में देश-काल और वातावरण का तत्त्व विशेष रूप से उभरा है। राहुल की आत्मकथा यायावर-साहित्यिक की आत्मकथा है। उसमें विविध देशों की राजनीतिक, सामाजिक आदि परिस्थितियों का यथार्थ अंकन हुआ है। 'मेरी जीवन-यात्रा' के प्रथम भाग में राहुल मुख्यतः भारत में ही रहे हैं। द्वितीय भाग मे उनके लंका, यूरोप, तिब्बत, जापान, ईरान, सोवियत भूमि एवं भारत के विविध प्रदेशों के यात्रा-वर्णन हैं। तृतीय भाग सोवियत रूस की यात्रा से सम्बद्ध है। चौथे और पांचवें भाग में राहुल का अधिकांश जीवन-वृत्त भारत के ही विभिन्न स्थानों से सम्बन्धित है। इस प्रकार राहुल जी ने जीवन-यात्रा में आए अनेक देशों एवं राष्ट्रों का सजीव वातावरण अंकित किया है। वस्तुतः उनकी जीवन-यात्रा देश-विदेश की राजनीतिक, सामाजिक आदि परिस्थितियों से उत्पन्न वातावरण का वास्तविक विश्व-कोश है।

राहुल जी की 'मेरी जीवन-यात्रा' में सन् १८९३ ई० से लेकर १९५६ ई० तक के भारत के राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं साहित्यिक परिवेश का काल-क्रमानुसारी अंकन है। इसमे उत्तर-भारत एवं दक्षिण-भारत के वातावरण के सुन्दर चित्र हैं। सामाजिक स्थिति के अंकन मे राहुल जी ने भारतीय जन-जीवन में व्याप्त दरिद्रता, सामाजिक वैषम्य, जातिगत भेद-भाव, सामाजिक रूढियों एवं परम्पराओं के प्रति अन्धविश्वास, रीति-रिवाज आदि का चित्रण किया है।[१००] राजनीतिक स्थिति में राहुल जी मे देश की स्वतन्त्रता के लिए किए गए संघर्षों के साथ-साथ स्वातन्त्र्योत्तर भारत की विविध समस्याओं पर प्रकाश डाला है। सन् १९१७ के महायुद्ध के समय की स्थिति के विषय मे राहुल जी लिखते हैं—'यह महायुद्ध का जमाना था। चीजों का भाव बहुत बढ़ गया था तो भी लोगों का विश्वास नहीं था कि ब्रिटिश साम्राज्य की कोई भारी क्षति होगी। या कम-से-कम भारत के भाग्य में पलटा आने की तो कोई सोचता ही न था। राजनीतिक चेतना शिक्षितों मे बहुत कम थी।'[१०१] सन् १९१८-१९ के चम्पारन आन्दोलन, रोलट-कानून तथा मार्शल-लॉ के वर्णन द्वारा भारतीय जनता की राजनीतिक चेतना का उल्लेख राहुल जी करते हैं।[१०२] सन् १९२१ के असहयोग-आन्दोलन का विस्तृत राजनीतिक परिवेश राहुल जी के वातावरण-अंकन

की क्षमता का सूचक है।[१०३] इस समय के राजबन्दियों में राजनीतिक चेतना के अभाव के विषय में राहुल जी लिखते हैं—'अधिकांश शिक्षित लोगों का पाठ-पूजा और धार्मिक ग्रन्थों के अध्ययन में समय लगाना, यह बतलाता था, कि हमारे साथी राजनीति को कितनी हल्की दृष्टि से देखते थे। वे शायद समझते थे कि स्वराज्य तो आ ही जायेगा, फिर इस लोक की चिन्ता समाप्त हो जायेगी, इसलिये हम परलोक के लिये भी कुछ सम्बल तैयार क्यों न कर ले।'[१०४] इसी प्रकार सन् १९२१ का सत्याग्रह गान्धी-इर्विन समझौता, कराची का कांग्रेस अधिवेशन,[१०५] सन् १९२९ का किसान सत्याग्रह एवं दूसरे महायुद्ध के भारत पर पड़े प्रभाव 'मेरी जीवन-यात्रा (२)' में अंकित हैं।

स्वतन्त्र भारत के वातावरण के अंकन में राहुल जी ने देश-विभाजन की स्थिति के करुणा-पूर्ण चित्र प्रस्तुत किये हैं—'सबसे दिल हिलाने वाली बात यह थी कि १५ अगस्त के महोत्सव के साथ ही बँटे हुए भारत में आग लग गई। पंजाब में मानव मानव को घास-मूली की तरह काट रहा था, बच्चा, बूढ़ा, स्त्री किसी की जान सुरक्षित नहीं थी। सीमान्त कमीशन ने पूर्व और पश्चिम की सीमाओं के बारे में निर्णय दे दिया था।'[१०६] सन् १९४८ की देश की स्थिति का संक्षिप्त अंकन इन पंक्तियों में देखिये, 'उस समय···काश्मीर में युद्ध छिड़ा हुआ था, हैदराबाद कलेजे का काँटा बना हुआ था, देश में रियासतों के प्रतिक्रियावादी राजा और उनके पिट्ठू अपनी सर्वतन्त्र स्वतन्त्रता को छोड़ने के लिए तैयार नहीं थे, देश आर्थिक तौर से अत्यन्त निर्बल था और उसकी सामरिक शक्ति की परीक्षा का यह समय था।'[१०७] भारत संघ में रियासतों के विलयन, पश्चिमी एवं पूर्वी पाकिस्तान से आये हिन्दू शरणार्थियों के पुनर्वास की समस्या का उल्लेख भी राहुल जी करते हैं।[१०८] बीच-बीच में राहुल जी विश्व-स्थिति पर भी दृष्टिनिक्षेप करते चलते हैं।[१०९]

भारत के अनन्तर तिब्बत के वातावरण-अंकन में राहुल जी को विशेष सफलता मिली है। जापान की समस्याओं का वर्णन भी वातावरण के अन्तर्गत लिया जा सकता है।[११०] 'मेरी जीवन-यात्रा (३)' के अन्तर्गत वर्णित ईरान के वातावरण के विषय में शिवचन्द्र का कथन यथार्थ है—'ईरान के सम्बन्ध में, तात्कालिक राजनीतिक, सामाजिक परिस्थितियों के सम्बन्ध में, आज जबकि उसकी स्थितियों में विकास के अनेक परिवर्तन आ गए हैं, उतनी प्रामाणिक तथा विस्तृत जानकारी प्रायः नहीं मिलती, जितनी राहुल जी ने दी है।'[१११] ईरान के रीति-रिवाज, वैवाहिक प्रथा, सामाजिक कुरूपता आदि भली-भाँति अनुरूप शब्दों में प्रकट हैं।[११२] इसी भाग में रूस की आर्थिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, शैक्षिणक, वैज्ञानिक एवं राजनीतिक स्थितियों का सजीव अंकन हुआ है।[११३]

सामाजिक परिवेश के चित्रण के साथ विभिन्न देशों के प्राकृतिक वातावरण का भी सजीव अंकन राहुल जी ने किया है। प्राकृतिक वातावरण के अन्तर्गत ऋतु-वर्णन, प्राकृतिक सुषमा एवं नीरस प्रकृति के दृश्य राहुल जी ने अंकित किए हैं।

शिशिर-ऋतु में रूस की प्रकृति का एक चित्र द्रष्टव्य है—'जाड़े का दिन भी कितना नीरस होता है ? ···हरियाली के लिए आँखें तरसती थीं। अगर कहीं देवदार का दरख्त हुआ, तो आँखों को जरा-सा विश्राम मिला, नहीं तो हरे रंग का कहीं नाम नहीं था। और तो और चिड़ियों का भी पता नहीं था। केवल घरों में रहने वाली गोरैया सिकुड़ी-सिमटी कभी-कभी बरफ पर इधर-उधर फुदकती दिखाई देती। पचासों तरह की चिड़ियाँ, जो गर्मियों मे चहचहाया करती थी, वे सब गरम इलाकों को ढूँढ़ती हुई दक्षिण की ओर चली गई थी।'[११४] इसी प्रकार हिमालय की प्राकृतिक छवि के अनेक चित्र राहुल जी के प्राकृतिक वातावरण-चित्रण के सजीव निदर्शन हैं।[११५]

वातावरण-चित्रण मे स्थान-वर्णन का अपना महत्त्व होता है। देश अथवा स्थान के वर्णन के लिए स्थानीय ज्ञान अनिवार्य है। यायावर होने के कारण राहुल जी की आत्मकथा मे नगरो, गाँवों एवं देशो का वर्णन अत्यन्त स्वाभाविक हुआ है। यायावर-आत्मकथा-लेखक न जाने कितने देशों, प्रान्तों, नगरों एवं गाँवों से गुजरा है, वहाँ का साक्षात्कार किया है, अतः उसके स्थानीय ज्ञान के विषय में कोई संदेह नही रहता। राहुल जी के स्थान-वर्णन मे स्वाभाविकता एवं सजीवता है। शान्तिनिकेतन का भावात्मक एवं सजीव वर्णन देखिए—'शान्तिनिकेतन की चान्दनी मुझे बहुत प्रखर और सुन्दर मालूम होती थी। शायद वहाँ के वातावरण से बहुत प्रभावित होने के कारण तथा महाकवि के सामने उपस्थित न होने के ख्याल से यह बात थी। रात-भर पक्षियों के मनोहारी कलरव के बारे में क्या कहा जाए ? कोयलों ने तो अखण्ड व्रत ले रखा था। यह सर्द मुल्क की चिड़िया यहाँ गर्मी में मरने क्यों आती है ? आम्र-कानन मे इस वक्त चारो ओर मंजरी-ही-मंजरी दिखाई देती थी, जिसके पास आने से उसकी मधुर गन्ध सचमुच ही मन को मस्त कर देती थी।'[११६] कौशाम्बी के वर्णन मे राहुल जी उसके ऐतिहासिक महत्त्व को अंकित करते हैं—'बुद्ध के वक्त में कौशाम्बी भारत की बहुत बड़ी नगरी थी। यह वत्स देश के राजा उदयन की राजधानी थी। ·· कौशाम्बी सिर्फ राजधानी ही नही थी, बल्कि व्यापार का एक बड़ा केन्द्र थी, ···· लेकिन मगध की प्रधानता के बाद जान पड़ता है, कौशाम्बी को राजधानी बनने का सौभाग्य फिर न प्राप्त हुआ······आज तो वह उजाड़ है। यद्यपि पुरानी बस्ती के निशान मिट्टी के गढ़ की मोटी जैसी दीवालों से बहुत दूर तक मिलते हैं, जहाँ तक छोटे-छोटे गाँव भी हैं, लेकिन सभी श्रीहीन।'[११७] यहाँ कौशाम्बी का वर्णन इतिहासकार राहुल का वर्णन है, उसके प्राचीन वैभव और वर्तमान की दयनीयता का अंकन है। प्रायः ऐतिहासिक नगरों का वर्णन राहुल जी ने इसी रूप मे किया है।

देश-काल एवं वातावरण के सजीव चित्रण राहुल जी के सर्जनात्मक साहित्य की प्रमुख विशिष्टता है। उनकी जीवन-यात्रा मे इसका सजीव एवं स्वाभाविक समावेश उनकी रचना के महत्त्व का प्रतिपादक है। आत्मकथापरक रचनाएँ मूलतः इतिहासपरक होती हैं। देशकाल के चित्रण द्वारा राहुल जी इतिहास तत्त्व को उभार

ा। जहां मन में आता वहां तम्बू लगाता। तरुणी और मैं से सामान उतारते। दो बड़े कुत्ते हमारी चीजों की रख- । बनाती, फिर उस निर्जन, निर्वृक्ष नगी पार्वत्य उपत्यका मे ' विचित्र-सा जीवन बिताते।"[१२१] राहुल जी की यह सरल ापा-शैली 'मेरी जीवन-यात्रा' मे आद्यन्त विद्यमान है।

ट साहित्य पर विचार एवं इसके साहित्यकारों के संस्मरणा- समय राहुल जी की भाषा सशक्त साहित्यिक भाषा के रूप मे पा की परिमार्जितता, परिनिष्ठता एवं सौष्ठव देखते ही बनता ग मे उनका एक कथन अवलोकनीय है—"पहले मे कुछ कृश मूर्ति थी। बातें करते रहे, कभी हमसे और कभी अपने मन । वह दोनो लोको में एक ही समय विचरने मे समर्थ थे— ार कभी स्वप्न-जगत् मे। निराला जी को पागल कौन कह की जगत् और स्वप्न की सीमाएँ टूट गई हैं, उसके लिए ही, असम्भव है। यह हम अपनी जागृत, स्वप्न अवस्था को । निराला जी इस सीमा के उच्छेद के बाद भी बड़े संयम और रते हैं, यह असाधारण है। कोई भी अपरिचित सहृदय व्यक्ति निराश या अपमानित होकर नही लौटता।"[१२२] राहुल जी के म्भीर प्रश्नो के विवेचन मे भी भाषा-शैली का यही रूप प्राप्त : 'मेरी जीवन-यात्रा' राहुल जी की प्रौढ भाषा-शैली की परि- ानुसरण करती हुई उनकी भाषा-शैली उग्र-मधुर, सरल-स्वाभा- हित्यिक का ऋजु-वक्र मार्ग अपनाती हुई निरन्तर प्रौढ़ता, नेष्ठता धारण करती हुई सुसंस्कृत होने का गौरव प्राप्त कृत्रिमता नहीं, जटिलता नही, अस्वाभाविकता नही, सर्वत्र स्वाभाविकता है। वह सुबोध, रुचिकर एवं आकर्षक है। ं एवं कलात्मक चारुता है। वह समर्थ शब्द-शिल्पी की भाषा मक राहुल जी की शैली है। कहीं वर्णनात्मक एवं विवरणा- एवं चित्रात्मक, कहीं व्यंग्यात्मक तथा ओजगुणसम्पन्न, कहीं न्दनी-लेखन के गुणों से समृद्ध, कहीं पत्रात्मक और कहीं निबंधा- हो, उनकी शैली सर्वत्र निर्व्याज, अक्लिष्ट एवं सहज है। डॉ० उनकी भाषा-शैली के विषय में कथन अक्षरश: सत्य है— रम और गरम दोनो प्रकार की शैली का रसास्वादन करेंगे जो

र में एकत्र हो गई है। भाषा-शैली की दृष्टि से 'मेरी जीवन-यात्रा'
' साहित्यिक-लेखन का प्रतिनिधित्व करने वाली कृति है।
'मेरी जीवन-यात्रा' यात्रा-साहित्य की अनेक विशेषताओं को समा-
रचरित के कलात्मक रूप-विधान में सम्पन्न हिन्दी के आत्मकथा-
मूल्य निधि है। एक वैज्ञानिक की भाँति अपने जीवन को प्रयोग-
योगों को दर्शाते हुए एवं परम सत्य को उपलब्धि से निज को
को उससे अवगत करवाने के लिए राहुल जी का यह प्रयास
निरपेक्षता, सन्तुलन, चारित्रिक दृढ़ता एवं बौद्धिक उदारता से
आत्मकथा-लेखक हो सकता है, राहुल जी में इन सभी गुणों की
बहुमुखी व्यक्तित्व से सम्पन्न राहुल जी का जीवन आत्मकथात्-
त् विषय है। इस रचना में यद्यपि कहीं-कहीं सम्बद्धता का
है, फिर भी वर्ण्य-विषय की सर्वत्र स्पष्टता, रोचकता एवं यथा-
ुशलता, सहृदयता एवं तटस्थता, परिवेश-वर्णन की सच्चाई और
र सामर्थ्य, शैली की चारुता एवं माधुर्य, भाषा की सजीवता,
यकता, उद्देश्य की पवित्रता एवं महत्ता – ये सब मिलकर राहुल
यात्रा' को हिन्दी की विकासशील आत्मकथापरक साहित्य-विधा
ा स्थान दिलाने में समर्थ हैं।

ग) राहुल जी का संस्मरण-साहित्य

विवेचन

त्य की अपेक्षाकृत नूतन विधा है और अन्य नवीन साहित्य-
का आगमन भी पश्चिम से हुआ है। संस्मरण अंग्रेजी के
र हिन्दी में प्रयुक्त होता है। 'मैमॉयर्स' में लेखक किसी महान् एवं
की गई यात्रा अथवा उसके साथ कुछ दिन रहने पर उस समय
नाओं और अनुभवों की मधुर-कटु स्मृतियों का वर्णन करता है
क्ति के साथ-साथ लेखक के निजी हृदय की भावनाओं और अनु-
हो जाता है।[५४] एडगर जॉनसन संस्मरण के स्वरूप के विषय
और संस्मरण शब्द प्रकृति और विषय की औपचारिकता का
लिखते समय जो भी स्मरण कर सकता है, उसी का उनमें

संस्मरण के विषय में लिखते हैं—'भावुक कलाकार जब अतीत

रीर, मुँह पर किसी समय रौब कायम करने वाली किन्तु प्रशान्त
ालने में एक तरह की सादगी, यह रूप था बाबू रामानन्द सिंह
२२ ई० में बक्सर जेल में देखा था।"[130]

करते समय राहुल जी ने अपने चरित्र-नायकों के केवल बाह्य
अपितु उनके क्रिया-कलाप, स्वभाव एवं रुचियों का भी चित्-
है। ऐसी अवस्था में पात्रों के व्यक्तित्व का अन्तः-चित्रण भी उन
पण्डित रामावतार के व्यक्तित्व की झाँकी राहुल जी इन शब्दों
र्ा जी लीक पर चलने वाले नहीं थे, लेकिन जहाँ तक सामाजिक
था, उन्हें तोड़ने का उन्हें साहस न था, इच्छा नहीं थी। ऑक्स-
े प्रोफेसर का स्थान देने की बात हुई तो समुद्र-यात्रा करने पर
देंगे, इसलिए वह वहाँ नहीं गये...पं० रामावतार शर्मा ने रूस
ान् कोश को देखकर चाहा, उसी तरह का और उससे भी अधिक
जाय। उन्होंने उसमें हाथ भी लगा दिया था, पर किसी काम को
ूरा कर डालना, उनकी प्रकृति के विरुद्ध था, इसलिए वह कोश
[138] डॉ० बद्रीप्रसाद के संस्मरण में डॉक्टर साहब के अन्तरंग का
जी ने प्रस्तुत किया है—"उनकी पत्नी लक्ष्मी देवी ब्याह के समय
परिवार को सम्भालते हुए बी० ए० भी पास कर लिया। बच्चों
रवरिश का काम सिर पर था। डॉ० प्रसाद के मित्रों की संख्या
थी को सम्भालना बड़ा काम था। आदमी के जीवन में उसका
मालूम होता। पर उसके न रहने पर अभाव बुरी तरह से खट-
ा देहान्त हो जाने पर डॉ० प्रसाद को अपने भीतर और बाहर
ा अनुभव होता है। लड़कियाँ ब्याह कर अपने पतियों के साथ
ाम पर बम्बई रहता है। अपनी परिमार्जित सुरुचि का उपयोग
बंगला बनवाया, जिसमें अकेले रहने में वह खोये-खोये से मालूम
र मयुरा बाबू के व्यक्तित्व-अंकन में राहुल जी उसके गुणों एवं
करते हैं।"[140] बाबू रामउदार राय का स्मितमुख एवं उनकी
ंक चित्र भी राहुल जी ने प्रस्तुत किया है।[141] स्पष्ट है कि
ा अपने चरितनायकों के अन्तः-बाह्य व्यक्तित्व के चित्रण में
जय किया है।

नकार लेखक का राजनीतिक व्यक्तित्व 'पण्डित गोविन्ददास' शीर्षक
: है।"[५०] इस प्रकार राहुल जी के संस्मरणों में उनका निजी व्यक्ति-
झलकता है, जिसके कारण उनके संस्मरण पाठक के लिये सहज ग्राह्य
न गये हैं।

णंन

ा एवं परिवेश के चित्रण द्वारा संस्मरणों में वास्तविकता एवं सजीवता
पाठकों पर उनका गहरा प्रभाव पड़ता है। संस्मरण में वातावरण का
ावश्यक है क्योंकि 'देश और काल की पृष्ठभूमि के बिना पात्रों एवं
ा स्पष्ट नहीं होता।"[५८] देशकाल में वास्तविकता लाने के लिए
आवश्यक है। राहुल जी के संस्मरणों में देश-काल के सजीव चित्र
के साथी' में सन् १६२१ से १६२६ के मध्य के भारतीय स्वतन्त्रता
त चित्रित है। भारतीय ग्राम्यजीवन की आर्थिक स्थिति, अंग्रेजों द्वा
ता के लिए जनता की तड़प आदि का वर्णन 'मेरे असहयोग के
ठ पर देखा जा सकता है। इसी प्रकार रामदीन मामा के संस्मरण
काल का वर्णन राहुल जी ने इन शब्दों में किया है—"फसली सन्
आजमगढ़ और आस-पास के जिलों में भयंकर अकाल पड़ा। मैं
यद्यपि मेरे नाना और पिता के घर पर अकाल का कोई प्रभाव
ास-पास की घटनाएँ ऐसी असह्य थीं कि उनका मेरे शिशु-हृदय
न रहा।"[५६]

त्मक शैली ।
नेक शैली ।
ात्मक शैली – संस्मरण-लेखक शैली में निबन्धकार के पथ
न्दी साहित्य कोश' में इस विषय में लिखा है—'संस्मरण-लेख
जिसका वह स्वयं अनुभव करता है, उसी का वर्णन करता है
ी अपनी अनुभूतियाँ, संवेदनाएँ भी रहती हैं। इस दृष्टि से
के समीप है।"[१७८] इस प्रकार संस्मरण-लेखक की प्रमुख शै
नी जा सकती है। राहुल जी ने अधिकाश संस्मरणों में निबन्ध
किया है। वे निबन्धकार की भाँति किसी विषय पर अपन
ा घटना एवं स्थल का वर्णन प्रायः इस शैली में करते हैं
ैली में लिखे गये सस्मरणो में गतिशीलता एवं प्रवाह है तथ
ने की सामर्थ्य भी। एक उदाहरण देखिये—'कहते हैं गर्भ के
नुष्य के बच्चे और चूहे-बिल्ली के बच्चे में कोई अन्तर नही
याँ उनको अलग-अलग कर देती हैं। दुनिया में आते वक्त
ई-चौड़ाई में थोडा-बहुत अन्तर चाहे रखते हैं, किन्तु भविष्य
सका पता नहीं लगता। जब वह अपने योग्य काम ढूँढते हैं,
ा नही मिला, तो उनकी अन्तर्निहित शक्तियाँ भीतर ही सूख

८०. डिक्शनरी ग्राफ़ वर्ड लिटरेचर-टी० शिप्ले, पृ० ११।
८१. मेरी कहानी-जवाहरलाल नेहरू, पृ० ६।
८२. मार्क्सिज्म ग्राफ़ बायोग्राफ़ी-पाण्डे मारिया, पृ० १८३।
८३. मेरी जीवन-यात्रा (२), पृ० २।
८४. वही, पृ० १४५।
८५. मेरी जीवन-यात्रा (४), पृ० ४१३।
८६. मेरी जीवन-यात्रा (४), पृ० ४८६।
८७. मेरी जीवन यात्रा (५), पृ० ३६४।
८८. मेरी जीवन-यात्रा (४), पृ० ३४८
८९. वही, पृ० ६६।
९०. मेरी जीवन-यात्रा (२), पृ० ७।
९१. मेरी जीवन-यात्रा (२), पृ० ११४।
९२. मेरी जीवन-यात्रा (४), पृ० ३८७।
९३. मेरी जीवन-यात्रा (५), पृ० ४१६।
९४. मेरी जीवन-यात्रा (२), पृ० १७६।
९५. मेरी जीवन-यात्रा (१), पृ० ४२३, ४७१-५०६; तथा मेरी जीवन-यात्रा (१
पृ० ४१२, ६७।
९६. मेरी जीवन-यात्रा (४), पृ० ४८६।
९७. मेरी जीवन-यात्रा (४), पृ० १४।
९८. वही, पृ० ४१२, ४१३।
९९. साहित्य-रूप पृ० १३३।
१००. (क) मेरी जीवन-यात्रा (१), पृ० ५, ६, १६२।
(ख) मेरी जीवन-यात्रा (२), पृ० ६०, ११५।
(ग) मेरी जीवन-यात्रा (४), पृ० ८, २१, ३३५।
(घ) मेरी जीवन-यात्रा (५), पृ० ८, १०१।
१०१. मेरी जीवन-यात्रा (१), पृ० २६०।
१०२. वही, पृ० ३०८, ३१०, ३१२।
१०३. वही, पृ० ३८५, ३८६, ३९६।
१०४. मेरी जीवन-यात्रा (२), पृ० ३६६।
१०५. मेरी जीवन-यात्रा (२), पृ० ११५।
१०६. मेरी जीवन-यात्रा (४), पृ० १, २।
१०७. वही, पृ० ५८।
१०८. वही, पृ० ११६, ३७४।
१०९. मेरी जीवन-यात्रा (५), पृ० ८८।
११०. मेरी जीवन-यात्रा (२), पृ० ३१०, ३२५, ३२७, ३३१।
१११. आलोचना (अक्तूबर, १९६७), पृ० १३८।
११२. मेरी जीवन-यात्रा (३), पृ० २७, ३५।
११३. वही, पृ० ५९-६५, ७१, १५०, १५३, २३५।
११४. वही, पृ० १५२।
११५. मेरी जीवन-यात्रा (१), पृ० ६४ तथा
मेरी जीवन-यात्रा (२), पृ० ८३, ८४ तथा
मेरी जीवन-यात्रा (४), पृ० ४८७।

११६. मेरी जीवन-यात्रा (४), पृ० २६८।
११७. मेरी जीवन-यात्रा (२), पृ० २६।
११८. मेरी जीवन-यात्रा (१), प्राक्कथन।
११९. वही, पृ० १५।
१२०. मेरी जीवन-यात्रा (१), पृ० ६७।
१२१. वही, पृ० ४४८।
१२२. मेरी जीवन-यात्रा (४), पृ० ४१५।
१२३. मेरी जीवन-यात्रा (५), पृ० १२७।
१२४. वही, दो शब्द।
१२५. साहित्य-सन्देश (दिसम्बर, १९६६), पृ० २१५।
१२६. वन माइटी टोरेंट-एडगर जॉनसन, पृ० १२५।
१२७. शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त (द्वितीय भाग), पृ० ४६७।
१२८. हिन्दी गद्य : विधाएँ और विकास-डॉ० पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश', पृ० ११२।
१२९. आलोचना (दिसम्बर, १९६६), पृ० ७६।
१३०. मेरे असहयोग के साथी, पृ० २१।
१३१. जिनका मैं कृतज्ञ, पृ० ५।
१३२. वही, पृ० ८०।
१३३. वही, पृ० ११५।
१३४. वही, पृ० १८१।
१३५. वही, पृ० १०।
१३६. वही, पृ० २४-२५।
१३७. मेरे असहयोग के साथी, पृ० ५८।
१३८. जिनका मैं कृतज्ञ, पृ० ६१।
१३९. वही, पृ० २०३।
१४०. मेरे असहयोग के साथी, पृ० ३, ४।
१४१. वही, पृ० २३।
१४२. जिनका मैं कृतज्ञ, पृ० ६४।
१४३. वही, पृ० २६३।
१४४. वही, पृ० १८७।
१४५. वही, पृ० ९७।
१४६. मेरे असहयोग के साथी, पृ० ४८।
१४७. वही, पृ० १०२।
१४८. साहित्य-सन्देश (जुलाई-अगस्त, १९६६), पृ० २६।
१४९. अतीत से वर्तमान, पृ० ८२।
१५०. वही, पृ० ६६।
१५१. वही, पृ० ७३, ८१।
१५२. मेरे असहयोग के साथी, पृ० ११, १२, २२, ४०, ४१।
१५३. वही, ४२, ६१।
१५४. वही, ५०, ५५, ६८।
१५५. बचपन की स्मृतियाँ, पृ० १, ११, २६।

सन्दर्भ

१. अशोक के फूल-हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० १८० ।
२ एन इण्ट्रोडक्शन टु दि स्टडी ऑफ लिटरेचर, पृ० १४ ।
३. एमीनेंट विक्टोरियंस-लिटन स्ट्रैची, पृ० ७ ।
४. ए बैकग्राउण्ड टु दि स्टडी ऑफ इंगलिश लिटरेचर, पृ० १९६ ।
५. हिन्दी साहित्य-कोश, पृ० ३०५ ।
६. दि इनसाइक्लोपीडिया अमेरिकना (खण्ड ३), पृ० ७२२ ।
७. डिक्शनरी ऑफ वर्ल्ड लिटरेचर, पृ० ७३ ।
८. इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका (खण्ड ३), पृ० ६५३ ।
९. वन माइटी टोरेण्ट-एडगर जॉनसन, पृ० ४० ।
१०. इंग्लिश बायोग्राफी इन दि सैवनटीन्थ सेंचुरी-वाइवियन डी० सोला पिण्टो, पृ० ११।
११. दि कोलम्बिया इनसाइक्लोपीडिया, पृ० २०२ ।
१२. लिटरेरी बायोग्राफी-लिओ एडल, पृ० १ ।
१३. समीक्षा-तत्त्व, पृ० १५४ से उद्धृत ।
१४. एमीनेंट विक्टोरियंस, पृ० ७ ।
१५. मास्टरपीस ऑफ बायोग्राफी, पृ० १०२ ।
१६ लिटरेरी बायोग्राफी-लिओ एडल, पृ० १ ।
१७. मास्टरपीस ऑफ बायोग्राफी, पृ० २० ।
१८. वही, पृ० ५० ।
१९. वही, पृ० ७० ।
२०. डिक्शनरी ऑफ वर्ल्ड लिटरेचर, पृ० ७३ ।
२१. हिन्दी साहित्य-कोश, पृ० ३०५ ।
२२. दि पर्सपैक्टिव ऑफ बायोग्राफी-सर सिडनी ली, पृ० ८ ।
२३. वही ।
२४. वीर चन्द्रसिंह गढ़वाली (भूमिका), पृ० ६ ।
२५. वही, पृ० १-५ ।
२६. सिंहल घुमक्कड़ जयवर्धन, पृ० २३ ।
२७. नये भारत के नये नेता, पृ० 'क', 'ख' ।
२८. क्रान्ति-पथ का पथिक-पृथ्वीसिंह, पृ० 'ठ' ।
२९. सिंहल के वीर, पृ० १६, ३६, २८, २१ ।
३०, मास्टरपीस ऑफ बायोग्राफी, पृ० ४८, ५६ ।
३१. वही, पृ० ५० ।
३२. सरदार पृथ्वीसिंह, पृ० ४ ।
३३. वही, पृ० ५ ।
३४. साहित्य-शास्त्र का पारिभाषिक शब्द-कोश, पृ० १०३ ।
३५. वीर चन्द्रसिंह गढ़वाली, पृ० ७५ ।
३६. वही, पृ० ११३ ।
३७. वही, पृ० ३६ ।
३८. माओ-चे-तुंग, पृ० ८२ ।
३९. वही, पृ० २०, ११६, १८० ।

४०. कार्ल मार्क्स, पृ० १०, ११ ।
४१ कप्तान लाल, पृ० ६ ।
४२ वीर चन्द्रसिंह गढ़वाली, पृ० १११ ।
४३. घुमक्कड़ स्वामी, पृ० ४१ ४२ ।
४४ कार्ल मार्क्स, पृ० ४ ।
४५ माओ-त्से-तुंग, पृ० १८ ।
४६ वीर चन्द्रसिंह गढ़वाली, पृ० २ ।
४७ सिंहल घुमक्कड़ जयवर्धन, पृ० ६ ।
४८. सरदार पृथ्वीसिंह, पृ० ३६, ४१ ।
४९. वीर चन्द्रसिंह गढ़वाली, पृ० ११४-१६१ ।
५० घुमक्कड़ स्वामी, पृ० १४, १५, ४७, ४८, ८२ ।
५१ वीर चन्द्रसिंह गढ़वाली, पृ० ३२८ ।
५२ वही, पृ० ३, १०, ११ ।
५३ सिंहल के वीर, पृ० २५ ।
५४ सिंहल घुमक्कड़ जयवर्धन, पृ० २० ।
५५ दि पर्सपेक्टिव ऑफ बायोग्राफी, पृ० ७ ।
५६ एमीनेंट विक्टोरियन्स-लिटन स्ट्रैची, पृ० ८ ।
५७ हिन्दी साहित्य-कोश, पृ० ८६ ।
५८. डिज़ाइन एण्ड ट्रूथ इन आटोबायोग्राफी, पृ० ६ ।
५९ वही ।
६०. इंग्लिश आटोबायोग्राफी-वेन शुमेकर, पृ० १०६ ।
६१. एवरी मैन ए फिनिक्स-मारग्रेट बोटरल, पृ० ८ ।
६२. हिन्दी साहित्य में जीवन-चरित का विकास, पृ० १५ ।
६३. मेरी जीवन-यात्रा (१), प्राक्कथन ।
६४ आलोचना (सं० नामवरसिंह, अक्तूबर १९६७), पृ० १३७ ।
६५. हिन्दी यात्रा-साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन, पृ० १२६ ।
६६. मेरी जीवन-यात्रा (५), ११० ।
६७. वही, पृ० ११० ।
६८. इंग्लिश आटोबायोग्राफी, पृ० ११० ।
६९. डिज़ाइन एण्ड ट्रूथ इन आटोबायोग्राफी, पृ० ८ ।
७०. अन आइटी पोर्ट्रेट-एडगर जॉनसन, पृ० ६७ ।
७१. वही, पृ० ६६ ।
७२. आस्पेक्ट्स ऑफ़ बायोग्राफी, पृ० ११८ ।
७३ डिज़ाइन एण्ड ट्रूथ इन आटोबायोग्राफी, पृ० १८ ।
७४. वही, पृ० १९ ।
७५. इंग्लिश आटोबायोग्राफी, पृ० १०७ ।
७६. साहित्य-स्वर, पृ० ११४ ।
७७ एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका (वाल्यूम ३), पृ० ४१५.
७८. साहित्य-स्वर, पृ० ११४ ।
७९. आत्मकथा रामप्रसाद बिस्मिल (सम्पादकीय से) ।

११६. मेरी जीवन-यात्रा (४), पृ० २६८।
११७. मेरी जीवन-यात्रा (२), पृ० २६।
११८. मेरी जीवन-यात्रा (१), प्राक्कथन।
११९ वही, पृ० १५।
१२०. मेरी जीवन-यात्रा (१), पृ० ६७।
१२१. वही, पृ० ४४८।
१२२. मेरी जीवन-यात्रा (४), पृ० ४१५।
१२३ मेरी जीवन-यात्रा (५), पृ० १२७।
१२४. वही, दो शब्द।
१२५ साहित्य-सन्देश (दिसम्बर, १९६६), पृ० २१५।
१२६ वन माइटी टोरेंट-एडगर जॉनसन, पृ० १२५।
१२७. शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त (द्वितीय भाग), पृ० ४६७।
१२८. हिन्दी गद्य: विधाएँ और विकास-डॉ० पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश', पृ० ११२।
१२९. आलोचना (दिसम्बर, १९६६), पृ० ७६।
१३०. मेरे असहयोग के साथी, पृ० २१।
१३१. जिनका मैं कृतज्ञ, पृ० ५।
१३२. वही, पृ० ८०।
१३३. वही, पृ० १३५।
१३४. वही, पृ० १८१।
१३५. वही, पृ० १०।
१३६. वही, पृ० २४-२५।
१३७. मेरे असहयोग के साथी, पृ० ५८।
१३८. जिनका मैं कृतज्ञ, पृ० ६१।
१३९. वही, पृ० २०३।
१४०. मेरे असहयोग के साथी, पृ० ३, ४।
१४१. वही, पृ० २३।
१४२. जिनका मैं कृतज्ञ, पृ० ६४।
१४३. वही, पृ० २६३।
१४४. वही, पृ० १८७।
१४५. वही, पृ० ६७।
१४६. मेरे असहयोग के साथी, पृ० ४८।
१४७. वही, पृ० १०२।
१४८. साहित्य-सन्देश (जुलाई-अगस्त, १९६६), पृ० २६।
१४९ अतीत से वर्तमान, पृ० ८२।
१५०. वही, पृ० ६६।
१५१. वही, पृ० ७३, ८३।
१५२ मेरे असहयोग के साथी, पृ० ११, १२, ३६, ४०, ४१।
१५३. वही, ४२, ६१।
१५४. वही, ३०, ६५, ६८।
१५५. बचपन की स्मृतियाँ, पृ० १, १३, ६६।

११६. मेरी जीवन-यात्रा (४), पृ० २६८।
११७. मेरी जीवन-यात्रा (२), पृ० २६।
११८. मेरी जीवन-यात्रा (१), प्राक्कथन।
११९. वही, पृ० १५।
१२०. मेरी जीवन-यात्रा (१), पृ० ६७।
१२१. वही, पृ० ४४८।
१२२. मेरी जीवन-यात्रा (४), पृ० ४१५।
१२३. मेरी जीवन-यात्रा (५), पृ० १२७।
१२४. वही, दो शब्द।
१२५ साहित्य-सन्देश (दिसम्बर, १९६६), पृ० २१५।
१२६ वन माइटी टॉरेंट-एडगर जॉनसन, पृ० १२५।
१२७ शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त (द्वितीय भाग), पृ० ४६७।
१२८. हिन्दी गद्य विधाएँ और विकास-डॉ० पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश', पृ० ११२।
१२९ आलोचना (दिसम्बर, १९६६), पृ० ७६।
१३०. मेरे असहयोग के साथी, पृ० २१।
१३१. जिनका मैं कृतज्ञ, पृ० ५।
१३२. वही, पृ० ८०।
१३३. वही, पृ० ११५।
१३४. वही, पृ० १८१।
१३५. वही, पृ० १०।
१३६. वही, पृ० २४-२५।
१३७. मेरे असहयोग के साथी, पृ० ५८।
१३८. जिनका मैं कृतज्ञ, पृ० ९१।
१३९. वही, पृ० २०३।
१४०. मेरे असहयोग के साथी, पृ० ३, ४।
१४१. वही, पृ० २३।
१४२. जिनका मैं कृतज्ञ, पृ० ६४।
१४३. वही, पृ० २६३।
१४४. वही, पृ० १८७।
१४५. वही, पृ० ६७।
१४६ मेरे असहयोग के साथी, पृ० ४८।
१४७. वही, पृ० १०२।
१४८. साहित्य-सन्देश (जुलाई-अगस्त, १९६६), पृ० २६।
१४९. अतीत से वर्तमान, पृ० ८२।
१५०. वही, पृ० ६९।
१५१. वही, पृ० ७३, ८१।
१५२. मेरे असहयोग के साथी, पृ० ११, १२, २९, ४०, ४१।
१५३. वही, ४२, ६१।
१५४. वही, ५०, ६९, ६८।
१५५. बचपन [illegible] स्मृतियाँ, पृ० १, ११, २६।

१५६ मेरे असहयोग के साथी, पृ० ५२ ।
१५७. जिनका मैं कृतज्ञ, पृ० ६२ ।
१५८. आधुनिक हिन्दी का जीवनीपरक साहित्य, पृ० २६८ ।
१५९. जिनका मैं कृतज्ञ, पृ० १ ।
१६०. वही, पृ० ३६ ।
१६१. वही, पृ० ६० ।
१६२. वही, पृ० १०६ ।
१६३. अतीत से वर्तमान, पृ० १०३ ।
१६४. आधुनिक हिन्दी का जीवनीपरक साहित्य, पृ० २७१ ।
१६५. बचपन की स्मृतियाँ, पृ० १३ ।
१६६. मेरे असहयोग के साथी, पृ० १२ ।
१६७. जिनका मैं कृतज्ञ, पृ० ३५ ।
१६८. वही, पृ० ३ ।
१६९. वही, पृ० ४० ।
१७०. जिनका मैं कृतज्ञ, पृ० २४, २७ तथा बचपन की स्मृतियाँ, पृ० १ से १० ।
१७१. मेरे असहयोग के साथी, पृ० २ तथा जिनका मैं कृतज्ञ, पृ० ४७ ।
१७२. जिनका मैं कृतज्ञ, पृ० ५१ ।
१७३ वही, पृ० ६५ ।
१७४. वही, पृ० १११ ।
१७५. वही, पृ० १२७ ।
१७६ वही, पृ० १८१ ।
१७७. वही, पृ० ५७, ५८ ।
१७८. हिन्दी साहित्य-कोश, पृ० ८०३ ।
१७९. मेरे असहयोग के साथी, पृ० ६२ ।
१८०. जिनका मैं कृतज्ञ. पृ० ५७, ५८ ।
१८१. बचपन की स्मृतियाँ, पृ० १ ।
१८२. जिनका मैं कृतज्ञ, पृ० १५५, १५६ ।
१८३. वही, पृ० ४ ।
१८४. वही, पृ० ७ ।
१८५. वही, पृ० ६ ।
१८६. वही, पृ० ५६ ।
१८७. मेरे असहयोग के साथी, २ ।
१८८. बचपन की स्मृतियाँ, पृ० ४० ।
१८९. जिनका मैं कृतज्ञ, पृ० ५७ ।
१९०. वही, पृ० ११५ ।
१९१. वही, ३३-३५ ।
१९२. वही, पृ० ५१ ।

चौथा परिवर्त

राहुल जी का यात्रा-साहित्य

यात्रा : अर्थ और महत्त्व

यात्रा शब्द संस्कृत के या धातु से व्युत्पन्न है। इस शब्द के विद्वानों ने विविध अर्थ दिये हैं। 'संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ' में इसका अर्थ 'सफर, एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने की क्रिया' दिया गया है।[1] हिन्दी विश्वकोषकार श्री नगेन्द्रनाथ वसु इसका अर्थ इस प्रकार से देते हैं :—(सं० स्त्री०) या हुयामाधुमसिम्यस्त्रन्। उण् ४।१६७ इति ष्ट्रन् टाप्। विजय की इच्छा से कहीं जाना, चढ़ाई पर्याय व्रज्या, अभिनिर्याण, प्रस्थान, गमन, गम, प्रस्थिति। दर्शनार्थ देवस्थानों को जाना, तीर्थाटन। एक स्थान से दूसरे स्थान को जाने की क्रिया आदि।[2] डॉ० वसु द्वारा निर्दिष्ट 'यात्रा' शब्द की यह व्याख्या पर्याप्त व्यापक एवं वैज्ञानिक कही जा सकती है। इसी प्रकार का अर्थ पाश्चात्य विद्वान् डॉ० ए० ए० मेकडोनल भी देते हैं[3]। इन अर्थों के आधार पर 'यात्रा' का एक सर्वमान्य एवं समन्वित लक्षण इस प्रकार लिया जा सकता है—एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने की क्रिया। ज्ञानार्जन, व्यापार, मनोरंजन, धर्म-साधना एवं युद्ध की भावना से प्रेरित होकर यह क्रिया (यात्रा) की जाती है। वस्तुतः संचरणशीलता यात्रा का प्रमुख लक्षण है।

यह संसार संचरणशील है और मनुष्य को अपने विकास के लिए निरन्तर गतिशील रहना पड़ता है। 'ऐतरेय ब्राह्मण' में मनुष्य की आध्यात्मिक और आधि-भौतिक उन्नति के लिए 'चरैवेति चरैवेति' के मन्त्र द्वारा उसके निरन्तर गतिशील रहने पर ज़ोर दिया गया है।[4] इसी ग्रन्थ मे एक स्थान पर यात्रियों की मार्ग-बाधाओं का भी उल्लेख है।[5] मनुष्य के व्यावहारिक जीवन मे यात्रा के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए श्री दामोदर गुप्त लिखते हैं – "जो लोग घूम-फिर कर दूसरे देशों की वेशभूषा, रहन-सहन और बोली का अध्ययन नही करते, वे बिना सींग के बैल के समान हैं···जब आदमी समुद्र से घिरी पृथ्वी पर भ्रमण करता है तब वह सज्जनों के आचरण, दुर्जनों की चेष्टा, विविध प्रकार के लोगो की उत्कण्ठा, विदग्ध-जनो के परि-हास, गम्भीर और गूढ़ शास्त्रों के तत्त्व···से परिचित होता है।"[6] वस्तुतः यात्रा ज्ञान और शिक्षा का एक प्रमुख साधन है, इससे मनुष्य की बुद्धि का विस्तार होता है।

यात्रा का जीवन से अविच्छिन्न सम्बन्ध है। प्राकृतिक आदिम मनुष्य परम घुमक्कड़ था।[7] जीवनगत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए आदिकाल से मनुष्य मह-पर्वत-कान्तारों की यात्रा करता आया है। बिना यात्रा किए उसका जीवन दूभर था,

उसके पास जीवन-यापन के अन्य साधन न थे। मनुष्य की आज तक की प्रगति उसकी यात्राओं द्वारा ही सम्भव हुई है। राहुल जी ने 'घुमक्कड़-शास्त्र' में घुमक्कड़ी को संसार का सबसे बड़ा धर्म कहा है—"मेरी समझ में दुनियाँ की सर्वश्रेष्ठ वस्तु है घुमक्कड़ी। घुमक्कड़ से बढ़कर व्यक्ति और समाज के लिए कोई हितकारी नहीं हो सकता।"[८] इसी प्रसंग में वे पुनः दोहराते हैं, "मनुष्य स्थावर वृक्ष नहीं है, वह जंगम प्राणी है। चलना मनुष्य का धर्म है, जिसने इसे छोड़ा, वह मनुष्य होने का अधिकारी नहीं है।"[९] वस्तुतः मनुष्य-जाति का इतिहास उसकी यायावरी-प्रवृत्ति से सम्बद्ध है। यह मानव की मूल प्रवृत्ति है और राहुल जी के लिए तो अनादि सनातन धर्म है।[१०]

यात्रा-साहित्य

आदिम मनुष्य के लिए यात्रा जीवन की आवश्यकता थी परन्तु कालान्तर में उसके सौन्दर्य-बोध के विकास के साथ चतुर्दिक् फैले हुए जगत् का आकर्षण भी उसके लिए बढ़ता गया। देशों की विविधता, ऋतु-परिवर्तन, प्राकृतिक-सुषमा और उसके विविध रूपों ने उसे अपनी ओर आकृष्ट किया। "सौन्दर्य-बोध की दृष्टि से उल्लास की भावना से प्रेरित होकर यात्रा करने वाले यायावर एक प्रकार से साहित्यिक मनोवृत्ति के माने जा सकते हैं और उनकी मुक्त-अभिव्यक्ति को यात्रा-साहित्य कहा जाता है।"[११]

साहित्यिक-पर्यटक को एक अद्भुत आकर्षण अपनी ओर खींचता है, वह वशीभूत हुआ-सा उसकी ओर बढ़ा जाता है। संसार के लोग जहाँ से देखते हुए भी आँखें बन्द करके चलते हैं, प्रकृति की पुकार को सुनकर भी अनाकर्ण कर देते हैं, वहाँ साहित्यिक-यायावर मुक्त-मनोवृत्ति के साथ घूमता है, उसकी यात्रा का अर्थ स्वत-पूर्ण होता है। कवि और कलाकार की आत्मा यायावर होती है और संसार के बड़े-बड़े यायावर अपनी मनोवृत्ति में साहित्यिक होते हैं। यदि यह कहा जाये कि यायावरी-प्रवृत्ति यायावर को साहित्यिक बना देती है तो असमीचीन न होगा। राहुल सांकृत्यायन यात्रा और लेखनी के सम्बन्ध में लिखते हैं—"घुमक्कड़ी की चर्या सरस्वती के आवाहन में भारी सहायक हो सकती है···बंधी हुई लेखनी का काम यदि घुमक्कड़ी नहीं करती, तो कोई दूसरा नहीं कर सकता।"[१२] वे अन्यत्र लिखते हैं, "यात्रा-वर्णन स्वयं एक उच्च साहित्य का रूप ले सकता है···जो सतत घुमक्कड़ है और नये-नये प्रदेशों में घूमता रहता है, उसके लिए तो यात्राएँ ही इतनी सामग्री दे सकती हैं, जिस पर लिखने के लिए सारा जीवन पर्याप्त नहीं हो सकता।"[१३] डॉ० रघुवंश यात्रा-साहित्य के विषय में लिखते हैं—"यात्रा का बहुत बड़ा आकर्षण प्रकृति की पुकार में है। यायावर वही है जो चलता जाय, कहीं रुके नहीं, कोई बन्धन उसे कसे नहीं और वह जो दर्शनीय है, ग्रहणीय है, स्मरणीय है अथवा संवेदनीय है, उसका संग्रह करता चले···या यों कहें कि जो मुक्त भाव से, अनुभूतियाँ संजोता हुआ, देशकाल में फैले अनन्त जीवन में साँसें लेता हुआ यात्रा नहीं करता, वह यात्रा का साहित्य नहीं दे विवरण प्रस्तुत करता है।"[१४]

डॉ० गोविन्द त्रिगुणायत के शब्दों में "साहित्यिक यात्रा-वर्णनों में लेखक की प्रकृतिगत विशेषतायें प्रतिबिम्बित मिलती हैं। उसकी फक्कड़ता, घुमक्कडता, मस्ती और उल्लास उसके यात्रा-सम्बन्धी विवरणों मे प्राण-प्रतिष्ठा कर देते हैं। बाह्य जगत् की प्रतिक्रिया से लेखक के हृदय में जो भावनाएँ जगती है, वह उनको अपनी सम्पूर्ण चेतना के साथ व्यक्त कर देता है जिससे शुष्क विवरण मधुर और भावविभोर करने वाले हो जाते हैं।"[१४] एक व्यावसायिक यात्री और साहित्यिक-पर्यटक मे अन्तर है। श्री शरद देवड़ा के शब्दो में "जब एक संवेदनशील कलाकार भ्रमण के लिए निकलता है तो वह सतह पर के प्रलोभनों का मोह छोड़कर, सतह को भेद कर, इसकी आत्मा के भीतर प्रवेश करता है।"[१५]

अभिप्राय यह कि यायावरी और लेखनी का घनिष्ठ सम्बन्ध है और यायावर की सौंदर्य-भावना और मुक्त-मनोवृत्ति उसके यात्रा-विवरण को यात्रा-साहित्य का रूप प्रदान करती हैं अन्यथा यात्रा करने मात्र से कोई साहित्यिक-यायावर की संज्ञा नही प्राप्त कर सकता और न यात्रा का विवरण प्रस्तुत कर देना मात्र यात्रा-साहित्य है।

राहुल जी का यात्रा-साहित्य

राहुल जी आधुनिक युग के प्रमुख पर्यटक-लेखक थे। वे जन्मजात घुमक्कड़ थे। नाना रामशरण पाठक से शिकार एवं भ्रमण सम्बन्धी कहानियाँ सुनकर उनके मन मे घुमक्कड़ी की जो इच्छा जागृत हुई वह आजीवन उनके साथ रही और वे निरन्तर घुमक्कड़ बने रहे। अपने जीवन के लगभग ४० वर्षों मे निरन्तर यात्रा करते हुए उन्होने स्वदेश-विदेश के कई स्थलो का भ्रमण किया। तिब्बत, रूस एवं हिमालय उनकी यात्राओं के आकर्षण-केन्द्र थे। वास्तव में राहुल जी "चरैवेति चरैवेति" के मूल-मन्त्र मे विश्वास रखते थे और पूर्ण आस्था के साथ जीवन-पर्यन्त उन्होंने इसका पालन किया। दुर्गम प्रदेशों एवं अलंघ्य उपत्यकाओ की यात्राएँ राहुल जी के अदम्य साहस एवं आत्मबल की परिचायिका हैं। घुमक्कड़ी राहुल जी को सत्य की खोज के लिए, कला के निर्माण के लिए, सद्भावनाओं के प्रसार के लिए महान् दिग्विजय के रूप में दिखाई पड़ती थी।[१७] घुमक्कड़ी से बढ़कर राहुल जी के लिए कोई आनन्द-दायिनी वस्तु नहीं थी। मार्ग की कठिनाइयाँ तो उनकी यात्राओं के आनन्द को और भी बढ़ाने वाली हैं, "घुमक्कड़ी सदा मिर्च की तरह कड़वी और स्वादिष्ट रहेगी, तभी वह तरुण हृदयों को आकृष्ट कर सकेगी। मुझे घुमक्कड़ी मे स्वतः एक प्रकार का आनन्द आता था, आनन्द आता है, मै कह सकता हूँ, यद्यपि शरीर उसके लिए पहले की तरह सहायक नही है।"[१८] इतना ही नही, राहुल जी को उनकी यात्राओं ने ही लेखक बनाया है—ऐसा कहना असगत न होगा। वे स्वयं स्वीकारते हैं, "यात्रा ने ही मेरे हाथ मे जबरदस्ती कलम पकड़ा दी और स्वयं ही लेखन-शैली बनती चली गई। कलम के दरवाजे को खोलने का काम मेरे लिए यात्राओ ने ही किया, इसलिए मैं इनका बहुत कृतज्ञ हूँ।"[१९] राहुल ने अपनी यात्राओं के विविध,

विचित्र व रोचक अनुभव अपने यात्रा-ग्रन्थों में दिये हैं। उनकी यात्रा-कृतियाँ हैं— 'तिब्बत में सवा वर्ष', 'मेरी यूरोप-यात्रा', 'मेरी तिब्बत-यात्रा', 'मेरी लद्दाख-यात्रा', 'ईरान', 'किन्नर देश में', 'राहुल यात्रावली', 'घुमक्कड़-शास्त्र', 'यात्रा के पन्ने', 'रूस में पच्चीस मास', 'एशिया के दुर्गम भूखण्डों में', 'लंका', 'चीन में क्या देखा', 'हिमालय-परिचय', 'जापान' तथा 'दोर्जेलिङ् परिचय'। राहुल जी का यात्रा-सम्बन्धी साहित्य गुण एवं परिमाण दोनों दृष्टियों से प्रचुर एवं उत्कृष्ट है। डॉ० रघुवंश के शब्दों में, "राहुल जी ने यात्रा-साहित्य के लिए विभिन्न माध्यम अपनाये हैं, शायद उनसे अधिक इस विषय पर इतने विविध रूपों में ग्रन्थ किसी ने नहीं लिखा है।"[५०] देवीशरण रस्तोगी लिखते हैं, "यात्रा-वर्णन लिखने वाले साहित्यिकों में राहुल का नाम सबसे आगे आता है। देश-विदेश के अनुभवों का जब वह वर्णन करते हैं तो उनकी शैली और अधिक रसात्मक हो जाती है। वास्तव में इस रसात्मकता का आधार इनका अनुभव रहता है।"[५१]

राहुल जी की यात्राओं का उद्देश्य

यात्रा-साहित्य मनुष्य की ज्ञान-वृद्धि में सहायक होता है। अलौकिक एवं विचित्र यात्रा-वर्णनों से पाठक को मनोरंजन एवं आनन्द की प्राप्ति होती है। पर्यटक-साहित्यकार अपनी यात्रा-कृतियों द्वारा देश-विदेश के अद्भुत दृश्यों, पदार्थों, रीति-रिवाजों आदि से पाठक का परिचय करवाता हुआ उसे मनोरंजन प्रदान करता है। यात्रा-साहित्य मनोरंजन एवं ज्ञानवर्धन के अतिरिक्त नवयुवकों को यात्रा के लिए प्रेरित भी करता है। अयोध्यासिंह उपाध्याय लिखते हैं, "वास्तव में सांसारिक, अनेक अनुभव ऐसे हैं जो बिना देशाटन किये प्राप्त नहीं होते। इसलिए भ्रमण-वृत्तान्तों को लिखने की प्रणाली है। अनेक देशों की सैर घर बैठे करना, भ्रमण-वृत्तान्तों के आधार से होता है, उनके पढ़ने से भ्रमणकर्त्ता के अनेक अर्जित ज्ञानों का अनुभव भी होता है।"[५२] यायावर राहुल की यात्राएँ स्वान्तः-सुखाय हैं, पर कुछ यात्राओं का उद्देश्य स्वान्तः-सुखाय से अधिक है।[५३] वस्तुतः राहुल घुमक्कड़ का निरुद्देश्य होना स्वीकार ही नहीं कर सकते—"हरेक आदमी अपने साथ एक वातावरण लेकर घूमता है, जिसके पास आने वाले अवश्य उससे प्रभावित होते हैं।"[५४] फिर घुमक्कड़ी स्वयं साधन मात्र नहीं है, साध्य भी है।[५५]

इस प्रकार राहुल जी की यात्राएँ स्वान्तः-सुखाय होते हुए भी सोद्देश्य हैं। राहुल जी की ज्ञान-पिपासा ने उन्हें घुमक्कड़ी-पंथ में दीक्षित होने के लिए प्रेरित किया था। विभिन्न देशों की यात्राओं ने उन्हें ज्ञान एवं अनुभव के कणों को बटोर कर महापण्डित होने का गौरव प्रदान किया। विदेशों में भारतीय चिन्तकों में अग्र-[illegible] विद्वानों के प्रति राहुल जी आकृष्ट थे। इसीलिए वे यूरोप एवं रूस गये। [illegible] ने लिखा है, "भारतीय चिन्तकों में [illegible] पुरातत्व विद्वानों के प्रति जो श्रद्धा राहुल जी को [illegible] [illegible] [illegible], उसी ने उन्हें [illegible] [illegible]

राहुल जी की तिब्बत-यात्राओं का उद्देश्य वहाँ की ऐतिहासिक सामग्री की खोज एवं बौद्ध-ग्रन्थों का अध्ययन है—"मैंने देखा कि भारतीय दार्शनिकों के अनेक ग्रन्थों के अनुवाद तथा भारतीय बौद्ध-धर्म की बहुमूल्य ऐतिहासिक सामग्री मुझे तिब्बत जाने से ही मिल सकती है। मैंने निश्चय कर लिया कि पाली बौद्ध-ग्रन्थों का अध्ययन समाप्त कर तिब्बत अवश्य जाऊँगा।"[२७] तिब्बत-सम्बन्धी उनकी यात्राएँ मनोरंजन के उद्देश्य से नहीं हुई थी। वे लिखते हैं, "मेरी यह यात्रा भूगोल-सम्बन्धी अन्वेषण या मनोरंजन के लिए नहीं हुई है, बल्कि यह यहाँ के साहित्य के अच्छे प्रकार अध्ययन तथा उससे भारतीय एवं बौद्ध धर्म सम्बन्धी ऐतिहासिक तथा धार्मिक सामग्री एकत्र करने के लिए हुई है।"[२८] अपनी ल्हासा-यात्रा का महत्त्व बतलाते हुए वे अन्यत्र कहते हैं, "१५० के लगभग चित्रपट तथा तिब्बत, मंगोलिया, सायबेरिया तक मे छपी और लिखी पुस्तकों का संग्रह किया।"[२९] इस प्रकार राहुल जी की चार तिब्बत यात्राओं का उद्देश्य बौद्धधर्म-सम्बन्धी ग्रन्थों का संग्रह करना था।

पुरातत्त्व के विद्वान् राहुल जी की यात्राओं का उद्देश्य पुरातात्त्विक सामग्री की खोज भी रहा है। केदारनाथ और बद्रीनाथ की यात्रा मे उनका ध्यान मन्दिरों, मूर्तियों एवं स्थानों की पुरातात्त्विक गवेषणा की ओर आकृष्ट है। राहुल जी स्वयं लिखते हैं, "मेरी इस यात्रा का मुख्य प्रयोजन था, इन ताम्रपत्रों को पढ़ना। इनमे से एक ही को मैं छपे ब्लाक के सहारे पढ़कर पहले के पठित पाठ को शुद्ध कर सका।"[३०] 'रूस मे पच्चीस मास' पुस्तक मे भी मध्य एशिया से सम्बन्धित पुरातात्त्विक सामग्री का उल्लेख है।"[३१] रूस में रहते हुए उन्होंने मध्य-एशिया से सम्बन्धित सामग्री का संग्रह किया था जिसका उपयोग उन्होंने 'मध्य एशिया का इतिहास' मे किया है। अभिप्राय यह कि राहुल जी की यात्राएँ स्वान्तः-सुखाय तो है ही, साथ ही वे निरुद्देश्य नही, क्योंकि निरुद्देश्य का अर्थ उनके लिए 'घर से गुम हो जाना' है।[३२] राहुल जी की हिमालय-सम्बन्धी यात्राओं का उद्देश्य उस गौरवमण्डित भूभाग से पाठकों को परिचित करवाना है।

राहुल जी का यात्रा-साहित्य लेखक के लिए स्वान्त-सुखाय होने के साथ पाठक के लिए मनोरंजन, ज्ञान एवं प्रेरणा से ओतप्रोत है।

राहुल जी के यात्रा-प्रकार

राहुल जी के यात्रा-वृत्तान्तों का वर्गीकरण दो दृष्टियों से किया जा सकता है—(क) यात्रा-उद्देश्य की दृष्टि से (ख) यात्रा के साधनों की दृष्टि से।

(क) यात्रा-उद्देश्य की दृष्टि से—यात्रा उद्देश्य की दृष्टि से राहुल के यात्रा-साहित्य को पाँच वर्गों मे बाँटा जा सकता है—(क) ऐतिहासिक यात्राएँ, (२) भौगोलिक यात्राएँ, (३) सास्कृतिक यात्राएँ, (४) धार्मिक यात्राएँ तथा (५) साहसिक यात्राएँ।

(१) ऐतिहासिक यात्राएँ—ऐतिहासिक यात्राएँ वे है जो विद्वानों द्वारा पुरातत्त्व-अन्वेषण, अध्ययन एवं प्राचीन स्थानों के अवलोकनार्थ की जाएँ। राहुल

की अधिकांश यात्राएँ इस वर्ग के अन्तर्गत आती हैं। 'तिब्बत में सवा वर्ष' 'मेरी तिब्बत-यात्रा' तथा 'आजमगढ़ की पुरातात्त्विक यात्रा' इस श्रेणी की रचनाएँ हैं। लेखक की तिब्बत-यात्राओं का उद्देश्य वहाँ के बौद्ध ग्रन्थों का अन्वेषण एवं संग्रह करना था। राहुल जी इतिहास एवं पुरातत्त्व के मर्मज्ञ थे। उनकी ऐतिहासिक प्रतिभा एवं अन्वेषण की प्रवृत्ति उनकी प्रायः सभी रचनाओं में मिलती है।

(२) भौगोलिक यात्राएँ—भौगोलिक यात्राओं से तात्पर्य ऐसी यात्राओं से है जो देश-विशेष अथवा स्थान-विशेष के भौगोलिक परिचय के लिए की गई हों। इस प्रकार के यात्रा-वृत्तान्तों मे उस स्थान की प्रकृति, इतिहास, निवासी, कृषि, उद्योग, व्यवसाय, यातायात, स्वास्थ्य, शिक्षा आदि का परिचय दिया जाता है। इस प्रकार की यात्राओं मे परिचयात्मक विवरण-मात्र रहता है, उनमें भावात्मकता एवं कलात्मकता गौण होती है। ऐसे यात्रा-साहित्य को यात्रोपयोगी-साहित्य की संज्ञा दी जा सकती है। 'कुमाऊँ', 'हिमालय-परिचय', 'दोर्जेलिङ् परिचय' तथा 'लंका' राहुल जी की ऐसी ही यात्रोपयोगी कृतियाँ हैं। 'मेरी लद्दाख-यात्रा' तथा 'किन्नर देश' में राहुल जी इन प्रदेशों का समग्र जीवन प्रस्तुत करते हैं।

(३) सांस्कृतिक यात्राएँ—सांस्कृतिक यात्राएँ वे यात्राएँ हैं जो किसी देश की संस्कृति एवं प्रगति को समझने के लिए की जाती हैं। 'मेरी यूरोप-यात्रा', 'रूस में पच्चीस मास' तथा 'चीन में क्या देखा' राहुल जी की ऐसी ही यात्रा-कृतियाँ हैं। इनमें लेखक ने वहाँ की प्राचीन एवं आधुनिक प्रगति एवं संस्कृति पर दृष्टि डाली है।

(४) धार्मिक यात्राएँ—धार्मिक स्थानों एवं तीर्थों से सम्बन्धित यात्राएँ इस कोटि के अन्तर्गत आती हैं। हिन्दी में इस प्रकार की यात्राओं की प्रचुरता है। राहुल जी की 'बदरीनाथ की यात्रा' एवं 'केदारनाथ की यात्रा' धार्मिक स्थानों से सम्बन्धित हैं। यहाँ यह कहना असमीचीन न होगा कि राहुल जी की ये धार्मिक स्थानों से सम्बन्धित यात्राएँ लेखक की धार्मिक श्रद्धा की प्रतीक नहीं हैं। तथाकथित धर्म में राहुल जी की आस्था ही नहीं है। इन यात्राओं मे लेखक ने यात्रियों की अन्धश्रद्धा पर व्यंग्य किया है।[33] फिर भी ये यात्राएँ धार्मिक स्थानों से सम्बन्धित होने के कारण धार्मिक यात्राएँ कही जा सकती हैं। लेखक ने वहाँ के मन्दिरों एवं मूर्तियों का भावात्मक एवं रम्य वर्णन किया है।

(५) साहसिक यात्राएँ—राहुल जी की दुर्गम एवं बीहड़ प्रदेशों की यात्राएँ इस श्रेणी के अन्तर्गत आती हैं। 'एशिया के दुर्गम भूखण्डों मे' ऐसी ही साहसपूर्ण यात्राओं से सम्बन्धित कृति हैं। ये यात्राएँ सरस एवं मनोरजक हैं।

उपर्युक्त वर्गीकरण से स्पष्ट है कि राहुल जी का यात्रा-साहित्य विविध एवं विशद है। वह केवल विवरणात्मक, सूचनात्मक एवं व्यावसायिक मात्र ही नहीं, उसमें साहित्यिकता भी विद्यमान है।

(ख) यात्रा के साधनों की दृष्टि से—यात्रा-मार्ग एवं यातायात के साधनों

की दृष्टि से राहुल जी ने प्रमुखतः तीन प्रकार से यात्राएँ की है —(१) स्थल-मार्ग की यात्राएँ, (२) जलमार्ग की यात्राएँ, (३) आकाश-मार्ग की यात्राएँ।

(१) स्थल-मार्ग की यात्राएँ स्थलमार्ग की यात्राएँ वे हैं जिनका उद्देश्य स्थल-मार्ग से भ्रमण करना हो। राहुल जी की अधिकाश यात्राएँ स्थल-मार्ग की हैं। इन यात्राओं मे लेखक अधिकाशतः पदयात्रा द्वारा बीहड़ प्रदेशों मे पहुँचा है और यथास्थान प्राप्य रेल और मोटर आदि का भी उपयोग किया है। 'किन्नर देश मे' 'मेरी लद्दाख-यात्रा', 'यात्रा के पन्ने' तथा 'राहुल-यात्रावली' मे संगृहीत लेखक की यात्राएँ स्थलीय यात्राएँ हैं। इन यात्राओं मे लेखक ने स्थान, दृश्य एवं वस्तुओ को समीप से देखा है और उनका परिचयात्मक, ऐतिहासिक एवं भावात्मक वर्णन किया है। इसके अतिरिक्त 'रूस मे पच्चीस मास' तथा 'एशिया के दुर्गम भूखण्डो मे' भी ऐसी ही यात्रा-कृतियाँ हैं।

(२) जलमार्ग की यात्राएँ—जल-मार्ग की यात्राएँ अधिकतर विदेश जाने के लिए की जाती हैं। राहुल जी की 'मेरी यूरोप-यात्रा' जलमार्ग की यात्रा है। 'लंका' मे भी समुद्र का वर्णन है। राहुल जी की प्रथम समुद्र-यात्रा का वर्णन इन पक्तियों में देखिये—"सवेरे नीद टूटी, तो देखा, जहाज़ ऊँचे हो रहा है, जिसके साथ हमारा दिल भी, सावन के ऊँचे झूले पर बैठे नौसिखिए के मन की तरह, उत्तुंग शिखर से अतल खात की ओर गिर रहा था। जब जहाज़ ऊँची लहरो पर उठता है, तब सिर में थोड़ा-सा चक्कर आता है, किन्तु जिस समय लहर नीचे से निकल जाती है, जहाज़ के पतन के साथ दिल एकदम गिर ही नहीं पड़ता बल्कि मालूम होता है, एक ठंडी हवा का झोंका कलेजे के एक-एक छिद्र मे घुस गया।" (मेरी यूरोप-यात्रा, पृष्ठ ५)

(३) आकाश-मार्ग की यात्राएँ—'चीन में क्या देखा' मे राहुल जी की आकाशमार्गीय यात्रा है। लेखक की यह यात्रा वायुयान द्वारा सम्पन्न हुई। बर्मा से उनकी वायुयान से यात्रा का आरम्भ हुआ। इस वैमानिक यात्रा से वे बर्मा का परिचय इस प्रकार देते हैं— "सात बजे विमान ने धरती छोड़ी। बर्मा हरा-भरा देश है। समुद्र तट से हटने पर पहाड़-ही-पहाड़ मिलते हैं जो बारहो महीने हरे-भरे रहते हैं। वर्षा हो गयी थी, इसलिए चारो ओर हरियाली गहगहा रही थी।" (चीन मे क्या देखा, पृष्ठ ११)

उपर्युक्त वर्गीकरण से स्पष्ट है कि राहुल जी का यात्रा-साहित्य उनके यात्रा-क्षेत्र की विविधता एवं व्यापकता की ओर सकेत करता है। एक ओर राहुल जी ने वैज्ञानिक साधनो के उपयोग द्वारा देश-विदेश की सरल व सुखद यात्राएँ की है तो दूसरी ओर अछूते, कठोर एव अन्धकारमय प्रदेशो की रोमाचक एव साहसपूर्ण यात्राएँ भी की हैं। 'मेरी यूरोप-यात्रा' एवं रूस की यात्राएँ प्रथम कोटि की हैं और लद्दाख, तिब्बत व नेपाल की यात्राएँ दूसरी कोटि की। प्रथम प्रकार की यात्राओ की अपेक्षा दूसरी कोटि की यात्राओं मे उन्हे अधिक सुख व आनन्द अनुभव होता था।

डॉ० जयभगवान गोयल लिखते हैं, "एक ओर उन्होंने नवीन वैज्ञानिक आविष्कारों के प्रकाश से चमत्कृत पाश्चात्य देशों का भ्रमण किया, तो दूसरी ओर सामाजिक और वैज्ञानिक प्रगति की दौड़ में शताब्दियों पीछे पड़े लद्दाख और तिब्बत के पथरीले, शुष्क पर्वतीय प्रदेशों की यात्राएँ की। एक ओर हिन्दू तथा बौद्ध धर्म के तीर्थों व धर्म-स्थानों की पूर्ण श्रद्धा-भाव से यात्रा की तो दूसरी ओर 'धर्म को जनता को सुलाने वाला नशा' मानने वाले नास्तिकता-प्रधान रूस में भी उनका मन खूब रमा। एक ओर औद्योगिक क्रान्ति से समृद्ध स्वतन्त्र यूरोप की झलक देखी तो दूसरी ओर गुलामी की जंजीरों में जकड़े उद्योग-शिल्प-विहीन जनसमूह की करुण दशा का अवलोकन किया।"[33] इस प्रकार राहुल जी का यात्रा-क्षेत्र अत्यन्त विस्तीर्ण और विरोधात्मक है। एक साहित्यकार-यायावर का संवेदनशील हृदय लेकर राहुल ने देश-विदेश की यात्राएँ कीं। एक सच्चे यायावर की तरह राहुल निरन्तर निर्बाध चलते रहे, कहीं रुके नहीं। उन्होंने देश-विदेश में जो कुछ दर्शनीय, संग्रहणीय तथा स्मरणीय था, उस सबका संग्रह किया।

राहुल जी के यात्रा-साहित्य की विशेषताएँ

राहुल जी के यात्रा-साहित्य की प्रमुख विशेषताओं का विवेचनात्मक परिचय इस प्रकार है :—

(क) भौगोलिक वर्णन

राहुल जी के यात्रा-विवरणों में स्थान-विशेष का भौगोलिक परिचय मुख्य रहता है। यात्रा-स्थानों के नाम, बनावट, क्षेत्रफल, जनसंख्या, जलवायु, पशु-पक्षी, यातायात के साधन, मार्ग, उपज, वर्षा, सर-सरिता, पर्वत आदि का वे पूर्ण परिचय देते हुए आगे बढ़ते हैं। 'दार्जिलिङ् परिचय' में दार्जिलिङ् के नाम के विषय में राहुल जी लिखते हैं, "दार्जिलिङ् का तिब्बती भाषा में अर्थ है वज्रद्वीप। तिब्बत में बौद्ध-विहारों की बनावट के द्वीप (लिङ्) लगाने का बहुत रिवाज है। इसी नाम का एक विहार दोर्जेलिङ् में था, जिसके कारण नगर बसने के बाद इसका यह नाम पड़ गया। अंग्रेजों ने उसी नाम को बिगाड़ कर दार्जीलिंग कर डाला।"[34] इसी प्रकार कनौर के नाम के विषय में लिखते हैं, "किन्नर शब्द ही बिगड़ कर आजकल कनौर बन गया है।"[35] नाम के साथ देश-विशेष की स्थिति का, उसके क्षेत्रफल आदि का वर्णन देना भी वे नहीं भूलते। किन्नर देश की स्थिति देखिये—"किन्नर देश हिमालय का एक रमणीय भाग है, जो तिब्बत की सीमा पर सतलुज की उपत्यका में ७० मील लम्बा और प्रायः उतना ही चौड़ा बसा हुआ है। इसकी निम्नतम भूमि ५००० फुट से नीचे नहीं है और ऊँची बस्तियाँ तो ११००० फुट से भी ऊपर बसी हुई हैं।"[36] [illegible] विहार के नाम, क्षेत्रफल एवं महत्त्व को राहुल जी ने इन पंक्तियों में वर्णित किया है—"[illegible] का एक महत्त्वपूर्ण व्यापारिक सांस्कृतिक केन्द्र है—है नहीं, था कहना चाहिए, क्योंकि [illegible] का समस्त

खुल जाने पर इस वणिक्-पथ का उतना महत्व नहीं रहा जिसके कारण अब तिङ्रि की रौनक जाती रही। तिङ्रि का अर्थ है समाधि पर्वत। यहाँ एक पचास वर्ग मील का खूब विस्तृत मैदान है।"[३८] तिब्बती-डांडों का वर्णन इन पंक्तियों में देखिये—'तिब्बत में सबसे खतरे का स्थान यही ला (डांडे) हैं जो तेरह-चौदह से सत्रह-अठारह हज़ार फुट ऊँचे हैं। ऊँचाई के कारण उनके दोनों तरफ पाँच-पाँच सात-सात मील तक गाँव या आबादी नहीं होती। डांडो के दोनों तरफ की आठ-दस मील की भूमि डाकुओं की शिकारगाह होती है, जहाँ यात्री को बहुत सावधानी से जाना पड़ता है।"[३९] किन्नर-प्रदेश के यातायात के साधनों के विषय में वे लिखते है—"शिमला से नारकण्डा तक मोटर-बस और फिर थानेदार-कोटगढ़ तक लारी चली आती है ..... पहाड़ों मे प्रायः सभी जगह जहाँ बस-लारी नहीं मिलती, सामान लेकर चलने वाले आदमी के लिए कठिनाई होती है।"[४०] देश-विशेष की ऋतुओं, उपज आदि का भौगोलिक वर्णन भी राहुल जी की यात्राओं में बिखरा पड़ा है। कनौर आदि पर्वतीय प्रदेशों की मुख्य उपज फल है। चूली का एक वर्णन देखिये—"फलों मे चूली है, जो यहाँ हर गाँव मे है। गरीब के खेत में भी दो-चार वृक्ष इसके जरूर खड़े होते हैं। जाड़े का संवल जब खतम हो जाता है और किन्नर-दम्पती खाद्य के लिए तिलमिलाने लगते है, उसी समय यही फलराज है, जो गज की टेर सुनने वाले भगवान् की तरह सबसे पहले उन के पास पहुँचता है। जून के अन्त तक नीचे-नीचे (नेवल में) चूली के फल पक कर सुनहले बनने लगते हैं।"[४१] नेपाल के ग्रामीणों के व्यवसाय के विषय में वे लिखते हैं—"खेती से भी बढ़कर इनकी सम्पत्ति भेड़-बकरी और चवरी है। जाड़े के महीने में ही ये इन जानवरों को घर ले आते हैं, अन्यथा जहाँ सुन्दर चरागाह देखते हैं वहीं एक दो घर के आदमी अपना कुत्ता और डेरा लेकर पशुओं को चराते फिरते हैं।"[४२]

इस प्रकार राहुल जी ने स्थान-विशेष का यथार्थ भौगोलिक परिचय दिया है। राहुल जी के ये भौगोलिक वर्णन सर्वत्र वर्णन-मात्र नहीं, कहीं-कहीं इनमें भूगोल-लेखक के साथ-साथ साहित्यकार का रूप भी मुखरित हो रहा है। 'चूली' का वर्णन एक यायावर-साहित्यकार का वर्णन है, भूगोल-लेखक इतना रोचक वर्णन नहीं कर सकता। राहुल जी अपनी कृतियों में भौगोलिक वर्णनों की यथार्थता को महत्त्व देते हैं और भौगोलिक अनौचित्य को अक्षम्य मानते हैं। वे लिखते है—"ऐतिहासिक उपन्यासों में ऐतिहासिक घटनाओं और पात्रों के साथ-साथ भौगोलिक पृष्ठभूमि का ज्ञान अत्यावश्यक है। घुमक्कड़ का अपना विषय होने से वह कभी भौगोलिक अनौचित्य को अपनी कृतियों मे आने नहीं देगा।" (घुमक्कड़-शास्त्र, पृष्ठ १४१) राहुल जी की यात्रा-कृतियों में उनका भौगोलिक ज्ञान स्वतः-अनुस्यूत है। लद्दाख, कुमाऊँ, किन्नर, तिब्बत जैसे दुर्गम प्रदेशों का भूगोल लिखने के लिए उनकी इन प्रदेशों की यात्राएँ कितनी सहायक हो सकती हैं, यह उपर्युक्त भूगोल-वर्णन से स्पष्ट है। एक घुमक्कड़ व्यक्ति ही ऐसे दुर्गम प्रदेशों का सच्चा भूगोल लिख सकता है। राहुल जी लिखते हैं, 'उच्च घुमक्कड़ों के दुनिया में आने से पहले जो भूगोल-ज्ञान लोगों के पास था, वह मिथ्या

विश्वासों से भरा था—घुमक्कड़ों ने सूर्य की भाँति उदय होकर सारे तिमिर-तोम को छिन्न-भिन्न किया।" (घुमक्कड़-शास्त्र, पृष्ठ १४२) इस प्रकार राहुल जी की यात्राएँ भौगोलिक ज्ञान के लिए अत्यन्त उपयोगी हैं।

(ख) समाज-चित्रण

राहुल जी के यात्रा-साहित्य में देश के साथ समाज का, यात्रा-प्रदेशों की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक आदि स्थितियों का विस्तृत परिचय मिलता है। उनके काल के वर्णन में कहीं अतिरंजकता एवं अतिशयोक्ति नहीं, वरन् सर्वत्र सत्य एवं यथार्थ है। वे इस दृष्टि से यात्रा-लेखक के कर्त्तव्य से भली-भाँति परिचित थे—"घुमक्कड़ को अपनी लेखनी चलाते समय बड़े संयम रखने की आवश्यकता है। रोचक बनाने के लिए कितनी ही बार यात्रा-लेखक अतिरंजन और अतिशयोक्ति से ही काम नहीं लेते, बल्कि कितनी ही असम्भव और असंगत बातें रहस्यवाद के नाम से लिख डालते हैं।"[४३] 'हिन्दी साहित्य-कोश' में यात्रा-लेखक का एक प्रमुख गुण उसकी निरपेक्ष दृष्टि को बतलाया गया है—"यात्री अपने साहित्य में संवेदनशील होकर भी निरपेक्ष रहता है। ऐसा न होने पर यात्रा के स्थान पर यात्री के अधिक प्रधान हो उठने की सम्भावना है। यात्रा में स्वतः स्थान, दृश्य, प्रदेश, नगर, गाँव मुखरित होते हैं, उनका अपना व्यक्तित्व उभरता है ...... अपने को केन्द्र में रखकर भी प्रमुख न होने देना साहित्यिक-यायावर का कर्त्तव्य है, क्योंकि यदि लेखक का व्यक्तित्व उभरेगा तो अन्य सब गौण हो जायेगा और यात्रा-साहित्य न होकर आत्मचरित ही रह जायेगा।"[४४] अभिप्राय यह कि यात्रा-साहित्य में लेखक का व्यक्तित्व प्रमुख न होकर यात्रा-प्रदेश का व्यक्तित्व प्रमुख होता है और उस प्रदेश विशेष का यथार्थ अंकन यात्रा-साहित्य की यथार्थता की कसौटी है। इसका यह आशय भी नहीं कि यात्रा-लेखक इतिहासकार की तरह यात्रा-प्रदेश का विवरण-मात्र ही प्रस्तुत करता है। वस्तुतः यात्रा-लेखक यात्रा की पीठिका मार्ग में पड़ने वाले मन्दिर, मस्जिद, मीनार, दुर्ग, विजयस्तम्भों, स्मारकों, भग्नावशेषों में निहित संस्कृति, कला और इतिहास के उपकरणों से अवश्य तैयार करता है, फिर भी अदृश्य भाव से अपनी यात्राओं में वह 'स्वयं' रहता है, वह यात्रा को अपनी मानसिक प्रतिक्रियाओं के रूप में लेता है। वह यात्रा-प्रदेशों का विवरण तो अवश्य देता है, पर आत्मीयता के वातावरण में और भावावेश के साथ। निबन्धकार की-सी वैयक्तिता, स्वच्छन्दता एवं आत्मीयता का गुण यात्रा-लेखक में भी पाया जाता है। राहुल जी की यात्रा-कृतियों में यात्रा-लेखक की निरपेक्ष दृष्टि एवं निबन्धकार की-सी आत्मीयता एवं स्वच्छन्दता के गुण विद्यमान हैं। यात्रा-प्रदेश के समाज के चित्रण में राहुल जी की ये विशेषताएँ दर्शनीय हैं।

'राजस्थान-विहार,' 'मेरी लद्दाख-यात्रा', 'किन्नर देश' आदि में राहुल ने भारतीय समाज का चित्रण किया है। तिब्बत की यात्राओं में तिब्बतीय समाज एवं

संस्कृति मुखरित है। 'ग्रीरान', 'रूस मे पच्चीस मास', 'जापान', 'मेरी यूरोप-यात्रा' ग्रादि में विविध विदेशी समाजों का अंकन है। 'राजस्थान विहार' में लेखक भारतीय समाज के जाति-पाँति के भेद-भाव की ओर सकेत के उपरान्त लिखता है, "जब तक एक जातीयता न हो तब तक तरह-तरह के सन्देह रहेंगे ही।"[४४] 'मेरी लद्दाख-यात्रा' में लेखक मार्ग मे आए विभिन्न स्थानों पंजाब, मुलतान, डेरागाज़ीखाँ, पुंछ राज्य, कश्मीर और लद्दाख के लोगों, उनकी वेशभूषा, आचार-व्यवहार, भाषा, सभ्यता एवं परम्पराओं का रोचक वर्णन प्रस्तुत करता है। मुलतान के वर्णन से एक उदाहरण देखिए, "मुलतान सिन्ध और पंजाब प्रान्त की सन्धि पर है। इसलिए यह दोनों से विलक्षण है। यहाँ की पोशाक में सिन्धियों की घाघरी, जहाँ एक तरफ शामिल है, वहाँ सलवार का भी बिल्कुल अत्यन्ताभाव नहीं है। देहाती लोग अधिकाश मुसलमान हैं। कहीं-कहीं कुछ हिन्दू खेती करने वाले मिलते हैं। हिन्दू ज्यादातर शहरों में रहते हैं और व्यापार तथा नौकरी करते हैं। भाषा न तो पंजाबी है न सिन्धी।"[४६] इन पंक्तियों में लेखक ने तटस्थ रूप से मुलतान के लोगों की वेशभूषा, जाति, व्यवसाय एवं भाषा का परिचय दिया है। इसी प्रकार पुंछ राज्य के लोगों की भाषा, वेशभूषा एवं रहन-सहन का वर्णन भी अत्यन्त सीधे-सरल शब्दों में प्रस्तुत है।[४७] पेशावर के वर्णन मे पठान-जाति के गुण-दोषों का वर्णन लेखक ने किया है।[४८] और पजाब के सनातन-धर्मी हिन्दुओं के विषय में वे लिखते हैं—"यहाँ मुर्गे का मांस और अण्डा आमतौर पर खाते हैं। जूता पहने हुए वे एक जगह से रोटी दाल ले जाकर २० कोस तक खा सकते हैं। शादी-विवाहों मे रसोई बनाने का भार नाई राजा और उसकी रानी पर रहता है। वहार और नाई आमतौर पर रोटी बनाने वाला बाबा जी इधर हैं।"[४६] इन पंक्तियों में बड़े रोचक ढग से पंजाबियों के आहार का वर्णन है। पंजाबियों की शूरवीरता, व्यवसाय-बुद्धि तथा अतिथि-सेवा का वर्णन करना वे 'मेरी यूरोप-यात्रा' में भी नहीं भूले।[५०] कश्मीरी ब्राह्मणों के खान-पान का वर्णन तो अविस्मरणीय है।[५१] 'मेरी लद्दाख-यात्रा' में लद्दाखी लोगों के रीति-रिवाजों का भी रोचक वर्णन है। लद्दाख की बहुपति-विवाह-प्रथा[५२] तथा लद्दाखी मुसलमानों की मुता-प्रथा (मियादी शादी)[५३] का अत्यन्त विचित्र-सा लगने वाला सजीव वर्णन भी राहुल जी ने किया है। लद्दाखी समाज के असुन्दर पक्ष जैसे लामाओं की कामवासना-तृप्ति के लिए धर्मानुसार स्त्री रखना, छग (कच्ची शराब) का पान, उनकी अल्पज्ञता, भूत-प्रेत की कथाओं मे विश्वास आदि का भी यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया है।[५४] 'किन्नर देश' मे राहुलजी ने किन्नर-समाज का सजीव अकन किया है। चिनी के प्रसग मे वहाँ की कृषि, स्त्रियो, पाण्डव-विवाह-प्रथा, स्त्रियों के आजीविकार्जन आदि का वर्णन लेखक ने किया है।[५५] इस प्रदेश के लोगों के अन्धविश्वास, देवी-देवताओं आदि की पूजा, भूत-प्रेत-बाधा आदि धार्मिक विश्वास भी इस पुस्तक में वर्णित हैं।[५६] स्वातन्त्र्योत्तर किन्नर-प्रदेश के भविष्य की सम्भावनाओं एवं राजनीतिक जागृति के सकेत भी लेखक ने यत्र-तत्र दिये हैं।[५७] 'मेरी यूरोप-यात्रा' मे यूरोप के विभिन्न देशों फ्रास, लन्दन

और जर्मन के समाज का चित्रण है। अंग्रेज़ जाति के धार्मिक अन्धविश्वासों का व्यंग्यात्मक वर्णन बड़ा सुन्दर बन पड़ा है।[५८] इसी प्रकार अंग्रेज़ जाति की दान-शीलता एवं त्याग का वर्णन फिट्ज़ विलियम संग्रहालय के प्रसंग में मिलता है।[५९] 'ईरान' में लेखक ने सन् १६३५ के ईरानी समाज का अंकन किया है। ईरान की सड़कों, चौराहों एवं दुकानों के वर्णन के साथ शाह पहलवी के शासन में ईरानियों के यूरोपीय रंग में रंग जाने का यथार्थ वर्णन है।[६०] ईरानियों की विवाह-पद्धति का रोचक वर्णन भी लेखक ने किया है।[६१] 'रूस में पच्चीस मास' में साम्यवादी रूसी समाज की सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक उन्नति का वर्णन है।[६२] इसी प्रकार 'चीन में क्या देखा' में साम्यवादी चीन की प्रगति का उल्लेख है।

समाज-चित्रण की दृष्टि से राहुल जी की तिब्बत-यात्राओं का विशेष महत्त्व है। तिब्बत की यात्राओं का उद्देश्य भले ही प्राचीन हस्तलिखित पोथियों की खोज रहा हो, पर राहुल जी ने इस प्रदेश के यात्रा-वर्णन में भोटियों के जीवन, उनके रीति-रिवाजों, त्योहारों आदि का विशद वर्णन किया है। तिब्बती समाज धर्म-प्रधान समाज है। राहुल जी ने उनकी बौद्ध धर्म में आस्था, अन्धविश्वासों, लामाओं के जीवन, मन्त्र-जाप सभी का रोचक एवं व्यंग्यपूर्ण वर्णन किया है।[६३] खम्पा लामा के वर्णन में राहुल जी तिब्बत के धर्म-परायण समाज का यथार्थ चित्र आंकते हैं—"उन्होंने मेरा बहुत स्वागत किया। उनके सादगी के साथ निकले हुए शब्द 'तू भी बुद्ध का चेला मैं भी चेला' अब भी स्मरण आते हैं। रात को वहीं रहना हुआ। यह लामा न्यूना (उपवास) व्रत करते हैं। एक दिन अनियम भोजन के साथ पूजा, दूसरे दिन दोपहर के बाद भोजन न करके पूजा और तीसरे दिन निराहार रहकर पूजा—यही न्यूना है। ऊपर से रोज हजारों दण्डवत् भी करने पड़ते हैं। लोगों का अवलोकितेश्वर के इस व्रत में बहुत विश्वास है। खम्पा लामा के पास कुछ और भी श्रद्धालु स्त्री-पुरुष इसी व्रत को करते हैं। यह लामा व्रत के साथ कुछ झाड़-फूंक भी जानते हैं। फिर ऐसे आदमी को क्या तकलीफ हो सकती है।"[६४] इसी प्रकार डुक्पा लामा की देवपूजा का भी अत्यन्त रोचक वर्णन लेखक ने किया है।[६५] वस्तुत: तिब्बती समाज श्रद्धालुओं का समाज है, जिसमें धर्म के नाम पर अन्धविश्वास, बाह्याडम्बरों एवं देवी-देवताओं के प्रति श्रद्धा की प्रधानता है।

तिब्बती लोगों के भोजन का वर्णन राहुल जी ने अनेक स्थलों पर किया है। "गेहूँ काफी होने पर भी भोटिया लोग रोटी नहीं खाते। ये लोग गेहूँ, जौ भूनकर पीस लेते हैं, इसे चम्बा कहते हैं। राजा से लेकर भिखारी तक का यही प्रधान खाद्य है। नमक, मक्खन, मिश्री, गर्म चाय के प्याले में डालकर उसमें चम्बा रख हाथ से मिलाकर वे लोग खाते हैं। ...... चाय और चम्बा के अतिरिक्त इनका प्रधान खाद्य मांस है। अधिकतर सूखा और कच्चा ही खाते हैं। ... सभी भोटिया छङ पीते हैं।"[६६] शिगर्चे का मो-मो (भाप में पकाया मांस का समोसा)[६७] तथा

थुक्-पा (एक प्रकार की पतली खिचड़ी)[६८] विशेष प्रिय है। इस प्रकार तिब्बत के लोग मांसाहारी हैं, उनके भोजन में किसी-न-किसी रूप में मांस रहता है।[६९] भोटिया लोगों के जूं खाने का उल्लेख भी लेखक ने किया है।[७०] इस प्रकार राहुल जी ने तिब्बती लोगों के विचित्र खाद्यों का रोचक वर्णन किया है।

तिब्बती समाज की विवाह-प्रथा, व्यभिचार एवं शयन-कक्ष से भी राहुल जी पाठकों को परिचित करवाते हैं। सभी भाइयों की एक पत्नी होना[७१] तथा व्यभिचार की अधिकता[७२] तिब्बत में सामान्य है। उनके शयन-कक्ष के विषय में राहुल जी लिखते हैं—"भोट में स्त्री-पुरुष सभी नंगे सोते हैं। यदि पति अकेला एक भाई है तो प्रायः चुरुट्टू के बोरे में दोनों साथ-साथ सोते हैं। इसमें वहाँ कोई संकोच नहीं माना जाता। इस प्रकार सोते माता-पिता को लड़के चाय भी दे आते हैं।"[७३] स्त्रियों की वेश-भूषा, शृंगारादि का वर्णन इन पंक्तियों में देखिये—"यहाँ की सभी स्त्रियों का शिरोभूषण धनुषाकार होता है। इसके दोनों छोरों पर नकली बालों की वेणी लटकती है। हैसियत के अनुसार इसमें मूँगे और मोती भी लगे रहते हैं।"[७४]

तिब्बती लोग उत्सव, नृत्य एवं कला के प्रेमी हैं। वे शराब पीकर तथा बन-ठन कर उत्सवों में जाते हैं, जहाँ पुरुषों एवं स्त्रियों का नृत्य होता है।[७५] सस्क्या के फोटाङ्-महल के वर्णन में राहुल जी ने तिब्बतियों के कला-प्रेम का परिचय दिया है—"तिब्बती लोगों के खून में कला मिली हुई है। इसलिए वह बड़ी सुरुचिपूर्वक मकानों को सजाते हैं। दीवारों पर रंग और बेल-बूटे का काम, अल्मारियों के ऊपर भी काष्ठ-कार्य और रंग, बर्तन चाहे मिट्टी के हों या धातु के उनमें भी सौन्दर्य, बैठने-लेटने के आसन और सामने रखी जाने वाली छोटी चाय की चौकियाँ भी नयनाभिराम।"[७६] इसी प्रकार का एक वर्णन 'तिब्बत में सवा वर्ष' के अन्तर्गत भी आया है।[७७] भोटिया लोग रामलीला जैसे नाटक भी खेलते हैं।[७८] विद्वानों के स्मृति-सम्मान में दीपमाला सजाते हैं।[७९] तिब्बतियों का असुन्दर पक्ष—तिब्बत की गंदगी—राहुल जी को अखरती है। इसका भी कई स्थलों पर उल्लेख है।[८०]

तिब्बत की राजनीतिक स्थिति का वर्णन भी यत्र-तत्र आया है। राज्य-प्रबन्ध के विषय में राहुल जी लिखते हैं—"तिब्बत में हर गाँव में मुखिया होते हैं। ·· इनके ऊपर इलाके-इलाके का जोङ्-पोन् होता है। जोङ् का अर्थ जिला है और पोन् का अर्थ अफसर।······हर जोङ् में दो जोङ्-पोन् होते हैं जिनमें एक गृहस्थ और दूसरा साधु हुआ करता है। ········ जोङ्-पोन् के ऊपर दलाई लामा की गवर्नमेंट का ही अधिकार है। न्याय और व्यवस्था दोनों में ही जोङ्-पोन् का अधिकार बहुत है। एक तरह से उसे प्रदेश का राजा ही समझना चाहिये।"[८१] ल्हासा में शासक की यात्रा के वर्णन में शासकों की निरंकुशता का दिग्दर्शन है।[८२] नेपाल की राजनीतिक अवस्था का वर्णन भी इस पुस्तक में हुआ है।[८३]

राहुल जी ने अपनी यात्राओं के वर्णन में यात्रा-प्रदेशों के लोगों के रहन-सहन, वेश-भूषा, खान-पान, व्यवसाय, शिक्षा, विश्वास, सामाजिक-व्यवस्था, पारिवारिक-

जीवन, आर्थिक दशा, धार्मिक भावना, संस्कृति, सामन्त-व्यवस्था, वर्ण और वर्ग-भावना आदि का पूरा विवरण प्रस्तुत किया है। इस प्रकार उनके यात्रा-साहित्य द्वारा लोक-जीवन का पूरा चित्र हमारे समक्ष प्रस्तुत हो जाता है। कहीं-कहीं लोकगीत, लोक-नृत्य, लोक-संगीत एवं लोक-भाषा के नमूने भी राहुल जी ने दिये हैं।[५६]

(ग) प्रकृति-चित्रण

यात्रा-साहित्य में यायावर-साहित्यकार की प्राकृतिक दृष्टि का बड़ा महत्व है। प्रकृति मानव की आदिम सहचरी है। आदिकाल से ही मानव प्रकृति के प्रांगण में विहार कर रहा है। साहित्यिक-यायावर के लिये तो यात्रा का आकर्षण ही प्रकृति की पुकार है। राहुल जी प्रकृति की इसी पुकार से आकृष्ट होकर यात्री बनकर निकले। हिमालय की पार्वत्य प्रकृति के प्रति उनका अधिक आकर्षण रहा है। राहुल जी का हिमालय-प्रेम उनके इन शब्दों से व्यक्त होता है, "हिमालय किसको अपनी ओर आकृष्ट नहीं करता? मेरा तो इसके प्रति आकर्षण १९१० ई० से हुआ और पिछले तैंतालीस वर्षों से उसके साथ इतना घनिष्ठ सम्बन्ध हुआ, कि 'स्वान्तः सुखाय' भी मुझे लेखनी चलाने की जरूरत महसूस होने लगी। लिखने का मतलब ही है और अधिक परिचय प्राप्त करना।"[५७] हिमालय की प्राकृतिक सुषमा का पान करने के लिए वे आजीवन लालायित एवं प्रयत्नशील रहे। उनकी दृष्टि में "नगाधिराज हिमालय विश्व की सुन्दरतम गिरिमाला है। प्रकृति ने अपने सारे सौन्दर्य को हिमाचल-भूमि को प्रदान कर दिया है। हिमालय की सुषमा सभी जगह एक-सी नहीं है, उसमें वैचित्र्य-सा पाया जाता है। अलमोड़ा, नैनीताल के हिमालय का दृश्य दूसरा है, किन्नर उससे भिन्न है, दोर्जेलिङ् अपना पृथक् सौन्दर्य रखता है।"[५८] वस्तुतः राहुल को हिमालय ने स्थायी रूप से अपना बना लिया था और उनका सर्वाधिक आकर्षण इसके प्राकृतिक वैभव की ओर था। राहुल जी के लिये हिमालय के विषय में 'अब तेरे सिवा कोई आंखों को नहीं जँचता' का कथन सार्थक प्रतीत होता है।[५९] राहुल जी की यात्राओं में इस प्राकृतिक भूमि के हिमाच्छादित शृंगों, मेघाच्छादित उपत्यकाओं, पुष्पों की फैली हुई मोहक एवं विस्तृत क्यारियों, उनके मुग्ध रंगों, वनों की हरीतिमा तथा विभिन्न ऋतुओं का वर्णन मिलता है। इसके अतिरिक्त राहुल जी की तिब्बत-यात्राओं में भी पर्वतीय प्रकृति का सौन्दर्य निरूपित है। पर्वतीय प्रकृति के कुछ दृश्य प्रस्तुत हैं—

(क) तिब्बत-यात्रा में कुत्ती के मार्ग का वर्णन—'चारों ओर ऊँचे-शिखर वाले हरियाली से ढके पहाड़ थे, जिनमें जहाँ-तहाँ झरनों का कलकल सुनाई देता था। नीचे फेन उगलती कोसी की वेगवती धारा जा रही थी। नाना प्रकार के पक्षियों के मनोहर शब्द सारी दून को जादू का मुल्क सिद्ध कर रहे थे।' (राहुल-यात्रावली, प्रथम भाग, पृष्ठ २२९)।

(ख) ग्रीष्म-ऋतु में तिब्बत की हरियाली का वर्णन—"जिस वक्त हम सस्या थे, उस वक्त चारों ओर सूखे पहाड़ थे—लेकिन अब चारों ओर प्रकृति हरित-

बसता थी। खेतों में जहाँ-तहाँ जो, गेहूँ, सरसों और मटरों की हरियाली छायी हुई थी, वहाँ पहाड़ों पर दूर-दूर उगे हरे तृण बहुत घने मालूम होते थे। उस समय की शोभा को देखकर कोई यह नहीं कह सकता था कि हम तिब्बत की नीरस प्रकृति के बीच में हैं।" (यात्रा के पन्ने, पृ० ७१)

(ग) कश्मीर-उपत्यका का प्राकृतिक सौन्दर्य—"चारों तरफ घेरे हुए पहाड़—जिनके पीछे की ओर हिमाच्छादित शिखर वाले पर्वत हैं—बीच में जगह-जगह लम्बे-लम्बे जलाशय, सर्प की भाँति कुटिल गति की जेहलम, दूर तक सफेदे की दोहरी पंक्तियों के बीच जाने वाली सड़कें, मीलों तक शहर के बाहर भी सेब, बादाम आदि के बागों में बने हुए छोटे-छोटे सुन्दर बंगले, हरी घासों से ढके लम्बे-लम्बे क्रीड़ा-क्षेत्र, सुन्दर चिनार वृक्षों की मधुर-शीतल छाया के अन्दर हरी घास के मखमली फर्शों वाली भूमियाँ देखने में बड़ी सुन्दर मालूम होती हैं।" (मेरी लद्दाख-यात्रा, पृ० ५३)

यहाँ राहुल जी की यात्राओं से पार्वत्य प्रकृति के तीन चित्र प्रस्तुत हैं। प्रथम दो चित्र तिब्बत से सम्बन्धित हैं और तीसरा कश्मीर का प्राकृतिक सौन्दर्य अंकित करता है। प्रथम दो शुद्ध प्रकृति-चित्र कहे जा सकते हैं और तीसरा अलंकृत एवं भावाक्षिप्त है। राहुल जी की शैली सर्वत्र वर्णनात्मक रही है। प्रकृति-वर्णन में भी वे प्राकृतिक-वस्तुओं के नाम गिनाते जाते हैं। पर उनकी वर्णनात्मक शैली भी इतनी प्रौढ़ है कि चित्र स्वयमेव मुखरित हो उठते हैं।

इस प्रकार के अनेक प्राकृतिक वर्णन राहुल जी की पर्वतीय प्रदेशों की यात्रा के प्रसंग में आए हैं। 'तिब्बत-यात्रा' में ल्हासा से उत्तर की ओर जाते हुए वर्षा-ऋतु का वर्णन,[88] शीगर्ची के खेतों का वर्णन,[89] ग्योची से भारत की ओर आते समय मार्ग का वर्णन,[90] डो-मो दून के देवदार के वृक्षों का वर्णन,[91] माण्डी के प्राकृतिक वैभव का वर्णन,[92] किन्नर के दुर्गम मार्ग का मेघदूत की सरस कल्पना से उपमित वर्णन,[93] बैजनाथ के मन्दिरों का प्राकृतिक दृश्य-अंकन,[94] सरस्वा में ग्रीष्म-ऋतु का चित्रण,[95] तथा लद्दाख-यात्रा में चिनार वृक्षों का सांगोपांग वर्णन[96]—राहुल जी के कुछ द्रष्टव्य प्राकृतिक दृश्य हैं। वस्तुतः राहुल जी की यात्राओं का वैभव ये भव्य पर्वतीय दृश्य हैं। यही रम्य दृश्य राहुल जी को दुर्गम पर्वत-प्रदेशों, विशेष रूप से हिमालय और तिब्बत की ओर आकृष्ट करने वाले हैं। 'मेरी यूरोप-यात्रा', 'लंका', और 'रूस में पच्चीस मास' में यत्र-तत्र पर्वतीय प्रकृति का अंकन है। कहीं-कहीं मैदानों के रमणीय चित्र भी राहुल जी ने प्रस्तुत किये हैं। फ्रांस का एक गतिशील एवं भव्य चित्र देखिये—'जब दिल मधुरता से सिक्त हो, तब बाह्य मधुरता और भी कई गुणा बढ़ जाती है। दिन में, फ्रांस की ऊँची-नीची शस्यश्यामला भूमि में जगह-जगह फलों के बगीचे, सुन्दर दुमहले-तिमहले घरों वाले साफ-सुथरे गाँव, लाल, कपिल, पृथुल चरती गायें, खेत जोतते, गेहूँ काटते विशालकाय अश्व, श्वेत-कृष्ण भेड़ें चराती हुई सुवर्ण केशी बालिकायें, सभी नेत्र के सम्मुख एक मनोहर चित्र प्रस्तुत कर रहे हैं।' (मेरी यूरोप-

यात्रा, पृ०२६) इसी प्रकार कोलम्बो के सागर का एक अलंकृत चित्र प्रस्तुत है—'कुछ कदम आगे बढ़ने पर नहर पार कर आप एक हरे-भरे मैदान में पहुँचेंगे। यदि सायंकाल का समय हो, सूर्य हो या न हो, पर उसका बिंब बुझ चुका हो, तो विशाल नीले समुद्र की लहरों पर से आने वाली हवा एक बार आपको तीनों ताप भुलवा देगी, शारीरिक ताप की तो बात ही क्या ? यदि कहीं कराल काल के चक्र सुदर्शन से आर्त सहस्रांशु को सागर के अनन्त गर्भ में लीन होने का अवसर आ गया हो, तब तो कहने ही क्या ? नीचे आपके पैरों से आकाश के छोर तक, सारा समुद्र लाल हो जाता है। उसकी अनन्त छीटें आकाश को भी लाल कर देती हैं।' (राहुल-यात्रावली, पृष्ठ १२४)

राहुल जी की यात्राओं मे इस प्रकार प्रकृति के अनेकानेक विचित्र, भव्य, मनोहारी एवं उदात्त चित्र हैं। इसका यह अभिप्राय नहीं कि प्रकृति की नीरसता एवं भीषणता उनसे ओझल रही है। अपनी तिब्बत-यात्रा में राहुल जी ने प्रकृति के शुष्क एवं हरियाली-शून्य चित्र भी दिये हैं, यथा—"नदियों की विस्तृत उपत्यकाएँ कहीं-कहीं रेगिस्तान का स्मरण दिलाती हैं और किसी-किसी जगह तो उसी तरह ववण्डर लाखो मन बालू को एक जगह से दूसरी जगह रखते उठाते हैं। उपत्यकाओ के किनारे पर छोटे-छोटे पहाड़ बिल्कुल नगे जैसे होते हैं, जिनमें वर्षा के जब-तब गिरते छीटे सावन-भादों मे कहीं-कहीं हरी घास उगा देते हैं।" (यात्रा के पन्ने, पृ० १३८)

राहुल जी का यात्रा-साहित्य प्रकृति-चित्रों की भव्य चित्रशाला है। जिसमे पर्वत, उपत्यका, सागर, मैदान, रेगिस्तान, हरियाली, शुष्कता, नदी, सरोवर, झील, खेत, पशु, ग्रीष्म, वर्षा, शरद् सभी के चित्र हैं। वर्णनात्मक शैली में होते हुए भी ये चित्र सुन्दर, आकर्षक एवं रम्य हैं। स्वदेश के चित्रों में राहुल जी के हिमालय के चित्र कश्मीर, कुमाऊँ, दार्जेलिङ्, किन्नौर आदि के चित्र तथा विदेश की यात्राओं में कोलम्बो, फ्रांस और तिब्बत के चित्र विशेष स्मरणीय हैं। राहुल जी ने मुक्त-प्रकृति तथा मानव द्वारा अलंकृत-प्रकृति दोनो की शोभा का आलेखन किया है। मुक्त-प्रकृति में पर्वतो, शृंगों, सरिताओं, झीलों एवं प्रपातो के दृश्य आकलित हैं और मानव द्वारा अलंकृत-प्रकृति मे बन्दरगाहों के समीप के स्थानो, उद्यानो एवं खेतो के दृश्य सजोये हैं। इन प्राकृतिक छवियों में कुतूहलता, बिम्बात्मकता, कलात्मकता एवं वैयक्तिकता दर्शनीय है। डॉ० रघुवंश राहुल जी के प्रकृति-चित्रों में काव्यात्मक भावशीलता का अभाव देखते हैं।[६०] पर उपर्युक्त विवेचन के उपरान्त उनका मत सर्वांश स्वीकार नहीं किया जा सकता।

(घ) वस्तु एवं व्यक्ति वर्णन

राहुल जी की यात्राओं मे वस्तु एवं व्यक्ति वर्णन का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। यात्रा-पथ में मिलने वाले नर-नारी, बच्चे-बूढ़े सभी व्यक्तित्व-सम्पन्न होकर उनकी यात्राओं मे आए हैं। मार्ग मे पड़ने वाले मन्दिर, मस्जिद, मीनार, विजय-स्तम्भ, स्मारक, किले, पुराने महल—ये सभी उनकी यात्राओं में मुखरित हो रहे हैं। अपनी

यात्रा में राहुल जी जिन व्यक्तियों से मिले हैं, जिनसे प्रभावित हुए हैं, उनका रेखांकन वे अवश्य प्रस्तुत करते हैं। सिल्वे लेवी के विषय में वे लिखते हैं —'अस्सी वर्ष के करीब का, पतला किन्तु स्वस्थ शरीर, सारे बाल सन की तरह सफेद थे। यहूदी जाति के नर-नारियों की भाँति आप गुरुनास थे। स्मितमुख, विकसित ललाट, चमकती आँखों से स्नेह की किरणें चारों ओर फैल रही थी।' (मेरी यूरोप-यात्रा, पृ० १११) तिब्बत के सहयात्री गेशे धर्मवर्धन के विषय में उनका कथन है—'गेशे बड़े प्रतिभा-शाली पुरुष थे। चतुर चित्रकार थे, अच्छे पंडित थे, सुकवि थे, भारत, लंका और बर्मा की यात्रा कर चुके थे। तिब्बती भाषा का ज्ञान आधुनिक विद्वानों जैसा था। (यात्रा के पन्ने, पृ० ७), गुरु जी पण्डित हेमराज के विषय में वे कहते हैं, 'विद्वत्ता, विद्या-प्रेम, सहृदयता, कालज्ञता और राजनीतिज्ञता सभी का इतना अच्छा सम्मिश्रण बहुत कम व्यक्तियों में मिलेगा।' (यात्रा के पन्ने, पृ० १६) इसी प्रकार स्वामी प्रणवानन्द, गौरीशंकर ओझा, महाशय अजीज, भदन्त आनन्द कौसल्यायन, माणिकलाल जोहरी, दौमियाद, अब्बासी, दत्तभाई (मन्मथदत्त), डॉक्टर बरन्निकोफ आदि सैकड़ों व्यक्तियों के संस्मरण उनकी यात्रा-कृतियों में बिखरे पड़े हैं।

व्यक्ति-चित्रों के साथ ही मन्दिरों, मस्जिदों, मठों, स्मारकों के चित्र भी राहुल जी की यात्राओं में मिलते हैं। 'मेरी यूरोप-यात्रा' में लन्दन टावर के परिचयात्मक वर्णन के उपरान्त लेखक कह उठता है, 'आँखों वालों को लन्दन टावर इस बात की शिक्षा देता है कि स्वेच्छाचार चिरकाल तक सफल नहीं हो सकता। हमारे भारतीय लोग विलायत जाने के बड़े शौकीन हैं। क्या कभी उन्होंने टावर की इस शिक्षा को अपने कानों से सुना है।'[६५] यहाँ टावर के परिचय के उपरान्त लेखक की मानसिक प्रतिक्रिया उभर आई है। इस यात्रा में फिट्ज़ विलियम संग्रहालय का भी वर्णन है।[६६] पेशावर-कोहाट के वर्णन में भग्नावशेष बौद्ध-स्तूप,[७०] तक्षशिला की खुदाई से प्राप्त मूर्तियों का वर्णन[७१] तथा समन्दे का वर्णन[७२] अत्यन्त व्यक्तित्वपूर्ण-वर्णन हैं। जो-खड् का एक वर्णन देखिये --"भीतर यद्यपि मूर्तियों के बहुत पुरानी होने से, उन पर पलस्तर की एक खुदरी-सी मटमैले रंग की मोटी तह जमी हुई है तो भी उनके अङ्ग-प्रत्यंग का मान, उनकी मुखमुद्रा, रेखाओं की लचक सभी बड़ी सुन्दर हैं। बड़े-बड़े सोने-चाँदी के दीपक मक्खन से भरे अखण्ड जल रहे थे—मन्दिर के पत्थर-पत्थर, दरो-दीवार से ही नहीं, बल्कि वायु से भी १३०० वर्ष के इतिहास की गन्ध आती है।"[७३] बदरीनाथ-यात्रा में हरगौरी की मूर्ति का वर्णन,[७४] केदारनाथ-यात्रा में केदार-मन्दिर का वर्णन,[७५] उदयगिरि के वाराह की मूर्ति का वर्णन,[७६] मालादेवी के मन्दिर का वर्णन,[७७] खमबाबा का वर्णन[७८] आदि वर्णन राहुल जी की यात्राओं में आए हैं।

(ङ) ऐतिहासिक दृष्टि

राहुल जी वस्तु एवं दृश्य वर्णन में केवल उसके वर्तमान स्वरूप का ही परिचय नहीं देते, वे उसकी ऐतिहासिक दूरियों तक पहुँच जाते हैं, उसकी पुरातात्त्विक शोध करते हैं और इस प्रकार वह अपने विषय को सम्पूर्णता प्रदान करते हैं। डॉ० रघुवंश

लिखते हैं—"लेखक के मन में वर्तमान के साथ अतीत भी प्रतिघटित होने लगता है। यात्री अपने वर्ण्य-विषय को उसकी सम्पूर्णता में ग्रहण करता है, यही कारण है कि उच्चकोटि के यात्रा-साहित्य में दृश्य-सौन्दर्य, जीवन का रूप, इतिहास, पुरातत्व, अर्थनीति सब मिलकर एक रस हो जाते हैं।"[१०६] राहुल जी इतिहास के प्रकाण्ड विद्वान् और पुरातत्त्व के पण्डित हैं। अपनी यात्राओं में वे स्थान-विशेष के ऐतिहासिक महत्त्व को अङ्कित किये बिना आगे नहीं बढ़ते। मुलतान के वर्णन में लेखक उसके ऐतिहासिक वैभव का चित्रण करता है—"ऐतिहासिक दृष्टि से मुलतान एक खास दर्जा रखता है। यहाँ का सूर्य-मन्दिर एक बड़ा तीर्थ-स्थान था। जैसे और मन्दिरों के ऐश्वर्य ने मुसलमानों को बुलाकर अपना सत्यानाश कराया, इसी तरह इसने भी खैबर पार के लुटेरों को दावत दी।"[१०७] ऐतिहासिक वर्णन के साथ वे स्थान-विशेष के पुरातात्विक अन्वेषण की ओर भी दृष्टि डालते हैं—"गैग्यंन महाशय ने बतलाया था कि अर-मा के कुछ स्तूपों के भीतर प्राचीन चित्र हैं। ढूँढते-ढूँढते हमने एक स्तूप में छोटा-सा द्वार देखा। रेंग कर भीतर गये, भीतर या दृश्य देखते हुए, रोंगटे खड़े हो गये। आठ-सौ वर्ष पुराने इन चित्रों के मुखों और अङ्गों को पत्थरों से कूच-कूच कर बिगाड़ा गया है।"[१०८] केदारनाथ के मार्ग में सिरकटे गणेश की मूर्ति देख राहुल जी इस प्रदेश में रुहेलों के अत्याचारों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर पहुँच जाते हैं।[१०९] मैंखण्डा की खण्डित शिव-पार्वती की मूर्ति देखकर भी वे रुहेलों की धर्मान्धता को कोसने लगते हैं।[११०] दिलवाड़ा के मन्दिर,[१११] अजमेर के ख्वाजा की दरगाह,[११२] चित्तौड़ की स्थिति[११३], उज्जैन का वर्णन[११४] विदिशा का वर्णन,[११५] उदयगिरि के वाराह की मूर्ति का वर्णन[११६] आदि के प्रसंग में राहुल जी का इतिहासकार का रूप जागरूक है। वह वर्तमान और अतीत का सम्मिलन उपस्थित करता हुआ अपने दृश्यों को पूर्ण एवं प्रभावशाली बना देता है। उदयगिरि के वाराह की मूर्ति के ऐतिहासिक महत्त्व को राहुल जी इन शब्दों में प्रकट करते हैं—"चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के समय में बनी इस वाराह मूर्ति और भूदेवी का एक दूसरा भी अर्थ है। यदि वाराह के मुख को हटाकर उस पर चन्द्रगुप्त का मुँह बिठा दिया जाए, तो वह एक ऐतिहासिक घटना को व्यक्त करती है। प्रतापी समुद्रगुप्त के ज्येष्ठ पुत्र ने अपनी कायरतावश गुप्तवंश की पटरानी ध्रुवदेवी के साथ गुप्तलक्ष्मी के कुछ भाग को भी शकराज के हाथ में देना स्वीकार किया था। यह बात उसके अनुज चन्द्रगुप्त को नहीं पसन्द आई और उसने ध्रुवदेवी का भेष बनाकर शकराज के शिविर में जा शत्रु का हनन किया और इस प्रकार ध्रुवदेवी और अपने कुल की भूदेवी का उद्धार किया। वाराह की मूर्ति भाव प्रकट करने में अद्भुत है, उसके रोम-रोम से ओज और बल फूट निकलता है।"[११७] इसी प्रकार तिब्बत की यात्राओं में मठों के वर्णन के प्रसंग में भी राहुल जी की ऐतिहासिक प्रतिभा दर्शनीय है।[११८]

राहुल जी स्थान एवं वस्तु विशेष का ऐतिहासिक एवं पुरातात्विक महत्त्व केवल सांस्कृतिक विवरण के रूप में ही नहीं प्रस्तुत करते। एक स्थल पर उनका कुछ इस प्रकार आलोचक रहता है। उपर्युक्त स्थानों के ऐतिहासिक महत्त्व के

अर्जुन के साथ निरपेक्ष मुक्त भाव से प्रकृति के क्षेत्र में विचरण करने लगता है। मानसरोवर एवं कैलाश को हृदय के लिए मुक्ति-लोक मानते हैं।"[11] प्रकृति के क्षेत्र में पहुँच राहुल जी जब स्थान-विशेष का वर्णन करते हैं, तो सहज ही उनका भावोद्रेक प्रकट होने लगता है। उज्जयिनी के महाकाल-मन्दिर के प्रसंग में वे बाणभट्ट की 'कादम्बरी' में वर्णित मन्दिर का स्मरण कर भावविभोर हो उठते हैं—"बाण ने कितना सुन्दर इस मन्दिर का वर्णन किया है। उसी सदी में, जबकि मूर्तिकला, चित्रकला, वास्तुकला सभी अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँचे हुए थे, उस समय का महाकाल मन्दिर कितना सुन्दर रहा होगा, कितनी सुन्दर-सुन्दर मूर्तियाँ, अलंकार या पूजा के लिए चतुर शिल्पियों ने बनाकर वहाँ रखी होंगी? चारों ओर धूप और सुगंधि का एक राज्य फैल रहा होगा। शताब्दियों को पार कर उस सौन्दर्य की किरणों और मन्दिर में जलाई जाती धूप और दूसरी सुगन्धियों की महक आज भी हमारे पास पहुँच रही थी।"[12] यात्रा-लेखक की इस प्रकार की भावात्मक प्रतिक्रियाएँ कई स्थानों पर हैं।

राहुल जी के यात्रा-वर्णन की एक और विशिष्टता यह भी है कि वे स्थानों की *ऐतिहासिक सम्पदा के वर्णन के साथ पुरानी किंवदन्तियों, जन-श्रुतियों एवं* कहावतों का भी उपयोग करते हैं। इससे यात्रा-वर्णन में सरसता व रोचकता का समावेश होता है। 'मेरी लद्दाख-यात्रा' में कश्मीर की एक रानी से सम्बन्धित कथा है जो अपने पति के विदेश में होने पर ब्राह्मण से धर्म-प्रवचन सुनकर सती हो जाती है।"[13] इसी पुस्तक में रिन्चन् के इस्लाम धर्म-ग्रहण करने की कथा है।[14] बद्रीनाथ यात्रा के वर्णन में बद्रीनाथ-सम्बन्धी अत्यन्त रोचक जनश्रुति व परम्परागत कथा का उल्लेख है।"[15] यात्रा-वर्णनों के बीच-बीच आने वाली ऐसी लोक-कथाओं ने राहुल के यात्रा-वृत्तों की रोचकता बढ़ाई है—इसमें सन्देह नहीं।

(घ) तुलनात्मक दृष्टिकोण

राहुल सांकृत्यायन के यात्रा-वृत्तान्तों में उनका तुलनात्मक दृष्टिकोण भी दर्शनीय है। विदेश-यात्राओं में उनका मन देश की यात्रा भी करता है। विदेशी स्थानों एवं वस्तुओं को देखकर उन्हें भारत का स्मरण हो आता है और उस परिप्रेक्ष्य में वे दोनों देशों की तुलना प्रस्तुत करते हैं। नागार्जुन लिखते हैं—"विदेश के व्यक्तियों और वस्तुओं का परिचय देते समय बात-बात में अपने देश के व्यक्तियों और वस्तुओं की तुलनात्मक आलोचना करते चलना वह कभी नहीं भूलते।"[16] यहाँ यह स्मरणीय है कि विदेशों से भारत की तुलना करते हुए लेखक भारत की कमियों पर व्यंग्य भी करता है, पर उस पर विदेश का रंग नहीं चढ़ जाता। वह भारतीय है, भारत के विकास के लिये ही उसने भारत की खामियों की ओर संकेत किया है। यूरोप और भारत की तुलना का एक चित्र देखिए—"जिस वक्त थोड़ी-थोड़ी जनसंख्या वाले जर्मनी, इंग्लैंड जैसे देशों को हम गणित, विज्ञान, कला आदि के क्षेत्रों में इतने अधिक पण्डित पैदा करते देखते हैं, उस वक्त हम भारतीयों को ग्लानि हुए बिना नहीं रहती। अफसोस यह है कि ऊपर से हम अपने पूर्वजों के गीत

गाकर उसे उड़ा देना चाहते हैं। स्मरण रहे, हमारे मस्तक को मुर्दा ऊँचा न कर सकेंगे। इसके लिए हमें अपनी संख्या के अनुसार पर्याप्त रवीन्द्र और रमन पैदा करने होंगे।"[128] यूरोप के हृष्ट-पुष्ट पशुओं को देखकर लेखक को भारत के दुबले-पतले पशुओं का स्मरण हो आता है।[129] ऑक्सफोर्ड के संग्रहालयों में पुराने हस्तलिखित लेख देखकर भारत की पुरानी पाण्डुलिपियों की याद आ जाती है।[130] कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के पुराने कालेजों को देखकर लेखक को नालन्दा और विक्रमशिला की याद आ जाती है। इस समय की लेखक की मनःस्थिति का अंकन द्रष्टव्य है—'मुझे तो ख्याल आता था, क्या नालन्दा बिहारियों का ऑक्सफोर्ड नहीं बन सकता। वह भी राजधानी पटना से उतनी दूर है जितना कि लन्दन से उक्त विद्यालय। उनके पीछे भी सात-आठ शताब्दियों का भव्य इतिहास है। यदि उन्हें मिल्टन और स्पेन्सर जैसे कवि, न्यूटन और डार्विन जैसे वैज्ञानिक तथा दार्शनिक पैदा करने का अभिमान है, तो नालन्दा को भी दिङ्नाग, चन्द्रकीर्ति, धर्मकीर्ति और शान्तरक्षित जैसे अद्भुत दार्शनिक, चन्द्रगोमी जैसे महावैयाकरण, सरहपाद, भुसुक जैसे हिन्दी के कवि पैदा करने का सौभाग्य प्राप्त है।"[131] इन तुलनाओं में उनकी मानसिक प्रतिक्रियाएँ व्यक्त हैं—जो यात्रा-लेखक की एक प्रमुख विशेषता है।

(छ) यात्रा-वर्णन-शैली

शैली लेखक के हृद्गत भावों को प्रकट करने का ढंग है। यह साहित्य के बाह्य रूप को अलंकृत करने के साथ ही उसके भावगत रूप को भी विकसित करती है। मरे ने 'दि प्राब्लम ऑफ स्टाइल' में शैली के तीन अर्थों का उल्लेख किया है—(१) अभिव्यंजना की व्यक्तिगत विशेषताएँ, (२) अभिव्यंजना के विधान, (३) साहित्य की उच्चतम निधि।[132] हडसन ने भी शैली के तीन प्रमुख तत्त्व माने हैं—बौद्धिक, भावनात्मक और सौन्दर्यात्मक।[133] एक अच्छी शैली में उपर्युक्त तीनों गुणों का होना आवश्यक है। 'हिन्दी साहित्यकोश' में शैली को इस प्रकार परिभाषित किया गया है—'शैली अनुभूत विषय-वस्तु को सजाने के उन तरीकों का नाम है जो उस विषयवस्तु की अभिव्यक्ति को सुन्दर एवं प्रभावपूर्ण बनाते हैं।'[134] साहित्यकार अनुभूत विषयवस्तु को प्रभावशाली बनाने के लिए जिन उपादानों की सहायता लेता है, वे शैली के मूल तत्त्व होते हैं।

राहुल प्रमुख रूप से वर्णनात्मक एवं विवरणात्मक शैली के लेखक हैं। यात्रा-साहित्य प्रधान रूप से इन्हीं शैलियों में लिखा जाता है, क्योंकि लेखक का मुख्य उद्देश्य स्थान-विशेष का वर्णन करना होता है। राहुल ने अपने यात्रा-साहित्य में विभिन्न देशों एवं स्थानों का व्यापक परिचय दिया है। अतएव प्रधान रूप से उन्होंने इन्हीं शैलियों का प्रयोग किया है। सामान्यतः उनकी यात्रा-वर्णन-शैलियाँ निम्न रूपों में उल्लिखित की जा सकती हैं—(१) इतिवृत्तात्मक शैली, (२) भावात्मक शैली, (३) अलंकृत शैली, (४) दार्शनिक शैली, (५) चित्रात्मक शैली, (६) व्यंग्यात्मक शैली, (७) पत्र-शैली, (८) डायरी-शैली।

(१) इतिवृत्तात्मक शैली—जिन वर्णनों मे दृश्य, स्थान आदि का यथावत् रूप प्रस्तुत हो और लेखक की स्थिति उसमें सर्वथा निर्लिप्त हो, वह केवल वर्णनकर्त्ता मात्र रूप मे सम्मुख आए – ऐसे वर्णन इतिवृत्तात्मक वर्णन कहे जाएँगे । इतिवृत्तात्मक वर्णनों की राहुल जी के यात्रा-साहित्य में प्रधानता है । सरल रूप में विभिन्न दृश्यो का सामान्य वर्णन उनकी विशेषता है । कत्यूर-भूमि की यात्रा मे पहाडी-बस यात्रा की कठिनाइयों का एक वर्णन देखिये—"कटारमल कुछ दूर था । हमारी बस उधर से सर्राटा भरती जा रही थी । इसी समय उधर पहाडी मोड पर दूसरी ओर से दूसरी मोटर आ पहुँची । हमारी बस पहाडी से बाहर की ओर थी, ड्राइवर ने बचाने की कोशिश की , अधिक कोशिश करने का अर्थ था सीधे पाताल लोक में पहुँचना । लोगों के रोंगटे खड़े हो गये किन्तु बस की दाहिनी आँख (लैम्प) बलिदान करके छुट्टी मिल गई ।"[134] "मेरी यूरोप-यात्रा" में पेरिस का निम्नलिखित वर्णन इतिवृत्तात्मक ही कहा जाएगा ।

'मीनार से उतर कर हम उस चौरास्ते पर पहुँचे, जहाँ नैपोलियन की लायी, पुरातन चित्रलिपि से अंकित, मिस्री लाट खडी है । इसी अहाते में फ्रांस की आठ नगरियों की आठ सुन्दर स्त्रियो की पाषाण-मूर्तियाँ हैं । पेरिस कला का स्वर्ग है । ऐसी दिव्य सुन्दर पाषाण-मूर्तियाँ, इतनी सख्या मे पेरिस से बाहर नहीं मिल सकती ।[136] इसी पुस्तक मे लन्दन टावर का वर्णन,[137] 'चीन मे क्या देखा' के अन्तर्गत बर्मा का परिचयात्मक वर्णन,[138] पेकिंग के मिङ्-प्रासाद का वर्णन,[139] 'हिमालय-परिचय' के अन्तर्गत ऋषिकेश का वर्णन,[140] तिब्बत-यात्रा में काठमण्डो,[141] तिङरि,[142] डोङ्ला[143] आदि के वर्णन इतिवृत्तात्मक ही हैं । अभिप्राय यह कि इतिवृत्तात्मक वर्णन-शैली द्वारा राहुल जी यात्रा मे आए स्थानों, मार्गों, दृश्यो आदि का परिचय देते हैं । अपने अनुभवो को सहज सरल भाषा-शैली में प्रस्तुत करना राहुल जी का उद्देश्य रहा है । इनमे आलंकारिकता का सर्वथा अभाव तो नहीं, फिर भी लेखक व्यर्थ के शब्दाडम्बर से बचता हुआ वर्णन करता चलता है ।

(२) भावात्मक शैली—जब यात्रा-लेखक दृश्यों को देखकर आत्मविभोर हो जाता है तो वह अपने भावोद्रेक को भावात्मक शैली मे अङ्कित करता है। यद्यपि राहुल जी के अधिकाश वर्णन परिचयात्मक एव तथ्यात्मक हैं, तथापि ऐसे स्थलों की उनके यात्रा-साहित्य मे कमी नहीं, जहाँ वे प्राकृतिक दृश्यो, मन्दिरो एवं मूर्तियो को देखकर भावविभोर हो उठते है । ऐसे वर्णनों मे काव्यात्मकता आ जाती है और पाठक को ऐसे स्थल रसमुग्ध कर देते हैं । कला और सस्कृति की प्रकाश-स्तम्भ उज्जयिनी के वर्णन मे लेखक भावुक हो उठा है । उज्जैन का एक मार्मिक वर्णन देखिये—"उज्जैन प्राचीनकाल से अब तक इसी नाम से प्रसिद्ध है और कला तथा सस्कृति की प्रकाश-स्तम्भ जैसी भारत की सात पुरियों मे सदा से इसकी गणना होती चली आई है। संस्कृत-साहित्य मे उज्जैन का नाम लेने से ही आदमी के हृदय मे रस का सचार होने लगता है । कालिदास और विक्रम की उज्जयिनी, वासवदत्ता और चारुदत्त की उज्जयिनी,

गाकर उसे उड़ा देना चाहते हैं। स्मरण रहे, हमारे मस्तक को मुर्दा ऊँच सकेंगे। इसके लिए हमें अपनी संख्या के अनुसार पर्याप्त रवीन्द्र और रमण होंगे।"[128] यूरोप के हृष्ट-पुष्ट पशुओं को देखकर लेखक को भारत के पशुओं का स्मरण हो आता है।[129] ऑक्सफोर्ड के संग्रहालयों में पुराने हस्त देखकर भारत की पुरानी पाण्डुलिपियों की याद आ जाती है।[130] ... विद्यालय के पुराने कालेजों को देखकर लेखक को नालन्दा और विक्रम आ जाती है। इस समय की लेखक की मन स्थिति का अंकन द्रष्टव्य ख्याल आता था, क्या नालन्दा विहारियों का ऑक्सफोर्ड नहीं बन स राजधानी पटना से उतनी दूर है जितना कि लन्दन से उक्त विद्या भी सात-आठ शताब्दियों का भव्य इतिहास है। यदि उन्हें मिल्टन कवि, न्यूटन और डार्विन जैसे वैज्ञानिक तथा दार्शनिक पैदा करने तो नालन्दा को भी दिङ्नाग, चन्द्रकीर्ति, धर्मकीर्ति और शान्ति दार्शनिक, चन्द्रगोमी जैसे महावैयाकरण, सरहपाद, भुसुक जै करने का सौभाग्य प्राप्त है।"[131] इन तुलनाओं में उनकी व्यक्त हैं—जो यात्रा-लेखक की एक प्रमुख विशेषता है।

(छ) यात्रा-वर्णन-शैली

शैली लेखक के हृद्‌गत भावों को प्रकट करने का बाह्य रूप को अलंकृत करने के साथ ही उसके भावगत रूप है। मरे ने 'दि प्राब्लम ऑफ स्टाइल' में शैली के तीन अर्थ (१) अभिव्यंजना की व्यक्तिगत विशेषताएँ, (२) (३) साहित्य की उच्चतम निधि।[132] हडसन ने भी हैं—बौद्धिक, भावनात्मक और ...।[133] ... तीनों गुणों का होना आवश्यक है ... साहित्य परिभाषित किया गया है—'शैली ... विषय-व नाम है जो उस विषयवस्तु ... को सुन्द साहित्यकार ... बना सहायता लेता है, वे शैली ... हैं।

राहुल प्रमुख रूप ... विवरण साहित्य प्रधान रूप से ... स्थान-विशेष का वर्णन ... देशों एवं स्थानों का ... शैलियों का प्रयोग ... उल्लिखित की जा ... (१) अलंकृत शैली, शैली, (२) ...

होता चलता है [५३]। राहुल जी प्रकाण्ड दार्शनिक एवं बौद्ध-पण्डित हैं। उनके यात्रा-वर्णनों में कहीं-कहीं दार्शनिकता का पुट है। 'राजस्थान-विहार' के अन्तर्गत भूकम्प-ग्रस्त सीतामढ़ी के वर्णन में राहुल जी लिखते हैं—' थोड़ा ही चलकर प्राय. मील भर तक ज्वालामुखियों का तांता लगा हुआ मिला। प्रकृति अपना नृत्य छेड़ते वक्त इन हजारों फव्वारों का खेल करना नहीं भूली थी और इधर प्राणी त्राहि-त्राहि कर रहे थे। मनुष्य का भाग्य ही ऐसा है। उसे हमेशा बड़े-बड़े खतरों से गुजरना पड़ा। अगर इतने खतरों का सामना न करना पड़ता तो मनुष्य मनुष्य न होता। चतुष्पाद ने भीषण विपत्तियों में पड़कर जब अपने दिमाग और हाथ से अधिक काम लेना शुरू किया तभी वह मनुष्यत्व के पद पर पहुंचा।" [५४] इन पंक्तियों में राहुल जी दार्शनिक की भाषा में बोलते हैं और मनुष्य के विकास की कथा कहते है। कहीं-कहीं तो स्वतंत्र रूप से राहुल जी ने बौद्ध-धर्म और मार्क्सवाद का व्याख्यान किया है, वहाँ राहुल का यायावर मौन है तथा बौद्ध दार्शनिक और मार्क्सवादी रूप मुखरित हो उठता है।[५५] ऐसे वर्णन यात्रा-वर्णन में उचित नहीं जंचते। परन्तु जहाँ यात्रा-प्रसंगों के बीच कहीं-कहीं दार्शनिक-वर्णन हैं, उनसे उनके यात्रा-साहित्य का मूल्य बढ़ा है।

(५) चित्रात्मक शैली—राहुल जी की वर्णन-शैली कहीं-कहीं प्राकृतिक दृश्यों एवं भावों के चित्र प्रस्तुत करती है। विशेष कर पर्वतीय प्रकृति के अनेक चित्रात्मक वर्णन उनकी यात्राओं में आए हैं। 'किन्नर देश' की प्रकृति का एक चित्र उदाहरणार्थ प्रस्तुत है—"ऊपर की ओर से पानी के श्वेत झरने झर रहे थे। पर्वतों के ऊपर सूर्य की किरणें पड़ने से रजत की भाँति हिम चमक रहा था, जिन्हें देख कर चित्त प्रफुल्लित हो जाता है। शोलवों के मोटे-मोटे नये वृक्ष मन्दिर के चारों ओर खड़े थे। उनकी पत्तियाँ जाड़े में ही हिमपात से गिर गई थीं। शोलवों वृक्ष की पत्तियाँ पीपल की पत्तियों के समान होती हैं। यही वृक्ष यहाँ के लोगों का प्रधान काष्ठ-वृक्ष है।" इस प्रकार के अनेक चित्रात्मक वर्णन उनके प्रकृति-वर्णनों में देखे जा सकते हैं।

(६) व्यंग्यात्मक शैली—राहुल जी के यात्रा-वर्णनों में व्यंग्यात्मक-वर्णनों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। राहुल जी के व्यंग्य समाज के अप्रगतिशील तत्वों पर हैं। इस्लाम की मूर्ति-विरोधी भावना,[५६] हिन्दुओं की पुरोहित-प्रथा,[५७] तिब्बतियों का माणी घुमाकर मन्त्र-जाप करना,[५८] आदि विविध धर्मों के अन्ध-विश्वासों एवं परम्परागत रूढ़ियों के वर्णन उन्होंने व्यंग्यात्मक शैली में किये हैं। एक उदाहरण देखिये—"मन्दिर के भीतर कहीं उन लगड़े-अपाहिजों के सैकड़ों दण्ड टंगे हुए हैं, जो हमारी देवी की कृपा से चंगे हो गए थे। कहीं-कहीं उन जहाजों की तस्वीरें या नाम अंकित हैं, जिन्हें कृपामयी हमारी देवी ने बचाया था। कहीं कितने ही कृतज्ञों के नाम अंकित हैं, जिनमें स्वर्गीय महारानी अलेक्जैण्डरा का नाम भी है। 'हमारी देवी' की

जीती-जागती महिमा को देखकर कौन प्रभावित हुए बिना रहेगा ? किन्तु हमारे एक भारतीय साथी ने कहा सभी जगह ठगी का बाजार एक-सा ही गर्म है।"[१५९] यह व्यंग्यात्मक चित्रण मोर्सेल के एक गिरजे के वर्णन के प्रसंग में है जो अंग्रेज़-जाति के धार्मिक आडम्बरों पर सुन्दर व्यंग्य बन पड़ा है ।

(७) पत्र-शैली— यात्रा-साहित्य में पत्र-शैली का अपना महत्त्व है। यद्यपि पत्र-शैली द्वारा लेखक स्थान-विशेष का वर्णन भी करता है, परन्तु इस शैली में लेखक की वैयक्तिकता एवं आत्मीयता का प्रतिपादन विशेष रूप से दृष्टिगोचर होता है। पत्र-लेखक पत्र को वैयक्तिक बनाकर भी जनरुचि का ध्यान रखता है। यात्रा-वर्णन सम्बन्धी पत्रों में लेखक देश-सम्बन्धी वृत्तान्त प्रस्तुत करने के साथ अपनी प्रतिक्रियाओं का भी अंकन करता है । हिन्दी यात्रा-साहित्य में पत्र-शैली का प्रयोग कुछ ही लेखकों ने किया है । राहुल जी ऐसे लेखकों में मूर्धन्य हैं । 'यात्रा के पन्ने', 'मेरी तिब्बत-यात्रा' तथा 'मेरी लद्दाख-यात्रा' में राहुल जी ने पत्र-शैली का प्रयोग किया है। 'यात्रा के पन्ने' में 'प्रवास के पत्र' शीर्षक के अन्तर्गत ५७ पत्र हैं। प्रवास के पत्र भदन्त आनन्द कौसल्यायन के नाम लिखे गये हैं । इनमे पेरिस के पत्र, जर्मनी के पत्र, लंका की ओर आते हुए पत्र, भारत के पत्र, लद्दाख के पत्र संग्रहीत हैं । इन पत्रों में राहुल जी ने अपनी यात्रा का उद्देश्य व्यक्त किया है । कुल्लू की यात्रा का वर्णन एक पत्र के रूप में देखिए[१६०]—

कुल्लू
२-१०-३३

प्रिय आनन्द जी,

अब मैं पहाड़ की ओर देखने लगा । यहाँ पतली बर्फ की तह से ढके, मृतिका-शून्य छोटे-बड़े पत्थर हैं । सारा पहाड़ पत्थरों की खिसकाहट से सजीव-सा मालूम होता था—यह कहना अतिशयोक्ति न होगी । वह दृश्य रोमांचकारी था ………… दूर पहाड़ों पर हरी घास और लाल बूटियाँ दिखाई पड़ रही थी, तो भी अभी वृक्षों का नाम न था ।

—राहुल सांकृत्यायन

ल्हासा से उत्तर की ओर का एक अन्य वर्णन पत्र के रूप में देखिए[१६१]—

पया (फेन-बो)
३०-७-३४

प्रिय आनन्द जी,

आजकल वर्षा ऋतु है । भूले-भटके कितने ही बादल हिमालय के इस पार भी आ पहुंचते हैं । और मैदान और पहाड़ जिधर देखो उधर ही हरी मखमली छोटी-छोटी घास बिछी हुई है । तीन मास के लिए यहाँ की पर्वत-मालाएँ अद्भुत सौन्दर्य धारण कर लेती हैं । हरी घास के अतिरिक्त कहीं-कहीं पीले-पीले फूल भी दिखाई [illegible] हैं ।

तुम्हारा,
राहुल सांकृत्यायन

पत्र-शैली के रूप में लिखित राहुल जी के यात्रा-वर्णन रोचक, व्यावहारिक एवं रचनात्मक हैं। उनमें सहजता, सरसता और आत्मीयता का गुण विद्यमान है।

(८) डायरी-शैली—यात्रा साहित्य में पत्र-शैली की तरह डायरी-शैली का भी प्रयोग हुआ है। लेखक मार्मिक स्थलों एवं दृश्यों के वर्णन के साथ अपने जीवन के निजी तत्त्वों को भी जोड़ता जाता है। राहुल द्वारा लिखित 'रूस में पच्चीस मास' में डायरी-शैली का प्रयोग मिलता है। राहुल जी डायरी-लेखक की तरह यात्रा में आने वाली भौगोलिक और सांस्कृतिक सूचनाओं को टाँकते चलते हैं और साथ ही बीच-बीच में उनकी साक्षात्कार-जनित-प्रतिक्रिया के फलस्वरूप अपने हृदय में उत्पन्न होने वाले भावों और विचारों को सहज अभिव्यक्ति देते चलते हैं।

इस प्रकार राहुल जी की यात्रा-कृतियाँ प्रधानतः वर्णनात्मक-शैली में लिखी गई हैं। वर्णनात्मक-शैली के अनेक प्रयोग उन्होंने यात्रा-वर्णनों में किये हैं। कई स्थलों पर तो उसमें संवेदनात्मक, दार्शनिक, भावात्मक एवं अलंकृत शैली का समन्वय भी दृष्टिगोचर होता है। कुछ यात्राओं का विवरण पत्रों और डायरी के रूप में भी है। विविध यात्रा-वर्णनों के अतिरिक्त राहुल जी का 'घुमक्कड़-शास्त्र' यात्रा-सम्बन्धी निबन्धों का अच्छा संग्रह है। इसमें लेखक ने व्यास शैली का प्रयोग किया है।

यहाँ यह स्पष्ट कर देना अनुचित न होगा कि राहुल जी का विचारक-रूप उनके समग्र साहित्य में सर्वदा उद्‌बुद्ध रहा है। यात्रा-साहित्य में उनके ऐतिहासिक एवं पुरातात्त्विक पाण्डित्य के साथ उनके दार्शनिक एवं विचारक का रूप भी कहीं-कहीं मुखरित हो उठा है। साम्यवाद, पूँजीवाद, सामन्तवाद, पुरोहितवाद आदि पर उनके विचार उनकी यात्रा-कृतियों में इधर-उधर बिखरे मिलते हैं। यहाँ यह ध्यातव्य है कि राहुल जी की विचारधारा यात्रा-वर्णन का अंग बनकर आई है, वह स्वतन्त्र रूप से प्रकट नहीं हुई।

राहुल जी ने अपने यात्रा-साहित्य में देश की स्थिति, उसके प्राकृतिक सौन्दर्य के साथ वहाँ के जीवन, इतिहास और पुरातत्त्व पर भी विस्तार से प्रकाश डाला है। उनकी तिब्बत तथा नेपाल की यात्राओं का उद्देश्य प्राचीन हस्तलिखित पोथियों की खोज भी रहा है, रूस की यात्रा उन्होंने अध्यापन-कार्य के लिए की है, फिर भी उनकी दृष्टि सभी तरफ फैली रहती है। यह देश-काल एवं वस्तुओं के विशद वर्णन के साथ स्थान-विशेष के जीवन, उसके रीति-रिवाज, त्योहारों, उत्सवों का भी सजीव चित्र प्रस्तुत करती है। वास्तव में राहुल जी का यात्रा-साहित्य उनके यात्रा-स्थानों की राजनीतिक, सामाजिक, भौगोलिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक स्थिति को जानने के लिए विश्वकोश के समान है। परन्तु राहुल जी ने एक सामान्य पर्यटक की भाँति इन स्थानों का वर्णन नहीं किया अपितु एक संवेदनशील साहित्यकार तथा प्रगतिशील विचारक की भाँति उन्हें देखा है। उनका यात्रा-साहित्य विवरणात्मक, सूचनात्मक मात्र न होकर साहित्यिकता से सम्पन्न है। उनके यात्रा-वर्णनों में स्थान-स्थान पर भावावेश उल्लास, आत्मीयता आदि की अभिव्यक्ति पाई जाती है। एक यायावर में प्रगीत के

गायकों का भावावेश और निबन्धकार की जिस मस्ती की अपेक्षा होती है, वह राहुल में बहुत सीमा तक विद्यमान है। वे सच्चे लेखक-पर्यटक थे—यात्रा मे उनके लिए आकर्षण था, निश्चिन्तता उनकी सगिनी थी और वे सर्वत्र सीमाओं को लाँघते हुए सच्चे यात्री कहलाने के अधिकारी हैं। एक सफल और जीवन्त घुमक्कड़ के लिए विनोद-प्रियता, व्यंग्यात्मकता और बेसरोसामान के चल खड़े होने का गुण अत्यन्त अनिवार्य है। बेसरोसामान यात्रा करने में यायावर अज्ञेय मुक्ति का बोध पाते हैं।[१६२] राहुल सांकृत्यायन भी ऐसे ही पर्यटक हैं। उन्हें रोमनी जीवन की स्वच्छन्दता में आकर्षण दिखाई देता है।[१६३] 'गृहकारण नाना जजाला' के बन्धन उन्हें बाँध नही पाते।[१६४]

राहुल जी के यात्रा-वर्णनों एवं विवरणों के पीछे कलाकार का हृदय एवं विचारक का मस्तिष्क है, जो समाज के नवनिर्माण का सर्वत्र सकेत करता है। वस्तुतः यात्रा राहुल के लिए जीवन-दर्शन से कम न थी। और उनका यात्रा-साहित्य समग्र जीवन की अभिव्यक्ति लिए हुए है। उनके लिए प्रकृति सजीव है, यात्रा में मिलने वाले व्यक्ति स्वजन हैं। वे देश की आत्मा का साक्षात्कार करते हैं और देश-विदेश में बिखरे इतिहास को, संस्कृति, सभ्यता और समाज को चित्रित करते चलते हैं। राहुल जी सच्चे साहित्यिक यायावर है। क्योंकि "एक कलाकार की विशेषता यही है कि वह सतह की लहरियों को देखता ज़रूर है, उन्हें गुनता-परखता भी है, लेकिन इन्ही मे डूबता-उतराता नही रह जाता। वह तो उस देश की सम्पूर्ण संस्कृति का सर्वाङ्गीण आकलन प्रस्तुत करता है। परिणामतः वह समूचा देश अपने समस्त सांस्कृतिक परिवेश के साथ एक प्राणवान् प्रतिमा-सा हमारे सामने आ खड़ा होता है।[१६५] इस साहित्यिक-पर्यटक के यात्रा-साहित्य में उपन्यास की विराट्ता, कहानी की रोचकता, प्रगीत-लेखक की मस्ती, निबन्धकार की आत्मीयता और वर्णन-शैली की गरिमा—ये सब विशेषताएँ एक साथ मिल जाती हैं।

संक्षेपत. यात्रा-क्षेत्र की विविधता एवं विशदता, कृतियों की परिमाणात्मक एवं गुणात्मक विपुलता, समाज एवं वस्तु-वर्णन की यथार्थता, प्राकृतिक-दृष्टि की विविधता, विचित्रता एवं भावात्मकता, ऐतिहासिक प्रतिभा के उन्मेष एव पुरातात्विक अन्वेषण की सम्पन्नता, वर्णनात्मक शैली की गरिमा एवं साहित्यिकता—इन सभी गुणों को अपने मे संजोता हुआ राहुल जी का यात्रा-साहित्य हिन्दी की अमूल्य निधि है।

●●

सन्दर्भ

१. संस्कृत शब्दार्थ, कौस्तुभ-सं० द्वारकाप्रसाद शर्मा, पृ० ६८६-६० ।
२. हिन्दी विश्वकोष (१८ वाँ भाग), पृ० ६३० ।
३. ए प्रैक्टिकल संस्कृत डिक्शनरी-डॉ० ए० ए० मैकडोनल, पृ० २४४ ।
४. ऐतरेय ब्राह्मण, ७।१५ ।
५. वही, ८।११ ।
६. कुट्टनीमतम् काव्यम्-अनुवादक जगन्नाथ पाठक, पृ० ४८ ।
७ घुमक्कड़-शास्त्र, पृ० १ ।
८. वही, पृ० १ ।
९. वही, पृ० ८ ।
१०. वही ।
११. हिन्दी साहित्य-कोश, पृ० ६०८ ।
१२. घुमक्कड़-शास्त्र, पृ० १२६ ।
१३. वही, पृ० १४०-१४१ ।
१४. आलोचना (जुलाई, १६५४), पृ० ११-१२ ।
१५. शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त (द्वितीय भाग), पृ० ५१० ।
१६. एक आलोचक की नोट-बुक, पृ० २५ ।
१७. घुमक्कड़-शास्त्र, पृ० १४४ ।
१८. एशिया के दुर्गम भू-खण्डों में, पृ० ३ ।
१९. वही, पृ० ३-४ ।
२०. आलोचना (जुलाई, १६५४), पृ० १६ ।
२१. हिन्दी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास, पृ० २८४ ।
२२. हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास, पृ० ७१८ ।
२३ एशिया के दुर्गम भू-खण्डों में, पृ० ३-४ ।
२४ घुमक्कड़-शास्त्र, पृ० १४५ ।
२५. वही, पृ० १५४ ।
२६. मेरी यूरोप-यात्रा, दो शब्द ।
२७. राहुल-यात्रावली, पृ० १५५ ।
२८. वही, पृ० २६५ ।
२९. वही, पृ० ३७४ ।
३०. हिमालय-परिचय, पृ ४६७ ।

३१. रूस में पच्चीस मास, पृ० २०४।
३२. घुमक्कड़-शास्त्र, पृ० १४५।
३३. हिमालय-परिचय, पृ० ४२४।
३४. सप्तसिन्धु (अक्तूबर, १९६५), पृ० १०।
३५. दार्जिलिङ्-परिचय, पृ० १।
३६. किन्नर-देश, पृ० २।
३७. वही, पृ० १।
३८. यात्रा के पन्ने, पृ० ३२-३३।
३९. वही, पृ० ४३।
४०. किन्नर-देश, पृ० ३।
४१. वही, पृ० ६१।
४२. राहुल-यात्रावली, पृ० २५७।
४३. घुमक्कड़-शास्त्र, पृ० १४२।
४४ हिन्दी साहित्य-कोश, पृ० ६०९।
४५. यात्रा के पन्ने, पृ० ४१५।
४६. मेरी लद्दाख-यात्रा, पृ० ११।
४७. वही, पृ० ३६।
४८. वही, पृ० ३२।
४९. मेरी लद्दाख-यात्रा, पृ० १६।
५०. मेरी यूरोप-यात्रा, पृ० ५-६।
५१. मेरी लद्दाख-यात्रा, पृ० ७३।
५२ वही, पृ० ७१।
५३. वही, पृ० ८५-८६।
५४. वही, पृ० ६४।
५५. किन्नर देश, पृ० ५५।
५६. वही, पृ० ५७-५८।
५७. किन्नर-देश, पृ० ५-१०।
५८. मेरी यूरोप-यात्रा, पृ० १८।
५९. वही, पृ० ७५, ८८।
६० [illegible], पृ० ७८।
६१ रूस में पच्चीस मास, पृ० ३८-३९।
६२ वही, पृ० १२७, १६३, १७४।

६३. राहुल-यात्रावली, पृ० २३७, ४३०, २०२, २८८ ।
६४. वही, पृ० २२१ ।
६५. वही, पृ० २२८ ।
६६. वही, पृ० ३२७-३२९ ।
६७. यात्रा के पन्ने, पृ० ६८ ।
६८. वही, पृ० ३९ ।
६९. वही, पृ० ३४ ।
७०. राहुल-यात्रावली, पृ० २८६ ।
७१. वही, पृ० २५२ ।
७२. वही, पृ० २६५ ।
७३. वही, पृ० २८१ ।
७४. वही, पृ० २७७ ।
७५. वही, पृ० २७७, २९४, २९५ ।
७६. यात्रा के पन्ने, पृ० ६६ ।
७७. राहुल-यात्रावली, पृ० २७९-८०, ३३०।
७८. वही, पृ० २८४-८६ ।
७९. वही, पृ० ३६८ ।
८०. वही, पृ० २२८-२९, ३७७ ।
८१. वही, पृ० २३६ ।
८२. वही, पृ० ३७६ ।
८३. वही, पृ० २०६-२०८ ।
८४. किन्नर देश, पृ० ३२३ से ३६१ ।
८५. हिमालय-परिचय, प्राक्कथन पृ० ५ ।
८६. दोर्जेलिङ्-परिचय, पृ० १ ।
८७. वही, भूमिका पृष्ठ 'ख', 'घ' ।
८८. मेरी तिब्बत-यात्रा, पृ० ५ ।
८९. राहुल-यात्रावली, पृ० २७८ ।
९०. वही, पृ० ४१९ ।
९१. वही, पृ० ४२५ ।
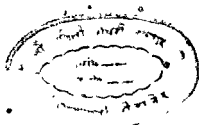
९२ वही, पृ० १९१ ।

९३. किन्नर देश, पृ० १ ।

९४. कुमाऊँ, पृ० ३३२ ।

९५. यात्रा के पन्ने, पृ० ५८ ।

९६. मेरी लद्दाख-यात्रा, पृ० ८३ ।

९७. आलोचना (जुलाई, १९५४), पृ० १९ ।

९८ मेरी यूरोप-यात्रा, पृ० ३३-३५ ।

९९. वही, पृ० ४५ ।

१००. मेरी लद्दाख-यात्रा, पृ० ३१ ।

१०१. वही, पृ० ८ ।

१०२. राहुल-यात्रावली, पृ० ३६८ ।

१०३. वही, पृ० ३७६ ।

१०४. हिमालय-परिचय, पृ ४४१ ।

१०५. वही, पृ० ४३० ।

१०६. यात्रा के पन्ने (राजस्थान-बिहार), पृ० ३७६ ।

१०७. वही, पृ० ३७८ ।

१०८. वही, पृ० ३७३ ।

१०९. आलोचना (जुलाई, १९५४), पृ० १६ ।

११०. मेरी लद्दाख-यात्रा, पृ० १२ ।

१११. वही, पृ० १०२ ।

११२. हिमालय-परिचय, पृ० ४२३ ।

११३. वही, पृ० ४३६ ।

११४. यात्रा के पन्ने पृ० ३४९ ।

११५. वही, पृ० ३५२ ।

११६. वही, पृ० ३६७ ।

११७. वही, पृ० ३६६ ।

११८. वही, पृ० ३७४ ।

११९. वही, पृ० ३७६ ।

१२०. वही ।

१२१. राहुल-यात्रावली, पृ० ३७६, ३६६ ।
१२२ चिन्तामणि (प्रथम भाग), रामचन्द्र शुक्ल, पृ० २५६ ।
१२३. यात्रा के पन्ने, पृ० ३७० ।
१२४. मेरी लद्दाख-यात्रा, पृ० ४४-४५ ।
१२५. वही, पृ० ४६ ।
१२६. हिमालय-परिचय पृ० ४७१-७२ ।
१२७. मेरी यूरोप-यात्रा (द्वितीय संस्करण), भूमिका ।
१२८. वही, पृ० २४ ।
१२९. वही, पृ० ३७ ।
१३०. वही, पृ० १०४ ।
१३१. वही, पृ० ४२-४३ ।
१३२. दि प्राब्लम ऑफ स्टाइल-जे० एम० मरे, पृ० ८ ।
१३३. इण्ट्रोडक्शन टु दि स्टडी ऑफ् लिटरेचर, पृ० ६०-६१ ।
१३४. हिन्दी साहित्य-कोश, पृ० ७७३ ।
१३५. कुमाऊँ, पृ० ३३२ ।
१३६. मेरी यूरोप-यात्रा, पृ० २१ ।
१३७. वही, पृ० २३ ।
१३८. चीन में क्या देखा, पृ० ११ ।
१३९. वही, पृ० १६ ।
१४०. हिमालय-परिचय, पृ० ४०६ ।
१४१. यात्रा के पन्ने, पृ० ६ ।
१४२. वही, पृ० ३२-३३ ।
१४३. वही, पृ० ४३ ।
१४४. वही, (राजस्थान-विहार), पृ० ३६६-३७० ।
१४५. कुमाऊँ, पृ० ३३३ ।
१४६. किन्नर देश, पृ० १ ।
१४७. हिमालय-परिचय (गढ़वाल), पृ० ४१० ।
१४८. वही, पृ० ४४१ ।
१४९. मेरी लद्दाख-यात्रा, पृ० ३१ ।
१५०. राहुल-यात्रावली, पृ० ३६६ ।
१५१. मेरी लद्दाख-यात्रा, पृ० ४३ ।
१५२. राहुल-यात्रावली, पृ० १११ ।
१५३. हिन्दी यात्रा-साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन, पृ० ३१३ ।

१५४. यात्रा के पन्ने, पृ० ४०८।

१५५. मेरी यूरोप-यात्रा, पृ० ७२।

१५६. मेरी लद्दाख-यात्रा, पृ० ८।

१५७. वही, पृ० १२।

१५८. राहुल-यात्रावली, पृ० २८८।

१५९. मेरी यूरोप-यात्रा, पृ० १८।

१६०. यात्रा के पन्ने, पृ० ३०६-१० तथा मेरी लद्दाख-यात्रा, पृ० ११२।

१६१. मेरी तिब्बत-यात्रा (प्रथम संस्करण), पृ० ५।

१६२. एक बूँद सहसा उछली-प्रवेश, पृ० २१।

१६३. घुमक्कड़-शास्त्र, पृ० ८०।

१६४. वही, पृ० १२।

१६५. एक आलोचक की नोट-बुक—बारह रेखा, पृ० २६।

तृतीय खण्ड | पाँचवाँ परिवर्त

राहुल जी की कहानियाँ

कहानी का स्वरूप

कहानी आधुनिक हिन्दी-साहित्य की विकासशील एवं लोकप्रिय गद्य-विधा है। इसलिए कहानी को निश्चित परिभाषा में बाँधना एवं उसका स्वरूप निर्धारित करना सहज नहीं। भारतीय एवं पाश्चात्य समालोचकों एवं कहानीकारों ने इसका स्वरूप-निर्धारण करने के प्रयास में इसका कतिपय विशेषताओं का ही उल्लेख किया है। हडसन कहानी के लिए एक मूल भाव एवं लक्ष्य की एकनिष्ठता आवश्यक मानते हैं[1]। एडगर एलिन पो कहानी की रूपविधि की व्याख्या करते हुए उसकी आधुनिक आवश्यकताओं का ध्यान रखते हैं। वे कहानी को संक्षिप्त, प्रभावोत्पादक एवं स्वतः-पूर्ण बतलाते हैं।[2] सर ह्यू वाल पोल की परिभाषा कुछ अधिक व्यापक है। वे लिखते हैं—"कहानी में घटनाओं का विवरण इस प्रकार चित्रित किया जाना चाहिए कि एक आशातीत विकास दिखाई पड़े। इस विकास की प्रेरिका सक्रियता होनी चाहिए। यह विकास इस प्रकार चित्रित किया जाना चाहिए कि वह हमारी जिज्ञासावृत्ति को स्थिर रखते हुए चरमबिन्दु का स्पर्श कर एक सन्तोषजनक पर्यवसिति तक पहुंच जाए।"[3]

हिन्दी के विद्वानों ने भी कहानी के स्वरूप को स्पष्ट करने की चेष्टा की है। जयशंकर प्रसाद कहानी को सौन्दर्य की एक झलक का चित्रण और उसके द्वारा इसकी सृष्टि करना स्वीकारते हैं।[4] मुन्शी प्रेमचन्द कहानी में संक्षिप्तता, आकर्षक आरम्भ, प्रभावपूर्ण विकास एवं मुग्धकारी अन्त आवश्यक तत्त्व मानते हैं।[5] डॉ० श्यामसुन्दर दास निश्चित लक्ष्ययुक्त नाटकीय आख्यान को कहानी कहते हैं।[6] डॉ० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा कहानी को एक लघु गद्य-रचना मानते हैं जिसमें एक-तथ्यता, संवेदनशीलता एवं प्रभावान्विति के गुणों का होना आवश्यक है।[7] भगवती-चरण वर्मा कहानी को जीवन के किसी एक पहलू की झाँकी मात्र मानते हैं जिसके प्रभाव में तीव्रता रहती है।[8] डॉ० कृष्णलाल का मत है—"आधुनिक कहानी साहित्य का एक विकसित कलात्मक रूप है जिसमें लेखक अपनी कल्पना-शक्ति के सहारे कम-से-कम घटनाओं और प्रसंगों की सहायता से कथानक, चरित्र, वातावरण, दृश्य अथवा प्रभाव की सृष्टि करती है।"[9] बाबू गुलाबराय जी कहानी की अनेक विशेषताओं को समन्वित करते हुए इसकी परिभाषा अपेक्षाकृत अधिक विश्लेषणात्मक एवं व्यापक रूप से देते हैं—"छोटी कहानी एक स्वतःपूर्ण रचना है, जिसमें एक तथ्य या प्रभाव को अग्रसर करने वाली व्यक्ति-केन्द्रित घटना अथवा घटनाओं के आवश्यक परन्तु कुछ-कुछ अप्रत्याशित ढंग से उत्थान-पतन और मोड़ के साथ पात्रों के चरित्र पर प्रकाश डालने वाला कौतूहलपूर्ण वर्णन हो।"[10]

उक्त मतों एवं परिभाषाओं के आधार पर कहानी की समन्वित परिभाषा का रूप इस प्रकार निश्चित किया जा सकता है—आधुनिक कहानी एक ऐसी संक्षिप्त परन्तु स्वत:पूर्ण रचना है जिसका आधार किसी वैज्ञानिक सत्य, मानव-जीवन या समाज की कोई समस्या हो और जो बिना इधर-उधर भटके अपने ध्येय पर पहुंच जाए और यदि उसमें कोई घटना वर्णित है तो उसका चित्रण इकहरा और रसपूर्ण हो। कहानी के इस स्वरूप के आधार पर कहा जा सकता है कि आकार की लघुता, संवेदना की एकता, प्रभावान्विति, सक्रियता एवं रसमयता उसके प्राणभूत तत्त्व हैं। वह हमारे जीवन के किसी विशिष्ट क्षण की अभिव्यक्ति है।

उपन्यास के समान कहानी के भी छ: तत्त्व हैं, पर उनके स्वरूप में उनके आकार के अनुकूल अन्तर होना स्वाभाविक है। "उसका कथानक छोटा होता है, उस में घटना, प्रसंग और दृश्य तथा पात्र और उनका चरित्र-चित्रण अत्यन्त न्यून, सूक्ष्म और संक्षिप्त होता है। कहानी प्रस्तुत करने में लेखक के दृष्टिकोण से तथा कहानी का वातावरण अर्थात् समस्त कहानी में व्याप्त सामान्य मनोदशा से उसके शिल्प-विधान में ऐसी एकता और प्रभावान्विति आ जाती है, जो कहानी की निजी विशेषता है और उसके रूपात्मक व्यक्तित्व की पृथकता प्रकट करती है।"[११] कहानी के कथा-वस्तु आदि तत्त्वों में से कहानीकार किसी एक या एकाधिक तत्त्वों पर बल दे सकता है, फिर भी समस्त तत्त्वों का सामूहिक प्रभाव कहानी-कला की मुख्य आत्मा है, क्योंकि प्रत्येक तत्त्व अपने-अपने स्थान पर विशिष्ट एवं मूल्यवान् है।[१२]

कहानी का वर्गीकरण

कहानी जीवन का चित्र प्रस्तुत करती है अत: कहानी के विषय भी उतने ही हो सकते हैं जितने जीवन के पक्ष। डॉ० भगीरथ मिश्र का कहना है—"कहानी की विविधता की कोई सीमा नहीं। जीवन के विकास-क्रम में सभ्यताओं एवं संस्कृतियों के विकास एवं ह्रास के साथ-साथ जिस प्रकार सामाजिक ढाँचों और नवीन समस्याओं का उद्घाटन होता रहता है, उसी प्रकार समाज एवं जीवन की विविध स्थितियों एवं घटनाओं के द्वारा कहानी के लिए विविध क्षेत्र भी खुलते रहते हैं।"[१३] फिर भी विद्वानों ने कहानी के विविध तत्त्वों एवं विषयों के आधार पर हिन्दी-कहानी का वर्गीकरण किया है। तत्त्व की प्रधानता के आधार पर कहानी का वर्गीकरण इस प्रकार से किया जा सकता है —(क) घटना-प्रधान (ख) चरित्र-प्रधान (ग) वातावरण प्रधान (घ) भाव-प्रधान। परन्तु कुछ कहानियाँ ऐसी भी हैं, जो इस वर्गीकरण में नहीं आतीं, जिससे कहानी-कला की विकासशीलता एवं मौलिकता प्रकट होती है। प्रकृतवादी, प्रतीकवादी और सांकेतिक कहानियों के लिए इस वर्गीकरण में स्थान नहीं है। डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल ने इसीलिए इन्हें विविध कहानियाँ शीर्षक के अन्तर्गत रखा है।

विषय की दृष्टि से कहानियाँ अनेक प्रकार की हो सकती हैं, यथा— ऐतिहासिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, मनोविश्लेषणात्मक, साहसिक, रोमांसिक, जासूसी आदि। परन्तु जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि कहानी का शिल्प इतना तरल है और उस के विषय इतने विविध हैं कि वर्गों की कारा में उसे आबद्ध नहीं किया जा सकता। कहानी का जैसे-जैसे विकास होगा, उसके भेदों की संख्या बढती जायेगी।

राहुल जी की कहानियाँ

आधुनिक हिन्दी कहानी अनेक रूपों एवं विविध शैलियों में विकसित होकर अनेक सोपानों को लाँघ चुकी है। राहुल सांकृत्यायन हिन्दी के यथार्थवादी कहानी-लेखक हैं। राहुल जी ने जब कहानी के क्षेत्र में पदार्पण किया तो प्रेमचन्द जी की सामाजिक और जयशंकर प्रसाद जी की ऐतिहासिक कहानियों की परम्परा उनके सम्मुख विद्यमान थी। राहुल जी ने दोनों प्रकार की कहानियों का सृजन किया है, पर ऐतिहासिक कहानियों की परम्परा को तो असन्दिग्ध रूप से उन्होंने विकसित किया है। डॉ० सुबोधचन्द्र सक्सेना के शब्दों में—"भारतीय जीवन के बाहर के परिवेश से (राहुल जी ने) परिचित कराया, हमारे सामने कहानी की रचना के आधार-फलक को और विस्तृत किया, हमारे सामने भारतीय ग्रामीण जीवन के कुछ अछूते अंगों को रखा, पर्वतीय विलासपुरियों के वैषम्यपूर्ण रूप को और उसके आश्रय में पलते सामाजिक रोगों से हमें अवगत कराया, हमारे सामने आर्य-जाति के विकास का एक रोचक कथामय इतिहास प्रस्तुत किया, जो मानवता के विकास को समझने में सहायक है।"[१४]

राहुल जी के चार कहानी-संग्रह हैं—'सतमी के बच्चे,' 'वोल्गा से गंगा,' 'बहुरंगी मधुपुरी', तथा 'कनैला की कथा'। इनमें क्रमशः दस, बीस, इक्कीस तथा नौ कहानियाँ हैं। इस प्रकार राहुल जी की कुल कहानियाँ साठ हैं। विषय-वस्तु की दृष्टि से राहुल जी की कहानियों को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है—

(क) ऐतिहासिक कहानियाँ।

(ख) सामाजिक कहानियाँ।

(क) ऐतिहासिक कहानियाँ

ऐतिहासिक कहानियों में इतिहास से कोई घटना ली जाती है और कहानी के पात्र भी ऐतिहासिक ही होते हैं। वार्तालाप आदि शेष भाग लेखक का अपना होता है। श्री मोहनलाल जिज्ञासु के शब्दों में, "वह कहानी जिसमें इतिहास की तरह घटनाओं की क्रमबद्धता की ओर ध्यान दिया जाता है, ऐतिहासिक कहानियों के नाम से पुकारी जाती हैं। ऐसी कहानियों में कथानक की प्रभावोत्पादकता के लिए कल्पना का पुट अधिक रहता है"।[१५] आधुनिक ऐतिहासिक कहानियाँ इतिहास को यथार्थवादी ढंग से ग्रहण करती हैं। इस दृष्टि से प्राचीनता के प्रति मोह, जातीय गौरव,

राष्ट्र-प्रेम एवं आदर्श-स्थापना की भावना से कहानीकार इतिहास की ओर प्रवृत होता है। श्री भालचन्द्र गोस्वामी 'प्रखर' ऐतिहासिक कहानियों के तीन भेद मानते हैं—'ऐतिहासिक,' 'उपैतिहासिक' तथा 'प्रागैतिहासिक' ।[15] राहुल जी ने तीनों प्रकार की ही ऐतिहासिक कहानियाँ लिखी हैं। उनकी ऐतिहासिक कहानियों में अतीत के यथार्थ चित्रण के साथ साम्यवादी आदर्शों की स्थापना का प्रयास है। राहुल जी ने ३१ ऐतिहासिक कहानियों की रचना की है।'वोल्गा से गंगा' एवं 'कनैला की कथा' की समस्त कहानियाँ तथा 'सतमी के बच्चे' में संगृहीत 'स्मृतिज्ञान कीर्ति' तथा 'डीह बाबा' राहुल जी की ऐतिहासिक कहानियाँ हैं। 'वोल्गा से गंगा' में राहुल जी ने प्राचीन आर्यों के वोल्गा से गंगा नदी तक के अभियान को कहानियों के माध्यम से प्रस्तुत किया है। सहस्रों वर्षों का इतिहास इन कहानियों में पाठकों के नेत्रों के सामने से निकलता है। 'कनैला की कथा' में भी राहुल जी ने ३३०० वर्षों के विस्तृत इतिहास पर दृष्टि डाली है। कनैला के जनजीवन को इतने वर्षों के प्रसार में देखना कहानीकार की ऐतिहासिक प्रतिभा का परिचायक है।'स्मृतिज्ञान कीर्ति' एक भारतीय पण्डित की कथा है जो भोट-प्रदेश में जाकर संस्कृत ग्रन्थों का भोटिया में अनुवाद करता है। 'डीह बाबा' शीर्षक कहानी प्राचीन भारतीय इतिहास की एक झाँकी प्रस्तुत करती है। इस प्रकार राहुल जी ने अपनी ऐतिहासिक कहानियों द्वारा मानव-जीवन की यात्रा वर्णित की है। वस्तुतः उनकी ऐतिहासिक कहानियाँ विशेषकर 'वोल्गा से गंगा' की कहानियाँ युगान्तरकारी हैं। राहुल जी की ऐतिहासिक कहानियों में इतिहास-तत्त्व का यथार्थ अंकन हुआ है। यहाँ उनकी कहानियों में निहित इतिहास तत्त्व की समीक्षा प्रस्तुत की जा रही है।

ऐतिहासिकता

राहुल जी की कहानियों में इतिहास-तत्त्व की प्रधानता है। 'वोल्गा से गंगा' तथा 'कनैला की कथा' की ऐतिहासिकता की ओर राहुल जी ने स्वयं संकेत किया है। "लेखक की एक-एक कहानी के पीछे उस युग के सम्बन्ध की वह भारी सामग्री है, जो दुनिया की कितनी ही भाषाओं, तुलनात्मक भाषा-विज्ञान, मिट्टी, पत्थर, ताम्बे, पीतल, लोहे पर सांकेतिक व लिखित साहित्य अथवा अलिखित गीतों, कहानियों, रीति-रिवाजों, टोटके-टोनों में पाई जाती है।"[19] डॉ० नगेन्द्र भी 'वोल्गा से गंगा' की सर्व-प्रमुख विशेषता इसकी ऐतिहासिकता को ही मानते हैं। उनका कथन है—"इसकी सबसे बड़ी विशेषता है लेखक का व्यापक दृष्टि-विस्तार जो ८००० वर्षों तक प्रसरित मानव-जीवन के इतिहास का पूरी तरह साक्षात्कार कर उसको हमारे मानस के सामने प्रत्यक्ष कर सका है। इस दृष्टि-विस्तार का सहायता मिली है लेखक के व्यापक अध्ययन से। पुरातत्त्व, मानव-शास्त्र, समाज-शास्त्र, दर्शन, साहित्य और इतिहास के विस्तृत पर्यालोचन के बिना यह सम्भव नहीं था।"[20] [illegible] 'वोल्गा से गंगा' की कहानियों व कहानीकार [illegible] ऐतिहासिकता [illegible] गया है।[21] राहुल जी [illegible]

हास मात्र' मानने में कोई आपत्ति नहीं।[२०] निस्सन्देह राहुल जी की कहानियों में इतिहास-तत्व को प्राधान्य मिला है, उनकी कहानियाँ कोरी कल्पना नहीं हैं।

'वोल्गा से गंगा' की प्रथम चार कहानियाँ—निशा, दिवा, अमृताश्व और पुरुहूत—प्रागैतिहासिक हैं। इनकी कालावधि लेखक ने ६००० ई० पूर्व से २५०० ई० पूर्व मानी है। भदन्त आनन्द कौसल्यायन के अनुसार, "उन कहानियों में कल्पना का हाथ विशेष है, लेकिन वह केवल कल्पना-जन्य कृति नहीं हैं। उन कहानियों में जो-जो मार्के की बातें हैं, वह सब राहुल जी के इन्दु-यूरोपी तथा इन्दु-ईरानी भाषा-शास्त्र-विषयक अध्ययन का परिणाम हैं।"[२१] गंगाप्रसाद मिश्र 'निशा' के विषय में लिखते हैं—"जैकन्स ने प्राकृतिक अवस्था में मनुष्य का जैसा चित्रण किया है, वह बहुत कुछ राहुल जी की विचारधारा से मिलता है।"[२२] पुरुहूत कहानी में कृषि और पशुपालन के विषय में राहुल जी के वर्णन ऐतिहासिक हैं। 'मध्य-एशिया का इतिहास' में उनका कथन है—"कृषि और पशुपालन के साथ सम्पत्ति का उत्पादन बढ़ चला। अधिक हाथों के होने पर अधिक काम तथा उससे अधिक सम्पत्ति के उत्पादन का रास्ता निकल आया था, इसलिए वैयक्तिक सम्पत्ति के उत्पादन और स्वामित्व के बल पर जहाँ पुरुष समाज का नेता बन गया, वहाँ इस पितृ-सत्ता-युग के युग में युद्धों में पकड़े गये शत्रुओं को मारने की जगह दास बनाकर जीवित रखने का अधिकार दिया गया।"[२३] इन कहानियों में नारी-सम्बन्धी राहुल जी की धारणा भी ऐतिहासिक है और भगवतशरण उपाध्याय द्वारा तत्कालीन नारी की स्थिति के वर्णन से साम्य रखती है—"मैं नारी हूँ, पितृ-सत्ताक युग से पूर्व मातृ-सत्ताक युग की भारतीय नारी, जिसने वनों का शासन किया, जनों का निग्रह। तब मैं नितान्त नग्नावस्था में गिरि-शिखरों पर कुलाँच भरती थी, गुहा-गह्वरों में शयन करती थी, वन-वृक्षों का आपादमस्तक नाप लेती थी, तीव्रगतिका नदियों का अवगाहन करती थी। ... पुरुष मेरा दास था, मेरे श्रम से उपार्जित आहार का आश्रित।"[२४]

भदन्त आनन्द कौसल्यायन 'पुरुधान', 'अङ्गिरा', 'सुदास्' और 'प्रवाहण' कहानियों की प्रामाणिकता का आधार प्राचीन साहित्यिक रचनाओं वेद, ब्राह्मण, महाभारत, पुराण और बौद्ध-ग्रन्थों के 'अट्ठकथा' नाम से प्रसिद्ध भाष्य को मानते हैं।[२५] 'सुदास्' सम्बन्धी वृत्त ऋग्वेद में उपलब्ध है। उसकी वीरता, दानशीलता आदि के प्रसंग ऋग्वेद में प्राप्य हैं।[२६] 'बन्धुल मल्ल' का आधार बौद्ध-ग्रन्थ हैं। 'नागदत्त' चाणक्य के 'अर्थशास्त्र' तथा जायसवाल की 'हिन्दू पालिटी' पर आधारित है। 'प्रभा' कहानी की ऐतिहासिकता का प्रमाण अश्वघोष के काव्य 'बुद्धचरित' तथा 'सौन्दरनन्द' है। रीज़ डेविड्स का लिखा 'बौद्ध भारत' भी इसकी ऐतिहासिकता का साक्षी है। 'सुपर्ण यौधेय' गुप्तकालीन कथा है जिसका आधार कालिदास के ग्रन्थ हैं। 'दुर्मुख' कहानी बाण के 'हर्षचरित' और 'कादम्बरी' पर आधारित है। 'चक्रपाणि' से सम्बन्धित तथ्य 'नैषध' से मेल खाते हैं। इस प्रकार 'बन्धुल मल्ल' से लेकर 'चक्रपाणि' की कहानियों का आधार विविध

साहित्यिक रचनाएँ हैं। इन कहानियों में प्रतिपादित वातावरण—सामाजिक, राज नीतिक, सांस्कृतिक आदि निस्सन्देह प्राचीन साहित्यिक रचनाओं से समानता रखता है। हाँ, घटनाएँ लेखक की कल्पना-सृष्टि का प्रतीक हैं।

'वोल्गा से गंगा' की अन्तिम छः कहानियाँ हैं— बाबा नूरदीन, सुरैया, रेखा भगत, मंगलसिंह, सफदर और सुमेर। 'नूरदीन' कहानी का सम्बन्ध खिलजी वंश के शासक अलाउद्दीन के शासनकाल से है, इसमें वर्णित अलाउद्दीन की नीति इतिहास-सम्मत हैं। 'सुरैया' में लेखक ने अकबर की उदार नीति का इतिहासानुकूल चित्रण किया है। 'रेखाभगत' में अंग्रेजी शासन के अत्याचारों का वर्णन है। 'मंगलसिंह', 'सफदर' और 'सुमेर' क्रमशः १८५७ ई०, १९२२ ई० और १९४२ ई० की भारत की राजनीतिक, आर्थिक व सामाजिक स्थिति को स्पष्ट करने वाली कहानियाँ हैं। इस प्रकार 'वोल्गा से गंगा' की २० कहानियों में प्राचीन काल (६००० ई० पूर्व) से लेकर सन् १९४२ के आन्दोलन तक की भारतीय संस्कृति तथा सभ्यता के विकास-क्रम का इतिहास अंकित है। डॉ० नगेन्द्र के शब्दों में—"इतने विस्तृत देश-काल पर समग्र अधिकार रखने वाली दृष्टि हिन्दी के एकाध विद्वान् को ही प्राप्त होगी। और गौरव की बात यह है कि वह कहीं भी उलझी नहीं है। मानव-जीवन के विकास में पड़ने वाले भिन्न-भिन्न संस्थानों पर ठहरती हुई बड़ी सफाई के साथ सन् १९४२ पर आकर ही रुकी है।"[१४] 'वोल्गा से गंगा' मानव-जीवन के सामाजिक विकास का इतिहास है और महापण्डित राहुल सांकृत्यायन की व्यापक ऐतिहासिक दृष्टि की परिचायिका कृति है। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी लिखते हैं— "हमारे प्राचीन साहित्य में मानवीय विकास-क्रम को सूचित करने वाली अनेक कथाएँ और आख्यान हैं। इन्हीं को लेकर तथा इनके साथ मानव-विकास सम्बन्धी आधुनिक वैज्ञानिक विचारों को जोड़कर श्री भगवतशरण उपाध्याय ने 'सवेरा' 'संघर्ष' आदि कहानी-पुस्तकें लिखी हैं। वे 'उद्भ्रान्त विकल मानव के सम्मुख मनीषी मानवता का इतिहास रखने का दावा करते हैं।' श्री राहुल ने 'वोल्गा से गंगा' में ६००० ई० पूर्व से लेकर १९४२ ई० तक के मानव-समाज के ऐतिहासिक, आर्थिक, राजनीतिक प्रकारों का चित्रण किया है।"[१५]

इतना होने पर भी 'वोल्गा से गंगा' के सभी तथ्यों को प्रामाणिक रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता। 'वोल्गा से गंगा' में निम्नलिखित तथ्य खटकने वाले हैं—

(१) 'पुरुधान' और 'अंगिरा' कहानियों में असुर-जाति का वर्णन है। परन्तु यह असुर-जाति कौन थी है—यह स्पष्ट नहीं। डॉ० भगवतशरण उपाध्याय के अनुसार, "... [illegible] विभिन्न जातियों को ... मिलाकर एक कर दिया है, [illegible] के शरीर पर दूसरे का [illegible] है। [illegible] [illegible] है, दूसरे [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] कि पुरातत्त्व [illegible]

उनको यथास्थान करने में साधारण कठिनाई न होगी।"[२९] वस्तुत दो विभिन्न असुर जातियों का इस प्रकार मिला देना ऐतिहासिक अनौचित्य ही कहा जाना चाहिए।

(२) राहुल जी ने वाल्मीकि रामायण का रचना-काल शुंग-वंश के शासन-काल को माना है। परन्तु डॉ० नगेन्द्र के शब्दों में 'आदि-काव्य से सम्बद्ध महत्त्वपूर्ण परम्परा के विरुद्ध उनके पास कोई प्रमाण नहीं है, केवल एक क्षीण अनुमान भर है—'कोई ताज्जुब नहीं, कवि वाल्मीकि शुंग-वंश के आश्रित कवि हों जैसे कालिदास चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के, और शुंग-वंश की राजधानी की महिमा को बढ़ाने के लिए उन्होंने जातकों के दशरथ की राजधानी वाराणसी से बदलकर साकेत या अयोध्या कर दी और राम के रूप में शुंग-सम्राट् पुष्यमित्र या अग्निमित्र की प्रशंसा की, वैसे ही जैसे कालिदास ने 'रघुवंश' के रघु और 'कुमारसम्भव' के कुमार के नाम से पिता-पुत्र चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य और कुमारगुप्त की।'[३०] निस्सन्देह, वाल्मीकि को शुंग-वंश का राज्याश्रित कहना—वह भी अनुमान के आधार पर—इतिहास की वैज्ञानिक सूक्ष्मता का बलिदान करना है। डॉ० रामविलास शर्मा व्यंग्यात्मक शैली में राहुल जी की इस अनैतिहासिकता की ओर संकेत करते हैं—"यह भी एक समाज-शास्त्र है। राम शुंग-सम्राट् के प्रतीक हैं और 'कुमार-सम्भव' के कुमार सम्राट् कुमारगुप्त के। राहुल जी को चाहिए कि वह यह भी बता दें कि दशरथ, कौशल्या, सीता, लक्ष्मण, भरत आदि सम्राट् के खानदान में किस-किस व्यक्ति के प्रतीक हैं और शुंग-सम्राट् जैसे सामन्ती शोषक के गुण राम में चित्रित हुए हैं तो रावण में उसके विरोधी क्या किसी गणराज्य के जननायक का चित्रण किया गया है।"[३१]

(३) 'सुपर्ण यौधेय' कहानी में समुद्रगुप्त को हूणों को पराजित करने वाला कहा गया है।[३२] परन्तु यह तथ्य भी भ्रामक है, क्योंकि हूणों को परास्त करने वाला कुमार स्कन्दगुप्त था।[३३]

(४) 'दुर्मुख' कहानी में हर्षवर्धन के भाई राज्यवर्धन को कान्यकुब्जाधिपति कहा गया है।[३४] परन्तु राज्यवर्धन स्थाण्वीश्वर का राजा था न कि कन्नौजाधिपति। इसी प्रकार हर्षवर्धन अपने वंश को क्षत्रिय सातवाहनों से सम्बद्ध करता है पर सातवाहन ब्राह्मण थे, क्षत्रिय नहीं और सातवाहनों को क्षत्रिय अथवा हर्ष के पूर्व-पुरुष मानना इतिहास को चुनौती देना है।[३५]

(५) कन्नौज के गहड़वाल राजा जयचन्द का चित्र प्रस्तुत करते समय लेखक ने न्याय नहीं किया। चित्र इस प्रकार है—"उनके मांस लटके चिबुक, अतिफुल्ल कपोल, गंगा-जमुनी मूँछें, प्रसूता की तरह लम्बित स्तनों, महाकुम्भसा उदर, पृथुल कोमल माम-मेदपूर्ण उरु तथा पेण्डुली, रोमश स्थूल बाहुओं को देखकर साधारण तरुणी भी अवज्ञा किये बिना नहीं रहती किन्तु, यहाँ उनका शरीर-प्राण उस बूढ़े के हाथ था।[३६] परन्तु मुसलमान इतिहासकारों ने उसे अफगानों के दाँत खट्टे करने वाला और समरक्षेत्र में वीरगति प्राप्त करने वाले वीर के रूप में स्मरण किया है।[३७]

(६) अलाउद्दीन को लामदीन कहना और उसके राज्य में दूध की नदियों का वर्णन लेखक का अपना ऐतिहासिक दृष्टिकोण हो सकता है, क्योंकि इतिहास तो अलाउद्दीन को नृशंस शासक के रूप मे स्मरण करता है ।[३८]

(७) 'सुरैया' कहानी में सुरैया (अबुलफ़ज़ल की बेटी) और कमल (टोडर मल का बेटा) का विवाह एक सुन्दर कल्पना है परन्तु अकबर के शासनकाल में इन दोनो का यूरोप-भ्रमण किसी भी प्रकार संगत नही कहा जा सकता ।

(८) डॉ० नगेन्द्र के अनुसार सबसे अधिक अविश्वसनीय राहुल जी का धर्म-विषयक सिद्धान्त है "कि धर्म केवल परधन-अपहारकों को शान्ति से उपभोग करने का अवसर देने के लिए है ।' डॉ० नगेन्द्र आगे लिखते हैं—"यह भी माना जा सकता है कि विश्वामित्र, वसिष्ठ आदि ऋषियों की ऋचाओं ने समसामयिक राजाओं को शक्ति-संचय मे सहायता दी हो, उन्होने अपना स्वार्थ साधने के लिए ऐसा किया हो परन्तु वेद की सभी ऋचाओं के पीछे ऐसी ही कुत्सित प्रेरणा है, यह धारणा सर्वथा मिथ्या है । इसी प्रकार प्रवाहण ने अपने शोषण कार्य को निर्विघ्न चलाते रहने के लिए उपनिषद्-रहस्य की उद्भावना की, यह भी अमान्य है ।"[३९] राहुल जी के हिन्दू धर्म के प्रति इस प्रकार के विचार उनके बौद्ध धर्म के प्रति अत्यधिक झुकाव के कारण हैं ।" एक आश्चर्य की बात यह है कि धर्म का इतना घोर विरोध करने वाले राहुल जी के सामने जब बौद्ध धर्म का प्रसग आता है तो उनकी आलोचना सर्वथा शिथिल पड़ जाती है ।[४०] इस प्रकार 'वोल्गा से गगा' की कहानियों में ऐतिहासिकता सम्बन्धी सभी तथ्य मान्य नहीं, इसका कारण लेखक के कुछ विशिष्ट दृष्टिकोण ही कहे जा सकते हैं । डॉ० सुबोधचन्द्र सक्सेना के शब्दों मे—'ऐतिह्य की दृष्टि से 'वोल्गा से गंगा' की अधिकाश कहानियाँ त्रुटिपूर्ण हैं, कही वादग्रस्तता ने उन्हे भ्रमित किया है और कहीं कालदूषण ने आक्रान्त ।[४१]

'वोल्गा से गगा' के अनन्तर 'कनैला की कथा' राहुल जी की दूसरी ऐतिहासिक कृति है । राहुल जी ने इस संग्रह की कहानियो में सत्य अथवा इतिहास-तत्त्व को प्रधानता दी है । 'हर गाँव की आपबीती रोचक कथाएँ होती हैं जिनको बाल्यकल्पना और भी मोहक बना देती है । हो सकता है मेरे लिये भी कनैला की कथाएँ आकर्षक मालूम हुई हों । पर, सत्य कल्पना से भी अधिक सुन्दर होता है ।'[४२] प्राक्कथन में कनैला की पुरातत्त्व-सम्बन्धी सामग्री का भी उल्लेख है जिससे रचना की ऐतिहासिकता पुष्ट होती है ।[४३] 'वोल्गा से गंगा' की तरह ही 'कनैला की कथा' भी जन-जीवन का इतिहास है । इन कथाओं मे १३०० ई० पू० से लेकर १६५७ ई० तक कनैला के जन-जीवन का इतिहास निहित है । यही इस पुस्तक की सर्वप्रमुख विशेषता है ।

'कनैला की कथा' की ऐतिहासिकता असंदिग्ध है । लेखक ने प्रत्येक कहानी के मे उसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को स्पष्ट किया है । 'त्रिवेणी' (१३०० ई० पू०) मे कनैला के आसपास की भूमि का वर्णन है और किरात, निषाद तथा

दमिल जाति का जीवन अंकित है। 'काशीग्राम' में ७०० ई० पू० का कनैला का इतिहास है, इस समय यह भूमि आर्यों के हाथ में थी। 'बड़ी रानी' कहानी में २५० ई० पू० के मौर्य-शुंग-काल की शिशपा नगरी का वर्णन है। इस कहानी का ऐतिहासिक आधार बड़ी (तालाब) की ईंटें है। 'देवपुत्र' ई० पू० सन् सौ के समय की शिशपा नगरी और कर्णहट्ट (कनैला) से सम्बन्धित है। 'कलाकार' कहानी में गुप्तकालीन शिशपा का वर्णन है। गुप्तकाल को लेखक ने कला की दृष्टि से स्वर्ण-युग कहा है। 'सैयदबाबा' में तुर्कों के अत्याचारों का वर्णन है। 'नरमेध' शेरशाह के समय की कथा है। 'सन् ५७' में कनैला में स्वतन्त्रता-संग्राम की असफलता का प्रभाव अङ्कित है। 'स्वराज्य' में लेखक आधुनिक कनैला का चित्र प्रस्तुत करता है। कनैला एक साधारण-सा ग्राम है, पर इस गाँव के पीछे कितना विस्तृत इतिहास छिपा है, उसे देख सकना राहुल जैसे मनीषी का ही काम है।

इन दो कहानी-संग्रहों के अतिरिक्त 'सतमी के बच्चे' संग्रह की 'डीह बाबा' तथा 'स्मृतिज्ञान कीर्ति' कहानियों में भी इतिहास तत्त्व मुख्य है। 'डीह बाबा' में भारत के प्राचीन इतिहास की झाँकी है। डॉ० ब्रह्मदत्त शर्मा के शब्दों में—"इसमें भिन्न-भिन्न जातियों का बाहर से आना, भारत में भर जाति तथा आर्यों का सम्पर्क तथा संघर्ष, जातियों का स्थान-परिवर्तन और यवन शासकों द्वारा हिन्दू जातियों का धर्म-परिवर्तन आदि विषयों की चर्चा हुई है।"[४४] 'स्मृति ज्ञानकीर्ति' में भारतीय पण्डित की कथा है जो तिब्बत में जाता है और वहाँ अनेक संस्कृत-ग्रन्थों का तिब्बती में अनुवाद करता है।

राहुल जी की कहानियों की ऐतिहासिकता के विवेचन के उपरान्त यह कहना सर्वथा उपयुक्त है कि कुछेक ऐतिहासिक त्रुटियों के होते हुए भी राहुल जी ने अपनी कहानियों में इतिहास-तत्त्व का सफलतापूर्वक निर्वाह किया है। मानव-जीवन के सामाजिक विकास का इतिहास प्रस्तुत कर उन्होंने कहानी को नये आयाम प्रदान किये हैं। स्वयं राहुल जी के शब्दों में, "मानव आज जहाँ है, वहाँ वह प्रारम्भ में ही नहीं पहुँच गया था, इसके लिये उसे बड़े-बड़े संघर्षों से गुजरना पड़ा। मैंने हर एक काल के समाज को प्रामाणिक तौर से चित्रित करने की कोशिश की है।"[४५] वस्तुतः राहुल जी ने "युग-युग तक प्रसरित मानव जीवन की अनन्तता को आर-पार"[४६] झाँक कर देखा है। ठाकुरप्रसाद सिंह लिखते हैं—' राहुल जी ने ऐतिहासिक कहानियाँ लिखी हैं, उनका इतिहास-दर्शन वैज्ञानिक है। 'वोल्गा से गंगा' का एक पर्व है, उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती।'[४७]

(ख) सामाजिक कहानियाँ

सामाजिक कहानी का उपजीव्य समाज है। इसमें सम्पूर्ण समाज का रहस्य एवं दर्शन छिपा रहता है और इसके पात्र हमारे समाज के, सामाजिक समस्याओं के प्रतिनिधित्व करने वाले होते हैं। राहुल जी ने ऐतिहासिक कहानियों के अतिरिक्त सामा-

जिक समस्याप्रधान कहानियों की भी रचना की है। 'बहुरंगी मधुपुरी' तथा 'सतमी के बच्चे' संग्रहों की कहानियाँ विविध सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक समस्याओं से सम्बन्धित कहानियाँ हैं। 'बहुरंगी मधुपुरी' मे पर्वतीय विलासपुरी मसूरी से सम्बद्ध २१ कहानियाँ हैं। ये कहानियाँ यथार्थ जीवन पर आधृत हैं। इसमें राहुल जी ने मसूरी के जन-जीवन के विविध पहलुओं को विभिन्न पात्रों द्वारा प्रस्तुत किया है। सन् १८२० मे अंग्रेजों को इस स्थान के महत्त्व का परिचय मिला[८५] और उन्होंने इसे शीतल और शान्त स्थान पाकर इसका विकास किया। तब से लेकर आज तक मधुपुरी ने जिस जीवन को देखा है—राहुल जी ने उसका यथार्थ अंकन किया है। राहुल जी की ये कहानियाँ उनके निजी अनुभवों पर आधारित हैं अतः यथार्थ और सत्य हैं। राहुल जी ने मधुपुरी के प्रायः सभी पहलुओं को छुआ है। मधुपुरी विलासनगरी है—विलास नगरी के निर्माण में जिन विभिन्न व्यक्तियों ने योग दिया, उनमें गौरांग-गौरांगनियों के अतिरिक्त भारतीय सामन्त, राजकुमार-राजकुमारियाँ, सेठ-सेठानियाँ तो थी ही, दुकानदार, कृषक, रूपजीवा स्त्रियाँ, भंगी-जमादार तथा अध्यापक भी हैं और साधु-महात्माओं का सम्पर्क भी इस नगरी को प्राप्त है। मधुपुरी का पूरा चित्र प्रस्तुत करने के लिए राहुल जी ने इन सभी प्रकार के पात्रों की कथा कही है और उनकी समस्याओं का चित्रण किया है।

'सतमी के बच्चे' की कहानियों में राहुल जी ने समसामयिक समाज की आर्थिक व सामाजिक परिस्थितियों से पीड़ित व्यक्तियों के जीवन-चित्र संस्मरणात्मक शैली मे प्रस्तुत किए हैं। इन कहानियों के प्रायः सभी पात्र उनके जीवन-अनुभव में आए व्यक्ति हैं। अधिकांश कहानियाँ समाज के निर्धन वर्ग की आर्थिक समस्याओं के करुणापूर्ण चित्र प्रस्तुत करती हैं। वस्तुतः राहुल जी हिन्दी के यथार्थवादी कहानी-लेखक हैं। उन्होंने कहानी की विधा के रूप में जो कुछ भी लिखा है, उसके पीछे उनका गहन अध्ययन, पाण्डित्य एवं जीवन-अनुभवों की झलक मिलती है।

राहुल जी की कहानियों की शिल्पविधि

कहानीकार अपने मनोवांछित अभिप्राय की अभिव्यक्ति के लिए उसके अनुरूप एक कथानक तैयार करता है, कथानक में सजीव पात्रों को जोड़ता है, दोनों के सहारे वह परिपार्श्व तथा वातावरण प्रस्तुत करता है और उसमें शैली की क्रियाशीलता से वह पाठक को एक अविच्छिन्न सहज गति से अभिप्राय के चरमोत्कर्ष पर ला खड़ा कर देता है और स्वयं दूर हट जाता है।[८६] यह प्रक्रिया कहानी की कला है, उसका शिल्प है और कथावस्तु, पात्र और चरित्र-चित्रण, संवाद, वातावरण, शैली और उद्देश्य इसके मूल उपकरण हैं। इन्हीं के आधार पर राहुल जी की कहानियों की शिल्पविधि का विवेचन प्रस्तुत है।

कथा-शिल्प

कहानी में कथावस्तु का स्थान मुख्य है। यही कहानी का वह ढांचा है, जिस पर कहानी निर्मित होती है। आधुनिक कहानीकार इस तत्व को परोक्ष में मानकर

पात्र और परिस्थितियों के चित्रण से कहानी का निर्माण करता है, फिर भी व्यापक रूप में कथानक का सहारा किसी-न-किसी रूप में कहानीकार को अपनी कहानी में लेना ही पड़ता है। कहानी जीवन की एक झाँकी है। उसमें जीवन के किसी एक रम्य दृश्य का उद्घाटन होता है। इसे प्रभावपूर्ण बनाने के लिए कहानीकार पात्र के व्यक्तित्व के उस मध्यबिन्दु को व्यंजित करता है, जिससे उसका सम्पूर्ण जीवन चालित होता है। सारी कथावस्तु में केवल एक ही संवेदना रहती है। घटनाओं की प्रचुरता उसमें नहीं होती। घटनाओं के संयोजन के विषय में यह आवश्यक है कि वे परस्पर सम्बद्ध होनी चाहिएँ। समस्त घटनाएँ एक साथ बंधकर एक तारतम्य से ऊँचाई की ओर दौड़ती हैं और वहाँ पहुंचकर अपने सौन्दर्य का प्रकाश सहसा ही बिखेर देती हैं। प्रासंगिक घटनाएँ कहानी को अग्राह्य हैं।

राहुल जी की कहानियों में निश्चित एवं क्रमबद्ध कथानक का अभाव है। कथा-प्रवाह उनमें नहीं है। अनेक घटनाओं एवं प्रसंगों की योजना के कारण कथा की गति विच्छिन्न हो जाती है और कहानी का कहानीपन उनसे लुप्त हो जाता है। कथा-प्रवाह को विराम लगाकर राहुल जी पात्रों के गुणों की अभिव्यक्ति के लिए अनेक उदाहरण, प्रसंग एवं घटनाएँ प्रस्तुत करने लगते हैं। 'कुमार दुरंजय' कहानी में कुमार के मधुपुरी के विलासी जीवन के चित्रण के साथ ही अन्य रियासती राजाओं की झाँकी भी है। कुमार के पिता का वर्णन और कुमार के कुत्ते पालने का व्यसन क्रमशः कहानी में दो और तीन पृष्ठों में वर्णित है।[२०] इसी प्रकार 'पुजारी' कहानी में पुजारी की धार्मिक उदारता का उल्लेख करते हुए लेखक उस द्वारा किए गए 'चिनगी चमार के दाह-संस्कार' के प्रसंग को भी सम्मिलित करता है।[२१] 'पेड़बाबा' कहानी में लेखक पेडबाबा के वृक्ष पर बैठ साधना करने के प्रसंग में अपने मित्र घुमक्कड़ स्वामी हरिशरणानन्द की कहानी सुनाने लगता है।[२२] इसी प्रकार 'मुलतान' कहानी के धुनिया को देखकर लेखक सियार और धुनिया की कथा कहने लगता है और मधुपुरी के मुसलमानों की दशा से परिचित करवाने के लिए एक मुसलमान का पत्र भी उद्धृत करता है।[२३] ऐसे प्रसंग राहुल जी को कहानियों के प्रवाह में बाधक सिद्ध हुए हैं और इनसे कथावस्तु में क्रमबद्धता का अभाव आ गया है।

एक सफल कहानी का प्रारम्भ अत्यन्त आकर्षक होना आवश्यक है। पहला वाक्य पढ़ते ही यदि पाठक कहानी की ओर अनायास ही आकृष्ट हो जाये, तो उस कहानी का प्रारम्भ सफल माना जायेगा। राहुल जी की अधिकतर कहानियों का प्रारम्भ इस कसौटी पर खरा नहीं उतरता। 'डीह बाबा' कहानी कुल तेरह पृष्ठों की है, जिनमें से आठ पृष्ठ भूमिका के हैं। इस प्रस्तावना भाग में लेखक भर-जाति के विकास तथा कनैला के इतिहास को प्रस्तुत करता है।[२४] 'कनैला की कथा' की सभी कहानियों की पूर्व-पीठिका के रूप में इतिहास का वर्णन है। 'बहुरंगी मधुपुरी' की

अधिकांश कहानियों के आरम्भ में भी लम्बी प्रस्तावना है। 'हाय बुढ़ापा' कहानी के पहले ढाई पृष्ठों में मधुपुरी के सैलानियों का वर्णन है।[४५] 'कुमार दुरजय' के आरम्भ में सामंतवाद सम्बन्धी भूमिका है[४६] 'गुरुजी' कहानी के आरम्भ में मैथिल-पण्डितों के आचार-व्यवहार से सम्बन्धित लम्बी प्रस्तावना है।[४७] 'वोल्गा से गंगा' की भी कई कहानियाँ इस दोष से मुक्त नहीं[४८]। इस प्रकार राहुल जी की कहानियों का आरम्भ वर्णनात्मक, चमत्कार-शून्य और साधारण है। कहानी के कथानक का प्रस्तावना अंश विस्तृत है, जिसमें घटनाओं और पात्रों की परिस्थिति का पूरा परिचय रहता है। यदि यह कहा जाए कि राहुल जी की कहानियों का आरम्भ निबन्धात्मक है, तो असमीचीन न होगा। प्रभाकर माचवे लिखते हैं, "ये अपनी कहानियाँ भी निबन्धकार की तरह से लिखते हैं, जबकि निबन्धों में भी कहानी जैसी सूत्रमयता रहती है।"[४९] 'कनैला की कथा' की 'सन् ५७' और 'स्वराज्य' शीर्षक कहानियों में निबन्धात्मकता का तत्त्व अधिक है।

आरम्भ में ही नहीं, कहानी के कलेवर में भी राहुल जी ने सामाजिक, राजनैतिक आदि परिस्थितियों का विशद अंकन किया है। 'लिप्स्टिक' कहानी में विमला और शीला के बीच समाज की स्थिति पर लम्बी बातचीत है।[५०] 'सुदास' कहानी में राजतन्त्र की हीनता और गणतन्त्र की उत्कृष्टता से सम्बद्ध चार पृष्ठों का वाद-विवाद है।[५१] 'मंगलसिंह' कहानी में मंगलसिंह वैज्ञानिक आविष्कारों के नाम ही गिनाना शुरू कर देता है।[५२] इस प्रकार राहुल जी की कई कहानियों में निबन्ध की भ्रान्ति होने लगती है। कहानी में भूमिका घातक है। आरम्भ से ही गति भर कर अन्त तक पहुंचना चाहिए। उसमें विषयान्तरता का स्थान नहीं होता। राहुल जी की अधिकांश कहानियाँ इन्हीं [illegible]ताओं के कारण कथाशिल्प का सफल निर्वाह नहीं कर पाईं।

राहुल [illegible] कुछ कहानियों का आरम्भ आकर्षक एवं जिज्ञासामूलक भी है। 'वोल्गा से गंगा' [illegible]ई कहानियों का आरम्भ प्रकृति-चित्रण से हुआ है, जो अत्यन्त चित्रात्मक एवं सु[illegible]। 'रूपी' कहानी भी इस दृष्टि से सुन्दर है। इसकी प्रथम पंक्ति है—'वह [illegible]ावन के लिए नहीं पैदा हुई थी। कई बार इस दलदल से निकलने की को[illegible] उसने की।'[५३] इस प्रकार राहुल जी की कहानियाँ, कथा-आरम्भ की दृष्टि से वि[illegible] आकर्षक नहीं। 'रूपी' तथा 'वोल्गा से गंगा' की कुछ कहानियाँ इस का अपवाद [illegible]वश्य हैं, जिनमें आकर्षण और लक्ष्य-संकेत की विशिष्टता प्राप्य है।

राहुल [illegible] की कहानियों में नाटकीयता का भी प्रायः अभाव है। कथानक में आरम्भ, विकास, चरमसीमा जैसी स्थितियों का अस्तित्व नहीं है। 'स्मृतिज्ञानकीर्ति' में एक भारतीय पण्डित के जीवन की झाँकी है, यहाँ विषय का वर्णन मात्र है।[५४] 'ठाकुर जी' (बहुरंगी मधुपुरी) 'रामगोपाल' (सतमी के बच्चे) 'त्रिवेणी' (कनैला की कथा) आदि में कथा के आरम्भ, विकास, संघर्ष, चरमसीमा आदि की कहीं स्थिति नहीं है। कहानी की समाप्ति चरमसीमा पर हो जानी चाहिए, किन्तु

राहुल जी ऐसा नहीं करते। 'प्रभा' राहुल जी की सर्वोत्कृष्ट कहानी मानी जाती है, इस कहानी की परिसमाप्ति प्रभा की मृत्यु के साथ हो जानी चाहिए, परन्तु लेखक ग्रश्वघोष के शेष जीवन की घटनाएँ उपसंहार के रूप में प्रस्तुत करता है। इस प्रकार राहुल जी की कहानियाँ घटनाओं का स्थूल एवं विशद वर्णन-मात्र हैं। वे घटनाओं का विवरण और पात्रों का इतिवृत्त प्रस्तुत करती हैं।

राहुल जी की कहानियाँ सुखान्त एवं दु:खान्त - दोनों प्रकार की हैं। सुखान्त की अपेक्षा दु:खान्त कहानियाँ अधिक मार्मिक हैं। 'सतमी के बच्चे' की अधिकांश कहानियाँ हृदय को करुणा से द्रवित करने वाली हैं। इस संग्रह की अधिकांश कहानियाँ यथा सतमी के बच्चे, डीह बाबा, पाठक जी, राजवली, दलसिंगार आदि करुणान्त हैं, साथ ही हृदय में निराशा और विषाद के स्थान पर आशा और विद्रोह की भावना जागृत करने वाली हैं। 'वोल्गा से गंगा' संग्रह की 'सुरैया', 'मंगलसिंह' और 'सुमेर' दु:खान्त हैं। 'कनैला की कथा' में 'कलाकार' का अन्त कारुणिक है। इसी प्रकार 'बहुरंगी मधुपुरी' में 'डोरा' और 'चम्पा' दु:खान्त हैं। ये दु:खान्त कहानियाँ पाठक को करुणाभिभूत करने में समर्थ हैं।

कथा-शिल्प की दृष्टि से राहुल जी के अधिकांश प्रयत्न असफल हैं। उनकी अधिकांश कहानियाँ निबन्ध-सी लगती हैं। कथा कहने का ढंग इनमें अविकसित है, कथात्मक गति, मोड़ों और कौतूहल का अभाव है। डॉ० नगेन्द्र के शब्दों में—'विशेष रूप में 'सुदास्' और साधारणतः 'नागदत्त' तथा 'सुरैया' को छोड़कर शेष कोई भी प्रसंग कहानी के गौरव का अधिकारी नहीं है। उनमें घटनाओं या मनोवृत्तियों के उत्थान-पतन का सर्वथा अभाव है—चरमस्थिति का कहीं भी पता नहीं है।'[१५] डॉ० नगेन्द्र के 'वोल्गा से गंगा' के लिए कहे गये ये शब्द उनकी सभी कहानियों के लिए उपयुक्त हैं।

इतना होते हुए भी राहुल जी की कहानियों में रोचकता का तत्त्व मिलता है। 'हाय बुढ़ापा' में प्रमोदबाला का अपने बुढ़ापे को छिपाने के लिए शृंगार-रचना का प्रसंग, 'कुमार दुरंजय' में लाडूराम का अंकन, 'ठाकुर जी' में ठाकुर की तपस्या का वर्णन, 'कलाकार' कहानी तथा 'सतमी के बच्चे' की कहानियों में व्याप्त करुणा राहुल जी की कहानियों में मार्मिकता एवं रोचकता लाने वाले प्रसंग हैं। 'वोल्गा से गंगा' की कहानियों की रोचकता के विषय में डॉ० नगेन्द्र लिखते हैं— 'राहुल जी ने स्थान-स्थान पर मानवीय तत्त्व का आरोप करके इन कथाओं में रक्त और मांस भरने का प्रयत्न किया है, जिससे वे हृदयग्राही हो गई हैं। हाँ, यह अवश्य मानना पड़ेगा कि ऐतिहासिक तथ्यों में रंग भरने का राहुल जी के पास केवल एक ही साधन है प्रेम, जिसका प्रयोग बार-बार दुहराया गया है। प्रत्येक युग के जीवन-नाटक के सूत्रधार-रूप में कोई प्रेमी-प्रेमिका ही रंगमंच पर अवतरित होते हैं और कहानी के मध्य में उनकी प्रगाढ़ प्रेम-क्रीड़ाएँ, विशेषकर चुम्बनों की बौछारें और अन्त में किसी-

न किसी रूप में, उनका अनन्त जीवन में लय हो जाना घटना-चक्र में रस-संचार करता है। [६६] संवेस के अतिरिक्त राहुल जी के पास कथावस्तु मे रोचकता लाने का दूसरा उपकरण वातावरण की सृष्टि है। इस विषय मे डॉ० ब्रह्मदत्त शर्मा का कथन द्रष्टव्य है – 'कथावस्तु मे वातावरण-विशेष की सृष्टि द्वारा कहानी में रोचकता आ जाती है।'[६७] विशेषकर प्राकृतिक वातावरण के सजीव चित्रण राहुल जी की कहानियों की सौन्दर्य-वृद्धि में अत्यधिक सहायक हुए हैं।

राहुल जी की कहानियाँ घटना-प्रधान हैं और वर्णनात्मक एवं इतिवृत्तात्मक रूप में प्रस्तुत हैं। यद्यपि कथाशिल्प का उनमें अभाव है, पर युग-युग तक प्रसरित मानव-जीवन की अनन्तता को कहानियो के रूप मे प्रस्तुत करना राहुल जी की ही विशेषता है।

कथावस्तु की दृष्टि से राहुल जी की कहानियों का महत्व इसलिए है कि वे अपनी एक-एक कहानी में एक युग की कहानी कहते हैं। वह कहानी कल्पित कम, तथ्यो पर आधारित अधिक है। इसलिए राहुल जी की कहानियाँ प्रेमचन्द और प्रसाद की कहानियों की भाँति सगठित नही हैं। राहुल जी का उद्देश्य इतिहास-वर्णन है; जिसको वे कथात्मक रूप मे अंकित करते है। डॉ० ब्रह्मदत्त शर्मा का कथन इस विषय मे सत्य प्रतीत होता है—'राहुल की कहानियों में भारतीय संस्कृति तथा सभ्यता के विकास-क्रम का इतिहास उपस्थित किया गया है। आर्य-संस्कृति का भिन्न-भिन्न विदेशी संस्कृतियो से जो सम्पर्क प्रागैतिहासिक काल से लेकर वर्तमान समय तक हुआ तथा मानवता ने जो विकास किया, उन सबका चित्रण इन कहानियों में है।'[६८] राहुल जी की कहानियों के कथानक इतिहास की भित्ति पर आधृत वर्ग-वैषम्य एवं आर्थिक असमानता का चित्रण करने वाले हैं। उनमें मानसिक ऊहापोहों के चित्रण के प्रति आग्रह लक्षित नही होता। वस्तुत. राहुल जी स्थूल कथानक देकर किसी विचारगत-सत्य या यथार्थ स्थिति को स्पष्ट करने के प्रति आग्रही दिखाई देते हैं, जिससे उनका कथाशिल्प सम्पन्न नही बन पड़ा।

पात्र और चरित्र-चित्रण

कहानी के कला-विधान मे पात्रों के चरित्रांकन का महत्त्व अत्यधिक है। पात्र कथावस्तु के सजीव संचालक हैं, जिनसे एक ओर कथावस्तु का आरम्भ, विकास और अन्त होता है और दूसरी ओर जिनसे हम कहानी मे आत्मीयता प्राप्त करते हैं।[६९] आधुनिक कहानी में तो पात्र के चरित्र का उद्घाटन करना कहानी का लक्ष्य बन गया है। पात्र के व्यक्तित्व को उभार कर पाठक के सामने ला देना कहानी की सफलता मानी जाती है। स्वाभाविक रूप से प्रस्तुत पात्र और उसका चरित्र-चित्रण कहानी में सहज विश्वसनीयता ला देता है। [७०] डॉ० श्यामसुन्दर दास चरित्र-चित्रण की प्रक्रिया मे विश्लेषणात्मक तथा अभिनयात्मक दोनों पद्धतियों की उपयोगिता स्वीकारते हैं। [७१]

राहुल जी की कहानियों में पात्र और चरित्र-चित्रण का तत्त्व अपेक्षाकृत कम उभरा है। उनकी कहानियाँ प्रमुखतः वातावरण-प्रधान कहानियाँ हैं और उनमें इस तत्त्व को इतनी प्रमुखता प्राप्त हुई है कि अन्य तत्त्व गौण पड गये है। दूसरे स्थान पर उनकी कहानियो मे उनके विचारक एवं इतिहासकार के रूप को स्थान मिला है, यही कारण है कि उनकी कहानियों मे ऐतिहासिकता एवं उनकी विचारधारा सर्वत्र मुखरित है। राहुल जी की कहानियों के पात्र उनके अपने विचारो एवं जीवन-दर्शन के अनुकूल हैं। अपने विचारो की अभिव्यक्ति के लिए उन्होंने पात्रो का निर्माण किया है। प्रमुखतः उनके पात्र समाज-सुधारक हैं। सुदास, नागदत्त, सुपर्ण यौधेय, बाबा नूरदीन, मंगलसिंह, रेखा भगत, सफदर, सुमेर, लोपा, प्रभा, सुरैया—ये सभी पात्र कहानीकार के विचारो के वाहक-मात्र हैं। ये सभी पात्र समाज के अप्रगतिशील तत्त्वो के विरोधी हैं। वे ब्रह्मवाद, मन्त्रवाद, पुरोहितवाद, पूंजीवाद एवं सामाजिक विषमता के विरोधी हैं और लेखक की मानवतावादी एवं साम्यवादी विचारधारा के अनुकूल हैं। बहुरंगी मधुपुरी के पात्र सामाजिक एवं आर्थिक दृष्टि से विभिन्न स्तरों एव वर्गों के हैं, उनका चयन-क्षेत्र प्रायः सीमित हैं। 'सतमी के बच्चे' के पात्र प्राय. एक ही प्रकार के हैं। अभिप्राय यह है कि राहुल जी ने अपनी कहानियो मे ऐसे पात्रो को ग्रहण किया है, जो उनके उद्देश्य एवं विचारधारा के अनुकूल हैं।

डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल पात्रो के प्रमुखतः दो रूप मानते हैं—ऐतिहासिक एवं सामाजिक।[७२] राहुल जी के अधिकाश पात्र या तो इतिहास से लिए गये हैं या उनके अपने जीवन-अनुभव मे आए सामाजिक पात्र हैं। 'सतमी के बच्चे' के पाठक जी, पुजारी जी, दलसिंगार, डीहू बाबा, जैसिरी, राजबली तथा रामगोपाल आदि पात्र राहुल जी के पितृग्राम तथा ननिहाल के सुपरिचित पात्र हैं। 'बहुरंगी मधुपुरी' के पात्र राहुल जी के मसूरी-निवास मे उनके सम्पर्क मे आए पात्र हैं। 'कनैला की कथा' के जयन्त, देवपुत्र, श्रीकर, सैयदबाबा आदि पात्र तथा 'वोल्गा से गंगा' के अधिकाश पात्र ऐतिहासिक है। इस प्रकार लेखक ने इतिहास-प्रसिद्ध एवं जीवन-अनुभव मे आए सामाजिक पात्रों को अपनी विचारधारा के अनुकूल ढाल कर प्रस्तुत किया है। लोकोत्तर पात्र उनकी कहानियों में नहीं हैं। राहुल जी ने ऐतिहासिक पात्रों के चरित्रांकन मे अपनी विशिष्ट कल्पना-शक्ति और पाण्डित्य द्वारा उनके विशिष्ट व्यक्तित्व को प्रस्तुत किया है और उनके सामाजिक पात्र प्राय वर्गगत पात्र है, वे धनी, निर्धन एवं सामान्य वर्गो मे विभक्त है।

डॉ० जगन्नाथप्रसाद शर्मा पात्रो के चरित्र-चित्रण की प्रक्रिया मे मनोवैज्ञानिकता के उपयोग पर बल देते हैं,[७३] परन्तु राहुल जी का ध्यान पात्रो का चरित्रांकन करते समय उनके चरित्र के बाह्य रूप पर ही केन्द्रित रहा है। सफलतापूर्ण चरित्र-चित्रण के लिए लेखक मे जिस मनोवैज्ञानिक अध्ययन की अत्यधिक आवश्यकता है,[७४] वह राहुल जी मे दृष्टिगोचर नही होती। उन्होंने पात्रो के चरित्रांकन मे पात्रो की आकृति, वेश-भूषा तथा उनके बाह्य क्रियाकलाप का ही चित्रण किया है। पात्रो की

प्रवृत्तिगत विशेषताओं, उनकी प्रतिक्रियाओं एवं उनके अन्तर्मन का विश्लेषण नहीं किया। 'निशा' कहानी में बाह्याकृति का एक रेखांकन द्रष्टव्य है—"उसके लाल मैल छुटे कपोल की अरुण-श्वेत छवि, ललाट को बचाते बिखरे हुए लट-विहीन पाण्डु-श्वेत केश, अल्पमांसल पृथुल वक्ष पर गोल-गोल श्यामलमुख स्तन, अनुदर कृश कटि, पुष्ट मध्यम परिमाण नितम्ब, पेशीपूर्ण वर्तुल जंघा, श्रमधावन-परिचित हलाकार पेण्डुली।"[७९] इसी प्रकार कुमार दुरंजय, मुरैया,[८१] जोता, पाठक जी,[८२] किरात सरदार, प्रमोना[८३] आदि पात्रों का चरित्र-चित्रण उनके बाह्य सौन्दर्य, वेशभूषा आदि के अङ्कन द्वारा किया गया है। पात्रों के गुणों एवं क्रियाकलाप का वर्णन राहुल जी ने स्थूल ढंग से वर्णनात्मक शैली में ही प्रस्तुत किया है। जयन्त के क्रियाकलाप वर्णन का एक उदाहरण द्रष्टव्य है—"जयन्त सुबाहु का वीर पुत्र था—वीरता और शौर्य में पिता के अनुरूप। युद्ध-वर्जित होने के कारण जयन्त अपनी निर्भीकता का परिचय मृगया के क्षेत्र में ही देता था। वह पंचानन के आमने-सामने खड़ा हो उसका शिकार करता था।"[८४] इस प्रकार राहुल जी की दृष्टि चरित्रांकन के बाह्य रूप तक ही सीमित रही है। पात्रों के अन्तरंग का विश्लेषण उन्होंने नहीं किया। प्रवाहण, सफदर, सुमेर जैसे विचारशील पात्रों के अन्तर्मन का विश्लेषण भी उन्होंने नहीं दर्शाया।

बाह्य चरित्रांकन मे राहुल जी के विभिन्न पात्र साम्य रखते हैं। नारी-पात्रों के सौन्दर्याङ्कन मे एक जैसी विशेषतायें प्रकट की गई हैं।[८०] 'बहुरंगी मधुपुरी' के अधिकाश पात्र समान चरित्र रखते हैं। महाप्रभु, पेड़ बाबा, रायबहादुर, कुमार दुरंजय, प्रमोदबाला, मेमसाहब, मीनाक्षी आदि पात्र स्वार्थी एवं विलासी हैं। गोलू, कमलसिंह राउत, रूपी, डोरा आदि पात्र भाग्यवादी एवं विपन्न हैं। विविध पात्रो की चरित्रगत समानता पाठक पर विशेष प्रभाव डालने मे असमर्थ है।

चरित्र-चित्रण के लिए व्यवहारतः चार साधनों का उपयोग किया जाता है—वर्णन, संकेत, कथोपकथन और घटना-कार्य-व्यापार। इनमे संकेत और कथोपकथन द्वारा चरित्र-चित्रण की शैली सर्वाधिक कलात्मक स्वीकार की जाती है।[८१] राहुल जी ने प्रमुखतः वर्णनात्मक शैली मे चरित्र-चित्रण किया है। इस विषय में डॉ० ब्रह्मदत्त शर्मा का कथन है—"राहुल जी ने पात्रों की विशेषताओं को घटनाओं के सहारे उपस्थित किया है। चरित्र-चित्रण प्रत्यक्ष और वर्णनात्मक है।"[८२] संकेतात्मक-शैली का उनमें अभाव है। कहीं-कहीं कार्य-व्यापार एवं संवादात्मक-शैली में भी राहुल जी ने चरित्र-चित्रण किया है, पर अधिकांशतः वे वर्णनात्मक ढंग से ही चरित्रांकन करते हैं। राहुल जी की चरित्र-चित्रण कला अविकसित ही कही जा सकती है। आधुनिक कहानीकार की चरित्र-चित्रण के क्षेत्र मे प्रगति स्थूल से सूक्ष्म की ओर, चरित्र के बाह्य संघर्ष से आन्तरिक संघर्ष की ओर गतिशील है, वह राहुल जी मे नहीं।

संवाद

संवाद मूलतः नाटक का उपकरण हैं, पर सामान्यतः अन्य सभी रचना-प्रकारो मे भी इसका प्रयोग अनिवार्य है। कहानी मे संवादो की योजना कथा-विकास, चरित्र-चित्रण और वातावरण-निर्माण के लिए अपेक्षित है। कहानी के संवादों में मनोवैज्ञानिकता, संक्षिप्तता, यथार्थता, व्यंग्य-विनोदात्मकता का गुण होना चाहिए। संक्षिप्त संवादो मे राजनीति, समाज, धर्म, यथार्थ और आदर्श का सकेत होना चाहिए ताकि पाठक के अन्तःकरण पर पात्रों के विश्वासों का चित्र अंकित होता जाए। डॉ० जगन्नाथप्रसाद शर्मा के शब्दों मे—"कहानी में इसका लघु-प्रसारी, वैदग्ध्यपूर्ण आकर्षक और चमत्कारी प्रयोग ही इष्ट होता है।"[८३]

राहुल जी की अनेक कहानियाँ संवादो से आरम्भ होती हैं। दिवा, अंगिरा, प्रवाहण, नागदत्त, बाबा नूरदीन (वोल्गा से गंगा), धुरबिन (सतमी के बच्चे), लिप्स्टिक, डोरा (बहुरगी मधुपुरी) कहानियाँ संवादों से ही आरम्भ होती हैं। कुछ कहानियो मे कथोपकथन द्वारा कथा का विकास हुआ है। अंगिरा, सुदास्, प्रवाहण बन्धुल मल्ल, प्रभा, सुरैया, रेखाभगत, सफदर, सुमेर कहानियों में संवाद-तत्त्व प्रधान है।

राहुल जी ने संवादों का उपयोग कथानक के विकास तथा पात्रों के चरित्रांकन के लिए किया है। 'सुदास्' कहानी मे सुदास् तथा अपाला के संवाद संक्षिप्त एवं सजीव हैं। दोनो की प्रथम भेंट गांव के कुएँ पर होती है। सुदास् अपनी यात्रा के विषय में बतलाता है कि वह काम की खोज में इधर-उधर घूम रहा है। दोनों में परस्पर प्रेम का उदय होता है। अपाला उसे अपने पिता के पास ले जाती है। वह भी सुदास् की वार्त्ता से प्रभावित होकर उसे कार्य पर लगा लेता है। दो पृष्ठों के ये संवाद संक्षिप्त एवं सजीव हैं, कथा को गति देते हैं और सुदास् के चरित्रांकन में सहायक हैं।[८४] इस प्रकार के सहज संवाद राहुल जी की कहानियो में यत्र-तत्र बिखरे हैं। सोफिया और नागदत्त की प्रणय-वार्त्ता का एक चित्र संवादों के माध्यम से प्रस्तुत है[८५] :—

"यह माला मैंने प्रियतम के लिए बनाई है।"
"बहुत अच्छी माला है, सोफी।"
"किन्तु मालूम नही उसे कैसी लगेगी।"
"क्यों, बहुत अच्छी लगेगी।"
"उसके पीले केश, और यह माला अतिरिक्त गुलाबो की है।"
"सुन्दर मालूम होगी।"
"ज़रा तुम्हारे सिर पर रख कर देख लूँ।"
"तुम्हारी मर्ज़ी। मेरे भी केश पीले हैं।

इसी प्रकार के संवाद सुरैया और कमल की प्रणयवार्त्ता,[८६] नूर तथा दिवा के

प्रेमालाप[८७] में देखे जा सकते हैं। स्मृतिज्ञान कीर्ति तथा डोल्-मा के संवादों में[८८] भी स्वाभाविकता एवं सजीवता है। ऐसे लघु संवादों से लेखक कथा को गति दे सका है और पात्रों का चरित्रांकन भी कर सका है।

निजी विचारधारा एव दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति के लिए भी राहुल जी ने संवादों का उपयोग किया है। यहाँ राहुल जी के पात्र लेखक की विचारधारा के वाहक बन जाते हैं और संवाद उनकी अभिव्यक्ति का उपकरण। कालिदास और सुपर्ण यौधेय के संवादों में राजतन्त्र की विगर्हणा और गणराज्यों की प्रशंसा है।[८९] सुदास् और दिवोदास की वार्ता का विषय भी प्राय: यही है।[९०] 'सुमेर' कहानी के संवादों में गांधीवाद, धर्म, भगवान् विषयक विचारों को लेखक ने संवादों के माध्यम से व्यक्त किया है।[९१] 'सफदर' कहानी में गांधीवादी अहिंसा की निरर्थकता की ओर संकेत है।[९२] 'प्रभा' कहानी के सवाद लेखक की बौद्ध-धर्म के प्रति आस्था को व्यक्त करते हैं।[९३]

> 'लेकिन बौद्ध सबको विरागी, तपस्वी और भिक्षु बनाना चाहते हैं।'
>
> "बौद्धों में गृहस्थों की अपेक्षा भिक्षु बहुत कम होते हैं और बौद्ध गृहस्थ जीवन का रस लेने में किसी से पीछे नहीं रहते।"
>
> "इस देश में और भी कितने ही धर्म हैं, आखिर यवनों का बौद्ध धर्म पर इतना पक्षपात क्यों? यह फिर भी समझ में नहीं आता।"
>
> "यहाँ बौद्ध ही सबसे उदार धर्म है। जब हमारे पूर्वज भारत में आए, तो सब म्लेच्छ कहकर हमसे घृणा करते थे। आक्रमणकारी यवनों की बात मैं नहीं कर रही हूँ, यहीं बस जाने वाले अथवा व्यापार आदि के सम्बन्ध में आने वाले यवनों के साथ भी यही बर्ताव था किन्तु बौद्ध उनसे कोई घृणा नहीं करते।"

यहाँ संवादों का उद्देश्य न तो कथा को गति देना है और न पात्रों के चरित्र पर प्रकाश डालना है। लेखक कथा-विकास को विराम लगाकर अपनी विचारधारा को अभिव्यक्ति देता है।

वातावरण-सर्जना के लिए भी लेखक ने संवादों का उपयोग किया है। 'दिवा' कहानी के संवाद तत्कालीन आर्यपूर्वजों की युद्धनीति, शिकार-वृत्ति एवं धर्म-प्रवणता के वातावरण को प्रस्तुत करते हैं।[९४] सुरैया और कमर के संवाद मानवताहीन माहौल का दृश्य अंकित करने में सहायक है।[९५] '[illegible]' कहानी में मुल्कों की स्थिति के संवादों द्वारा बदलते हुए ढंगों पर टीका-टिप्पणी है।[९६]

राहुल जी की कहानियों में संवाद लम्बे एवं विचारों के भार से [illegible] के कारण बोझिल बन गए हैं। जहाँ प्रभाव-क्षमता में संक्षिप्त संवादों के द्वारा लेखक चित्र प्रस्तुत करता है[९७] वहाँ लम्बे संवाद कथा-विकास में बाधक एवं [illegible] [illegible] है। [illegible] और उनके [illegible] के संवाद [illegible]

हैं जिनमें देश की राजनीतिक स्थिति का अंकन है। शंकर प्रश्न करता है और सफदर उनका उत्तर देता है। वार्तालाप चिन्तन-प्रधान एवं शुष्क है[६८]। 'सुमेर' कहानी के संवादों की भी यही स्थिति है[६९]। इस कहानी से एक उद्धरण यहाँ प्रस्तुत है—"तो आप नहीं चाहते कि अछूत सवर्ण सब एक हो जाएँ? काल ने हमें एक कर दिया है, किन्तु गांधी जी के प्रिय धर्म, भगवान्, पुराणपन्थिता उसे हमें समझने नहीं देती। मुझे देखिए, ओझा जी, मेरा रंग गेहुआँ, नाक ज्यादा पतली ऊँची और आपका रंग काला, नाक बिल्कुल चपटी। इसका क्या अर्थ है? मेरे में आर्य-रक्त अधिक है। आपमें मेरे पूर्वजों का रक्त अधिक है। आपके पूर्वजों ने वर्ण-व्यवस्था की लोहे की दीवार खड़ी कर बहुत चाहा कि रक्त-सम्मिश्रण न होने पाये, किन्तु चाह नहीं पूरी हुई, इसके सबूत हम आप मौजूद हैं। वोल्गा और गंगा तट के खून आपस में मिश्रित हो गये हैं। आज वर्ण (रंग) को लेकर झगड़ा नहीं है। आपको कोई ब्राह्मण जाति से खारिज करने के लिए तैयार नहीं है। सारी बातें ठीक हो जाएँ यदि धर्म, भगवान्, पुराणपन्थिता हमारा पिण्ड छोड़ दें, और यह तब तक नहीं हो सकता जब तक कि शोषक और गांधी जी जैसे उनके पोषक मौजूद हैं।"[१००] इस प्रकार के संवाद प्रवचन से प्रतीत होने लगते हैं। इनमें न तो मनोवैज्ञानिकता ही है और न ही व्यंग्य-विनोदात्मकता। फलतः पाठक के अन्तःकरण पर पात्रों के विश्वासों का चित्र अंकित करने में भी सफल नहीं है।

कथोपकथन में नाटकीयता का गुण होना चाहिए परन्तु राहुल जी के संवादों में नाटकीयता का अभाव ही दृष्टिगोचर होता है। उनमें संक्षिप्तता, पैनापन एवं सजीवता का प्रायः अभाव है। नानासाहब और मंगलसिंह के संवाद नीरस हैं[१०१]। सुमेर और रामबालक ओझा की शोषक एवं शोषित सम्बन्धी वार्ता में भी नाटकीयता नहीं है।[१०२] कई स्थलों पर संक्षिप्त होने के बावजूद भी संवाद नाटकीय नहीं। जैसे :—

"और?"

"और हिन्दुस्तान को छुआछूत, जात-पाँत, हिन्दू-मुस्लिम का अन्तर मिटाना होगा। देखते हो, हम किसी के हाथ का खाने में छुआछूत का ख्याल रखते हैं।"

"नहीं।"

"पंचों के भीतर धनी-गरीब के सिवा और छोटी-बड़ी जात-पाँत का कुछ ख्याल है?"

"नहीं, और?"

"सती बन्द करना होगा, लाखों औरतों को हर साल आग में जलाना इसे क्या तुम समझते हो भगवान् क्षमा कर देंगे।"[१०३]

इस प्रकार न तो लम्बे संवादों में और न संक्षिप्त संवादों में ही राहुल जी नाटकीयता का समावेश कर सके हैं। लम्बे संवाद गम्भीर विषयों पर विवेचन करने

का वह चरम उद्देश्य ही चरितार्थ हो सकता है, जिसके आधार पर ऐतिहासिक कहानी लिखी जाती है।[110] वस्तुत. लेखक की सृजन-शक्ति का परिचय वातावरण की सृष्टि से मिलता है। वह कहानी में वातावरण की परिकल्पना ऐसी परिस्थिति के रूप में करता है जिसके द्वारा कथानक तथा कथानक को विकसित करने वाले चरित्रों के अभीष्ट संवेदनात्मक लक्ष्य तक पहुंचा जा सके।[111]

महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ऐतिहासिक कथाकार हैं और उन्होंने इतिहास के प्रस्तरखण्डों को बड़े कौशल से जोड़कर उसके प्रत्येक युग के वातावरण की सजीव सृष्टि की है।[112] राहुल जी की कहानियाँ इसलिए उत्कृष्ट हैं कि उनमें परिपार्श्व और परिवेश का सजीव चित्रण है। वस्तुतः उनमें अन्य तत्त्व गौण हैं, देशकाल का चित्रण ही सर्वप्रमुख है। डॉ० ब्रह्मदत्त शर्मा लिखते हैं—"उन्होंने कहानी के लिए जिस कलात्मक रूप का प्रयोग किया, उसमें ऐतिहासिकता तथा वातावरण का सौन्दर्य है, तात्विक आकर्षण नहीं।"[113] 'वोल्गा से गंगा', 'बहुरंगी मधुपुरी', 'सतमी के बच्चे', 'कनैला की कथा' सभी में देशकाल का चित्रण विशद एवं सजीव रूप से हुआ है। 'वोल्गा से गंगा' तथा 'कनैला की कथा' में तो देशकाल का चित्रफलक अत्यन्त विशाल है। लेखक के व्यापक दृष्टि-विस्तार ने ८००० वर्षों तक प्रसरित मानव-जीवन के इतिहास को हमारे सामने प्रस्तुत किया है। इतने विस्तृत देशकाल पर समग्रत. अधिकार रखने वाली दृष्टि राहुल जी के अतिरिक्त अन्यत्र दुर्लभ है। राहुल जी वातावरण के कुशल चितेरे हैं।

घटनास्थल—राहुल जी की कहानियों में विस्तृत देशकाल का चित्रण है, अतः उनके घटनास्थल भी विविध है। 'वोल्गा से गंगा' की प्रथम पाँच कहानियों—निशा, दिवा, अमृताश्व, पुरुहूत, पुरुधान का सम्बन्ध वोल्गा और सुवास्तु नदी के मध्य स्थित प्रदेशों से है। इस संग्रह की अन्य पन्द्रह कहानियाँ तक्षशिला एवं पटना के मध्य स्थित विभिन्न प्रदेशों एवं नगरों की कहानियाँ है। 'कनैला की कथा' की सभी कहानियों का केन्द्र राहुल जी ने कर्णहट (कनैला) को ही बनाया है। 'बहुरंगी मधुपुरी' की समस्त कहानियों का घटनास्थल पर्वतीय विलासपुरी मधुपुरी (मसूरी) है। 'सतमी के बच्चे' कहानी-संग्रह की कहानियाँ विविध स्थानों से सम्बन्धित हैं। 'सतमी के बच्चे' 'पाठक जी', 'जैसिरी', 'दलसिंगार', का सम्बन्ध पन्दहा गाँव से है। 'डीह बाबा' व 'पुजारी' की घटनाएँ कनैला में घटित है। 'राजबली' तथा 'धुरविन' की घटनाएँ कनैला के आसपास के गाँवों से सम्बन्धित हैं। 'रामगोपाल' की घटनाएँ प्रयाग और लाहौर से सम्बद्ध हैं। इस संग्रह की एक कथा 'स्मृतिज्ञान कीर्ति' का घटनास्थल भोट-प्रदेश है। इस प्रकार राहुल जी की कथाओं के विविध घटनास्थल हैं। इन कहानियों में इन स्थानों के सजीव और यथार्थ चित्र अंकित हुए है।

परिवेश—राहुल जी ने अपनी कहानियों में वातावरण-सर्जन के लिए पर्याप्त उद्योग किया है और इसमें उन्हें सफलता भी मिली है। राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक

स्थितियों के सफल अङ्कन के साथ प्रकृति के भी सुन्दर चित्र उनकी कहानियों में मिलते हैं।

(क) राजनीतिक स्थिति—राहुल जी की कहानियाँ विभिन्न युगों से सम्बद्ध हैं, अतएव उनमें विभिन्न युगों की राजनीतिक स्थिति का अङ्कन हुआ है। 'वोल्गा से गंगा' की कालावधि ६००० ई० पू० से सन् १६४२ तक है। 'कनैला की कथा' का भी काल पर्याप्त विस्तृत है। 'सतमी के बच्चे' में बीसवीं सदी के प्रथम तीन दशकों की स्थिति का चित्रण है और 'बहुरंगी मधुपुरी' में स्वातन्त्र्योत्तर भारत की झाँकी है।

'वोल्गा से गंगा' की प्रथम पाँच कहानियाँ 'निशा', 'दिवा', 'अमृताश्व', 'पुरुहूत' तथा 'पुरुधान' में ६००० ई० पू० से २००० ई० पू० की वोल्गा से स्वात तक प्रसरित हिन्दी-यूरोपीय-जाति के राजनीतिक जीवन की झाकी मिलती है। यह युग कबीलों का युग था, आर्य-पूर्वज छोटे-छोटे कबीलों (जनों) में विभक्त थे। इन जनों मे परस्पर युद्ध होते थे, शासन जन-समिति द्वारा चलाया जाता था तथा जन के योग्यतम व्यक्ति को महापितर माना जाता था।[११४] महापितर की प्रधानता होने पर भी 'जन' ही सर्वस्व था। कालान्तर में जन-संघर्षों ने युद्ध-सेनापति इन्द्र को जन्म दिया।[११५]

'अङ्गिरा', 'सुदास्', 'प्रवाहण', तथा 'बन्धुल मल्ल' शीर्षक कहानियों मे १८०० ई० पू० से ४९० ई० पू० तक की राजनीतिक स्थिति का अङ्कन है। इस काल में आर्य जाति असुरों से संग्राम में विजयी हो तक्षशिला से श्रावस्ती तक पहुंच जाती है। अंगिरा कहानी में असुरों के राजतन्त्र का वर्णन है। गान्धार मे गणतन्त्र-प्रणाली है, परन्तु धीरे-धीरे आर्यों ने भी गणतन्त्र के स्थान पर राजतन्त्र को अपना लिया। यह युग गणतन्त्र और राजतन्त्र के संघर्ष का युग है। 'नागदत्त', 'प्रभा', 'सुपर्ण यौधेय', 'दुर्मुख' कहानियों मे चन्द्रगुप्त मौर्य से हर्षवर्धन तक की राजनीतिक स्थिति का चित्रण है। यह युग साम्राज्यवाद का युग है, इस काल मे गणराज्य का ह्रास हुआ और राजतन्त्र का विकास। इस काल के शासक स्वभावतः साम्राज्यवादी थे—राज्य की सीमाओं का विस्तार उनका प्रमुख लक्ष्य था। 'सुपर्ण यौधेय' में कालिदास गणराज्य के स्थान पर साम्राज्यवाद का समर्थन करता है।[११६] 'चक्रपाणि' कहानी में पृथ्वीराज और जयचन्द के पारस्परिक वैमनस्य का वर्णन है जिसका परिणाम तुर्कों का भारत-आगमन है। इस कहानी की घटनाएँ १२०० ई० के आसपास की हैं। 'बाबा नूरदीन' मे अलाउद्दीन की शासन-स्थिति का उल्लेख है तथा 'सुरैया' में अकबरकालीन शासन का। मुगल-शासन को लोकप्रिय बनाने के लिए अकबर हिन्दू-मुस्लिम दोनों से समान-व्यवहार की नीति अपनाता है।

'रेखाभगत' में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन का वर्णन है। 'मंगलसिंह' सन् १८५७ के प्रथम स्वतन्त्रता-संग्राम से सम्बद्ध कहानी है जिसमें भारतीय जनता की राजनीतिक चेतना का वर्णन है। 'सफदर' और 'सुमेर' में दो महायुद्धों की राज-

नीतिक स्थिति का ग्रङ्कन है। इस युग मे भारत गाँधी के नेतृत्व मे सत्याग्रहो एवं ग्रसहयोग आन्दोलनों द्वारा स्वतन्त्रता-प्राप्ति के सघर्ष को जारी रखता है। अंग्रेज रोलट-एक्ट द्वारा भारतीयो का दमन करते हैं। इसी ग्रवधि मे जलियाँवाला बाग की घटना भी होती है।

स्वातन्त्र्योत्तर काल का वर्णन 'बहुरंगी मधुपुरी' और 'कनैला की कथा' की कुछ कहानियो मे विस्तार से मिलता है। सन् १९४७ मे भारत स्वतन्त्र होता है, जनतन्त्र की स्थापना होती है। कांग्रेस द्वारा देश की उन्नति के लिए निर्माण-योजनाएँ बनाई जाती है। लेखक को कांग्रेस सरकार को नीतियों मे और अंग्रेजो की नीतियो मे कोई ग्रन्तर दिखाई नही पडता। वह साम्यवाद का उपासक है, और साम्यवाद को ही शोषण का उपचार स्वीकारता है।

(ख) सामाजिक ग्रवस्था :—सामाजिक ग्रवस्था के ग्रन्तर्गत समाज की सांस्कृतिक स्थिति, उसके ग्राहार-व्यवहार, वेशभूषा, रहन-सहन ग्रादि का वर्णन राहुल जी ने किया है।

राहुल जी ने जिस समाज का चित्रण किया है—वह विभिन्न युगो एवं ग्रादर्शों का है। वह समाज गतिशील है, ग्रपनी ग्रादिम ग्रवस्था से विकसित होता हुग्रा वह ग्राधुनिक युग तक पहुंचा है, उसके विविध रूप एवं स्तर हैं। समाज-चित्रण के ग्रन्तर्गत उसकी सास्कृतिक ग्रवस्था के चित्रण में राहुल जी ने विभिन्न युगो मे नारी की स्थिति का सविस्तार यथार्थ ग्रंकन किया है। ग्रार्य-जाति में स्त्रियों को पुरुषो की तरह सम्मान प्राप्त था। ग्रार्य-पूर्वजो का समाज तो मातृ-प्रधान समाज था ही। वहाँ नारी जनस्वामिनी थी। स्त्री ग्राजीवन स्वतन्त्र रहती थी, वह पुरुष की जंगम सम्पत्ति न थी।[१७] ग्रार्य-स्त्रियों को वेदाध्ययन एवं युद्ध मे भाग लेने का ग्रधिकार था। लोपा ब्रह्मवादिनी है ग्रौर गार्गी ब्रह्मवाद, यज्ञवाद एवं पुनर्जन्मवाद जैसे गम्भीर विषयो पर वाद-विवाद करने मे निपुण है।[१८] स्त्रियाँ गृहकार्यों में कुशल हैं, उनमे पर्दे की प्रथा नही है। साम्राज्यवादी युग मे स्त्री का सम्मान कम होने लगा। वह पुरुषों विशेषकर राज्याधिकारियो की वासना का कन्दुक बनने लगी। रनिवासो मे सहस्रो की संख्या मे उन्हे भरा जाने लगा।[१९] यवनो के भारत-ग्रागमन के ग्रनन्तर नारी की स्थिति ग्रौर भी नारकीय बन गई। स्त्री को घर की चहारदिवारी मे बन्द कर दिया गया ग्रौर पर्दे की प्रथा का प्रचलन हुग्रा। यवन राजाग्रो एवं सेनापतियों द्वारा हिन्दू नारियों का सतीत्व हरण किया जाने लगा।[२०] ग्रकबर की उदार धार्मिक नीति के परिणामस्वरूप ग्रंतर्जातीय विवाह-प्रथा का विकास हुग्रा। पर हिन्दू नारी की स्थिति मे इससे कोई विशेष परिवर्तन नही होता।

बीसवी शती मे भारतीय समाज पर ग्रंग्रेजी सभ्यता का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। नारी को इस काल मे स्वतन्त्रता मिलती है। परन्तु उसमे विलासिता, शृंगारप्रियता एवं ग्राडम्बर ग्रधिक ग्रा जाता है। नागरिक स्त्रियाँ पर्दे की प्रथा को

दूर कर पुरुष के समान स्वच्छन्द जीवन व्यतीत करती है। धनी स्त्रियों का जीवन अधिक विलासमय है। 'बहुरंगी मधुपुरी' की अनेक नारियाएँ विलासिनी हैं। मेम साहब अपने बनाव-शृंगार पर सैकड़ों रुपये खर्च करती है। होटलों में नृत्य करना, जुआ खेलना तथा तरुणों को आकृष्ट करने के लिए पानगोष्ठियों का आयोजन उनके दैनिक कार्य है। साथ ही 'बहुरंगी मधुपुरी' में ऐसी भी निर्धन स्त्रियाँ हैं जिन्हें अपने एवं अपने परिवार के भरण-पोषण के लिए वारवनिता बनना पड़ता है। धनी स्त्रियों की विलासिता उनके मनोरंजन का साधन है और निर्धन स्त्रियों को पेट पालने की मजबूरी।[111] श्रमिक एवं निर्धन सतमी जैसी नारियाँ पेट पालने के लिए दिन-रात खेतों में काम करती है फिर भी भूख मिटाने के लिए दो कौर अन्न भी जुटा नहीं पाती।[112] इस प्रकार राहुल की कहानियों में आर्यकाल से लेकर आधुनिक युग की नारी की सामाजिक स्थिति का अंकन है।

युगानुकूल आहार-व्यवहार, वेश-भूषा, रहन-सहन के अंकन द्वारा राहुल जी की कहानियों में सामाजिक परिवेश का यथार्थ एवं सजीव चित्रण मिलता है। पर्वतीय-गुहाओं में रहने वाले आर्यों से लेकर बीसवीं शती के अंग्रेज़ी सभ्यता में रंगे हुए भारतीय समाज के गतिशील चित्र उनकी कहानियों की विशिष्टता है।

भारत में आने से पूर्व आर्य-पूर्वज (हिन्दी-यूरोपीय जाति) पर्वतीय गुहाओं में जीवन व्यतीत करते थे। हिम और शीत से अपने को बचाने के लिए वे पशु-चर्म का प्रयोग करते थे। शिकार उनकी जीविका का प्रमुख साधन था और कच्चा अथवा भुना हुआ मास उनका आहार था। केवल आर्य-पूर्वजों का ही नहीं भारत की आदि जातियों किरात, निषाद आदि का आहार भी मास ही था। मास के अतिरिक्त उनके खान-पान में दूध और सोमरस का भी प्रयोग होता था। विशेषकर भारतीय आर्यों के लिए तो सोमरस महत्त्वपूर्ण पेय था।[113] भारत आने पर आर्यों की वेशभूषा में अन्तर आ जाता है। वे ऋतु-अनुसार एवं पुरुष-स्त्री के भेद के साथ पहरावा पहनते हैं। पुरुषों की वेशभूषा में उष्णीष, कंचुक, अन्तरवासक और कमरबंद का प्रमुख स्थान है और स्त्रियाँ उत्तरासंग (चादर), कंचुक व अन्तरवासक धारण करती हैं।[114] भोजन में मास व सोमरस की ही प्रधानता थी। निवास के लिए आरम्भ में तम्बू और बाद में कच्चे-पक्के मकानों का प्रयोग होने लगा था। आर्यों की अपेक्षा असुरों के मकान अधिक सुन्दर और सुदृढ़ थे, उनके निर्माण में ईंटों का प्रयोग होता था।[115] यह अवस्था वैदिकयुगीन आर्यों की थी।

वैदिकोत्तर काल में क्रमशः आर्यों के रहन-सहन एवं खान-पान में विकास होता है। साम्राज्यवादी युग में आर्य-वंशजों का जीवन अधिक सुखमय था। ग्राम-जीवन और नगर-जीवन में भारी अन्तर आ गया था। नगरों में भव्य प्रासादों एवं अट्टालिकाओं का निर्माण होने लगा था। राजप्रासादों में सुरा, सुन्दरी एवं नृत्य का महत्त्व था। 'सैयद बाबा', 'बाबा नूरदीन' एवं 'सुरैया' आदि कहानियों में मुगलकालीन

भारत की सामाजिक स्थिति का चित्रण है। नगरों में भव्य प्रासाद हैं और लोग कुर्ते अचकन का प्रयोग अधिक करते हैं।[११]

बीसवीं शती में भारतीयों के जीवन में पर्याप्त अन्तर दिखाई देता है। इस समय का समाज खान-पान और वेशभूषा में पश्चिमी सभ्यता के रंग में रंगा हुआ है। 'मधुपुरी' की कहानियों में विलासी समाज का चित्र है जिसमें आडम्बर और दिखावा अधिक है। पुरुष और स्त्रियाँ दोनों ही कोट-पैंट पहनते हैं। रहने के लिए नवीन फैशन की कोठियाँ हैं। नगर में रहने वाले श्रमिक एवं निर्धन वर्ग का जीवन बड़ा कठिन है। उनके पास रहने के लिए साधारण मकान हैं, पेट-भर भोजन प्राप्त कर लेना उनके लिए समस्या है।[१२] इसके विपरीत ग्रामों में रहन-सहन का ढंग अब भी पुराना है। वही धोती-कुर्ते का पहनावा, वही पौष्टिक एवं सरल भोजन और कच्चे तथा साधारण मकान।

समाज-चित्रण में राहुल जी ने समाज के मनोरंजन आदि के साधनों का भी यत्र-तत्र उल्लेख किया है। इससे उसकी सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति का, उसकी सम्पन्नता-विपन्नता का संकेत मिलता है। मनोरंजन के साधनों में नृत्य प्रधान है साथ ही आर्यों एवं आर्य-पूर्वजों को संगीत एवं पान-गोष्ठियाँ विशेषकर प्रिय थीं।[१३८] संगीत उनके सम्मिलित काम का एक अंग है।[१३९] तरुण-तरुणियाँ स्वच्छन्दता से नृत्य-गान में सम्मिलित होते हैं, परस्पर प्रेम-प्रदर्शन, हास-परिहास, प्रेमालाप में वे स्वतन्त्र हैं।[१४०] आर्य युवक एवं युवतियों को उत्सव विशेष प्रिय थे। इन उत्सवों में युवक-युवतियाँ सुरापान कर अपने नृत्य-कौशल का प्रदर्शन करते थे। नृत्य केवल अपने पति या प्रिय के साथ मिलकर ही नहीं होता था, किसी भी प्रेमी के साथ प्रेमिकाएँ निस्संकोच नृत्य करती थीं।[१४१] अश्वारोहण तथा तैराकी भी उनके लिए मनोरंजन एवं व्यायाम के साधन थे।[१४२] साम्राज्यकालीन भारत में भी नृत्य एवं संगीत का महत्व था। मनोरंजन के साधनों में नाटक लोकप्रिय थे। अश्वघोष एवं कालिदास के नाटक इसी युग की देन हैं। मुगलकालीन भारत में हिन्दू-समाज के लिए जीविका के साधन जुटाने तथा अपनी मान-मर्यादा को बचाने का प्रश्न था, मनोरंजन की ओर उनका ध्यान कम था फिर भी अकबर के शासनकाल में उत्सवों की ओर जनता का ध्यान देखा जा सकता है।

पश्चिमी सभ्यता का प्रभाव आधुनिक मनोरंजन के साधनों पर भी पड़ा है। आधुनिक धनियों का जीवन विलासमय है। तरुण-तरुणियाँ ग्रीष्मकाल में पर्वतीय विलासपुरियों में जाना पसन्द करते हैं, जहाँ पान-गोष्ठियाँ, नृत्य, जुआ, शृंगार-सज्जा आदि की ओर उनका विशेष ध्यान होता है।[१४३]

इस प्रकार सामाजिक स्थिति के अंकन में राहुल जी ने भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के विभिन्न पहलुओं पर चित्र प्रस्तुत किये हैं। डॉ॰ बहादत्त शर्मा का इस विषय में कथन सत्य है—"राहुल सांकृत्यायन की कहानियों में भारतीय संस्कृति तथा

सभ्यता के विकास-क्रम का इतिहास उपस्थित किया गया है। आर्य-संस्कृति का भिन्न-भिन्न विदेशी संस्कृतियों से जो सम्पर्क प्रागैतिहासिक काल से लेकर वर्तमान समय तक हुआ, उन सबका चित्रण इन कहानियों में है।[134]

(ग) आर्थिक स्थिति—राहुल जी की कहानियाँ राजनीतिक एवं सामाजिक स्थिति की तरह आर्थिक स्थिति का भी चित्र प्रस्तुत करती हैं।

आर्थिक दृष्टि से प्राचीन आर्य-लोग सम्पन्न थे। आर्य-पूर्वज जब वक्षु-तट पर रहते थे तो उनका जीवन वन्य था और वन्य-पशुओं का आखेट उनका व्यवसाय था, आजीविका का साधन था।[135] मध्य एशिया के आर्यों का व्यवसाय पशुपालन था।[136] उनके मुख्य पशु गाय और अश्व थे। भेड़ो को भी आर्य पालते थे।[137] पशुधन ही उनकी सम्पन्नता एवं विपन्नता का सूचक था। कालान्तर में कृषि उनका मुख्य व्यवसाय बन गया।[138] स्थायी रूप से सप्त-सिन्धु में बस जाने पर व्यापार और कृषि उनके मुख्य धन्धे थे।[139] आरम्भिक आर्य वन्य पुष्पों एवं पत्तों से अपनी स्त्रियों को सजाते थे परन्तु अनार्य लोगों के अनुकरण पर स्त्रियाँ सोने-चान्दी के आभूषणों से अपने को अलंकृत करने लगी थी।

कनिष्क एवं गुप्तकालीन भारत में वाणिज्य उन्नति के शिखर पर था। इस काल की आर्थिक सम्पन्नता का मुख्य लाभ राजाओं, सामन्तों एवं व्यापारियों को था।[140] इस काल में ग्रामों की अपेक्षा नगरों की स्थिति अधिक अच्छी थी। गाँवों के लोग दरिद्र थे यद्यपि वहाँ शिल्पी, तन्तुवाय, स्वर्णकार, चर्मकार सभी प्रकार के शिल्प-व्यवसायी रहते थे परन्तु उनकी इस शिल्प का लाभ उठाने वाले नगर थे।[141] मुसलमानी राज्य में आर्थिक स्थिति लगभग उसी प्रकार की थी जिस प्रकार की साम्राज्यकालीन भारत में। निर्धन और धनी का अन्तर उसी प्रकार से बना रहा।

आर्थिक स्थिति में तीसरा परिवर्तन अंग्रेजों के समय दिखाई देता है। इस समय आर्थिक विषमता पहले से भी अधिक बढ़ने लगी। इस युग में धन-धान्य सामन्तों, ज़मींदारों व सेठों के पास सिमट-सिमट कर आने लगे। निर्धन और निर्धन होने लगे। दिन-रात काम करने के बाद भी उन्हें पेट-भर अन्न प्राप्त नहीं होता। भुखमरी से उनकी मृत्यु हो जाती है। 'मनमी के बच्चे' कहानी समाज के इसी वर्ग की कारुणिक कथा है।[142] 'बहुरंगी मधुपुरी' के पात्र गोंदू, राउत, बिसुन, कमलसिंह आदि भी धनाभाव से संतप्त हैं। इसके विपरीत मधुपुरी के कुमार दुरजय, ठाकुर जी, मेमसाहब आदि धनी पात्र हैं जिन्हें सभी प्रकार की सुविधाएँ प्राप्त हैं।

(घ) प्रकृति-चित्रण—वातावरण की सृष्टि के लिए राहुल जी ने तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक परिस्थितियों का सफल चित्रण करने के अतिरिक्त प्राकृतिक वातावरण का भी सजीव अंकन किया है। राहुल जी के प्रकृति चित्र अत्यन्त सजीव हैं, उनकी रेखाएँ अत्यन्त पुष्ट और रंग अत्यन्त मनोरम हैं।[143] प्रकृति-चित्रण के विविध रूपों की ओर आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र संकेत करते

है— 'प्रकृति का वर्णन कई प्रकार का देखा जाता है—शुद्ध, भावाक्षिप्त और अलंकृत। शुद्ध वर्णन वह है जिसमें प्रकृति जैसी दिखाई देती है, वैसी ही प्रस्तुत कर दी जाए। भावाक्षिप्त वर्णन वह है जिसमें वर्णन करने वाले के हृदयगत भावों का आरोप भी हो। इस प्रकार प्रकृति कहीं प्रफुल्ल दिखाई देती है और कहीं विषण्ण। अलंकृत वर्णन वह है जिसमें उपमा, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों का विशेष लदाव हो।'[133] राहुल जी के प्रकृति-चित्र अधिकतर शुद्ध और अलंकृत हैं।

राहुल जी के प्रकृत-चित्र प्रायः ऋतुओं, पर्वतीय स्थानों, उपवनों वनस्थलियो एवं नदियों से सम्बन्धित हैं। ऋतुओं में ग्रीष्म, वर्षा और वसन्त के चित्र अधिक हैं। 'वोल्गा से गंगा' की आरम्भिक कहानियाँ किसी-न-किसी प्रकृति चित्र से आरम्भ होती हैं। वस्तुतः इन कहानियों के नायक-नायिकाओं का चरित्र इन प्राकृतिक दृश्यों के मध्य अत्यन्त निखर उठा है। 'निशा' और 'दिवा' की कथाओं मे वोल्गा-तट के तुषार-मण्डित विभिन्न प्रदेशों के वर्णन चित्रकला के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। राहुल जी के वसन्त-ऋतु के चित्र अत्यन्त रम्य और आकर्षक हैं। कहीं उन्होंने वसन्तागमन के चित्र प्रस्तुत किये हैं तो कहीं वसन्त-श्री के। वसन्तागमन से निर्जीव प्रकृति सजीव हो उठी है, देखिए—"वसन्त के दिन थे। चिरमृत प्रकृति मे नवजीवन का संचार हो रहा था। छः महीने से सूखे भुर्ज-वृक्षों पर टूसे पत्ते निकल रहे थे। बर्फ पिघली, धरती हरियाली से ढँकती जा रही थी। हवा मे वनस्पति और नई मिट्टी की भीनी-भीनी मादक गन्ध फैल रही थी। जीवनहीन दिगन्त सजीव हो रहा था। कही वृक्षों पर पक्षी नाना भाँति के मधुर शब्द सुना रहे थे, कही झिल्ली अनवरत शोर मचा रही थी। कही हिमद्रवित प्रवाहों के किनारे बैठे हजारों जल-पक्षी कृमि-भक्षण मे लगे हुए थे, कहीं कलहंस प्रणय-क्रीड़ा कर रहे थे।"[134] 'अमृताश्व' कहानी का आरम्भ भी फर्गाना के पर्वतीय प्रदेश मे वसन्त-वर्णन के साथ हुआ है।[135] वसन्त के यौवन का वर्णन 'बन्धुल-मल्ल' तथा 'प्रभा' मे द्रष्टव्य है।[136] वसन्तान्त का चित्र 'सुदास्' मे सुन्दर बन पड़ा है।[137] ग्रीष्मकाल के चित्र राहुल की कहानियों मे स्वल्प ही हैं। वर्षा-ऋतु का वर्णन 'सुरैया', 'सुमेर' तथा 'नरमेघ' कहानियों में हुआ है। राहुल जी ने वर्षा-वर्णन में वर्षा के जल के वर्णन के साथ-साथ सावन के महीने मे कुल-वधुओं के मधुर कण्ठो से निःसृत गीतों का भी वर्णन किया है।[138] शिशिर, शरद् और हेमन्त को प्रायः एक ही रूप मे देखा गया है। शीत-ऋतु के वर्णन छोटे, बाह्य और चलते हैं।[139]

राहुल पर्वतीय-यात्राओं के प्रेमी थे। पर्वत की भूमि और वनस्पति ने उन्हें सर्वाधिक आकृष्ट किया है। पर्वतीय वृक्ष और हिमवसना धरती उन्हें बहुत प्रिय है। देवदारु वृक्ष का वर्णन देखिए—"वक्षु की घर्घर करती धारा बीच मे बह रही थी। उसके दाहिने तट पर पहाड़ धारा से ही शुरू हो जाते थे, किन्तु बाईं तरफ अधिक ढालुआँ होने से उपत्यका चौड़ी मालूम होती थी। दूर से देखने पर सिवाय घनहरित उत्तुंग देवदारु वृक्षों की स्याही के कुछ नहीं दिखलाई पड़ता था, और नजदीक आने पर नीचे ज्यादा लम्बी और ऊपर छोटी होती जाती शाखाओं के साथ उनके बाण

जैसे नुकीले शृंग दिखलाई पड़ते थे और उनमें नीचे तरह-तरह की वनस्पति और दूसरे वृक्ष थे।'[५१] इन पंक्तियों में देवदारु का विशद चित्र प्रस्तुत है। हिमाच्छादित धरती का एक चित्रात्मक दृश्य भी द्रष्टव्य है—"चारों ओर का दृश्य? सघन नीले नभ के नीचे पृथ्वी कपूर-सी श्वेत हिम से आच्छादित है। चौबीस घंटे से हिमपात न होने के कारण, दानेदार होते हुए भी हिम कठोर हो गया है। यह हिमवसना धरती दिगन्त व्याप्त नहीं है, बल्कि यह उत्तर से दक्षिण की ओर कुछ मील लम्बी रुपहली टेढ़ी-मेढ़ी रेखा की भाँति चली गई है।"[५२] मेघयुक्त पर्वतीय प्रकृति का एक चित्र 'स्मृतिज्ञानकीर्ति' में सुन्दर बन पड़ा है।[५३] इसके अतिरिक्त राहुल जी ने मनोहारी सरिता-तटों, उद्यानों और सरोवरों के चित्र भी अंकित किए हैं।[५४]

राहुल जी ने 'वोल्गा से गंगा' में ही प्रमुख रूप से प्रकृति-चित्र प्रस्तुत किये हैं। 'कनैला की कथा', 'बहुरंगी मधुपुरी' तथा 'सतमी के बच्चे' में बहुत कम प्रकृति-चित्र हैं। राहुल जी के प्रकृति-चित्रण इतिवृत्तात्मक अधिक हैं, वस्तु-वर्णन की ओर ही उनका अधिक ध्यान रहा है। रसात्मक प्रकृति-चित्र कम हैं—वसन्त-श्री और पुष्करिणी आदि के वर्णन में ही रसात्मकता है। इनमें लेखक की पूर्ण तन्मयता दृष्टिगोचर होती है। राहुल के प्रकृति-चित्रण उनकी कहानियों में वातावरण-निर्माण अथवा पृष्ठभूमि के रूप में अधिक आए हैं जो कहानी की सीमा के प्रायः अनुकूल हैं। प्रकृति-चित्रण में बिम्बात्मकता दर्शनीय है। उनकी कहानियों में प्रयुक्त बिम्बों की शृंखला न केवल यथार्थ चित्र की सृष्टि करती है, बल्कि उसमें सुन्दरं का भी सन्निवेश कर देती है।

राहुल जी की वातावरण-सृष्टि के विविध रूपों पर विचार करने के अनन्तर यह कहा जा सकता है कि उनकी कहानियों में ऐतिहासिकता के बाद वातावरण का सौन्दर्य सर्वाधिक निखरा है। उनमें वातावरण-निर्माण की अद्भुत क्षमता है। राहुल जी की 'वोल्गा से गंगा' तथा 'कनैला की कथा' तो वातावरण-चित्रण प्रधान कहानियाँ कही जा सकती हैं। 'बहुरंगी मधुपुरी' एवं 'सतमी के बच्चे' में भी सामाजिक वातावरण के सजीव चित्र हैं। उनकी वातावरण-सृष्टि में प्राकृतिक वर्णन विशेष रूप से बिम्बात्मक हैं।

जीवन-दर्शन और उद्देश्य

किसी भी साहित्यिक कृति का उद्देश्य केवल पाठकों का मनोरंजन कराना ही नहीं है, अपितु जीवन की व्याख्या करना है। कहानीकार भी कहानी के माध्यम से मानव-जीवन की व्याख्या करता है। यह व्याख्या उपन्यास की तरह विशद नहीं होती, लेखक जीवन के प्रति एक दृष्टिकोण-मात्र प्रस्तुत करता है। राहुल जी चिन्तक कथाकार हैं। उनकी कहानियों में उनका निश्चित जीवन-दर्शन एवं उद्देश्य व्यक्त है। 'बहुरंगी मधुपुरी' में राहुल जी का कथन है—"समकालीन चित्रण होने, यदि पाठकों को इससे मनोरंजन के साथ-साथ कुछ और लाभ भी हुआ, तो मुझे इससे सन्तोष होगा।"[५५]

राहुल जी की कहानियों में उनकी निजी जीवन-दृष्टि है। उनमें मार्क्सवादी ढंग से जीवन की व्याख्या है, अतः उनकी सोद्देश्यता में किंचित् भी संदेह नहीं रह जाता। श्रेष्ठ कलाकार मानव-आत्मा का शिल्पी होता है। मानवीय संवेदनाओं तथा जीवन की यथार्थ परिस्थितियों को ईमानदारी के साथ अभिव्यक्त कर देना उसका लक्ष्य होता है। राहुल जी ऐसे ही मानवतावादी लेखक हैं। मानव और मानवता की गतिशीलता में—उसके निरन्तर विकास में—उनकी प्रबल आस्था है। 'वोल्गा से गंगा' और 'कनैला की कथा' में इसी मानव के विकास की कहानी है। राहुल जी का अटूट विश्वास है कि 'मनुष्य उच्छिन्न न होने वाला बहता प्रवाह है।'[४६] 'वोल्गा से गंगा' में मनुष्य की उसके पशुत्व से विकसित होकर मनुष्यत्व तक के विकास की कथा है। उनके अपने शब्दों में—'मानव आज जहाँ है, वहाँ वह आरम्भ में ही नहीं पहुँच गया था, उसके लिए उसे बड़े-बड़े संघर्षों में होकर गुज़रना पड़ा है।'[४७] डॉ० नगेन्द्र का इस विषय में कथन है—"पिछले आठ हज़ार वर्षों में ईसा से ६०००वर्ष पूर्व से लेकर जब मानव वोल्गा के किनारे पर्वत-गुहा में अपने सहचर पशुओं के समान ही रहा करता था, आज तक उसने अपने अस्तित्व को सुरक्षित रखने के लिए जो संघर्ष किये हैं, उन सबका .... सरल और रोचक चित्रण है।"[४८] वस्तुत: राहुल जी की कहानियों में प्रगतिशील मानव-जीवन की कथा है। राहुल जी के अनुसार मानव के विकास की प्रारम्भिक स्थिति स्वच्छन्दतापूर्ण थी।[४६] वह युग जनयुग या जिसमें 'श्रम और सम्पत्ति सामूहिक थी, व्यक्ति नहीं, बल्कि जन या समाज की प्रधानता थी।'[५०] मानव-विकास के इतिहास के मध्ययुग में मनुष्य की इस स्वच्छन्दता का अपहरण होता है, उसे समाज और राज्य के अनुशासन में रहना पड़ता है। सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से यह उसकी असमानता का युग था। आधुनिक युग में मानवता का विकास बड़ी तीव्रता से हुआ है। वैज्ञानिक आविष्कारों एवं शिक्षा के प्रसार से आज मनुष्य एक-दूसरे के अत्यन्त निकट आ गया है। इस युग में मानव-विकास के दो अवरोधक तत्त्व राहुल जी को सशंकित करते हैं। वे हैं—सामाजिक वैषम्य एवं पूँजीवाद। जात-पाँत का भेद-भाव तथा सामाजिक वैषम्य हमारे समाज की नीवें हिला रहे हैं और पूँजीवाद अपनी अतृप्त शोषण-वृत्ति द्वारा मानवता को उत्तरोत्तर विपन्न बना रहा है। ऐसी स्थिति में मानव-विकास का पथ प्रशस्त करने वाला एक ही मार्ग है—साम्यवाद। राहुल जी की दृष्टि में वह भारत तथा विश्व की समस्याओं का एकमात्र समाधान है और मानवता के भविष्य की उज्ज्वल आशा। इस प्रकार राहुल जी मार्क्सवादी ढंग से जीवन की व्याख्या प्रस्तुत करते हैं। राहुल जी की कहानियों में व्यंजित विचारधारा उनके उपन्यासों की विचारधारा से अभिन्न है।

राहुल जी ने अपनी कहानियों में मानव-जीवन की व्याख्या के लिए धर्म, साम्यवाद, पूँजीवाद, गणतन्त्र, प्रजातन्त्र आदि पर विचार प्रकट किये हैं। राहुल जी रूढ़िग्रस्त धर्म को समाज के लिए घातक एवं अहितकारी मानते हैं। धर्म का साम्प्रदायिक रूप समाज के लिए क्षयरोग के समान है, इसी ने मानव-मानव में

भेद की दीवारें खड़ी की हैं। इस धर्म ने मन्दिर, मस्जिद तथा गिरजाघरों के निर्माण में तो स्पर्धा दिखलाई है, परन्तु मानवता के निर्माण मे नहीं। राहुल जी ने 'ठाकुर जी', 'पेड़ बाबा', 'महाप्रभु' आदि कहानियों में शिक्षित एवं अशिक्षित भारतीयों की अन्धश्रद्धा पर व्यंग्य किया है। वे ब्राह्मणों, पुरोहितों एवं ढोंगी महात्माओं को शोषक के रूप मे प्रस्तुत करते हैं। ब्राह्मण धर्म तथा पुरोहितवाद का विरोध 'वोल्गा से गंगा' की कई कहानियों में द्रष्टव्य है।[१६१] उनकी दृष्टि मे पुरोहितों ने ही दास-प्रथा को विकसित किया है। अपने एवं राजाओं के अधिकारों को अक्षुण्ण बनाने के लिए पुरोहितो ने धर्म का आश्रय लिया है और वे जनता को राजभक्ति का उपदेश देने वाले हैं।[१६२] ब्रह्मवाद राजशक्ति को सुदृढ़ करने का एक सबल शस्त्र है[१६३] तथा पुनर्जन्म का सिद्धान्त धनियों के हाथ में शोषण का प्रबल उपकरण।[१६४] इस प्रकार धर्म राहुल जी के लिए ढोंग है, शोषण का अस्त्र है, वह परधन-अपहारकों को शान्ति से परधन-उपभोग करने का अवसर देने के लिए है।[१६५] ब्राह्मण-धर्म को राहुल जी 'धूप-छांह' की संज्ञा देते हैं।[१६६] महाकवि अश्वघोष के शब्दों में वे इस धर्म के प्रति घृणा व्यक्त करते हैं—'मुझे ब्राह्मणो के पाखण्डों से अपार घृणा है, घृणा से सारा गात्र जलता है।'[१६७]

ब्राह्मण धर्म के प्रति तीव्र घृणा रखने वाले राहुल बौद्ध धर्म के प्रति श्रद्धावान् हैं। बौद्ध धर्म उन्हे साम्यवाद के अधिक समीप प्रतीत होता है। राहुल जी इसे 'उदार धर्म' की संज्ञा देते हैं।[१६८] इस धर्म में जाति-पाँति, ऊँच-नीच आदि का भेद-भाव नहीं।[१६९] वस्तुतः राहुल जी का धर्म साम्यवाद है। बौद्ध-धर्म उसके पर्याप्त निकट है, अत. इसके प्रति राहुल जी की आस्था सकारण है।

राहुल जी की कहानियों मे साम्यवाद के प्रति अत्यधिक आस्था व्यक्त की गई है। 'साम्यवाद' अंग्रेज़ी के 'कम्युनिज्म' का पर्यायवाची है। 'कम्युनिज्म' लेटिन भाषा का शब्द है। 'सामूहिक' को लेटिन मे 'कम्युनिस' कहते हैं। कम्युनिस्ट समाज वह समाज होता है, जिसमे सब कुछ—ज़मीन, फैक्टरियाँ—सब की मिली-जुली सम्पत्ति होती है और सब लोग मिल-जुल कर साझे मे काम करते हैं। यह कम्युनिज्म है।[१७०] साम्यवाद सर्वहारा वर्ग के हितों को मुखरित करता है। वह सर्वहारा का सैद्धान्तिक हथियार है।[१७१] आधुनिक बुद्धजीवियों पर साम्यवाद की वस्तुवादी मान्यताओं का प्रभाव अधिक पड़ा है। इसका प्रमुख कारण यह है कि मार्क्सवाद सामयिक प्रश्नों पर बल देता है।[१७२] वस्तुत. साम्यवाद का उद्देश्य वर्गहीन समाज की स्थापना है, जिसमे सम्पत्ति पर समाज का समानाधिकार हो। वह मानव समाज के लिए सुख-सामग्री की वृद्धि करता है।[१७३] राहुल जी साम्यवादी कहानी-लेखकों में अग्रणी हैं[१७४] अपनी ऐतिहासिक एवं सामाजिक दोनों प्रकार की कहानियों में उन्होने साम्यवाद को सामाजिक विषमताओं का एकमात्र उपचार बतलाया है। साम्यवादी दृष्टिकोण के कारण राहुल जी की कहानियों मे विचारोत्तेजक संवेदना प्राप्त होती है और सामाजिक शोषण, दरिद्रता, नग्नता आदि समस्यायें एक निश्चित आधार पर चित्रित हैं। 'वोल्गा

मे गया' की प्रारम्भिक कहानियाँ 'निशा', 'दिवा' आदि मे उन्होंने प्राचीन मानव-समाज में साम्यवादी विचारधारा का दिग्दर्शन कराया है। आदि मानव 'मेरा-तेरा' के भाव से अपरिचित था,[१५४] उसका समाज एक वर्गहीन समाज था, जिसमे सम्पत्ति पर सभी का समाधिकार था और सभी व्यक्ति यथाशक्ति काम करते थे।[१५५] साम्यवादी विचारक होने के कारण राहुल पूँजीवाद, साम्राज्यवाद एवं ईश्वरवाद के विरोधी हैं। ये सभी आर्थिक शोषण के कारण हैं।[१७७] गांधीवाद भी राहुल जी की दृष्टि मे सामाजिक साम्य की स्थापना मे असमर्थ है। 'सफदर', 'सुमेर' आदि कहानियों मे लेखक ने गांधीवादी विचारधारा की आलोचना की है। उनकी दृष्टि मे गांधीवाद राजनीति के क्षेत्र मे अनुपयोगी है।[१७८] 'हरिजन' पत्रिका भारत को अन्धकार-युग की ओर खीचने वाली पत्रिका है।[१७९] गांधीवाद का धर्म, भगवान् तथा पुराणपन्थिता मे विश्वास है और ये सभी लेखक की दृष्टि मे शोषण के साधन हैं। गांधीवाद दिमागी गुलामी से इतर और कुछ नहीं।[१८०]

राहुल जी आर्थिक वैषम्य के उन्मूलन का एकमात्र उपाय साम्यवाद को ही मानते हैं। अपने उपन्यासों की तरह उन्होंने अपनी कहानियों में अनेकश दुहराया है कि साम्यवाद ही विश्व-मानवता का हित-साधक है। पूँजीवाद के विनाश पर साम्यवाद का जन्म होगा।[१८१] राहुल जी को साम्यवाद का यह प्रकाश सोवियत-भूमि से प्राप्त हुआ है। अतएव वह रूस को मजदूरों और किसानों की आशा बतलाते हैं।[१८२] राहुल जी साम्यवाद को भारत के लिए विदेशी वस्तु न मानकर स्वदेशी मानते हैं। अपने पात्र सुमेर के मुख से वे कहलवाते हैं—"यदि साम्यवाद को विदेशी ही मान लें तो भी जैसे ईसाई, इस्लाम जैसे विदेशी धर्म, रेल, तार, हवाई-जहाज, कल-कारखानों जैसी विदेशी चीजें हमारी आँखों के सामने स्वदेशी बनकर मौजूद हैं, वैसे ही साम्यवाद भी स्वदेशी हो जायेगा, बल्कि हो गया है।"[१८३] इस प्रकार राहुल जी की कहानियों मे उनकी साम्यवादी जीवन-दृष्टि सर्वत्र मुखरित है।

साम्यवादी चिन्तक राहुल राजनीति के क्षेत्र में राजतन्त्र एवं साम्राज्यवाद के विरोधी हैं। साम्राज्यवाद शोषण की वृत्ति का पोषक है, धर्म, ईश्वर एवं पुरोहितवाद का सरक्षक है तथा मनुष्य की स्वतन्त्रता का अपहारक है।[१८४] इस प्रकार राहुल जी राजतन्त्र-शासन-प्रणाली के कटु आलोचक हैं। इसके विपरीत गणतन्त्र शासन-प्रणाली के वे प्रबल समर्थक हैं।। यही शासन-प्रणाली मनुष्य को आर्थिक शोषण से बचाती है, उसके आत्मसम्मान और अधिकारों की रक्षा करती है एवं सभी व्यक्तियों को समान सुख-सुविधायें प्रदान करती है। तक्षशिला, वैशाली, कुशीनारा आदि प्राचीन भारत के प्रसिद्ध गणराज्य थे। मगध के राजतन्त्र के विकास के साथ इन गणराज्यों का ह्रास हो गया। गुप्त राजाओं के विषय में सुपर्ण यौधेय का कथन है—"नन्दो, मौर्यों, यवनो, शकों और हूणों ने जो जो पाप नहीं किया, वह इन गुप्तों ने किया। भारतमही से इन्होंने गणराज्यों का नाम मिटा दिया।"[१८५] यह गणराज्य-पद्धति आधुनिक प्रजातन्त्र से साम्य रखती है। इसमें किसी भी बात का निर्णय संस्थागार मे मत-मत

द्वारा होता था।[186] 'सफदर' तथा 'सुमेर' कहानियों में राहुल जी ने इसी 'प्रजातन्त्र' का स्वप्न देखा है और 'स्वराज्य' में यह स्वप्न साकार हुआ है।[187]

इस प्रकार राहुल जी की कहानियों में उनकी विचारधारा एवं जीवन-दृष्टि अत्यन्त स्पष्ट है। डॉ० सक्सेना के शब्दों में, 'वास्तव में लेखक वर्गहीन, धर्महीन सामाजिक जीवन का पक्षपाती है जो भारतीय जीवन की वर्गभावना एवं धर्माडम्बर के अनेकानेक दोषों को देखते हुए अनुचित नहीं है। वर्गभेद की खाई का उन्मूलन कर, स्त्री-पुरुष के भेद को मिटाकर और धार्मिक रूढ़ियों का निष्कासन कर लेखक सर्वाङ्गीण समता, आर्थिक स्वतन्त्रता एवं बौद्धिकता पर आधारित एक आदर्श समाज की स्थापना करना चाहता है।'[188]

कहानी में उद्देश्य एवं विचाराभिव्यक्ति के लिए कहानीकार विविध प्रणालियों का प्रयोग करता है। कहीं-कहीं उद्देश्य व्यंजित रहता है और कहीं अत्यन्त स्पष्ट। कुछ कहानियों के प्रथम या अन्तिम वाक्य में सूक्ति-रूप में ही व्यक्त कर दिया जाता है। इस विषय में यह मत द्रष्टव्य है—'कहानीकार का उद्देश्य चाहे कुछ भी हो, वह अधिक स्पष्ट रूप में व्यक्त नहीं किया जाना चाहिए। उसको और पात्रों के वार्तालाप में अथवा कहानी के अन्त में केवल एक संकेत-मात्र ही लेखक को कर देना चाहिए। अधिक स्पष्ट हो जाने से लेखक का उद्देश्य उपदेश-सा बन जायेगा और अपने प्रभाव को खो बैठेगा, दूसरी ओर यदि लेखक अपना उद्देश्य व्यंग्य ही रखेगा तो इससे उस की रचना में सौन्दर्य की वृद्धि होगी और उस उद्देश्य का प्रभाव अनायास पाठक के मन पर पड़ जायेगा।'[189] आधुनिक कथा-साहित्य में लेखक से यह अपेक्षित नहीं कि वह कथा में स्वयं आकर अपने उद्देश्य को व्यक्त करे।[190] इस दृष्टि से देखने पर स्पष्ट है कि राहुल जी ने कहानी के उद्देश्य-कथन में कलात्मकता की रक्षा नहीं की। उद्देश्य की सूक्ष्म व्यंजना न कर वे उसे स्वयं ही स्पष्ट कर देते हैं, जिससे पाठक के लिए स्वतन्त्र चिन्तन का अवकाश नहीं रहता 'लिप्स्टिक' कहानी के उपसंहार में लेखक कहानी के उद्देश्य को इस प्रकार प्रकट करता है—'सचमुच ही मधुपुरी जैसी हिमालय की विलासपुरियों में फैशन का प्रचार जितना जल्दी और व्यापक रूप से होता है, वैसा मैदानी शहरों में नहीं होता। इसका एक बड़ा कारण यही है कि सीज़न में आए सुन्दरियों के सैलाब में यहाँ की साधारण तरुणियों के पैर उखड़ जाते हैं और वे भी प्रवाह के अनुसार बहने लगती हैं।'[191] 'रूपी' कहानी में भी उद्देश्य की स्पष्ट अभिव्यक्ति मिलती है, 'मधुपुरी के लिए यह अकेली रूपी नहीं है। यहाँ और भी कितनी ही रूपियाँ अपने जीवन को बर्बाद कर चुकी हैं। जब हम मधुपुरी के मधुर सौन्दर्य की प्रशंसा करते नहीं थकते, उस समय हमें नहीं ख्याल आता कि सौन्दर्य को पैदा करने के लिए कितनों को नरक-कुण्ड में पड़ने के लिए मजबूर होना पड़ा।'[192] इसी प्रकार 'राउत','महाप्रभु','काठ का साहब','पेड़ बाबा'[193] आदि कहानियों में उद्देश्य [illegible] स्वयं लेखक द्वारा स्पष्ट रूप में हुआ है। 'सतमी के बच्चे' की कहानियों [illegible] और 'पाठक जी'[194] की भी यही स्थिति है। 'वोल्गा से गंगा' की ऐति-

हासिक कहानियों में भी उद्देश्य-व्यंजना की यही पद्धति है। 'ममलसिंह' कहानी में स्वतन्त्र भारत में पंचायती राज्य की स्थापना-सम्बन्धी उद्देश्य लेखक ने स्पष्ट रूप से व्यक्त किया है।[५४] 'बाबा नूरदीन' में सामाजिक वैषम्य,[५५] 'नागदत्त' में साम्राज्य-वादी निरंकुशता[५६] एवं 'प्रवाहण' में राजवाद, ब्रह्मवाद एवं यज्ञवाद की स्वार्थ-लोलुपता[५७] को भी लेखक ने व्यंग्य रूप में नहीं रखा। 'कनैला की कथा' की 'स्वराज्य' एवं 'सन् ५७' कहानियाँ[५८] भी इसी प्रकार की हैं।

इस प्रकार राहुल जी की कहानियाँ सोद्देश्य हैं। उनमें उनका जीवन-दर्शन एवं विचारधारा सर्वत्र मुखरित है। वे प्रगतिशील चिन्तक एवं मानवतावादी कलाकार हैं और उन्होंने अपनी कहानियों द्वारा साम्यवादी एवं मानवतावादी स्वरों को गुंजाया है। यदि कहानी को 'सामाजिक वस्तु'[५९] स्वीकारा जाये, तो राहुल जी की कहानियों में उद्देश्यपूर्ण सामाजिकता प्रत्यक्ष ही अनुभव की जा सकती है तथा उनकी कहानियाँ लक्ष्यात्मक कही जा सकती हैं।

शैली

शैली-तत्त्व कहानी-कला की वह रीति है जो कथावस्तु आदि तत्त्वों को अपने विधान में उपयोग करती है। इसके अन्तर्गत दो पक्ष आते हैं—प्रथम भाषा पक्ष, द्वितीय रूप-विधान पक्ष। राहुल जी की कहानियों में भावानुकूल एवं पात्रानुकूल भाषा का संयोजन हुआ है, कहीं वह बोलचाल की भाषा है, कहीं गम्भीर और परि-ष्कृत है और कहीं अलंकृत, चित्रात्मक तत्सम भाषा-शैली है। शैली के रूप-विधान पक्ष के अन्तर्गत कहानी-निर्माण की विभिन्न प्रणालियाँ यथा कथात्मक शैली, आत्म-चरित-शैली, पत्रात्मक-शैली, डायरी-शैली, नाटकीय-शैली आदि आती हैं। राहुल जी ने अपनी कहानियों में प्रमुख रूप से कथात्मक शैली का प्रयोग किया है। वे अपनी कहानियों की सृष्टि वर्णनात्मक ढंग से करते हैं और समूची कहानी के सूत्रधार बनकर अन्य पुरुष में नायक से सम्बन्धित घटनाओं, विचारों आदि का वर्णन करते हैं। राहुल जी की यह ऐतिहासिक शैली सरल, सुगठित और बोधगम्य है। उनकी इस शैली का परिचय घटनाओं, पात्रों एवं वातावरण के चित्रण में मिलता है।

आत्मचरित-शैली का प्रयोग राहुल जी ने दो कहानियों 'दुर्मुख' तथा 'सुपर्ण यौधेय' में किया है। इनमें कहानी के नायक आत्मकथन एवं आत्मचिंतन के रूप में पूरी कहानी प्रस्तुत करते हैं। आत्मचरित-शैली के अन्तर्गत पात्रों के अमूर्त भावों एवं अन्तर्द्वन्द्वों की अभिव्यक्ति सहज रूप में हो पाती है, परन्तु राहुल जी की इन कहा-नियों में अमूर्त-भावों एवं अन्तर्द्वन्द्वों का प्रायः अभाव ही है। वस्तुतः राहुल जी अपने समय साहित्य में वर्णनात्मक शैली के ही समर्थ लेखक हैं। कहानियों में भी उनकी शैली का यही रूप मिलता है।

मूल्यांकन एवं स्थान

राहुल जी की कहानियों के कलाविधान की विवेचना के अनन्तर यह निष्कर्ष सहज ही निकाला जा सकता है कि आधुनिक ऐतिहासिक कहानीकारों में उनका

विशिष्ट स्थान है। हिन्दी मे ऐतिहासिक कहानियों का प्रायः अभाव ही है। इस दृष्टि से उनकी कहानियाँ इस अभाव की पूर्ति के लिए अद्वितीय योगदान प्रमाणित हो सकती हैं। प्रेमचन्द की तरह राहुल जी ने भी ऐतिहासिक व सामाजिक दोनों प्रकार की कथाएँ लिखी हैं, पर ऐतिहासिक कहानियों के क्षेत्र में विविधता, यथार्थता एवं ऐतिहासिक तत्त्वों के निरीक्षण की दृष्टि से राहुल जी का स्थान उच्चतर है। प्रसाद जी की ऐतिहासिक कृतियाँ 'आकाशदीप', 'पुरस्कार', 'स्वर्ग के खण्डहर', 'देवरथ' आदि हिन्दी की अद्वितीय ऐतिहासिक कहानियाँ है। इन कहानियों में इतिहास और अतीत के स्वर्णिम पृष्ठों से रस-लिप्तता की सहज भावना, जातीय गौरव, आदर्श-स्थापन और साथ ही वर्तमान से पलायन की वृत्ति —ये अनेक विशेषताएँ एक ही व्यक्तित्व मे मिल जाती हैं।[१०१] राहुल जी की ऐतिहासिक कहानियाँ प्रसाद से विभिन्न उद्देश्य से लिखी गई हैं। उनमे वर्तमान से पलायन न होकर वर्तमान में प्रवृत्ति है और वे एक निश्चित उद्देश्य को लेकर अतीत की ओर देखते हैं। राहुल जी की ऐतिहासिक कहानियों का महत्त्व इस दृष्टि से सर्वाधिक है कि वे केवल इतिहास ही नही, मानव-समाज की सम्पूर्ण प्रगति का चित्र अंकित करती हैं। कला-तत्त्व की दृष्टि से उनकी ऐतिहासक कहानियाँ प्रसाद जी की कहानियो के निस्सन्देह अनन्तर हैं, पर विस्तृत ऐतिहासिक दृष्टि जो राहुल जी की कहानियों मे है, प्रसाद की कहानियों मे नहीं। राहुल जी की एक-एक ऐतिहासिक कथा के भीतर एक पूरे युग का चित्र प्रस्तुत है— यह राहुल जी की ही विशिष्टता है। वृन्दावनलाल वर्मा की ऐतिहासिक कहानियाँ मुगल-भारत से सम्बन्ध रखती हैं।[१०२] उनकी ऐतिहासिक तथ्यों के प्रति निष्ठा सराहनीय है। परन्तु वर्मा जी की कहानियो का ऐतिहासिक क्षेत्र सीमित है। इसके विपरीत राहुल जी इस क्षेत्र मे सर्वोपरि हैं। ऐतिहासिक तत्त्वों की यथार्थता एवं वातावरण की सर्जना की दृष्टि से राहुल जी वर्मा जी से कहीं आगे हैं। चतुरसेन शास्त्री की 'दुखवा मैं कासे कहूँ मोरी सजनी', 'सिंहगढ़-विजय' आदि कहानियों का निर्माण कल्पना एवं इतिहास के रमानी धरातल पर हुआ है। राहुल जी कल्पना की अपेक्षा यथार्थ को अधिक महत्त्व देने वाले कलाकार हैं। ऐतिहासिक तथ्यों की सच्चाई उनमें सर्वाधिक है। उनकी दृष्टि में यथार्थ कल्पना से भी अधिक रोमांचक है। आदिम युग से लेकर आधुनिक मानव-संस्कृति और इतिहास को कलात्मक रूप में गूँथ देना राहुल जैसे महान् कलाकार का ही कार्य है। भगवतशरण उपाध्याय ने भी मानव-विकास से सम्बन्धित कहानियाँ 'सवेरा', 'संघर्ष' आदि संग्रहों मे प्रस्तुत की हैं, परन्तु राहुल जी की इतिहास-दृष्टि उनसे अधिक व्यापक एवं विस्तृत कालावधि के आरपार देखने वाली है। 'वोल्गा से गंगा' की 'प्रभा' शीर्षक कहानी राहुल जी के कथासाहित्य मे ही नहीं वरन् प्रेम की उन्नयन-वृत्ति की दृष्टि से हिन्दी की एक अमर कहानी है। इस कहानी में लेखक की ऐतिहासिक प्रतिभा, कल्पना, रोमांस, भाषा एवं भाव का अद्भुत समन्वय है। हिन्दी की ऐतिहासिक कहानियों के विकास की परम्परा मे राहुल जी का स्थान महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने ऐतिहासिक कहानी का जो रूप हमारे

सामने प्रस्तुत किया है उसे कलापक्ष के सहयोग से आधुनिक कहानीकारों को आगे बढ़ाना चाहिए। राहुल जी की कहानी-कला की अपनी सीमाएँ हैं—वे वस्तु-शिल्प, चरित्रांकन की भावुकता एवं कवित्वपूर्ण उद्भावना, न टकीय स्थितियों की अवतारणा और संघर्ष का वेग अपनी कहानियों में नहीं दे सके, और इसके लिए पुरातत्त्व के एक विद्वान् को दोषी ठहराना भी समीचीन प्रतीत नहीं होता। पर इन कहानियों में व्याप्त सुलझी हुई जीवन-दृष्टि, व्यापक ऐतिहासिक प्रतिमा, पुरातात्त्विक सूक्ष्म विश्लेषण, प्रगतिशील विचारधारा एवं मूर्त्त वातावरण-सृष्टि हिन्दी के विरले ही लेखकों में प्राप्त होती है। श्यामनन्दन प्रसाद सिंह के शब्दों में कहा जा सकता है - 'कथा-साहित्य के निर्माण में उन्होंने प्राचीन और नवीन का निर्वाह पूरी तरह किया है। उनके कथा-साहित्य में यथार्थ अधिक प्रबल हो उठा है। राजनीति की भावधारा वहाँ विराजमान है, क्योंकि उनका सीधा सम्बन्ध राजनीति से रहा है। उनके कथा-साहित्य में शब्द-चित्र और संस्मरण का आभास पूरी तरह से मिलता है। उनकी कहानियाँ एक नये दृष्टिकोण को प्रस्तुत करने में समर्थ हैं। उन्होंने प्राचीन इतिहास के साथ वर्तमान जीवन के उन अंगों का स्पर्श किया है, जिनकी ओर किसी ने ध्यान ही नहीं दिया था। साहित्यिक भाषा, कलात्मकता, व्यंजना का सहारा लेना उनका उद्देश्य नहीं, उन्होंने सीधी-सरल शैली का सहारा लिया है। इसी से उनकी कृतियाँ सभी के लिए समान रूप से मनोरंजक एवं बोधगम्य हैं।'[१०१]

सामाजिक कहानीकार की दृष्टि से राहुल जी यथार्थवादी प्रगतिशील कहे जाएँगे। उनकी सामाजिक कहानियाँ ग्रामीण समाज की चेतना को प्रेमचन्द की भाँति चित्रित करती हैं। यथार्थ के प्रति आग्रह उनकी सामाजिक कहानियों की प्रमुख विशेषता है। इतना होने पर भी राहुल जी की सफलता 'वोल्गा से गंगा' की ऐतिहासिक कहानियाँ हैं, जो हिन्दी में अन्यत्र दुर्लभ हैं। अपनी इस कथाकृति द्वारा राहुल जी ने मानव-संस्कृति को समृद्ध किया है। हिन्दी के लिए राहुल जी की कहानी-सृष्टि वरदान है।

o

सन्दर्भ

१. एन इन्ट्रोडक्शन टु दि स्टडी ग्राफ़ लिटरेचर, पृ० ३३६।
२. प्वाइन्ट ग्राफ़ व्यू-सामरसेट माम, पृ० १३३।
३. भारतीय समीक्षा के सिद्धान्त (द्वितीय भाग), पृ० ४५२-५३ से उद्धृत।
४. समीक्षा-तत्त्व-डॉ० ग्रोमप्रकाश शास्त्री, पृ० ११७।
५ कुछ विचार (भाग १)-प्रेमचन्द, पृ० ३०
६ साहित्यालोचन-श्यामसुन्दर दास, पृ० २२६।
७. कहानी का रचना-विधान-डॉ० जगन्नाथप्रसाद शर्मा, पृ० १४।
८. साहित्य की मान्यताएँ-भगवतीचरण वर्मा, पृ० १४१।
९. हिन्दी कहानियाँ-स० डॉ० कृष्ण लाल, पृ०३१।
१०. काव्य के रूप-बाबू गुलाबराय, पृ० २०३।
११. हिन्दी साहित्य-कोश, पृ० २११।
१२. हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि का विकास-डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल, पृ० २६५।
१३. कला, साहित्य ग्रौर समीक्षा-भगीरथ मिश्र, पृ० ७६।
१४. राहुल का कथा-साहित्य-डॉ० सुबोधचन्द्र सक्सेना।
१५. कहानी ग्रौर कहानीकार-मोहनलाल जिज्ञासु, पृ० ४४।
१६. कहानी-दर्शन-भालचन्द्र गोस्वामी, पृ० ८४-८५।
१७. वोल्गा से गगा, द्वितीय संस्करण पर दो शब्द।
१८. विचार ग्रौर विश्लेषण-डॉ० नगेन्द्र, पृ० १५७।
१९-२० वोल्गा से गगा (परिशिष्ट), पृ० ३८३।
२१. वही, पृ० ३८४।
२२. माधुरी (फरवरी, १९४४), पृ ३।
२३. मध्य-एशिया का इतिहास (भाग १), पृ० ५५।
२४. खून के छींटे इतिहास के पन्नों पर-भगवतशरण उपाध्याय, पृ० १।
२५. वोल्गा से गगा (परिशिष्ट), पृ० ३८५।
२६. हिन्दी ऋग्वेद-सम्पादक प० रामगोविन्द त्रिवेदी, पृ० ३८, ६३।
२७. विचार ग्रौर विश्लेषण, पृ० १५७।
२८. नया साहित्य नये प्रश्न-नन्ददुलारे वाजपेयी, पृ २०५।
२९. कसौटी पर-डॉ० भगवतशरण उपाध्याय, पृ० ७८।
३०. विचार ग्रौर विश्लेषण-डॉ० नगेन्द्र, पृ० १५६।
३१. प्रगतिशील साहित्य की समस्याएँ-डॉ० रामविलास शर्मा, पृ० २६।
३२. वोल्गा से गगा, पृ० २२२।
३३. प्राचीन भारत-डॉ० राधाकुमुद मुकर्जी, पृ० १०६।
३४. वोल्गा से गगा, पृ० २३३।
३५. कसौटी पर, पृ ६२।
३६. वोल्गा से गगा, पृ० २५४।
३७-३८. कसौटी पर, पृ० ६४।
३९-४०. विचार ग्रौर विश्लेषण, पृ० १५६-५७।
४१. राहुल का कथा-साहित्य।
४२. कनैला की कथा (प्राक्कथन), पृ० १।

४३. कनैला की कथा, पृ० २, ३।
४४. हिन्दी कहानियों का विवेचनात्मक अध्ययन-डॉ० ब्रह्मदत्त शर्मा, पृ० ३६४।
४५. बोल्गा से गंगा (प्रथम संस्करण), प्राक्कथन।
४६. विचार और विश्लेषण, पृ० १५८।
४७. हिन्दी गद्य की प्रवृत्तियाँ, पृ० ६२।
४८. बहुरंगी मधुपुरी, पृ० ६२।
४९. हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि का विकास, पृ० २६४-६५।
५० बहुरंगी मधुपुरी, पृ० २८, ३३, ३५।
५१. सतमी के बच्चे, पृ० ४२।
५२. बहुरंगी मधुपुरी, पृ० २१६-२२०।
५३. वही, पृ० २२६, २३६-२३७।
५४. सतमी के बच्चे, पृ० ७-१४।
५५. बहुरंगी मधुपुरी, पृ० १४-१६।
५६. वही, पृ० २७-२८।
५७ वही, पृ० १०६-१०७।
५८. बोल्गा से गंगा, पृ० १८०-१८१।
५९. हिन्दी निबन्ध-प्रभाकर माचवे, पृ० ६१।
६०. बहुरंगी मधुपुरी, पृ० ७५-८०।
६१. बोल्गा से गंगा, पृ० ११२-११५।
६२. वही, पृ० ३२३।
६३. बहुरंगी मधुपुरी, पृ० १४५।
६४. सतमी के बच्चे, पृ० ४८-६४।
६५-६६. विचार और विश्लेषण, पृ० १५८।
६७-६८ हिन्दी कहानियों का विवेचनात्मक अध्ययन, पृ० ३६५।
६९. हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि का विकास, पृ० ३००।
७०. अरिस्टाटल्स थियरी ऑफ़ पोयट्री एण्ड फाइन आर्ट, पृ० ५५।
७१. साहित्यालोचन, पृ० २०१।
७२. हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि का विकास, पृ० ४०१।
७३. कहानी का रचना-विधान-डॉ० जगन्नाथप्रसाद शर्मा, पृ० १०७।
७४. कहानी-कला-विनोदशंकर व्यास, पृ० ४६।
७५. बोल्गा से गंगा, पृ० ४।
७६. वही, पृ० २५८।
७७. सतमी के बच्चे, पृ० २५, २८।
७८. कनैला की कथा, पृ० ३, ६३।
७९. वही, पृ० ३४-३५।
८०. बोल्गा से गंगा, पृ० ४, १७।
८१. हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि का विकास, पृ० ३०२-३०३।
८२. हिन्दी कहानियों का विवेचनात्मक अध्ययन, पृ० ३६५।
८३. कहानी का रचना-विधान, पृ १२२।
८४. बोल्गा से गंगा, पृ० १०१-१०२।
८५. वही, पृ० १३७।

८६. वोल्गा से गंगा, पृ० २८६-२८७।
८७. वही, पृ० १८।
८८. सतमी के बच्चे, पृ० ५२।
८९. वोल्गा से गंगा, पृ० २२२-२२३।
९०. वही, पृ० १११-११५।
९१. वही, पृ० ३६६-६६।
९२. वही, पृ० ३६२।
९३. वही, पृ० १९५।
९४. वही, पृ० २५।
९५. वही, पृ० २९९।
९६. बहुरंगी मधुपुरी, पृ० ६९-७०।
९७. वोल्गा से गंगा, पृ० १३८।
९८. वही, पृ० ३४७-३५७।
९९. वही, पृ० ३६५-३७३।
१००. वही, पृ० ३७१।
१०१. वही, पृ० ३३७।
१०२. वही, पृ० ३७०-३७३।
१०३. वही, पृ० ३१६।
१०४. सतमी के बच्चे, पृ० ६३।
१०५. वही, पृ० ६६।
१०६. वोल्गा से गंगा, पृ० २८६।
१०७. बहुरंगी मधुपुरी, पृ० ३।
१०८. वोल्गा से गंगा, पृ०२९२।
१०९. हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि का विकास, पृ० ३०७।
११०. हिन्दी साहित्य-कोश, पृ० २१८।
१११. हिन्दी कहानी की रचना-प्रक्रिया-डॉ० परमानंद श्रीवास्तव, पृ० ७३।
११२. विचार और विश्लेषण, पृ० १५८।
११३. हिन्दी कहानियों का विवेचनात्मक अध्ययन, पृ० ३६६।
११४. वोल्गा से गंगा, पृ०४४।
११५ वही, पृ० ६६।
११६. वही, पृ० २२३।
११७. वही, पृ० ६, ११, २६, ३७, ३९।
११८. वही, पृ० ७६, १३१।
११९. वोल्गा से गंगा, पृ० २२४।
१२०. कर्नैला की कथा, पृ० ६०।
१२१. बहुरंगी मधुपुरी, पृ० १४५, २५५।
१२२. सतमी के बच्चे, पृ० २।
१२३. वोल्गा से गंगा, पृ० ५१, ५८।
१२४. वही, पृ० ९९-१००।
१२५. वही, पृ० ८२।
१२६. वही, पृ० ३२७, २८८।
१२७. बहुरंगी मधुपुरी, पृ १७३, २४१, २५८।

१२८. वोल्गा से गंगा, पृ० २४ ।
१२९. वही पृ० २३ ।
१३०. वही, पृ० १७ ।
१३१ वोल्गा से गंगा, पृ० १०८-११० ।
१३२. वही, पृ० ८२, १०८ ।
१३३. बहुरंगी मधुपुरी, पृ० २०, ३४, ४७, ४६ ।
१३४. हिन्दी कहानियों का विवेचनात्मक अध्ययन, पृ० ३६६ ।
१३५. वोल्गा से गंगा, पृ० ६ ।
१३६. वही, पृ० ४३ ।
१३७. वही, पृ० ४६ ।
१३८. वही, पृ० ६३ ।
१३९. वही, पृ० ६६ ।
१४० कनैला की कथा, पृ० ५२ ।
१४१ वोल्गा से गंगा, पृ० २२७ ।
१४२ सतमी के बच्चे, पृ० २, ६ ।
१४३. विचार और विश्लेषण, पृ० १५८ ।
१४४. वाङ्मय-विमर्श, पृ० ७७ ।
१४५ वोल्गा से गंगा, पृ० १२ ।
१४६. वही, पृ० ३३ ।
१४७. वही, पृ० १३५, १८२ ।
१४८. वही, पृ० ६६ ।
१४९. वही, पृ० २८५ ।
१५०. वही, पृ० २८, २६, २०४ ।
१५१. वही, पृ० ४८ ।
१५२. वही, पृ० ९ ।
१५३. सतमी के बच्चे, पृ० ४६ ।
१५४. वोल्गा से गंगा, पृ० ८५, १८४, २८८ ।
१५५. बहुरंगी मधुपुरी, दो शब्द ।
१५६. कनैला की कथा, पृ० ३३ ।
१५७. वोल्गा से गंगा, प्राक्कथन ।
१५८. विचार और विश्लेषण, पृ० १५५ ।
१५९ वोल्गा से गंगा, पृ० ११, १२ ।
१६०. कनैला की कथा, पृ० ६ ।
१६१. वोल्गा से गंगा, पृ० ६३, ६४, ११०, ११२, ११५ ।
१६२. वही, पृ० १२५ ।
१६३. वही, पृ० १२७ ।
१६४. वही, पृ० १२६ ।
१६५. वही, पृ० १५५ ।
१६६. वही, पृ० २१२ ।
१६७. वही, पृ० १६७ ।
१६८. वही, पृ० १६५ ।

१६९. वही, पृ० २०४, २७१।
१७०. समाजवादी विचारधारा और संस्कृति-लेनिन, पृ० ५५-५६।
१७१. द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद क्या है ?-प्रो०-यारवोत, पृ० ९८।
१७२. सामयिकी-शान्तिप्रिय द्विवेदी, पृ० ११।
१७३. साम्यवाद ही क्यों ?, पृ० ३६।
१७४. हिन्दी कहानी की रचना-प्रक्रिया, पृ० १५८।
१७५. वोल्गा से गंगा, पृ० ११।
१७६. वही, पृ० २२।
१७७. वही, पृ० ११३, ११५, ११६, १७२, १२५, १२६, १३३, १३४।
१७८. वही, पृ० ३६२।
१७९. वही, पृ० ३६६।
१८०. वही, पृ० ३७१।
१८१. वही, पृ० ३३०।
१८२. वही, पृ० ३७५।
१८३. वही, पृ० ३७३
१८४. वही, पृ० ११२, ११३, २२६।
१८५. वही, पृ० २२२-२२३।
१८६. वही, पृ० १४०-१४१।
१८७. कनैला की कथा, पृ० ११३।
१८८. राहुल का कथा-साहित्य (टंकित शोध-प्रबन्ध)।
१८९. आदर्शालोचन, पृ० ३११।
१९०. ए बैकग्राउण्ड टु दि स्टडी ऑफ इंग्लिश लिटरेचर, पृ० १६६।
१९१. बहुरंगी मधुपुरी, पृ० ८०।
१९२. वही, पृ० १५६।
१९३. वही, पृ० १००, ६८, २७६, २२८।
१९४. सतमी के बच्चे, पृ० ११२, ३६।
१९५ वोल्गा से गंगा, पृ० ३१७।
१९६. वही, पृ० २८४।
१९७. वही, पृ० १०६।
१९८. वही, पृ० १३४।
१९९. कनैला की कथा, पृ० १११, १००।
२०० चित्र का शीर्षक (भूमिका)-यशपाल, पृ० ७।
२०१. हिन्दी साहित्य-कोश, पृ० २६८।
२०२. वृन्दावनलाल वर्मा : व्यक्तित्व और कृतित्व-डॉ० [illegible], पृ० १३१।
२०३. हिन्दी साहित्य : सर्वेक्षण और समीक्षा, पृ० ५३३-३४।

छठा परिवर्त

राहुल जी के उपन्यास

सर्जनात्मक-साहित्य को राहुल जी की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण देन उनकी औपन्यासिक कृतियाँ हैं। 'बाईसवीं सदी', 'जीने के लिए', 'सिंह सेनापति', 'जय यौधेय', 'मधुर स्वप्न', विस्मृत यात्री', 'दिवोदास', 'राजस्थानी रनिवास' तथा 'भागो नहीं दुनिया को बदलो'—राहुल जी के मौलिक उपन्यास हैं। डॉ० प्रभाकर मिश्र ने राहुल जी की केवल छः कृतियों की ही मौलिक उपन्यासों में गणना की है। वे 'राजस्थानी रनिवास' को केवल तथ्यात्मक रचना मानते हैं।' 'बाईसवीं सदी' तथा 'भागो नहीं दुनिया को बदलो' उनकी दृष्टि में साम्यवादी रचनाएँ मात्र हैं।' परन्तु ये तीनो रचनाएँ राहुल जी के उपन्यास ही हैं। यद्यपि इनमें औपन्यासिक शिल्प का सफलतापूर्वक निर्वाह नहीं हो पाया, तथापि कथा-योजना, चरित्र-निर्माण एवं शैली की दृष्टि से ये कथात्मक कृतियाँ ही हैं। 'हिन्दी में उच्चतर साहित्य' में 'राजस्थानी रनिवास' को उपन्यास माना गया है।' 'बाईसवी सदी' हिन्दी का प्रथम कल्पनोकात्मक उपन्यास है। स्वयं राहुल जी इसे अपनी प्रथम कथात्मक कृति मानते हैं—'बाईसवी सदी' को उपन्यास कह लीजिये या बड़ी कहानी या समाजवादी उटोपिया, वही मेरा पहला कथात्मक ग्रन्थ है।" डॉ० श्रीनारायण अग्निहोत्री इसे वैज्ञानिक सम्भावनाओं पर आधारित उपन्यास स्वीकारते हैं।[2] 'भागो नहीं दुनिया को बदलो' संवादात्मक-शैली में लिखा गया कथान्यास माना जा सकता है।

राहुल जी के उपन्यासों का वर्गीकरण

वर्ण्य-विषय की दृष्टि से राहुल जी के उपन्यासों को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है –

(१) सामाजिक उपन्यास।
(२) ऐतिहासिक उपन्यास।

सामाजिक उपन्यास

सामाजिक उपन्यास में सामयिक युग के विचार, आदर्श और समस्याएँ चित्रित रहती हैं। सामाजिक समस्याएँ ही इन उपन्यासों का वर्ण्य-विषय होती हैं। ग्राम्य एवं नागरिक जीवन की नाना समस्याएँ, श्रमिक, कृषक एवं पूँजीपति वर्ग के अनेक चित्र

इन उपन्यासों में अंकित रहते हैं। हिन्दी में विशुद्ध रूप से सामाजिक प्रश्नों को लेकर लिखे गये उपन्यास कम ही हैं। प्राय. उपन्यासकारों ने समाज और राजनीति के प्रश्न को एक साथ ही लेने की चेष्टा की है। प्रेमचन्द के सामाजिक उपन्यासों में राजनीतिक वातावरण का भी साथ ही चित्रण रहता है, इसी प्रकार राजनीतिक उपन्यासों में सामाजिक भावनाओं का सम्मिश्रण रहता है। वस्तुतः राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक आदि समस्याएँ समाज का ही अंग हैं। अतः इस प्रकार की समस्याओं को चित्रित करने वाले सभी उपन्यासों को स्थूलतः सामाजिक उपन्यासों के अन्तर्गत माना जाना चाहिए। राहुल जी के सामाजिक उपन्यास हैं—'बाईसवीं सदी', 'जीने के लिए', 'भागो नहीं दुनिया को बदलो' तथा 'राजस्थानी रनिवास'। इन उपन्यासों में राजनीति-तत्त्व प्रधान है। राहुल जी ने इनमें मार्क्सवादी राजनीतिक-दर्शन के अनुरूप भारतीय समाज की व्याख्या करने का प्रयास किया है। अतः इन उपन्यासों को राजनीति-प्रधान सामाजिक उपन्यास कहा जा सकता है। राहुल जी सोद्देश्य साहित्य-रचना के समर्थक हैं। प्रेमचन्द और यशपाल की भांति वे कला के उपयोगितावादी पक्ष को मान्यता देते हैं। वे जीवन की साध व्यक्तिगत जीवन-यापन में न मानकर सामाजिक जीवन की पूर्णता में स्वीकारते हैं। इस प्रकार राहुल जी लक्ष्य को प्रधानता देते हुए उपन्यास रचना करते हैं और उनके राजनीति-प्रधान सामाजिक उपन्यासों में यह सोद्देश्यता स्पष्ट लक्षित है।

'बाईसवीं सदी' राहुल जी की प्रथम औपन्यासिक कृति है। प्रथम कृति होने के कारण इसमें रचनागत दोषों की प्रचुरता है। इसमें निबन्ध जैसी शुष्कता एवं एकरसता-सी प्रतीत होती है, परन्तु वस्तु की मौलिकता एवं सरल तथा प्रवाह-पूर्ण भाषा की दृष्टि से राहुल जी का यह प्रथम प्रयास स्तुत्य है। 'बाईसवीं सदी' का महत्त्व इस दृष्टि से भी है कि यह हिन्दी का प्रथम कल्पलोकात्मक उपन्यास (यूतोपियन नॉवल) है।

'यूतोपिया' ग्रीक भाषा का शब्द है, जिसका शाब्दिक अर्थ है 'कहीं नहीं'। इसका प्रयोग प्रत्येक कल्पनापूर्ण अथवा आदर्श समाज के लिए होता है। यूतोपिया एक आदर्श राष्ट्रकुल है (जिसकी सत्ता कहीं नहीं), जिसके नागरिक परिपूर्णावस्था में रहते हैं और उनमें मानवीय प्रकृति की कोई भी त्रुटियाँ या कमियाँ या दुर्बलताएँ नहीं होतीं।[1] लुई वासरमैन यूतोपियन विचारधारा का स्वरूप इन शब्दों में स्पष्ट करते हैं—'एक अपूर्ण समाज से एक ऐसे काल्पनिक समाज की ओर अग्रसर होने का प्रयास जिसमें आदर्श मानवीय मूल्यों की परिपूर्णता मिले ...... इसका कोई भी रूप चाहे वह कितना ही कल्पनापूर्ण क्यों न हो, अपने ढंग से वह सदैव समस्याओं के समाधान का यत्न करता है।'[2] ए० एल० मार्टन वर्तमान समाज की आलोचना करने के उद्देश्य से किसी औपन्यासिक कृति में वर्णित काल्पनिक देश को यूतोपिया कहते हैं। वे लिखते हैं 'प्रारम्भ में यूतोपिया इच्छा की छाया-मात्र है, किन्तु कालान्तर में यह अधिक गूढ़ और पृथक् हो जाती है और सामाजिक आलोचना एवं व्यंग्य की

ग्रभिव्यक्ति-हेतु एक विशद साधन का रूप धारण करती है।'[८] इस प्रकार यूतोपियन विचारधारा वर्तमान से ऊपर उठकर वर्तमान की स्थितियों को परिवर्तित करने का ग्रांशिक ग्रथवा समग्र रूप से प्रयत्न करती है। यूतोपियन मस्तिष्क की मानसिक निर्मितियों के दो भेद हैं---विचारधारात्मक (ग्राइडियोलौजीकल) तथा कल्पलोकात्मक (यूतोपियन)। प्रथम का प्रयोजन वर्तमान यथार्थता को कायम रखने के लिए प्रशंसा करना ग्रथवा उसे परिवर्तित करने के लिए निन्दा करना होता है। दूसरी उस यथार्थता के परिवर्तन के हेतु संग्राहक क्रियात्मकता को प्रेरित करती है, यदि वह परिवर्तन उसके ग्रादर्शों के ग्रनुरूप हों।'

'बाईसवीं सदी' राहुल जी का मार्क्सवादी कल्पलोकात्मक उपन्यास है। इस कृति के दो शब्द इसके 'कल्पलोक' के ग्रभिधान को सार्थक करते हैं ---'महामण्डित राहुल सांकृत्यायन ने एक बार रात्रि के ग्रन्तिम प्रहर में एक सपना देखा ग्रौर विश्व-बन्धु के रूप में नये सिरे से भ्रमण करना ग्रारम्भ किया। फिर शायद जाग्रतावस्था में भी सिलसिला जारी रहा ग्रौर कल्पना ग्रपना रंग लाती रही। उसी कल्पना का साकार रूप है यह कृति।'[१०] 'बाईसवीं सदी' में राहुल जी ने दो शताब्दी बाद के विश्व की कल्पना की है और उसकी व्यवस्था में मार्क्सवादी ढंग से परिवर्तन देखे हैं। इस यूतोपिया में वर्तमान समाज की ग्रालोचना तथा दो शताब्दी बाद के साम्यवादी मानव-समाज का स्वप्न है। यूतोपिया का नायक विश्वबन्धु वर्तमान समाज की विकृतियों, ग्रभावों एवं विपन्नताओं की ग्रोर संकेत करता है, जिसमें सामाजिक वैषम्य ग्रपने विकराल रूप में व्याप्त है। सामान्यजन निर्वसन, निरन्न एवं वासविहीन है। प्रत्येक प्रकार से उसकी स्थिति शोचनीय है। क्षुधापीड़ित सामान्य व्यक्ति ग्रस्त्रस्त एवं घुटनमय वातावरण में साँस ले रहा है ग्रौर उसके पास रुग्णता-निवारण-हेतु पैसा तक नहीं है। इसके विपरीत, धनिक जो संख्या में ग्रल्प हैं, सुखमय जीवन यापन करते हैं। उनके पास भौतिक सुख-सुविधायें प्रभूत मात्रा में विद्यमान हैं। साधारण जनता इन धनियों के लिए दासों से बढ़कर नहीं है। वर्तमान स्थिति के दिग्दर्शन एवं उसकी ग्रालोचना के ग्रनन्तर राहुल जी ने बाईसवीं सदी के कल्पलोकात्मक समाज को प्रस्तुत किया है। यूतोपियन ग्रामीण समाज, सामूहिक कृषि, ग्रौद्योगिक स्थिति, शिशुपालन, शिक्षा-पद्धति, शासन-प्रणाली, प्रजातांत्रिक शासन-व्यवस्था ग्रादि का ग्रादर्श राहुल जी ने प्रस्तुत किया है।

'ग्राधुनिक यूतोपिया को ग्रपनी प्रभावपूर्ण कार्यपद्धति के लिए समग्र पृथ्वी की ग्रावश्यकता है, जिसका इसे समावेश करना चाहिए। यह एक विश्वराज्य का चित्र होना चाहिए।'[११] राहुल जी ने 'बाईसवीं सदी' में इसी प्रकार के कल्पलोक की स्थापना की है। इस कल्पलोक में देश ग्रथवा राष्ट्र की प्राचीरें नहीं, भाषा का भेद-भाव नहीं, धर्म एवं जाति-भावना-जन्य ऊँच-नीच नहीं, समग्र विश्व की मानवता एक इकाई है। साथ ही सभी सुख-सम्पन्न हैं। समाज में विकृतियाँ एवं दुर्बलताएँ नहीं हैं। 'कामायनी' की शब्दावली में कोई शासित नहीं, कोई शासित ग्रथवा पापी नहीं।

जीवन बहुधा समान है, सभी सुखी एवं समरस हैं। 'बाईसवीं सदी' के इस कल्पलोक को इन पंक्तियों में देखा जा सकता है—'अब भूमण्डल में सभी जगह समता का राज्य है। धर्म के नाम पर ···· धन और प्रभुता के नाम पर, गोरे और काले के नाम पर जंगे अत्याचार पहले होते थे, जिस तरह मानव-सन्तानें दूसरों के पैरों के नीचे आजन्म कुचली जाती थीं, उन सब का अब नाम नहीं। अब मनुष्य-मनुष्य बराबर हैं। सभी जगह श्रम और भोग का समता मूलमन्त्र रखा गया है। न अब भूमण्डल में जमींदार है, न सेठ-साहूकार है, न राजा है न प्रजा, न धनी है न निर्धन, न ऊँच है न नीच। सारे भूमण्डल के निवासियों का एक कुटुम्ब है। पृथ्वी की सभी स्थावर-जंगम सम्पत्ति उसी कुटुम्ब की सम्पत्ति है।'[1] इस प्रकार राहुल का स्वप्न विश्व-मानवता का है, जिसका प्रत्यक्षीकरण 'बाईसवीं सदी' में है। यह कल्पनालोक राहुल जी की मार्क्सवादी जीवन-दृष्टि के अनुरूप है।

'जीने के लिए' राहुल जी का दूसरा सामाजिक उपन्यास है। इसमें बीसवीं शती के प्रारम्भ से लेकर सन् १९३९ तक की सामाजिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों का चित्रण है। प्रथम विश्वयुद्ध के अनन्तर स्वातन्त्र्य-प्राप्ति-हेतु भारतीयों के आन्दोलनों, अंग्रेजों की दमन नीति, जमींदार और कृषकों के मध्य भूमि-अधिकार-सम्बन्धी संघर्षों के अतिरिक्त अनेक सामाजिक, धार्मिक आदि अंधपरम्पराओं का सजीव अंकन इस उपन्यास में हुआ है। भारतीय समाज की विविध समस्याओं एवं उनके मार्क्सवादी समाधान को राहुल जी ने प्रस्तुत किया है। 'जीने के लिए' उपन्यास का वर्ण्य भारतीय समाज तक ही सीमित नहीं, इसमें अन्तर्राष्ट्रीय क्षितिज का भी संस्पर्श है। देवराज के जीवन-चरित के विकास को रेखांकित करते हुए राहुल जी ने उसके माध्यम से साम्यवादी राजनीतिक स्वरों को मुखरित किया है। डॉ० चण्डीप्रसाद जोशी के शब्दों में, 'विभिन्न राजनीतिक घटनाओं की मार्क्सवादी व्याख्या प्रस्तुत करना ही राहुल जी का उद्देश्य है। ···· देवराज के चरित का निर्माण मार्क्सवादी सिद्धान्तों के अनुरूप हुआ है।'[2] वस्तुतः भारत की राजनीतिक प्रगति को दर्शाना ही उपन्यास का उद्देश्य है। सामाजिक-राजनीतिक उपन्यास की दृष्टि से 'जीने के लिए' राहुल जी की एक समर्थ कृति है।

'भागो नहीं दुनिया को बदलो' की रचना भी राजनीतिक उद्देश्य को लेकर की गयी है। उपन्यास की भूमिका में राहुल जी ने लिखा है,—"जनता को वोट देने का अख्तियार दे देने से काम नहीं चलेगा, उसे अपनी भलाई-बुराई भी मालूम होनी चाहिए कि राजनीति के अखाड़े में कैसे दाँव-पेच खेले जाते हैं। इस पोथी में इस बात की मैंने थोड़ी-सी कोशिश की है।"[3] वस्तुतः 'भागो नहीं दुनिया को बदलो' में उपन्यास-शिल्प का पूरा विधान नहीं है। इसमें संवादात्मक शैली में मार्क्सवाद के सिद्धान्तों के अनुरूप भारतीय समाज की स्थिति पर विचार किया गया है। इस विचारक्रम में कथा का-सा आभास भी मिलता है अतः इसे 'कथाभास' की संज्ञा देना ही उचित प्रतीत होता है।

'राजस्थानी रनिवास' को यद्यपि राहुल जी ने 'औपन्यासिक इतिहास' की संज्ञा दी है, परन्तु इसमें बीसवीं सदी के आरम्भ के राजस्थान के समाज को ही प्रधान रूप से चित्रित किया गया है। गौरी के माध्यम से राजस्थानी रनिवासों में बन्दिनी नारी की दयनीय दशा का अंकन इस उपन्यास में हुआ है। सामन्ती जीवन की पाशविकता के चित्रण में भी राहुल जी को सफलता मिली है। डॉ० गणेशन भी इसे बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध की घटनाओं पर आधारित सामाजिक उपन्यास मानते हैं।[४]

समग्रतः सामाजिक उपन्यासों में राहुल जी ने वर्तमान समाज की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक आदि समस्याओं का अंकन किया है। सामाजिक वैषम्य, शोषक और शोषित की स्थिति, सामन्ती समाज में पिसती हुई नारी, समाज के अन्धविश्वास आदि विकृतियों तथा आर्थिक एवं राजनीतिक अवस्था आदि का चित्रण करते हुए सामाजिक साम्य की स्थापना का आदर्श प्रस्तुत किया गया है। राहुल जी के इन राजनीतिक, सामाजिक उपन्यासों को प्रारम्भिक कोटि के उपन्यास ही माना जा सकता है। 'जीने के लिए' के अतिरिक्त अन्य उपन्यासों में औपन्यासिक-शिल्प का अभाव है। वस्तुतः राहुल जी की औपन्यासिक देन का महत्त्व सामाजिक उपन्यास न होकर ऐतिहासिक उपन्यास हैं। उन्हीं में महापण्डित राहुल के व्यक्तित्व एवं विचारधारा की यथार्थ अभिव्यक्ति मिलती है।

ऐतिहासिक उपन्यास

ऐतिहासिक उपन्यास में इतिहास और उपन्यास के तत्त्वों का समन्वय होता है। उपन्यास में कल्पना की प्रधानता होती है और इतिहास में भौतिक सच्चाई को प्रस्तुत किया जाता है। इसी 'ऐतिहासिक सामग्री और औपन्यासिक कला के परिणय का परिणाम है ऐतिहासिक उपन्यास।'[५] ऐतिहासिक उपन्यास में तथ्यों के यथार्थ रूप को ग्रहण कर कल्पना द्वारा उसे पूर्ण चित्र के रूप में परिणत किया जाता है। 'ऐतिहासिक उपन्यास के लिए तो इतिहास की रक्षा करने के साथ-साथ उसके स्वरूप को कल्पना के द्वारा स्पष्ट करना भी आवश्यक है। यह ध्यान रखना चाहिए कि उपन्यास इतिहास का अन्धानुकरण नहीं हो सकता, सबसे पहले यह उपन्यास है – साहित्यिक कलावस्तु। साथ ही वह इतिहास भी है, जिसकी मर्यादा की भी रक्षा करनी पड़ती है, अतः यहाँ कल्पना अनियन्त्रित नहीं हो सकती।'[६] डॉ० सत्येन्द्र ऐतिहासिक उपन्यास का स्वरूप इन शब्दों में प्रस्तुत करते हैं—'ऐतिहासिक उपन्यासों में देश-काल का सबसे अधिक ध्यान रखा जाता है। वास्तव में इन उपन्यासों के लेखक की सफलता ही इस बात में निहित रहती है कि वे जहाँ तक हो अपनी कल्पना-शक्ति का उपयोग करके तात्कालिक परिस्थितियों का बिम्ब-ग्रहण करा दें। ऐतिहासिक घटनाक्रम में असत्य व अप्रामाणिक घटनाओं की भरमार नहीं हो सकती।'[८] इन मतों में स्पष्ट है कि इतिहास और कल्पना के अद्भुत सामंजस्य द्वारा ही ऐतिहासिक उपन्यास की सृष्टि सम्भव है। अतः यहाँ इतिहास और कल्पना की सीमा पर विचार करना उपयुक्त होगा।

इतिहास—इतिहास यथार्थ की परम्परा का वृत्त है। जीवन की व्यवस्था और गति का लेखा होने के कारण इतिहास उपन्यास का उपयोगी उपादान है। ऐतिहासि उपन्यास में ऐतिहासिक सत्यता को अभिव्यक्त करना अनिवार्य धर्म है। उपन्यासका इतिहास के साथ खिलवाड़ नहीं कर सकता। सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यासका वृन्दावनलाल वर्मा के शब्दों में—'मेरी सम्मति में इतिहास के साथ खिलवाड़ कर अनुचित है। इतिहास के पूरे निर्वाह में जो कठिनाई लेखक को भुगतनी पड़ती है उसे सर कर लेने पर जो सन्तोष और आनन्द प्राप्त होता है, वह अपार है औ सौन्दर्य-बोध की निधि को बढ़ाता है।' वस्तुतः ऐतिहासिक उपन्यासकार के साम एक सीमा-रेखा खिंची होती है, जिसका वह उल्लंघन नहीं कर सकता। ऐसा कर पर उसका ज्ञान विकृत एवं अग्राह्य माना जाएगा। ऐतिहासिक कलाकृति में इतिह के तथ्यों का यथार्थ अंकन कला की पहली मर्यादा है। ऐतिहासिक उपन्यासकार अप उपन्यास की सत्यता प्रकट करने के लिए जिन उपकरणों की सहायता लेता है डॉ० मक्खनलाल शर्मा के अनुसार वे उपकरण इस प्रकार हो सकते हैं—'प्राची शिलालेख, प्राचीन मुद्राएँ, परवाने, स्मारक, ताम्रपत्र, यात्रियों की साखियाँ, प्राची ग्रन्थ आदि।' राहुल जी इन उपकरणों के साथ भौगोलिक ज्ञान को भी अनिवार्य मानते हैं।

कल्पना—इतिहास विवरण है, निर्माण नहीं। उपन्यास और इतिहास में यही मौलिक अन्तर है। वस्तुतः उपन्यास यथार्थ के आधार पर कल्पना की सृष्टि है। जहाँ उपन्यासकार इतिहास को स्वीकार कर कल्पना द्वारा नीरसता और शुष्कता को दू करने का प्रयत्न करता है, वहीं वह इतिहास में उपन्यास का समावेश कर ऐतिहासिक उपन्यास की सृष्टि करता है। उपन्यास में सर्जनात्मकता का तत्व उपन्यासकार की कल्पना-शक्ति से समाविष्ट होता है। इसी से उसकी रचना आकर्षक और मनोरंजक होती है।

ऐतिहासिक उपन्यासकार कल्पना के प्रयोग में सर्वथा स्वतन्त्र भी नहीं है। उसका कल्पना-प्रयोग ऐतिहासिक तथ्यों को विकृत करने का मनमाना अधिकार नहीं रखता। कलाकार को नवीन तथ्य-निर्माण का तो अधिकार है, पर वास्तविक तथ्यों को विकृत करने का नहीं। कला की मर्यादा का उल्लेख करते हुए डॉ० रामाश्रय तिवारी का कथन है—'कला की दूसरी मर्यादा का सम्बन्ध ऐतिहासिक तथ्यों के परि-वर्तन से है। कलाकार इतिहास-लेखक नहीं है, इसलिए उसे इस परिवर्तन का उतना ही अधिकार है, जितना नवीन तथ्यों और कल्पनाओं के सृजन का। किन्तु परिवर्तन द्वारा वास्तविक तथ्यों को विकृत बनाने का अधिकार कलाकार को भी नहीं है।' डॉ० त्रिभुवन सिंह भी उपन्यासकार को इतिहास की मर्यादा में बंधा हुआ स्वीकार करते हैं 'कृतिकार को स्वतन्त्रता है कि वह जिस ऐतिहासिक चरित्र को चाहे उसका रूप दे सकता है, परन्तु उसके लिए तत्कालीन देश और काल के बारे में जितनी भी जानकारी है, उन सब का समन्वय उस चरित्र के विकास में दिखलाना आवश्यक

ही नहीं, अनिवार्य भी है।'[२२] राहुल जी कल्पना की इसी मर्यादा को ग्रहण करते हैं।

ऐतिहासिक उपन्यास : राहुल जी के विचार—राहुल जी ने अपनी औपन्यासिक कृतियों एवं यत्र-तत्र कुछ लेखों में ऐतिहासिक उपन्यास के विषय में अपने विचार प्रकट किये हैं। उनके अनुसार 'ऐतिहासिक उपन्यास में हमें ऐसे समाज और उसके व्यक्तियों का चित्रण करना पड़ता है, जो सदा के लिए विलुप्त हो चुका है। किन्तु उसने पद-चिह्न कुछ जरूर छोड़े हैं जो उनके साथ मनमानी करने की इजाज़त नहीं दे सकते। इन पद-चिह्नों या ऐतिहासिक अवशेषों के पूरी तौर से अध्ययन को यदि अपने लिए दुष्कर समझते हैं, तो कौन कहता है, आप जरूर ही इस पथ पर कदम रखें ? हम देखते हैं कम-से-कम हमारे देश में, समर्थ कथाकार भी ऐसी गलती कर बैठते हैं और बिना तैयारी के ही कलम उठा लेते हैं।'[२३]

ऐतिहासिक उपन्यासकार का विवेक इतिहासकार की तरह ही होना चाहिए—'उसे समझना चाहिए कि कौन-सी सामग्री का मूल अधिक और किसका कम है। लिखित सामग्री वही प्रथम श्रेणी की मानी जाएगी जिसे उसी समय लिपिबद्ध किया गया है। समकालीन लिपिबद्ध सामग्री सबसे अधिक प्रामाणिक मानी जा सकती है। सिक्के, शिलालेख और ताम्रपत्र उसी समय के लिखे होते हैं, इसलिए उनका मूल्य अधिक है। वास्तु, मूर्तियाँ और चित्र अपने समय के समाज के जीवन पर बहुत प्रकाश डालते हैं।'[२४]

ऐतिहासिक उपन्यासकार के लिए भौगोलिक ज्ञान भी आवश्यक है। इस विषय में राहुल जी का कथन है—'ऐतिहासिक अनौचित्य से बचने के लिए जिस तरह तत्कालीन ऐतिहासिक सामग्री और इतिहास का अच्छी तरह अध्ययन आवश्यक है, वैसे ही भौगोलिक अध्ययन की भी आवश्यकता है। जिस तरह ऐतिहासिक मापदण्ड स्थापित करने के लिए तत्कालीन राजाओं के राज्य और शासनकाल की पहले से ही तालिका बनाकर उसमें वर्णनीय घटनाओं के अध्याय-क्रम को टाँक लेना जरूरी है, उसी तरह भौगोलिक स्थानों, उनकी दिशाओं और दूरियों का ठीक-ठीक अन्दाज़ रखने के लिए तत्सम्बन्धी नक्शों का खाका हर वक्त सामने रखना चाहिए।[२५]

इस प्रकार राहुल जी ने ऐतिहहासिक उपन्यास-सम्बन्धी मूल्यवान् विचार प्रस्तुत किये हैं। वस्तुतः ऐतिहासिक उपन्यासों की सर्जना सहज नहीं। जब तक तत्कालीन ऐतिहासिक सामग्री, भौगोलिक स्थिति एवं तत्कालीन समाज के आचार-व्यवहार, रीति-रिवाज, रहन-सहन आदि की पूर्ण जानकारी न हो, तब तक ऐतिहासिक उपन्यास-जैसी कृति लिखने का दायित्व नहीं लेना चाहिए। राहुल जी इसे अक्षम्य भूल मानते हैं—'ऐतिहासिक उपन्यासों में इतिहास और भूगोल या तत्कालीन देशकाल की असंगति को मैं अक्षम्य दोष समझता हूँ।'[२६] ऐतिहासिक उपन्यास लिखने के लिए वस्तुतः गम्भीर अध्ययन की आवश्यकता है। राहुल जी अपने ऐतिहासिक उपन्यासों की ओर प्रवृत्त होने के मूल कारण की ओर संकेत करते हैं—'इस तरह के उपन्यास

लिखने में जितने परिचय और अध्ययन की आवश्यकता है, वैसे उपन्यास हिन्द अभी कम हैं, दूसरे यह भी कि अतीत के प्रगतिशील प्रयत्नों को सामने ला पाठकों के हृदय में आदर्शों के प्रति इस प्रकार की प्रेरणा भी पैदा की सकती है।'[23]

राहुल जी के ऐतिहासिक उपन्यास

राहुल जी के पांच ऐतिहासिक उपन्यास हैं —'दिवोदास', 'सिंह सेनापति 'जय यौधेय', 'मधुर स्वप्न' तथा 'विस्मृत यात्री'। ऐतिहासिक उपन्यास-लेखन के लि अनेक प्रकार के दृष्टिकोण हो सकते हैं। यथा, वर्तमान जीवन के कटु यथार्थ से असन्तु एवं पराजित होकर अतीत के स्वप्न-लोक में पलायन करके मानसिक विश्रान्ति प्रा करने का प्रयत्न, या विगतकाल के आदर्शों के प्रति अत्यन्त मोहासक्त होकर उन अतिरंजित रूप में चित्रित करके वर्तमान के साथ उसके वैषम्य का रेखांकन, अथ नये जीवन को ढालने के लिए इतिहास के समृद्ध युग में प्रकाश तत्त्वों का अन्वेषण इन तीनों कारणों से भिन्न अतीतोन्मुख होने का एक यह कारण भी है कि कभी-कभ लेखक अपने जीवन-दर्शन के आलोक में तत्कालीन जीवन के विविध पक्षों का विवेच करता है। वह अतीत से उदाहरण खोजकर प्रस्तुत करना चाहता है ताकि वह अप विचार एवं आन्दोलन की जड़ें अत्यन्त गहरी सिद्ध कर सके।[28] राहुल जी के अतीतो न्मुख होने का यही कारण है। उनका समस्त जीवन और साहित्य यह प्रमाणित करत है कि न तो विचार के क्षेत्र में वे पलायनवादी रहे हैं और न भाव के क्षेत्र में अतीत के प्रति मोहासक्त। समाजवादी विचारधारा पर उन्हें आस्था है और साम्यवादी जीवन दर्शन उनका अपना जीवन-दर्शन है। महेन्द्र चतुर्वेदी के शब्दों में, 'उनका मूल उद्देश्य समाजवादी सिद्धान्तों के प्रसार द्वारा एक वर्गहीन आदर्श समाज की स्थापना को प्रोत्साहन देना है, फलतः उन्होंने अतीत इतिहास से अपने मनोनुकूल पात्रों और घट-नाओं का चयन किया है और अपने अभीष्ट लक्ष्य की ओर वे एकनिष्ठता के साथ अग्रसर हुए हैं।'[25] इस प्रकार राहुल जी ने अपने उपन्यासों में वर्तमान समस्याओं को प्राचीन वातावरण के माध्यम से प्रस्तुत किया है।

ऐतिहासिक सामग्री के स्रोत—राहुल जी के ऐतिहासिक उपन्यास 'दिवोदास' 'सिंह सेनापति', 'जय यौधेय', 'मधुर स्वप्न' तथा 'विस्मृत यात्री' इतिहास के विस्मृत पृष्ठों से सम्बद्ध हैं। राहुल जी का इतिहास-ज्ञान बड़ा व्यापक और गम्भीर है। शता-ब्दियों के व्यवधान को चीरती हुई उनकी पैनी दृष्टि भारतीय इतिहास के अनेक युगों का साक्षात्कार कराने में समर्थ हुई है। 'दिवोदास' (१२२० ई०पू०) 'सिंह सेनापति' (५०० ई०पू०), 'जय यौधेय' (३५०-४०० ई०), 'मधुर स्वप्न' (४६२-५२६ ई०) तथा 'विस्मृत यात्री' (५१८ से ५८९ ई०) विभिन्न कालों से सम्बन्धित उपन्यास हैं। इन उपन्यासों की रचना में लेखक ने ऐतिहासिक तथ्यों के प्रति सावधानी एवं ईमान-दारी दिखलाई है। ऐतिहासिक सामग्री जुटाने की ओर उनका ध्यान सदैव अधिक है। उनकी दृष्टि में एक ऐतिहासिक उपन्यासकार का विवेक इतिहासकार की

तरह होना चाहिए। राहुल जी समकालीन लिपिबद्ध सामग्री को ही प्रामाणिक एवं प्रथम श्रेणी की सामग्री मानते हैं, जिसके अन्तर्गत मुख्य रूप से तत्कालीन शिलालेख, ताम्र-पत्र, सिक्के आदि आते हैं। राहुल जी ने अपने उपन्यासों में इतिहासकार के विवेक का परिचय दिया है, इसमें किंचित् भी सन्देह नहीं। वस्तुत: 'उनका व्यापक इतिहास-ज्ञान उनकी कला की बहुत बड़ी शक्ति है।'[३०]

राहुल जी ने अपने ऐतिहासिक उपन्यासों के स्रोतों के विषय में उपन्यासों की भूमिकाओं एवं परिशिष्टों में संकेत दिये हैं। 'दिवोदास' में ऋग्वैदिक काल की घटनाएँ हैं। अत: इस उपन्यास की ऐतिहासिक सामग्री ऋग्वेद की कथाएँ हैं। 'सिंह सेनापति' का आधार बौद्ध-ग्रन्थ है। भूमिका में राहुल का कथन है—'साहित्य पालि, संस्कृत तिब्बतीय में अधिकता से और जैन साहित्य में भी कुछ उस काल के गणों की सामग्री मिलती है। मैंने उसे इस्तेमाल करने की कोशिश की है।'[३१] 'जय यौधेय' गुप्तकालीन यौधेय-गण की कथा है। इसका ऐतिहासिक आधार अत्यन्त पुष्ट है—'मैंने अपने उपन्यास में गौरवशाली यौधेय-गण और उसकी ध्वंसलीला को चित्रित किया है। यहाँ राजाओं, राजकुमारों तथा दूसरे गुप्तवंशी अधिकारियों के नाम देने में ऐतिहासिक सामग्री का उपयोग किया है—समाज के चित्रण में मैंने कालिदास के ग्रन्थों और उसी समय यात्रा करने वाले फाहियान के यात्रा-विवरण का उपयोग किया है। डॉक्टर अलतेकर, प्रोफ़ेसर राखालदास बैनर्जी और डॉ० आर० एन० दण्डेकर के ग्रन्थों, गुप्त-कालीन शिलालेखों और सिक्कों से मैंने इस ग्रन्थ में बहुत सहायता ली है।'[३२] 'मधुर स्वप्न' का आधार ईरान-सम्बन्धी इतिहास-ग्रन्थ हैं। सन् १९४४-४५ की ईरान-यात्रा में राहुल ने इसके लिए सामग्री संकलित की थी। उपन्यास के परिशिष्ट में विस्तार से उपन्यास में आए पात्रों के ऐतिहासिक व्यक्तित्व को प्रमाणित करने के लिए सामग्री उल्लिखित है।[३३] 'विस्मृत यात्री' के लिए राहुल जी ने चीनी-साहित्य से सामग्री ली है।[३४] इन ऐतिहासिक स्रोतों के उल्लेख से स्पष्ट है कि राहुल जी ने अपने उपन्यासों में जिन ऐतिहासिक तथ्यों को प्रस्तुत किया है, वे प्रामाणिक हैं।

राहुल जी के ऐतिहासिक उपन्यासों में इतिहास और कल्पना—सर्जनात्मक साहित्य के क्षेत्र में राहुल जी की प्रतिभा का सर्वाधिक वरदान उनके ऐतिहासिक उपन्यासों को प्राप्त है। स्वयं राहुल जी का कथन है—'इतिहास का प्रेमी और विद्यार्थी होने से उसे मूर्तिमान करने की आकांक्षा हुई, इसी के परिणाम मेरे उपन्यास हैं।'[३५] राहुल जी का इतिहास-ज्ञान बड़ा व्यापक एवं गम्भीर है और यही उनकी कला की सबसे बड़ी शक्ति भी है। वे जिस ऐतिहासिक युग का अंकन करते हैं, उसे साकार रूप प्रदान करना उनकी कला की विशिष्टता है। राहुल इतिहास को कला का स्रष्टा मानते हैं—'इतिहास एक तरफ विज्ञान है अर्थात् हृदय को नहीं, मस्तिष्क को तृप्त करना उसका काम है, तो दूसरी ओर वह कला का स्रष्टा है।'[३६]

शचीरानी गुर्टू लिखती हैं—'यद्यपि राहुल सांकृत्यायन के उपन्यासों की संस्कृति का रूप-निर्माण वर्तमान युग की समन्वित संस्कृति से सम्पन्न हुआ है तथापि

लिखने में जितने परिचय और अध्ययन की आवश्यकता है, वैसे उपन्यास
अभी कम हैं, दूसरे यह भी कि अतीत के प्रगतिशील प्रयत्नों को मा
पाठकों के हृदय में आदर्शों के प्रति इस प्रकार की प्रेरणा भी पैद
सकती है।'[२१]

राहुल जी के ऐतिहासिक उपन्यास

राहुल जी के पाँच ऐतिहासिक उपन्यास हैं—'दिवोदास', 'सिंह
'जय यौधेय', 'मधुर स्वप्न' तथा 'विस्मृत यात्री'। ऐतिहासिक उपन्यास-लेख
अनेक प्रकार के दृष्टिकोण हो सकते हैं। यथा, वर्तमान जीवन के कटु यथार्थ से
एवं पराजित होकर अतीत के स्वप्न-लोक में पलायन करके मानसिक विश्रा
करने का प्रयत्न, या विगतकाल के आदर्शों के प्रति अत्यन्त मोहासक्त हो
अतिरंजित रूप में चित्रित करके वर्तमान के साथ उसके वैषम्य का रेखांकन
नये जीवन को ढालने के लिए इतिहास के समृद्ध युग में प्रकाश तत्त्वों का अ
इन तीनों कारणों से भिन्न अतीतोन्मुख होने का एक यह कारण भी है कि क
लेखक अपने जीवन-दर्शन के आलोक में तत्कालीन जीवन के विविध पक्षों का
करता है। वह अतीत से उदाहरण खोजकर प्रस्तुत करना चाहता है ताकि व
विचार एवं आन्दोलन की जड़ें अत्यन्त गहरी सिद्ध कर सके।'[२२] राहुल जी के
न्मुख होने का यही कारण है। उनका समस्त जीवन और साहित्य यह प्रमाणित
है कि न तो विचार के क्षेत्र में वे पलायनवादी रहे हैं और न भाव के क्षेत्र में अ
प्रति मोहासक्त। समाजवादी विचारधारा पर उन्हें आस्था है और साम्यवादी
दर्शन उनका अपना जीवन-दर्शन है। महेन्द्र चतुर्वेदी के शब्दों में, 'उनका मूल
समाजवादी सिद्धान्तों के प्रसार द्वारा एक वर्गहीन आदर्श समाज की स्थापन
प्रोत्साहन देना है, फलतः उन्होंने अतीत इतिहास से अपने मनोनुकूल पात्रों औ
नाओं का चयन किया है और अपने अभीष्ट लक्ष्य की ओर वे एकनिष्ठता के
अग्रसर हुए हैं।'[२३] इस प्रकार राहुल जी ने अपने उपन्यासों में वर्तमान समस्या
प्राचीन वातावरण के माध्यम से प्रस्तुत किया है।

ऐतिहासिक सामग्री के स्रोत—राहुल जी के ऐतिहासिक उपन्यास 'दिवो
'सिंह सेनापति', 'जय यौधेय', 'मधुर स्वप्न' तथा 'विस्मृत यात्री' इतिहास के वि
पृष्ठों से सम्बद्ध हैं। राहुल जी का इतिहास-ज्ञान बड़ा व्यापक और गम्भीर है।
ब्दियों के व्यवधान को चीरती हुई उनकी पैनी दृष्टि भारतीय इतिहास के अनेक
का साक्षात्कार कराने में समर्थ हुई है। 'दिवोदास' (१२२० ई०पू०) 'सिंह सेना
(५०० ई०पू०), 'जय यौधेय' (३५०-४०० ई०), 'मधुर स्वप्न' (४९२-५२९ ई
तथा 'विस्मृत यात्री' (५१८ से ५८९ ई०) विभिन्न कालों से सम्बन्धित उपन्यास
इन उपन्यासों की रचना में लेखक ने ऐतिहासिक तथ्यों के प्रति सावधानी एवं ईम
दारी दिखलाई है। ऐतिहासिक सामग्री जुटाने की ओर उनका ध्यान सदैव र

अभिव्यक्ति-हेतु एक विशद साधन का रूप धारण करती है।'[५] इस प्रकार यूतोपियन विचारधारा वर्तमान से ऊपर उठकर वर्तमान की स्थितियों को परिवर्तित करने का आंशिक अथवा समग्र रूप से प्रयत्न करती है। यूतोपियन मस्तिष्क की मानसिक निर्मितियों के दो भेद हैं—विचारधारात्मक (आइडियोलोजीकल) तथा कल्पलोकात्मक (यूतोपियन)। प्रथम का प्रयोजन वर्तमान यथार्थता को कायम रखने के लिए प्रशंसा करना अथवा उसे परिवर्तित करने के लिए निन्दा करना होता है। दूसरी उस यथार्थता के परिवर्तन के हेतु संग्राहक क्रियात्मकता को प्रेरित करती है, यदि वह परिवर्तन उसके आदर्शों के अनुरूप हों।'

'बाईसवीं सदी' राहुल जी का मार्क्सवादी कल्पलोकात्मक उपन्यास है। इस कृति के दो शब्द इसके 'कल्पलोक' के अभिधान को सार्थक करते हैं—'महामण्डित राहुल सांकृत्यायन ने एक बार रात्रि के अन्तिम प्रहर में एक सपना देखा और विश्वबन्धु के रूप में नये सिरे से भ्रमण करना आरम्भ किया। फिर शायद जाग्रतावस्था में भी सिलसिला जारी रहा और कल्पना अपना रंग लाती रही। उसी कल्पना का साकार रूप है यह कृति।''[*] 'बाईसवीं सदी' मे राहुल जी ने दो शताब्दी बाद के विश्व की कल्पना की है और उसकी व्यवस्था मे मार्क्सवादी ढंग से परिवर्तन देखे हैं। इस यूतोपिया मे वर्तमान समाज की आलोचना तथा दो शताब्दी बाद के साम्यवादी मानव-समाज का स्वप्न है। यूतोपिया का नायक विश्वबन्धु वर्तमान समाज की विकृतियों, अभावों एवं विपन्नताओं की ओर सकेत करता है, जिसमें सामाजिक वैषम्य अपने विकराल रूप मे व्याप्त है। सामान्यजन निर्वसन, निरन्न एवं वासविहीन है। प्रत्येक प्रकार से उसकी स्थिति शोचनीय है। क्षुधापीड़ित सामान्य व्यक्ति अस्वस्थ एवं घुटनमय वातावरण में सांस ले रहा है और उसके पास रुग्णता-निवारण-हेतु पैसा तक नही है। इसके विपरीत, धनिक जो संख्या में अल्प हैं, सुखमय जीवन यापन करते हैं। उनके पास भौतिक सुख-सुविधायें प्रभूत मात्रा में विद्यमान हैं। साधारण जनता इन धनियों के लिए दासो से बढ़कर नहीं है। वर्तमान स्थिति के दिग्दर्शन एवं उसकी आलोचना के अनन्तर राहुल जी ने बाईसवीं सदी के कल्पलोकात्मक समाज को प्रस्तुत किया है। यूतोपियन ग्रामीण समाज, सामूहिक कृषि, औद्योगिक स्थिति, शिशुपालन, शिक्षा-पद्धति, शासन-प्रणाली, प्रजातान्त्रिक शासन-व्यवस्था आदि का आदर्श राहुल जी ने प्रस्तुत किया है।

'आधुनिक यूतोपिया को ... के लिए समग्र पृथ्वी की आवश्यकता है, जिसका ... एक विश्वराज्य का चित्र ... के कल्पलोक की ... ों, भाषा का ... की मानवता दुर्बलताएँ नहीं पापी नहीं।

लेखा-जोखा है। राहुल जी ने ऋग्वेद की ऋचाओं को सामने रखकर एक-एक पंक्ति लिखी है। उपन्यास की आधिकारिक कथा, प्रासंगिक कथा तथा अन्य प्रसंगों की योजना का स्पष्ट आधार ऋग्वेद की ऋचाएँ हैं। उपन्यास के प्रमुख पात्र एवं उनके संवाद भी ऋग्वेद से सम्बद्ध हैं। अतः उपन्यास की ऐतिहासिकता असंदिग्ध है।

कल्पना—'दिवोदास' में कल्पना का प्रयोग स्वल्प ही है। राहुल जी ऐतिहासिक उपन्यासों में ऐतिहासिक तथ्यों को सच्चाई से प्रस्तुत करना अपना धर्म मानते हैं। 'दिवोदास' में सप्तसिंधु के आर्यों के जन-जीवन को प्रस्तुत करना उनका ध्येय है। और उसके लिए उनके सम्मुख ऋग्वेद की ऋचाओं के रूप में पर्याप्त सामग्री विद्यमान है। उसी को सुव्यवस्थित कर ऐसे रूप में प्रस्तुत किया गया है कि 'दिवोदास' इतिहास-मात्र न रहकर उपन्यास बन गया है। 'दिवोदास' की कथा को शृंखलाबद्ध रूप में प्रस्तुत करने एवं उसमें औपन्यासिक कथा के अनुकूल सरसता लाने के लिए कल्पना का पुट भी दिया है। यह कल्पना इतिहास-सम्मत है।

ऋग्वेद-वर्णित पुरूरवा तथा उर्वशी की स्वतन्त्र कथा यहाँ युगल-गान के रूप में अत्यन्त रोचक बन पड़ी है। इस युगलगान की गायिकाएँ हैं—पुरकुत्सानी तथा दिवोदास की माता पौरवी।[२२] आमोद-प्रमोद के साधनों में अश्व-गमन-प्रायोजन ऋग्वेद की ऋचाओं में संकेतित है पर बारह वर्ष के दिवोदास को अश्व-गमन के विजेता के रूप में प्रस्तुत करना उपन्यासकार की कल्पना है, जिससे उसके नायक के चरित्र-उत्कर्ष में अभिवृद्धि होती है।[२३] द्यूत-क्रीड़ा का वर्णन भी 'ऋग्वेद' में पाया है परन्तु उपन्यासकार ने उसे दिवोदास की शासन-प्रबन्ध-कुशलता के प्रसंग में वर्णित किया है।[२४] वैदिक काल में टिड्डी दल के आक्रमण प्रायः होते रहते थे पर भरद्वाज के मुख से टिड्डी दल के रूप में किरातों का वर्णन कल्पना का ही चमत्कार है।[२५] गन्धर्व-गृहीता कुमारी की कथा भी कल्पना-जन्य है।[२६] शम्बर-दुहिता का नाम और उसके साथ देवक मन्यमान के प्रसंग को सम्बद्ध करना भी लेखक की कल्पना की ही उपज है।[२७]

इस प्रकार राहुल जी के 'दिवोदास' की कल्पनाएँ इतिहास-सम्मत हैं, वे ऐतिहासिक तथ्यों को कहीं विकृत नहीं करतीं।

सिंह सेनापति

इतिहास—'सिंह सेनापति' राहुल जी का महत्वपूर्ण ऐतिहासिक उपन्यास है। इसका कथानक ५०० ई० पू० के लिच्छवी गणराज्य से सम्बद्ध है। राहुल जी ने [illegible] लिखा है—'यह मेरा दूसरा उपन्यास है—ई० पू० ५०० का। मैं मानव [illegible] से लेकर आज तक के विकास को २० कहानियों में लिखना चाहता [illegible] था। [illegible] एक इस समय (बुद्धकाल) की भी थी। जब लिखने का [illegible] हुआ कि आगे बढ़ना तो कहानी में नहीं बढ़ा जा सकता, इसलिए [illegible] उपन्यास के रूप में आपके सामने उपस्थित हो रहा है।' [illegible] ने प्रस्तुत उपन्यास के ऐतिहासिक आधारों की चर्चा भी इस प्रकार किया है—

'सिंह सेनापति के समकालीन समाज को चित्रित करने में मैंने ऐतिहासिक कर्त्तव्य और औचित्य का पूरा ध्यान रखा है। साहित्य, पाली, संस्कृत, तिब्बतीय में अधिकता से और जैन साहित्य में भी कुछ उस काल के गणों (प्रजातन्त्रों) की सामग्री मिलती है। मैंने उसे इस्तेमाल करने की कोशिश की है।'[१३] राहुल जी ने 'सिंह सेनापति' की इतिहास-सम्मतता का पाठकों को विश्वास दिलाने के लिए एक रोचक कथा उपन्यास के विषय-प्रवेश में उल्लिखित की है।[१४] उनका कथन है कि छपरा जिला में एक मित्र के परती खेत की खुदाई करते समय उन्हें कुछ ईंटें प्राप्त हुईं, जिन पर ब्राह्मी अक्षरों में लिखा हुआ था। 'ये ईंटें नहीं, किसी पुस्तक के पन्ने हैं। लेखक ने कागज-स्याही की जगह गीली ईंटों पर लौह लेखनी से अपनी पुस्तक को स्वयं लिखा या लिखवाया। फिर सूख जाने पर उन्हें पकाकर छल्ली की शकल में यहाँ गाड़ दिया।'[१५] उसी पुस्तक का अनुवाद 'सिंह सेनापति' है। अपनी बात का पाठकों को विश्वास दिलाने के लिए वे लिखते हैं—'आपको मेरी सच्चाई पर सन्देह हो तो इन सोलह सौ ईंटों को जाकर पटना म्यूजियम में देख लीजिये।'[१६] पुरातत्त्ववेत्ता राहुल के कथन को अक्षरश: सत्य मानकर कुछ दर्शक पटना म्यूजियम में पहुँच गये। परन्तु 'सिंह सेनापति' किसी ऐसी अद्‌भुत पुस्तक का अनुवाद नहीं है। यह एक मौलिक उपन्यास है। 'विस्मृत यात्री' में उन्होंने लिखा है—'यदि वह वस्तुत: ईंटों पर उत्कीर्ण होता तो वह उपन्यास नहीं होता। ईंटों के दर्शनार्थी पाठक को समझ लेना चाहिए कि यह उपन्यास है, हाँ ऐतिहासिक है, अर्थात् उस काल के देशकाल पात्र की परिधि से बाहर नहीं जा सकता। मेरे सभी ऐतिहासिक उपन्यास उपन्यास हैं, इतिहास या जीवनी नहीं।'[१६]

'इस उपन्यास की कथा पालि-वाङ्मय से ली गई है।'[१७] डॉ० नगेन्द्र 'सिंह सेनापति' की ऐतिहासिकता के विषय में लिखते हैं—'सिंह सेनापति' में बिम्बसार और अजातशत्रु के व्यक्तित्व तथा उनका लिच्छवियों से युद्ध ही प्रामाणिक रूप से ऐतिहासिक कहा जा सकता है, यहाँ तक कि नायक सिंह भी काल्पनिक व्यक्ति है।'[१८] इस प्रकार डॉ० नगेन्द्र नायक सिंह को काल्पनिक मानते हैं परन्तु विनयपिटक के 'महावग्ग' में सिंह के विषय में लिखा है—'सिंह नाम का सेनापति पहले जैनमत का अनुयायी था। महात्मा बुद्ध के उपदेश को सुनकर वह उनका अनुयायी बन गया। महात्मा बुद्ध ने सिंह के निमन्त्रण पर सामिष भोजन किया।'[१९] इसके अतिरिक्त 'डिक्शनरी ऑफ़ पाली प्रॉपर नेम्ज़' में सिंह का नाम सिंह के ऐतिहासिक व्यक्तित्व का प्रमाण है।[२०] राहुल जी ने 'महामानव बुद्ध' में भी सिंह का उल्लेख किया है।[२१]

'सिंह सेनापति' में लिच्छवीगण के सामाजिक व राजनीतिक जीवन को प्रस्तुत करना लेखक का उद्देश्य रहा है। उपन्यास में वर्णित लिच्छवीगण की इतिहास-सम्मतता के लिए डॉ० राधाकुमुद मुकर्जी के निम्नलिखित वर्णनों को उद्धृत करना अप्रासंगिक न होगा।

"सभी गणतन्त्रों में लिच्छवी-गणतन्त्र अग्रगण्य था। उसकी राजधानी वैशाली

वर्णित वैशाली के वीरों, कूटगारशाला, महात्मा बुद्ध का सामिप-भोजन ग्रहण करना, जैन और बौद्ध-धर्म की प्रतिद्वंदिता आदि के प्रसङ्ग 'सिंह सेनापति' के अनुकूल है।

'सिंह सेनापति' में वर्णित ऐतिहासिक तथ्यों एवं उपर्युक्त ऐतिहासिक तथ्यों के तुलनात्मक विश्लेषण से स्पष्ट है : (१) 'सिंह सेनापति' का नायक सिंह ऐतिहासिक पात्र है। (२) बिम्बसार, अजातशत्रु तथा प्रसेनजित् इतिहास-प्रसिद्ध नायक (सम्राट्) हैं ही। अन्य गौण पात्रों में वैद्यराज जीवक, महालि, तीर्थंकर महावीर एवं महात्मा बुद्ध भी ऐतिहासिक व्यक्तित्व हैं। (३) मगध और वैशाली के संघर्ष (युद्ध) सम्बन्धी घटनाएँ भी ऐतिहासिक हैं। (४) वैशाली एवं तक्षशिला का गौरवाख्यान भी इतिहास-सम्मत है। लिच्छवियों की गणतन्त्र-प्रणाली का चित्रण इतिहासानुकूल है और तक्षशिला के विश्वविद्यालय का गौरव तो कभी विस्मृत हो ही नहीं सकता। (५) बौद्धमत एवं जैनमत की प्रतिद्वन्द्विता की चर्चा भी इतिहास में प्राप्य है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि 'सिंह सेनापति' इतिहास की आधारभित्ति पर स्थित औपन्यासिक रचना है। कला और काव्य की मर्यादा का इसमें निर्वाह है।

कल्पना—'सिंह सेनापति' के प्रमुख पात्र एवं घटनाएँ ऐतिहासिक हैं। साथ ही अनेक काल्पनिक प्रसंगों की सुन्दर योजना हुई है। गान्धार कुमार कपिल का पूरे-का-पूरा चरित्र कल्पना-प्रसूत है। उसके पराक्रम की कथा, देव-सृष्टि के सुखोपभोग एवं प्रेम-वर्णन लेखक की अपनी ही कल्पना है। गान्धार कुमार के चरित्र की कल्पना में लेखक का अपना जीवन-दर्शन अभिव्यक्त होता है। विशेषकर 'उत्तरकुरु में युद्ध' प्रसंग से सम्बन्धित कपिल के चरित्र में। कृष्ण माली का प्रसंग भी कल्पनाप्रसूत है। इस कल्पना के पीछे भी राहुल जी का जीवन-दर्शन है जिसमें वह हर मानव को स्वच्छन्द देखना चाहते हैं।

'सिंह सेनापति' में बिम्बसार और लिच्छवियों के मध्य युद्ध का वर्णन है, इस युद्ध के वर्णन में लेखक ने अनुमान से काम लिया है। यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि अजातशत्रु ने लिच्छवियों को पराजित किया परन्तु यह प्रसंग उपन्यास का विषय नहीं है। सर्वोपरि 'सिंह सेनापति' के सभी स्त्री-पात्र कल्पित हैं। रोहिणी और क्षेमा के प्रणय प्रसंग तथा भामा की शरारतें एवं व्यंग्य-विनोद के प्रसंग में लेखक की कल्पना है। इसके अतिरिक्त तत्कालीन खान-पान तथा आचार-विचार सम्बन्धी वर्णन में लेखक ने कल्पना का प्रचुर प्रयोग किया है। 'सिंह सेनापति' में इतिहास और कल्पना का सुन्दर समन्वय हुआ है, इसमें सन्देह नहीं।

जय यौधेय

इतिहास—'जय यौधेय' गुप्त-सम्राटों के समकालीन यौधेय जाति के जन-जीवन से सम्बन्धित ऐतिहासिक उपन्यास है। इसकी ऐतिहासिकता के विषय में राहुल जी उपन्यास के प्राक्कथन में लिखते हैं—"जय यौधेय ऐतिहासिक उपन्यास है। इसमें ईसवी सन् ३५०-४०० के भारत की राजनीतिक, सामाजिक अवस्था का चित्रण किया गया है।" प्राक्कथन में लेखक ने गुप्तकालीन शिलालेखों, सिक्कों तथा डॉ० अलतेकर

के ऐतिहासिक ग्रन्थों, फाहियान के यात्रा-विवरण तथा कालिदास के ग्रन्थों को ऐतिहासिक स्रोतों के रूप में उल्लिखित किया है। 'जय यौधेय' में वर्णित मुख्य घटनाएँ, पात्र एवं स्थितियाँ ऐतिहासिक हैं।

यौधेय-जाति के विषय में डॉ० वासुदेव उपाध्याय का कथन है—"यह जाति भारत के पश्चिमोत्तर प्रान्त में बहुत प्राचीन काल से निवास करती थी। पाणिनि ने (ई० पू० ५००) इस जाति को आयुधजीविन् संघ में उल्लिखित किया है।.....यौधेय एक बलशाली जाति समझी जाती थी जिसे समुद्रगुप्त द्वारा पराजित होना पड़ा। ऐसा समझा जाता है कि कुषाण-वंश को नष्ट करने में इस संघ ने भी योग दिया था। ....यौधेयों के कई प्रकार के सिक्के मिलते हैं जिन पर 'यौधेयाना गणस्य जयः' लिखा रहता है। इनका राज्य उत्तरी राजपूताना तथा पूर्वी पंजाब में फैला हुआ था।"[८६]

डॉ० रमेशचन्द्र मजूमदार तथा डॉ० अनन्त शिव अल्तेकर की पुस्तक 'दि वाकाटक-गुप्त एज' में यौधेयगण के विषय में निम्नलिखित तथ्य मिलते हैं—(१) यौधेयों ने द्वितीय शती के अन्त में कुषाणों को पराजित कर उन्हें सतलुज पार भगा दिया। (२) तृतीय और चतुर्थ शती में उत्तरी राजपूताना और दक्षिण-पूर्वी पंजाब में यौधेयों का एक शक्तिशाली गणतन्त्रीय राज्य था। (३) समुद्रगुप्त के इलाहाबाद वाले शिलालेख से ज्ञात होता है कि यौधेय समुद्रगुप्त की प्रभुसत्ता को स्वीकार करते थे।[८७]

राजबली पाण्डेय यौधेयों की अधिगत भूमि के विषय में लिखते हैं—"ये पूर्वी-दक्षिणी पंजाब को अधिगत किये हुए थे। यह पूर्वी-पंजाब सतलुज तथा यमुना की घाटियों के समस्त क्षेत्रों में प्रचुर परिणाम में प्राप्त यौधेयों के सिक्कों से स्पष्ट है।"[८८] डॉ० काशीप्रसाद जायसवाल लिखते हैं—"यौधेय लोग बहुत कठिनता से अधीनता स्वीकार करते थे और समस्त क्षत्रियों से अपनी 'वीर' उपाधि सार्थक करने के कारण उन्हें गर्व था।"[८९] डॉ० राधाकुमुद मुकर्जी ने भी यौधेयों सम्बन्धी उपरिवत् तथ्य ही दिये हैं।[९०] स्वय राहुल जी ने यौधेयों का प्रामाणिक रूप से परिचय दिया है—"यौधेय एक बहुत ही बलशाली गणराज्य था जो यमुना-सतलुज तथा चम्बल-हिमालय के बीच मे अवस्थित था। इतिहास और हमारे पुराने लेखकों ने इसके बारे में बड़ा ही क्रूर मौन धारण किया है। वस्तुत. यदि इनकी चली होती तो यौधेय नाम भी हम तक न पहुचने पाता। ....अब तो इतिहास के गम्भीर गवेषक डॉ० अलतेकर जैसे विद्वान् साफ शब्दों में कहने लगे हैं कि भारत से विदेशी कुषाणों के शासन को खतम करने का श्रेय गुप्तवंश, भारशिव वंश को नहीं, बल्कि यौधेयों को है।"[९१]

सम्राट् समुद्रगुप्त तथा चन्द्रगुप्त द्वितीय के सम्बन्ध में डॉ० वासुदेव उपाध्याय, डॉ० रमाशंकर त्रिपाठी, डॉ० राधाकुमुद मुकर्जी और डॉ० नगेन्द्रनाथ घोष ने इन तथ्यों को प्रकट किया है—(१) 'समुद्रगुप्त की प्रतिमा सर्वतोमुखी थी। वह न केवल युद्ध-नीति तथा रण-कौशल में अद्वितीय था, वरन् शास्त्रों में भी उसकी बुद्धि

अकुठिता थी।[१४] (२) समुद्रगुप्त के अनेक पुत्र थे जिनमे से एक का नाम रामगुप्त था जिसका पिता के पश्चात् राज्य करना कहा जाता है,...... रामगुप्त बड़ा कायर था। रामगुप्त को कायर समझकर चन्द्रगुप्त ने उसका वध कर दिया और स्वयं चन्द्रगुप्त द्वितीय के नाम से गुप्त सम्राट् बना।[१५] (३) सम्राट् समुद्रगुप्त की मृत्यु के पश्चात् गुप्त-साम्राज्य में अशान्ति-सी छा गई तथा राज्यो को निर्बल समझकर शत्रुओ ने युद्ध छेड़ दिया। ऐसी ही विषम स्थिति मे विक्रमादित्य का उदय हुआ तथा इनकी माता दत्तदेवी ने ऐसे पराक्रमी पुत्र को पैदा कर अपने को कृतार्थ समझा।[१६] (४) समुद्रगुप्त की सगीतप्रियता के विषय मे डॉ० उपाध्याय का कथन है, "समुद्रगुप्त के कुछ सोने के सिक्के मिले हैं, जिनमे रंगमच पर बैठे राजा की मूर्ति अकित है और उसके एक ओर महाराजाधिराज समुद्रगुप्त लिखा है।"[१७] (५) दत्तादेवी के विषय मे राखालदास बैनर्जी का कथन है - "दत्तादेवी समुद्रगुप्त की रानी थी। शायद महारानी (अग्रमहिषी या पट्ट महादेवी) थी।"[१८] (६) चन्द्रगुप्त महत्त्वाकाक्षी सेनानायक था। इसीलिए वह पूर्वी पंजाब, मालवा, गुजरात को अपने पैतृक राज्य मे शामिल करने मे सफल हुआ। उसने अपने पिता की भाँति सोने के सिक्के चलाये।[१९]

आचार्य असंग एवं आचार्य वसुबन्धु जो इस उपन्यास मे जय के शिक्षक रूप मे आए हैं, ऐतिहासिक व्यक्ति हैं। दोनों ही बौद्ध धर्म और दर्शन के प्रकाण्ड विद्वान् हैं। डॉ० वासुदेव उपाध्याय का कथन है—(१) "आचार्य असंग का पूरा नाम वसुबन्धु असंग था। परन्तु ये अधिकतर असंग या आर्य असग के नाम से ही प्रसिद्ध हुए। इनका जन्म पुरुषपुर में हुआ .... सम्भवत. गुप्त सम्राट् समुद्रगुप्त के समय में चौथी शताब्दी मे आपका आविर्भाव हुआ।"[२०] (२) आचार्य वसुबन्धु असग के छोटे भाई थे। 'वे वाद-विवाद मे बड़े कुशल थे। सत्तर वर्ष की उम्र मे अपने पूज्य ज्येष्ठ भ्राता असग की प्रेरणा तथा शिक्षा से यह महायान सम्प्रदाय के योगाचार मत मे दीक्षित हुए—इन्होंने भारत के भिन्न-भिन्न स्थानो में भ्रमण करके अपने जीवन के अनेक वर्ष बिताए। शाकल तथा कौशाम्बी में भी इन्होंने कुछ दिनो तक निवास किया था।"[२१] अयोध्या तो इनकी मानों दूसरी जन्मभूमि थी। सम्भव है आचार्य वसुबन्धु समुद्रगुप्त के समसामयिक तथा आश्रित हों।[२२]

'जय यौधेय' का नायक कल्पित है परन्तु उसकी 'यात्राए' कल्पित नहीं। प्रसिद्ध चीनी यात्री फाह्यान की भाँति वह भारत के विभिन्न भागो मे घूमता है। वह यात्रा मे आये स्थानो, वहाँ के शिलालेखो एवं मूर्तियो का वर्णन करता है। ऐसा प्रतीत होता है कि लेखक ने जय की यात्राओं के रूप मे फाह्यान की यात्राओ का वर्णन किया है। फाह्यान के यात्रा-विवरण इस उपन्यास के ऐतिहासिक आधार के रूप मे लेखक ने प्रयुक्त किए ही हैं।[२३] नगेन्द्रनाथ घोष तथा मुकर्जी जैसे इतिहासकारों द्वारा दिये गये फाह्यान के यात्रा-विवरण प्रमाण के लिए देखे जा सकते हैं। नगेन्द्रनाथ घोष के शब्दो में—चन्द्रगुप्त द्वितीय के शासनकाल की एक महत्त्वपूर्ण

घटना चीनी यात्री फाह्यान की भारत-यात्रा थी। .... गान्धार के पहाड़ी इलाकों से होता हुआ और मार्ग में महान् कठिनाइयों और संकटों का सामना करता हुआ पेशावर पहुंचा जहाँ उस समय के प्रायः सभी सुप्रसिद्ध बौद्ध धार्मिक स्थानों का दर्शन किया। पेशावर से वह पंजाब में आ घुसा और क्रमशः दक्षिण-पूर्व की ओर बढ़ता गया। उसने अपनी यात्रा में पड़ने वाले मथुरा, संकाश्य, कन्नौज, कौशाम्बी, काशी, कुशीनारा, श्रावस्ती, कपिलवस्तु, पाटलिपुत्र, नालन्दा आदि स्थानों का भ्रमण किया। इसके बाद उसने ताम्रलिप्ति (तामलुक) के लिए प्रस्थान किया जहाँ से समुद्र द्वारा वह स्वदेश को लौट गया। स्वदेश लौटते समय वह सिंहल तथा जावा में भी ठहरा था।"[101] डॉ० राधाकुमुद मुकर्जी ने फाह्यान को चन्द्रगुप्त द्वितीय के समकालीन माना है। अपनी यात्रा में फाह्यान ने पेशावर, पाटलिपुत्र, गया आदि को देखा। तामलुक (ताम्रलिप्ति) से पोत द्वारा वह जावा, चम्पा और सिंहल गया। पोत-यात्रा में एक बार तूफान भी आया।[102]

फाह्यान की इस यात्रा-कथा और 'जय यौधेय' के जय के यात्रा-स्थानों के विवरण की तुलना से स्पष्ट होता है कि दोनों यात्री अपनी यात्रा में एक ही मार्ग से गुजरे हैं और उनकी यात्रा का उद्देश्य भी बौद्धधर्म के दर्शनीय स्थानों का दर्शन करना है। यहाँ तक कि दोनों ने ताम्रलिप्ति से सिंहल की यात्रा पोतों में की और मार्ग में तूफान भी आया। अभिप्राय यह कि जय की देशयात्रा के रूप में राहुल ने फाह्यान की ऐतिहासिक यात्रा का विवरण प्रस्तुत किया है।

'जय यौधेय' की रचना के लिए राहुल ने कालिदास के ग्रन्थों की भी सहायता ली है।[103] वासुदेव उपाध्याय,[104] डॉ० त्रिपाठी,[105] डॉ० एन०एन०घोष[106] तथा मजूमदार[107] कालिदास को चन्द्रगुप्त द्वितीय का समकालीन मानते हैं और डॉ० उपाध्याय ने तो कालिदास का कुन्तल प्रदेश में राजदूत बनकर जाने का भी उल्लेख किया है।[108] राहुल जी भी कालिदास को चन्द्रगुप्त का समकालीन ही मानते हैं और उन्होंने यौधेय-भूमि में राजदूत बनाकर भेजे जाने का अनुमान किया है। 'जय यौधेय' में वर्णित तत्कालीन परिस्थितियाँ कालिदास के ग्रन्थों पर आधृत प्रतीत होती हैं। हिमालय और उत्सव-संकेत का वर्णन कालिदास ने भी किया है।[109] कालिदास ने अनेक ललित कलाओं का भी वर्णन किया है जो 'जय यौधेय' में भी वर्णित है। 'कविता तथा नाटक, संगीत तथा नृत्य, चित्रकला, मूर्तिकरण तथा स्थापत्य विविध विवरण युक्त सबका वर्णन किया है। ... ... विवाह और वसन्तागमन के उत्सवों पर अभिनय साधारणतया होता था। . ... ललित कलाओं की सीखने में स्त्रियों का विशेष स्थान था।'[110]

'जय यौधेय' में कालिदास ने अपने को दैवशालियों का कवि कहा है।[111] और रघु के माध्यम से समुद्रगुप्त की कथा कही है। वासुदेव उपाध्याय का निम्नलिखित कथन इन तथ्यों की प्रामाणिकता स्थापित करता है—'महाकवि कालिदास ने रघु की दिग्विजय के व्याज से इसी धर्मविजयी नरेश की दिग्विजय का वर्णन किया है।'[112]

डॉ राधाकमल मुकर्जी के अनुसार भी 'रघुवंश' में 'एक महान् दिग्विजय का वर्णन किया गया है जिसे पढ़कर समुद्रगुप्त की भारत-विजय की याद आती है। समुद्रगुप्त के अश्वमेध यज्ञ की प्रतिध्वनि 'मालविकाग्निमित्र' में भी है।'[११४]

इस प्रकार 'जय यौधेय' का कालिदास ऐतिहासिक व्यक्ति है। इस उपन्यास में उल्लिखित उत्सव-संकेत हिमालय का वर्णन, तत्कालीन भारतीय समाज की कला-प्रियता, समुद्रगुप्त की दिग्विजय आदि का उल्लेख कालिदास के 'रघुवंश', 'कुमार सम्भव' एवं 'मेघदूत' आदि रचनाओं के आधार पर है।

राहुल जी का 'जय यौधेय' यथार्थ ऐतिहासिक तथ्यों पर आधारित है। डॉ० सावित्री सिन्हा के शब्दों में—'जय यौधेय में गुप्तकालीन राजनीतिक, सामाजिक धार्मिक और नैतिक स्थितियों का चित्रण किया गया है। ऐतिहासिक प्रमाण के लिए चीनी यात्री फाह्यान के वक्तव्यों, शिलालेखों और सिक्कों का आधार ग्रहण किया गया है।'[११५]

कल्पना :—ऐतिहासिक तथ्यों की सुदृढ़ भित्ति पर आधारित जय यौधेय में सर्वाभत एवं मधुर कल्पना का सन्निवेश है। सर्वप्रथम उपन्यास का नायक 'जय' कल्पित पात्र है। इस विषय में राहुल जी की स्वोक्ति है—"यौधेयों का जाति के तौर पर नाम विस्मृत हो चुका था, तो उनके व्यक्तियों के नामों के मिलने की आशा कहाँ से हो सकती है।"[११६] जय की बाल्यकाल की घटनाएँ एवं यौवन के यायावरी के प्रसंग राहुल जी की मधुर कल्पनाएँ हैं। उपन्यास की आधिकारिक कथा में यौधेयों एवं गुप्त शासकों के सम्बन्ध एवं संघर्ष के अतिरिक्त अधिकांश घटनाएँ काल्पनिक हैं। हाँ, इतना अवश्य है कि वे घटनाएँ राहुल जी की ऐतिहासिक कल्पना से प्रसूत होने के कारण इतिहास-विरोधी नहीं। 'जय' की तरह अन्य यौधेय पात्र भी कल्पित हैं। उनके प्रणय-प्रसंग एवं आमोद-प्रमोद के वर्णन में उपन्यासकार की कल्पना का चमत्कार द्रष्टव्य है।

जय से सम्बद्ध आधिकारिक कथा के अतिरिक्त उपन्यास में सिंहवर्मा और उसकी प्रेमिका वासन्ती का प्रसंग है। यह प्रसंग उपन्यासकार की कल्पना है। कांची की ओर जाते हुए समुद्र में तूफान के आने के कारण सभी यात्री मर जाते हैं। केवल जय और उसका मित्र सिंहवर्मा अपनी प्रेमिका वासन्ती के साथ जीवित रहता है। सिंहवर्मा और वासन्ती के प्रणय-परिणय का प्रसंग उपन्यास में रोचकता की सृष्टि करता है। शबरों की पल्ली में जय का शबर युवती से विवाह भी काल्पनिक है। शबरों के जीवन-अंकन में भी राहुल जी की मधुर-उर्वर कल्पना दर्शनीय है। इसके अतिरिक्त उपन्यास में वर्णित यौधेयों का जीवन भी कल्पना पर ही आधृत है। अतः स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि इतिहास-प्रसिद्ध गुप्त-सम्राटों एवं यौधेयों के साथ उनके संघर्ष का चित्रण करने के लिए उपन्यासकार कल्पना-सूत्रों के उपयोग से कथा-विकास करने में समर्थ हुआ है।

मधुर स्वप्न

इतिहास—'मधुर स्वप्न' में ईरान के सम्राट् शाह कवात् की जीवन घटनाओं

को चित्रित किया गया है। मज्दक मत का अनुयायी होने के कारण शाह कवात् को पदच्युत होना पड़ता है। कालान्तर में हूण सम्राट् तोरमान की सहायता से वह पुनः सिंहासनारूढ़ होता है। उपन्यास के अन्त में उत्तराधिकार के प्रश्न पर वह मज्दकियों का विरोध करता है और उनका वध करवा देता है। इस उपन्यास में ५वीं-६ठी शती ईसवी के ईरान के जीवन का चित्रण है। राहुल जी ने उपन्यास के प्राक्कथन में कहा है—"मैंने इस उपन्यास के द्वारा इतिहास के एक विस्मृत पन्ने को पाठकों के सामने रखने की कोशिश की है।" उपन्यास के परिशिष्ट में राहुल जी ने ईसाई पारसी तथा मुसलमान लेखकों की कृतियों से उद्धरण प्रस्तुत कर उपन्यास के ऐतिहासिक तथ्यों को स्पष्ट किया है।

'इनसाइक्लोपीडिया ऑफ़ रिलीजन एण्ड एथिक्स,' 'ईरान' (आर० घिर्शमैन तथा 'ओरान' (राहुल सांकृत्यायन) में मज्दक और उसके मत के विषय में निम्न लिखित तथ्य प्राप्त होते हैं—

१. वामदात् पुत्र मज्दक, ईरान में पाँचवी शती के अन्त में साम्यवादी वर्ग का नेता हुआ है। ईरान की अराजकता के कारण इस मत के प्रसार में सहायता मिली है। उसे (कवात्) राज्य में शक्तिशाली सामन्तों तथा मज्दकी अनुयायियों जो दलित वर्ग को उन्नत बनाने के लिए सामाजिक सुधारों की माँग कर रहे थे—में से एक का पक्ष लेना था और उसने मज्दकी अनुयायियों का पक्ष लिया।[११७]

२. मज्दक का मत साम्यवादी था। वह सामाजिक वैषम्य का विरोधी था। मज्दकी पति-पत्नी के सम्बन्ध के स्थान पर 'सम्मिलित पत्नी' के सिद्धान्त के प्रचारक थे।[११८] "इसके सामाजिक सिद्धान्त वस्तुओं के समवितरण पर जोर देते थे। अमीरों को अपनी सम्पत्ति निर्धनों को देनी चाहिए। सम्पत्ति ही नहीं, स्त्रियों तक पर भी व्यक्ति का अधिकार नहीं होना चाहिए।"[११९] राहुल जी ने 'ओरान' में भी इस प्रकार का तथ्य प्रस्तुत किया है।[१२०]

३. मज्दकी-आन्दोलन एक ऐसे धर्म का अनुयायी था जिसके अपने ही सिद्धान्त थे, जो मुख्यतः मानी की शिक्षाओं से लिये गये थे। मज्दक के सिद्धान्त रूढ़िवादी, सामन्तवादी समाज के लिए क्रान्तिकारी थे। इसे ईरानी साम्यवाद उचित ही कहा जा सकता है।[१२१]

४. मज्दक समाज-सुधारक था। साम्यवाद ही उसकी दृष्टि में समाज-सुधार का मार्ग था। मज्दकी साम्यवाद धर्मसापेक्ष था। मज्दकी भगवान् अहुर्मज्द के उपासक थे।[१२२] उक्त तथ्य सर परसी स्काईस की पुस्तक "ए हिस्ट्री ऑफ़ परशिया' में भी इसी रूप में प्राप्त होते हैं।[१२३]

'मधुर स्वप्न' के नायक सम्राट् कवात् के विषय में "ए हिस्ट्री ऑफ़ परशिया' 'ईरान' और "दि इनसाइक्लोपीडिया अमेरिकना" में निम्नलिखित तथ्य प्राप्त होते हैं :—

१. कवात् सन् ४८७ ई० में ईरान का शासक बना।[१२४] कई वर्षों के अकाल,

फीरोज़ के युद्ध तथा उसकी पराजय के कारण, आर्थिक दृष्टि से उसका शासन अत्यन्त डाँवाडोल था। राजा को धन की आवश्यकता थी, परन्तु राज्यकोष रिक्त था। उत्तरी सीमा की हूणों से सुरक्षा का प्रबन्ध भी करना था।[१२५]

२. शासनकाल के आरम्भ में कवात् मज्दक के साम्यवादी विचारों से प्रभावित हुआ। उसने इस आन्दोलन को संरक्षण प्रदान किया और बहुत से कानूनों में परिवर्तन किया, जिनमें से कुछ तो नारी-सम्बन्धी थे। एक षड्यन्त्र द्वारा उसे सिंहासन से उतार दिया गया और उसके भाई जामास्प को सिंहासन पर बैठाया गया। उसे मृत्यु की सज़ा नहीं दी गई और कारावास में डाल दिया गया।[१२६]

३. अपनी पत्नी की सहायता से कारावास से निकल वह जल्दी ही भाग गया और हेफ्तालियों के दरबार में शरण ली। ४९९ ई० में हेफ्तालियों (हूणों) की सहायता से उसने अपने भाई जामास्प को राजगद्दी से उतार दिया।[१२७]

४. कवद (कवात्) के फिर से गद्दी पर बैठने पर मज्दक के अनुयायियों का प्रभाव फिर बढ़ने लगा और फिर वही तनातनी शुरू हुई। मज्दक के अनुयायियों ने अपनी शक्ति को मज़बूत करना चाहा। इस पर कवद (कवात्) भी विरोधी बन गया और उसकी आज्ञा से हज़ारों मज्दकी तलवार के घाट उतारे गये।[१२८]

५. शाह कवात् की मृत्यु ५३१ ई० में हुई।[१२९] उसकी मृत्यु के बाद नौशेरवां ईरान का शासक बना। खुसरो के राज्यारोहण के विषय में 'ईरान' में लिखा है—"अनवशिरवान सासानी वंश के बड़े प्रतापी राजाओं में हैं। कवद की इच्छा नौशेरवां को ही गद्दी देने की थी। उसकी मृत्यु के बाद उसके बड़े लड़के ने ही गद्दी सम्भाली, किन्तु महामन्त्री ने मृत शाह की इच्छा को उपस्थित कर नौशेरवां का पक्ष लिया और इस प्रकार वह राजा उद्घोषित हुआ। अब भी भाइयों और सम्बन्धियों ने बड़े-बड़े षड्यन्त्र जारी रक्खे और नौशेरवां को अपने सभी भाइयों और उनकी पुत्र-सन्तानों को मार डालने पर मजबूर होना पड़ा। मज्दक अब भी जीवित था। उसके अनुयायियों की संख्या भी काफी थी। नौशेरवां ने इन्हें भी अपने रास्ते का काँटा समझा और मज्दक के साथ उसके एक लाख अनुयायी मार डाले गये। नौशेरवां का नाम पहले खुसरो था। मज्दकियों की हत्या के बाद ही उसने नवशिरवान की उपाधि धारण की।'[१३०]

इस प्रकार 'मधुर स्वप्न' में वर्णित मज्दक और उसके धर्म, शाहकवात् एवं खुसरो से सम्बद्ध प्रसंग ऐतिहासिक हैं। 'मधुर स्वप्न' के परिशिष्ट में राहुल जी ने उपन्यास की ऐतिहासिक सामग्री के विषय में लिखा है—"मज्दक काल्पनिक नहीं, ऐतिहासिक व्यक्ति थे। ·········मज्दक के सम्बन्ध में जो सामग्री मिलती है, उसमें सबसे पुरानी ईसाई-नेस्तोरों की कृतियाँ हैं, जिनमें अपने धर्म का इतिहास लिखते हुए प्रसंगतः ईरानी शाहंशाहों का ज़िक्र आ जाता है। इसके बाद दूसरा स्रोत पारसी लोगों की पुस्तकें हैं और तीसरी तथा अन्तिम सामग्री मुसलमान लेखकों की अरबी-फारसी की पुस्तकों में मिलती है।" निष्कर्ष यह कि उपन्यास की मुख्य कथा, मुख्य

पात्र एवं मज्दकी आन्दोलन इतिहास-सम्मत तथ्य हैं। गौणपात्र जैसे जामास्प, सम्राट् तोरमान, मिहिरकुल आदि भी ऐतिहासिक पात्र हैं। तत्कालीन परिस्थितियों का चित्रण भी इतिहासानुकूल है। डॉ० कमलकुमारी जौहरी ने 'मधुर स्वप्न' की ऐतिहासिकता पर आक्षेप किया है—'सिंह सेनापति' के तक्षशिला और वैशाली के गणतन्त्र तथा 'मधुर स्वप्न' के दिहवगान—इन सभी का राजनीतिक तथा सामाजिक जीवन बिल्कुल एक-सा है और यह जीवन लेखक की रुचि और कल्पना का साम्यवादी जीवन है, यह सूर्य के प्रकाश की भाँति स्पष्ट है। यह कैसे माना जा सकता है कि चित्रित इन विभिन्न कालों और देशों का जीवन एक-सा ही होगा। अतः यह स्पष्ट है कि लेखक ने इनमे ऐतिहासिकता का निर्वाह प्रायः नहीं किया है, बल्कि अपनी भावना का आरोप किया है।'[११] डॉ० जौहरी का कथन सर्वांशेन सत्य नहीं। यह ठीक है कि राहुल ने दिहवगान के चित्रण में कल्पना का प्रयोग किया है, अपनी भावना का आरोप किया है परन्तु इससे मुख्य घटनाओं, पात्रों एवं परिस्थितियों की ऐतिहासिकता को आंच नहीं आ सकती।

कल्पना :—'मधुर स्वप्न' के अधिकांश नारी पात्र (सम्बिक् को छोड़ कर) काल्पनिक हैं। इनमें शुद्ध काल्पनिक व्यक्तित्व घुमन्तु कन्या वर्दक का है। यह चरित्र इतना आकर्षक, स्वाभाविक और सजीव रूप में अंकित किया गया है कि इससे राहुल की कल्पना अपने चरम पर पहुँच जाती है। राहुल जी की वर्दक—एक सुष्ठु कल्पना—मनमोहक है, अविस्मरणीय है। इस लोली कन्या का रगा के विस्पोह्र के प्रासाद में नृत्य करते हुए मृत्यु का प्रसंग अत्यन्त कारुणिक है। लोलियों के स्वच्छन्द जीवन के चित्रण मे भी लेखक की कल्पना सजीव है। 'दिहवगान' का चित्रण – वहाँ की परिस्थितियों एवं सभ्यता का चित्रण—लेखक की साम्यवादी विचारधारा से प्रभावित है। इस अंश को भी उपन्यास मे कल्पित ही कहा जायेगा। लेखक ने अतीत पर अपनी साम्यवादी भावनाओं का आरोप किया है। 'बाईसवीं सदी' मे जिस साम्यवादी समाज की झलक है, वह यहाँ भी द्रष्टव्य है।

विस्मृत यात्री

इतिहास—'विस्मृत यात्री' इतिहासज्ञ एवं यायावर राहुल की कृति है। यह रचना उनके अपने व्यक्तित्व के अनुरूप है। इसमे बौद्ध यात्री नरेन्द्रयश का जीवन-चरित निरूपित हुआ है। नरेन्द्रयश छठी शती के 'उद्यान' प्रदेश का एक बौद्ध यात्री है। वह भारत और लंका की यात्राओं के अनन्तर चीन जाता है। वहाँ बौद्ध-धर्म का प्रचार एवं बौद्ध ग्रन्थों का चीनी भाषा में अनुवाद करता है। नरेन्द्रयश के विषय में राहुल जी लिखते हैं—"नरेन्द्रयश कोई कल्पित पात्र नहीं है, वह हमारे ही देश के—अब पश्चिमी पाकिस्तान के—स्वात (उद्यान) की भूमि मे सन् ५१८ ई० में पैदा हुए थे। उन्होंने भिक्षु बनने के बाद भारत, सिंहल, मध्य-एशिया और चीन में विचरण किया था और अन्त मे आधुनिक सियान महानगरी में अपना शरीर छोड़ा।"[११४] नरेन्द्रयश-विषयक ऐतिहासिक सामग्री लेखक को डॉ० पा० बाउ से प्राप्त हुई है जिसका उल्लेख

इन्होंने उपन्यास की भूमिका में किया है। इसके अतिरिक्त उसके जीवन-परिचय तथा यात्राओं आदि से सम्बन्धित विवरण राहुल जी ने 'घुमक्कड़राज नरेन्द्रयश' नामक लेख में भी दिये हैं।[133] उसकी भारत और सिंहल यात्रा के विषय में वे लिखते हैं—'वे भारत के सभी बौद्ध तीर्थों में गये। सर्वास्तिवादियों के गढ़ मथुरा को उन्होंने देखा ही होगा, श्रावस्ती-जेतवन, लुम्बिनी, ऋषिपत्तन, सारनाथ आदि के दर्शन से वे अपने को कैसे वंचित रख सकते थे। भारत और सिंहल के उन पवित्र स्थानों को नरेन्द्रयश ने जरूर ही देखा होगा, जिनकी यात्रा एक शताब्दी पहले चीनी पर्यटक फाह्यान कर चुका था। सिंहल में वह महाविहार या अभयगिरि-विहार में भी रहे होंगे। उनकी भारत की यह सारी यात्रा केवल यात्रा के तौर पर ही नहीं हुई होगी, बल्कि यहीं पर उन्हें बड़े-बड़े विद्वानों के सम्पर्क में आकर अपने ज्ञान-कोष को बढ़ाने का सौभाग्य भी मिला होगा।'[134] इस प्रकार नरेन्द्रयश का व्यक्तित्व और उसकी यात्राएँ ऐतिहासिक हैं, इसमें सन्देह नहीं।

नरेन्द्रयश ने चीन में रहकर बौद्ध-धर्म के ग्रन्थों का चीनी भाषा में अनुवाद किया। उनके समय चीन में और भी कितने ही भारतीय पण्डित अनुवाद का काम कर रहे थे जिनमें उपशून्य, परमार्थ, मन्द्रसेन, ज्ञानभद्र, जिनगुप्त, गौतम धर्मप्रज्ञ, विनीत-रुचि और धर्मगुप्त मुख्य थे।[135]

इस प्रकार राहुल ने अपने उपन्यास की ऐतिहासिकता के विषय में स्वयं ही पर्याप्त प्रकाश डाला है। 'घुमक्कड़राज नरेन्द्रयश' लेख को प्रस्तुत उपन्यास की विस्तृत भूमिका माना जा सकता है। नरेन्द्रयश-विषयक उक्त तथ्यों का समर्थन 'इण्डिया एण्ड चाइना' तथा 'चीनी बौद्ध-धर्म का इतिहास' से हो जाता है। इन पुस्तकों में आये नरेन्द्रयश, उनके समकालीन भारतीय पण्डितों एवं सुई-वंश में सम्बन्धित तथ्य निम्नलिखित हैं—

(१) नरेन्द्रयश उद्यान प्रदेश का बौद्ध भिक्षु था। उसने मध्य-एशिया के विभिन्न देशों की यात्रा की। चीन में रहकर उसने बौद्ध-ग्रन्थों का संस्कृत व पालि से चीनी भाषा में अनुवाद किया। उनका चीन में सन् ५८९ ई० में देहान्त हुआ।[136]

(२) गौतम प्रज्ञा-रुचि, उपशून्य, गुणभद्र, यशोगुप्त आदि ने बौद्ध-ग्रन्थों को अनूदित किया।[137]

(३) सुई वंश का संस्थापक याग चिएन था। वह इतिहास में 'वेनती' नाम से विख्यात हुआ। बौद्ध-धर्म में उसकी अगाध श्रद्धा थी। वेनती का राज्यकाल ५५९ ई० से ६०४ ई० है।[138]

इस प्रकार घुमक्कड़राज नरेन्द्रयश के कथा-सम्बन्धी मुख्य तथ्य ऐतिहासिक हैं। इसके अतिरिक्त यात्रा-सम्बन्धी विवरण एवं भारत, सिंहल तथा चीन की तत्कालीन परिस्थितियों का चित्रण इसकी ऐतिहासिकता को पुष्ट करते हैं। राहुल जी ने उप-

न्यास में इतिहास, भूगोल, सम्बन्धित देश-काल एवं मुख्य पात्रों को ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर प्रस्तुत किया है।

कल्पना—प्रस्तुत उपन्यास में प्रासंगिक कथा जिसका सम्बन्ध 'शान्तिर' से है, लेखक की कल्पना है। उपन्यास के नारी-पात्र एवं उनके प्रणय-प्रसंग कल्पना-प्रसूत हैं। नरेन्द्रयश का देशाटन-वर्णन लेखक की कल्पना ही प्रतीत होती है। कुटिल आदि भिक्षुओं का बलिदान एवं नरेन्द्रयश का प्रभाव भी काल्पनिक प्रसंग हैं। इस प्रकार इस उपन्यास में बहुत कम स्थल ही काल्पनिक हैं, लेखक का बौद्ध-धर्म-सम्बन्धी प्रकाण्ड ज्ञान, चीनी इतिहास का ज्ञान, बौद्ध प्रदेशों एवं स्थानों सम्बन्धी भौगोलिक ज्ञान इस उपन्यास में मुखरित हो रहा है।

राहुल जी के उपन्यासों में इतिहास और कल्पना के सामंजस्य पर विचार करने के अनन्तर यह सहज कहा जा सकता है कि राहुल जी ने इतिहास और कल्पना को एक साथ मिलाकर अपने उपन्यासों को कलात्मक रूप प्रदान किया है। प्रकाशचन्द्र गुप्त के शब्दों में—'ऐतिहासिक उपन्यास की सृष्टि में·········इतिहास पर पूर्ण अधिकार के साथ ही अपूर्व कला-सृजन का गुण भी आवश्यक है। राहुल जी का पाण्डित्य सुपरिचित है। आश्चर्य उनकी कलात्मक प्रतिभा पर होता है। वे इतिहास और कल्पना, इन विरोधी तत्त्वों का अपूर्व समन्वय करने में सफल हुए हैं।'[१३६] इतिहास और कल्पना के समन्वय में राहुल जी ने कहीं ऐतिहासिक तथ्यों को कल्पना से अभिभूत नहीं होने दिया। ऐतिहासिक तथ्य अधिकृत रूप से उनकी कृतियों में विद्यमान हैं। डॉ० भगीरथ मिश्र इसीलिए उन्हें प्रधानतया सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक उपन्यासकार के रूप में महत्त्व देते हैं।[१४०] राहुल जी ने अपने कथानकों के लिए सांस्कृतिक और ऐतिहासिक अनुसन्धान किये हैं। वस्तुतः राहुल जी ऐतिहासिक उपन्यासकार के कर्त्तव्य के प्रति सर्वत्र सजग हैं। उनके उपन्यासों में कल्पनातिरेक नहीं है, इतिहास और कल्पना के सुसामंजस्य का मध्य-मार्ग ही उन्हें सर्वत्र अनुकरणीय रहा है।

राहुल जी की उपन्यास-कला

कथा-शिल्प

'राहुल जी के पास ऐतिहासिक सामग्री का अक्षय भाण्डार है, ऐश्वर्यमती कल्पना है, एकान्त स्वच्छ और निर्भ्रान्त जीवन-दर्शन है और सहस्रों वर्षों के व्यवधान के आर-पार देखने वाली तीव्र दृष्टि है, परन्तु कथाशिल्प विशेष नहीं है।'[१४१] डॉ० नगेन्द्र के इन शब्दों से स्पष्ट है कि राहुल जी में कथा-निर्माण की कलात्मक विशेषताओं का प्रायः अभाव है। स्वयं राहुल जी का कथन है कि उनके ऐतिहासिक उपन्यास उपन्यास न होकर औपन्यासिक इतिहास हैं।[१४२] उनका यह कथन उनकी उपन्यास-कला की ओर सम्यक् संकेत करता है। वास्तव में उनके उपन्यासों में इतिहास अधिक है और कला कम। अतीत के सांस्कृतिक ऐश्वर्य की अभिव्यक्ति ही उनमें प्रमुख है। डॉ० प्रतापनारायण टण्डन का मत इस विषय में उल्लेख्य है—'ऐति-

हासिक उपन्यासों की परम्परा में सांस्कृतिक पक्ष को प्रधानता देकर चलने वाले उपन्यासकारों में महापण्डित राहुल सांकृत्यायन प्रमुख हैं। इनमे (उपन्यासों में) उन्होंने जिस प्रकार के कथानक का प्रयोग किया है उस पर सांस्कृतिकता की छाप स्पष्ट है परन्तु राहुल सांकृत्यायन के ऐतिहासिक उपन्यासों के सम्बन्ध मे यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि कथानक सांस्कृतिक बोझ से इतने आक्रान्त हो गये हैं कि उपन्यास न लगकर सांस्कृतिक इतिहास लगते हैं।'[१५३] निष्कर्ष यह कि राहुल जी के उपन्यास 'औपन्यासिक इतिहास' अथवा 'सांस्कृतिक इतिहास' अधिक हैं – उपन्यास कम। अतः यदि उनके कथाशिल्प में कलात्मकता की न्यूनता हो, तो कोई आश्चर्य नहीं।

कथा का आधार—राहुल जी के उपन्यासों का आधार भारतीय एवं ईरानी इतिहास और समाज है। भारतीय इतिहास में उन्होंने वैदिककाल से लेकर आधुनिक काल तक के इतिहास को औपन्यासिक रूप दिया है। 'दिवोदास' ऋग्वेदकालीन आर्यों के सांस्कृतिक जीवन का कथारूप है। 'सिंह सेनापति' और 'जय यौधेय' में क्रमश: ५०० ई० पूर्व तथा ३५०-४०० ई० के गणराज्यों से सम्बन्धित कथानक हैं। 'विस्मृत-यात्री' की कालावधि छठी शती है। 'राजस्थानी रनिवास' में पूर्वार्ध बीसवीं शती की सात पर्दों के भीतर रहने वाली ठकुरानियों की बेवसी और दुख तथा पुरुषों की स्वेच्छाचारिता की कहानी कही गई है।[१५४] उनके राजनीतिक उपन्यास 'जीने के लिए' में भारतीय स्वतन्त्रता-संघर्ष की कथा है। 'मधुर स्वप्न' में भारतीय जीवन की परिधि को लाँघ कर राहुल जी ने एशियाई जीवन की विस्तृत परिधि में प्रवेश किया है। इस उपन्यास में छठी शती के ईरान का इतिहास प्रस्तुत है। इस प्रकार राहुल जी ने अपने उपन्यासों में भारत के अतीत एवं आधुनिक समाज को अपनी कथा का आधार बनाया है। डॉ नगेन्द्र के शब्दों में—'इन उपन्यासों की वास्तविक महिमा अतीत भारत के सजीव चित्र उपस्थित करने में है।'[१५५]

इतिहास और समाज के साथ-साथ राहुल जी ने अद्भुत वैज्ञानिक तथ्यों को भी कथा का आधार बनाया है। उनके रूपान्तरित उपन्यास 'जादू का मुल्क', 'शैतान की आँख', 'विस्मृति के गर्भ में' तथा 'सोने की ढाल' में अद्भुत वैज्ञानिक तथ्यों को कथा का आधार बनाया गया है। उनकी 'बाईसवीं सदी' के निर्माण का आधार भी वैज्ञानिक तथ्य हैं।

ऐतिहासिक शोध—राहुल जी ने अपने उपन्यासों में जिन ऐतिहासिक घटनाओं का चित्रण किया है, उन्हें विश्वसनीय बनाने के लिए आधारभूत ऐतिहासिक घटनाओं का विशद अध्ययन एवं अनुसन्धान किया है। उनके कथानकों की आधार-*शिला उनके ऐतिहासिक अनुसन्धान पर टिकी हुई है। महापण्डित राहुल ने गणराज्यों* से सम्बद्ध विकीर्ण ऐतिहासिक सामग्री को एकत्र कर विलुप्त इतिहास को प्रकाशित किया है। इतिहास के साथ-साथ राहुल जी ने पुरातत्त्व को भी महत्त्व दिया है। वे जनश्रुतियों एवं किंवदन्तियों में मार्मिक सत्य ही स्वीकारते हैं। उनके ऐतिहासिक

उपन्यासों में इतिहास और कल्पना का अद्भुत समन्वय है, जिसे हम पीछे विवेचित कर चुके हैं। उनके सामाजिक उपन्यासों में उनके जीवनगत अनुभव बिखरे हुए हैं।

कथा-संकेत एवं कथा का आरम्भ —राहुल ने अपने उपन्यासों के प्राक्कथनों में (विशेष रूप से ऐतिहासिक उपन्यासों में) तत्कालीन राजनीतिक तथा सामाजिक परिस्थितियों का उल्लेख कर कथा की पृष्ठभूमि को स्पष्ट कर दिया है। इस स्पष्टीकरण के प्रति वे बड़े सतर्क दिखाई देते हैं। उदाहरणार्थ 'विस्मृत यात्री' के 'दो शब्द' में राहुल जी नायक नरेन्द्रयश का संक्षिप्त जीवन-वृत्त प्रस्तुत कर देते हैं।। 'जय यौधेय' के प्राक्कथन में वे यौधेयगण-विषयक ऐतिहासिक सामग्री का उल्लेख कर कथा-सूत्र की ओर भी संकेत कर देते हैं। 'सिंह सेनापति' का विषय-प्रवेश तो उपन्यास के कथानक का अंग ही बन गया है। इसमें राहुल जी ने औपन्यासिक तथ्यों की ऐतिहासिक सत्यता प्रमाणित करने के लिए रोचक कथा गढ़ी है जो उनकी मौलिक कल्पना है। 'सिंह सेनापति' की इस शैली का अनुकरण आचार्य द्विवेदी के उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में हुआ है। इस प्रकार इस उपन्यास के विषय-प्रवेश द्वारा राहुल जी कथानक का आरम्भ करते हैं। राहुल जी के सभी उपन्यासों में कथा का प्रारम्भ शीर्षकों द्वारा हुआ है। 'जय यौधेय' का आरम्भ 'समुद्रगुप्त और यौधेय' शीर्षक से हुआ है। 'जीने के लिए' का 'बाल्यस्मृति' द्वारा और 'दिवोदास' का 'सात पुरियों का ध्वंस' शीर्षक से। इतना ही नहीं, उन्होंने अपने सभी उपन्यासों में कथा का विभाजन परिच्छेदों के स्थान पर शीर्षकों में किया है। इस विधि से उपन्यासकार कथा की पूर्व ही जानकारी करवा देता है। इससे उपन्यास की कथा समझने में पाठक को सारल्य अवश्य अनुभव होता है, पर साथ ही उनका कथानक-विषयक औत्सुक्य कम हो जाता है।

कथा-विकास—राहुल जी के ऐतिहासिक और सामाजिक उपन्यासों में कथा-विकास अपेक्षाकृत सरल ढंग से हुआ है। उनके कथानक जटिल न होकर सरल शिल्प-विधान रखते हैं। प्रासंगिक घटनाओं की भरमार वहाँ नहीं है। 'जीने के लिए' उपन्यास में मोहनलाल-विषयक एक प्रकरी कथा है। 'सिंह सेनापति' और 'जय यौधेय' में भी एक-एक ही प्रासंगिक कथा है। 'विस्मृत यात्री' में बुद्धिल की कथा भी प्रकरी मानी जा सकती है। 'दिवोदास' में प्रासंगिक कथाओं का अभाव ही है। इस प्रकार राहुल जी अत्यंत सरल ढंग से कथा का विकास करते हैं। कथा-विकास के लिए वे किसी बंधी-बंधाई परम्परा के अनुगामी नहीं हैं। फिर भी उन्होंने कथा-विकास-हेतु कुछ नई विधियों का प्रयोग किया है, जिनका विवेचन यहाँ अभीष्ट है।

(क) यायावरी के प्रसंग—राहुल जी के औपन्यासिक वस्तु-निर्माण में यायावरी के प्रसंगों का सर्वाधिक प्रयोग है। राहुल जी यात्रा और कथा-कहानी में अभेद का सम्बन्ध मानते हैं। अपने चरित-नायकों की जीवन-यात्रा-वर्णन में वे उनके यात्रा के प्रसंगों का अवश्य चयन करते हैं। इस चयन में लेखक का अपना स्वानुभव उभरा है। 'विस्मृत यात्री' उपन्यास नरेन्द्रयश की यायावरी प्रवृत्ति का आख्यान बन गया

है। डॉ० सुषमा धवन के शब्दों में—"उपन्यास में नायक का जीवन यात्रा का रूप धारण करता है। उसकी जीवन-यात्रा में अनेक स्थलों, विविध जातियों, असंख्य गाँवों एवं नगरों, विभिन्न व्यक्तियों का परिचय प्राप्त होता है जो उसके मन को विकसित करते तथा हृदय को उदार बनाते हैं। वह चलते-चलते उन-उन स्थलों, व्यक्तियों और जातियों के सम्बन्ध में अपने भाव और विचार व्यक्त करता हुआ जीवन की व्याख्या करता जाता है, जिसके आधार पर उसके निजी व्यक्तित्व की रूपरेखा बनती है।"[१७१] इसी प्रकार 'जीने के लिए' का देवराज यूरोप तथा रूस की यात्रा करता है। इसी उपन्यास में ज्याफरे-दम्पती की कश्मीर-यात्रा का भी वर्णन है। 'रेलयात्रा', 'हिमालय', 'देश-विदेश' आदि शीर्षक नायक तथा अन्य पात्रों की यात्रा-प्रवृत्ति के सूचक हैं। 'जय यौधेय' में नायक जय गान्धार, हिमालय, काँची, सिंहल आदि की यात्रा करता है। 'सिंह सेनापति' में कपिल को यात्राओं से अत्यधिक प्रेम है। 'मधुर स्वप्न' में शाह कबात् अपने मजदकी साथियों के साथ छद्म-वेश में घूमता है। 'बाईसवीं सदी' की कथा का विकास भी नायक की यात्राओं द्वारा हुआ है। अभिप्राय यह है कि राहुल जी के उपन्यासों के घटनात्मक शिल्पतन्त्र के गढ़ने में यात्रा-प्रसंग प्रबल सहायक हैं। वे उपन्यास-शिल्प का नियमन करते हैं। राहुल जी चरितनायकों के यात्रा-प्रदेशों के भूगोल, समाज एवं संस्कृति का वर्णन करते हैं, जिसे वे स्वयं ऐतिहासिक उपन्यासकार के लिए अनिवार्य तत्त्व मानते हैं। राहुल जी ने अपने उपन्यासों में यात्रा-शैली का उपयोग कर भूगोल, भाषा-विज्ञान तथा इतिहास से कथा को आपूरित किया है तथा प्राचीन वातावरण की सजीव सृष्टि की है। कथा-विकास में यात्रा-प्रसंगों को सम्बद्ध कर राहुल जी ने उपन्यास में यात्रा-साहित्य के तत्त्वों का अद्‌भुत समन्वय किया है। राहुल जी की यह महत्त्वपूर्ण निजी विशेषता है।

(ख) युद्ध एवं वीरता के प्रसंग—राहुल जी के ऐतिहासिक एवं राजनीतिक-सामाजिक उपन्यासों में कथानक को विकास प्रदान करने वाला दूसरा तत्त्व है—युद्ध एवं वीरता के प्रसंग। नायकों की युद्धवीरता एवं साहस-पराक्रम से सम्बद्ध घटनाओं द्वारा कथा को विकास मिला है। 'दिवोदास' में उपन्यास की प्रधान घटना ही दिवोदास एवं शम्बर के युद्ध से सम्बद्ध है जिसमें लेखक ने शम्बर की पराजय एवं आर्य-नायक दिवोदास की विजय का वर्णन किया है। 'जीने के लिए' उपन्यास का नायक देवराज प्रथम महायुद्ध में अपनी युद्धवीरता का परिचय देता है। वह केवल अपनी वीरता का परिचय युद्ध-क्षेत्र में ही नहीं देता, स्वराज्य-सम्बन्धी आन्दोलनों तथा कृषकों एवं जमींदारों के संघर्ष में भी अपने अपूर्व साहस का परिचय देता है। 'सिंह सेनापति' में सिंह के पार्शवों के साथ युद्ध-वर्णन का प्रसंग है। 'जय यौधेय' में जय के नेतृत्व में यौधेयों का विक्रमादित्य से युद्ध का वर्णन है। वस्तुतः ये दोनों उपन्यास लिच्छवियों एवं यौधेयों की वीरता के परिचायक हैं। 'मधुर स्वप्न' में शाह कबात् के सहयोगियों द्वारा उसे पुनः सिंहासनारूढ़ करवाने के लिए संघर्ष का चित्रण है। 'विस्मृत यात्री' में युद्ध के प्रसंगों का अभाव है परन्तु नायक नरेन्द्रयश की यात्रा उस

के साहस और वीरता को प्रकट करती है। इस प्रकार यात्रा-प्रसंगों की तरह युद्धों के प्रसंग राहुल जी के उपन्यासों में कथा-विकास के सहायक उपादान हैं।

(ग) प्रणय-प्रसंग—राहुल जी ने उपन्यासों में कथा-विकास के लिए अपने नायकों के प्रणय-प्रसंगों के वर्णन से भी सहायता ली है। 'जय यौधेय' का नायक जब मधुलिका के सौन्दर्य पर मुग्ध है और वह विधिवत् उसकी परिणीता बनती है। इस विवाह से पूर्व देश-भ्रमण करते समय जय की शबर कन्या से प्रणय-लीला का प्रसंग भी उपन्यास में मिलता है। शक कुमारी भी उसके रूप-लावण्य पर मुग्ध है। इसी प्रकार जय के सहयात्री सिंह और वासन्ती का प्रणय-प्रसंग भी अत्यन्त रोचक है। नायक के यौधेय साथी सुमन रेवतक आदि का अपनी प्रियाओं से स्वच्छन्द प्रेम का भी लेखक ने वर्णन किया है। 'सिंह सेनापति' में रोहिणी एवं सिंह के विवाह से पूर्व उनके प्रेमांकुर का विकास दर्शाया गया है। 'विस्मृत यात्री' में नायक नरेन्द्रयश के भद्रा से असफल प्रणय का वर्णन है। 'मधुर स्वप्न' में शाह कवात् सामन्त-पुत्री नवानदुख्त से प्रणय करता है और सिंहासनारूढ़ होने पर उसे परिणीता बनाता है। 'जीने के लिए' का नायक देवराज और प्रमुख पात्री जेनी विवाह से पूर्व एक-दूसरे के प्रति आकर्षण रखते हैं। इस प्रकार राहुल ने अपने उपन्यासों में कथा-विकास एवं रोचकता के संचार के लिए प्रेमगाथाओं एवं प्रणय-प्रसंगों की अवतारणा की है। इन कथाओं द्वारा इतिहास के निर्जीव कलेवर में उपन्यासकार ने रस-संचार किया है।

इस प्रकार राहुल जी के उपन्यासों में कथा का विकास सरल रूप में हुआ है। उसमें प्रायः आधिकारिक कथा ही रहती है, प्रासंगिक कथाएँ कम ही हैं। कथा-विकास के लिए उन्होंने यात्रा, युद्ध एवं प्रणय के प्रसंगों की आयोजना की है।

उपसंहार—राहुल जी के उपन्यासों के कथानक सरल गति से चलते हुए सुख अथवा दुःख में पर्यवसिति प्राप्त करते हैं। फलतः उनके कथानक सुखान्त एवं दुःखान्त दोनों प्रकार के हैं। 'दिवोदास' सुखान्त है, इसमें शबर पर दिवोदास की विजय से औपन्यासिक संघर्ष की परिसमाप्ति होती है। 'सिंह सेनापति' का कथानक भी सुखमयी परिणति प्राप्त करता है। 'जय यौधेय' में यौधेयगण की पराजय से उपन्यास दुःखान्त कहा जायगा। 'विस्मृत यात्री' नायक नरेन्द्रयश की पूरी जीवन-यात्रा में सम्बद्ध है, अतः उसके दिवंगत होने के साथ उपन्यास की कथा समाप्त होती है। 'मधुर स्वप्न' भी दुःखान्त ही माना जायगा, क्योंकि उपन्यास में मज्दक एवं उसके अनुयायियों का दारुण अन्त दिखाया गया है। 'जीने के लिए' भी इसी कोटि का है। इसका नायक देवराज आजीवन संघर्ष करता हुआ अपने विरोधियों द्वारा मार दिया जाता है। इस

अन्त बड़ा मार्मिक एवं करुण है जो पाठकों के हृदय पर अवसाद की अंकित कर जाता है—"उसे क्या मालूम था, कि कगार की आड़ में मृत्यु ... रही है। जिस वक्त उसके पैर कगार से नीचे की ओर बढ़े, उसी ... के दो गोलियाँ उसके पैरों पर पड़ीं, वह वहीं मुँह के बल गिर गया।

एक पैर की हड्डी चूर हो चुकी थी। बात-की-बात में दस आदमी चारो ओर से उ
पर टूट पड़े, और चन्द मिनटों में वहाँ देवराज का निर्जीव शरीर पड़ा था।"[४७]

अविकसित कथा-शिल्प—कथा-शिल्प की दृष्टि से राहुल जी के उपन्या
शिथिल एवं अपरिपक्व हैं। इनके कथानकों में वह शक्ति नहीं जो पाठक को अभिभू
कर उसे अपने साथ बहा ले चले। डॉ० गोपीनाथ तिवारी लिखते हैं—'कथानक क
दृष्टि से दोष भी बहुत हैं। कथानक में उत्सुकता नहीं ...... कथानक में जैसे मो
दिये जाते हैं, वे नहीं हैं। अनावश्यक विस्तार बहुत है।"[४८] जगदीश गुप्त इन कथानक
में सुसम्बद्धता का अभाव पाते हैं।[४९] डॉ० कमलकुमारी जौहरी इनके कथानकों में
एकरसता का दोष पाती हैं।[५०] डॉ० नगेन्द्र के अनुसार राहुल जी 'आकर्षक नाटकीय
परिस्थितियों की सृष्टि नहीं कर सके।"[५१] डॉ० टण्डन राहुल जी के उपन्यासों में
'कथानक एकता की सुरक्षा' न रख सकने की त्रुटि देखते हैं।[५२] निष्कर्ष यह कि राहुल
जी के कथाशिल्प के विषय में अधिकांश आलोचकों का मत यह है कि वह अप्रौढ़
एवं अविकसित है। उसमें उत्सुकता एवं कुतूहल का अभाव है।

राहुल जी के उपन्यासों में कथाशिल्प की इन न्यूनताओं का सर्वप्रमुख कारण
उनकी सोद्देश्यता है। वे कला के सप्रयोजन उपयोग के समर्थक हैं। राहुल जी ने अपने
उपन्यासों की रचना मार्क्सवादी जीवन-दर्शन की अभिव्यक्ति के लिए की है। श्री
महेन्द्र चतुर्वेदी के शब्दों में—"मानव-स्वतन्त्रता की सिद्धि के लिए, आदर्श समाजवादी
समाज-व्यवस्था की स्थापना के लिए, वैषम्य और रूढ़ि-जर्जर जीवन पर भरपूर
आघात करने के लिए वे उसे साधन रूप में ग्रहण करते हैं।"[५३] कला-विषयक यही
सोद्देश्यता उनके कथाशिल्प को अभिभूत किये हुए है। डॉ० तिवारी के शब्दों में—
"ये उपन्यास उद्देश्य-प्रधान हैं, उद्देश्य इनमें हावी है... ... प्रचार के माध्यम हैं।"[५४]
राहुल जी अपने उद्देश्य की अभिव्यक्ति के लिए कथा-प्रवाह को विराम लगाकर पात्रों
के माध्यम से अपनी विचारधारा को प्रकट करने लगते हैं। ऐसे स्थलों पर उनकी
विचारधारा आरोपित लगती है और कथा की स्वाभाविक गति भी अवरुद्ध हो जाती
है। विचारों के प्रकाशन एवं तर्क-वितर्क की प्रचुरता के कारण कथा की गति मन्द
हो जाती है और उनकी विचारधारा को ग्रहण करने के लिए पाठक को रुक-रुक कर
पढ़ना पड़ता है। उदाहरणार्थ 'जय यौधेय' में बौद्धधर्म को बहुजन-हिताय बतलाकर
अन्य धर्मों से उसकी उत्कृष्टता प्रतिपादित करना,[५५] तथा बौद्धदर्शन के अनित्यतावाद,
निर्वाण, परलोकवाद विषयक विचारों का आख्यान[५६] कथा के विकास में बाधक है।
उपन्यास के तेरहवें शीर्षक 'सिंहल में' उन्होंने ब्राह्मण धर्म की भर्त्सना की है।[५७]
"पाटलिपुत्र के अन्तिम वर्ष" शीर्षक अध्याय परलोकवाद पर निबन्ध प्रतीत होता है।
'सिंह सेनापति' का ११ वाँ तथा १३वाँ अध्याय गणतन्त्र एवं राजतन्त्र के गुण-दोषों
का लेखा-जोखा प्रस्तुत करते हैं, यहाँ कथा में गति नहीं। 'मधुर स्वप्न' में 'आतन्क'
'समता' तथा 'मनुष्य और मनुष्यता' शीर्षक ......

बाद में 'पतहमत' शीर्षक प्रस्ताव तथा साम्राज्यवाद-सम्बन्धी देवराज की विचारधारा[१४८] कथा की गति में बाधक है। 'दिवोदास' राहुल जी की लघु रचना है, इसमें लेखक ने संयम से काम लिया है परन्तु 'विस्मृत यात्री' उपन्यास के अनेक पृष्ठों में राहुल जी विचारधारा की अभिव्यक्ति के प्रति जितने सचेष्ट दिखाई देते हैं, उतने कथा-विकास की ओर नहीं। श्री बी० एम० चिन्तामणि लिखते हैं—"उद्देश्य की सिद्धि के लिए ऐसी-ऐसी घटनाओं का इसमें (सिंह सेनापति) सन्निवेश किया गया है, जो निष्पक्ष विवेचन करने पर पूर्णरूपेण अनावश्यक और अप्रासंगिक मालूम पड़ती है। कथानक पूर्णरूपेण सुसंगठित नहीं है।"[१४९] इस प्रकार राहुल जी की कला पर उनका दर्शन हावी हो जाता है तथा कथाशिल्प अविकसित रह जाता है।

कथा-शिल्प में शैथिल्य का दूसरा बड़ा कारण उपन्यासकार का विवरण-मोह प्रतीत होता है। डॉ० जगदीश गुप्त लिखते हैं—"राहुल जी में उपन्यासकार की अपेक्षा इतिहासज्ञ और बहुभाषाविज्ञ के तत्त्व अधिक प्रधान एवं शक्तिशाली हैं, फलतः उपन्यास बोझीला है। ऐतिहासिक तथ्यों के समाहित करने के प्रयास में कथा की गति शिथिल हो गई है और कहीं-कहीं उसकी आनुपातिकता एवं स्वाभाविकता को भी आघात पहुंचा है।"[१५०] 'मधुर स्वप्न' के विषय में प्रकट डॉ० गुप्त के ये विचार उनके सभी उपन्यासों के विषय में सत्य प्रतीत होते हैं। राहुल जी में इतिहास, भूगोल एवं वस्तु-वर्णन के प्रति अत्यधिक आसक्ति प्रतीत होती है। 'मधुर स्वप्न' द्वारा राहुल जी इतिहास के विस्मृत पृष्ठ प्रस्तुत करना चाहते हैं, अतः इस उपन्यास में इतिहास के प्रति लेखक का मोह स्वाभाविक है। लेखक छठी शती के ईरान के इतिहास को साकार रूप देने के लिए वहाँ की सामाजिक, आर्थिक आदि स्थितियों, जातिगत संकीर्णता, दास-प्रथा आदि का तो वर्णन करता ही है, साथ ही हूणों और केदारियों का अन्तर स्पष्ट करने, ईरानियों के राजवंश का क्रम-विकास समझाने, तोरमान की विजयों का उल्लेख करने, तोरमान की राजधानी अथवा तम्बुओं की नगरी के वर्णन में लेखक का इतिहास-मोह प्रकट है।[१५१] 'जय यौधेय' में समुद्रगुप्त और यौधेयों का पारस्परिक सम्बन्ध[१५२] तथा 'सिंह सेनापति' में तक्षशिला का वर्णन[१५३] भी लेखक के ऐतिहासिक विवरण हैं।

ऐतिहासिक विवरणों के अतिरिक्त कुछ अन्य प्रसंग भी लेखक के विवरण-मोह के प्रतीक ही माने जायेंगे। 'सिंह सेनापति' में कृष्णमाली का, 'जय यौधेय' में सिंह वर्मा और वासन्ती का तथा 'मधुर स्वप्न' में लोली जाति का प्रसंग राहुल जी के विवरण-मोह के परिचायक हैं। 'जीने के लिए' में कर्नल ज्याफरे की हिमालय-यात्रा, 'सिंह सेनापति' में बौद्ध-धर्म तथा जैन-धर्म सम्बन्धी चर्चा, 'जय यौधेय' में कालिदास और जय के वार्तालाप आदि प्रसंग भी कथागत शिथिलता के लिए उत्तरदायी हैं। इस प्रकार राहुल जी का विवरण-मोह उनके औपन्यासिक कथाशिल्प के लिए घातक सिद्ध हुआ है।

राहुल जी के कथाशिल्प में एक अन्य दोष यह भी दृष्टिगोचर होता कि है वे

घटनाओं को चरमसीमा पर पहुंचा कर कथा का विकास आरम्भ करते हैं। 'मधुर स्वप्न' में शाहकवात् के पुनः सिंहासनारूढ़ होने के साथ कथानक की परिसमाप्ति होनी चाहिए थी, परन्तु लेखक का इतिहास-मोह कथा को और आगे बढ़ाने के लिए विवश करता है। राहुल जी ने इस घटना के अनन्तर शाहकवात् के उत्तराधिकारी के चुनाव तथा शाहकवात् और मज्दकियों के संघर्ष की कथा भी कही है। 'जय यौधेय' में कथा जय के जीवनान्त के साथ न समाप्त होकर चन्द्रगुप्त द्वारा अन्य राजाओं को पराजित करने के साथ होती है। 'सिंह सेनापति' में लिच्छवियों तथा बिम्बसार में सन्धि के साथ कथा समाप्त हो जानी चाहिए, परन्तु इसके बाद दो अध्यायों में लेखक बौद्धधर्म तथा रोहिणी आदि स्त्रियों की वीरता का आख्यान करता है। इस प्रकार राहुल जी अपने तीन प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यासों में कथा की परिसमाप्ति चरमसीमा पर न करके कथा-शिल्प को आघात पहुंचाते हैं। 'दिवोदास', 'विस्मृत यात्री' तथा 'जीने के लिए' इस दोष से मुक्त हैं।

राहुल जी ने अपने उपन्यासों को कथ्य के आधार पर कथा-शीर्षकों में विभाजित किया है। परिच्छेदों के शीर्षक देने से भी कथा-शिल्प में न्यूनता आ गई है। कथा-विषयक पाठक की जिज्ञासा एवं कौतूहल-वृत्ति की शान्ति ये शीर्षक ही कर देते हैं, और कथा को पढ़ने की उत्सुकता समाप्त हो जाती है। जिज्ञासा अथवा कौतूहल औपन्यासिक कथा का प्राण-तत्त्व है, राहुल जी ने इस ओर कम ही ध्यान दिया है। उन के उपन्यासों में संघर्ष-तत्त्व अवश्य है, परंतु उस में एक स्वाभाविक क्रम-विकास नहीं है। कथा में कौतूहल को जागृत रखने के लिए मनोवैज्ञानिक तत्त्वों का समावेश होना चाहिए, पर राहुल जी में इसका अभाव ही है। राहुल जी अपने कथ्य एवं तथ्य को सीधे-साधे ढंग से स्पष्ट रूप में प्रस्तुत कर देते हैं। वे किसी प्रकार का रहस्य पाठक के सामने नहीं रखते। इससे कथा के लिए जिस कौतूहल तत्त्व की उपन्यास में अपेक्षा होती है, राहुल जी के कथानकों में वह नहीं है। डॉ० सुबोधचन्द्र के शब्दों में कहा जा सकता है—"राहुल जी के उपन्यासों की कथाएँ सीधी-सादी हैं, उनमें कथात्मक मोड़ों, घटना-प्रवाहों, उतार-चढ़ावों का प्रायः अभाव है, मनोवैज्ञानिक क्षणों और भावपूर्ण या संवेदनात्मक प्रसंगों की भी कमी है।"[११] डॉ० नगेन्द्र राहुल जी के कथानकों में नाटकीय प्रसंगों के अभाव के विषय में लिखते हैं—"राहुल जी न तो सार्थक नाटकीय परिस्थितियों की सृष्टि कर सके हैं और न चारित्रिक द्वन्द्वों की उद्भावना ही। यह बात नहीं कि इन घटनाओं में नाट्य तत्त्व नहीं है अथवा पात्रों के जीवन में संघर्ष नहीं है। उदाहरण के लिए 'जय यौधेय' की कथावस्तु और उसके पर्यावरण, परिस्थिति और चरित्र दोनों के निर्माण की यथेष्ट सम्भावना है। परन्तु राहुल जी इससे यथोचित लाभ नहीं उठा सके और इसका कारण है, वह यह कि राहुल जी की दृष्टि प्रतिपाद्य और इतिहास पर केन्द्रित रही है।"[१२] निष्कर्ष यह कि राहुल जी का कथा-शिल्प अप्रौढ़ एवं अविकसित है, उसमें घटना-विधान की कलात्मकता का अभाव है, कथा की गतिविधि सरल एवं स्पष्ट है।

कथाशिल्प की विशिष्टताएँ—कथाशिल्प के प्रौढ़ विकास के अभाव में भी राहुल जी के कथाशिल्प की कुछ अपनी विशेषताएँ हैं। इनके उपन्यासों में इतिहास और कल्पना का पर्याप्त समन्वय है। प्रकाशचन्द्र गुप्त के अनुसार राहुल जी इतिहास एवं कलात्मक प्रतिभा के धनी हैं और वे इतिहास तथा कल्पना इन विरोधी तत्त्वों का अपूर्व समन्वय करने में सफल हुए हैं।[११६] उनकी कल्पना इतिहास के विस्तीर्ण क्षेत्र में जाकर ऐतिहासिक तथ्यों का उद्घाटन करती है। वे ऐतिहासिक कल्पना से इस विशाल देश के अतीत को निहारते हैं और अनेक जातियों, राज्यों एवं संस्कृतियों को कथा-रूप में प्रस्तुत करते हैं।

राहुल जी के कथानक सरल हैं, परन्तु उनकी विशिष्टता है उनमें प्रतिपादित राहुल जी का स्पष्ट जीवन-दर्शन और मानव-जीवन का चित्रण । 'मधुर स्वप्न' मानवता का मधुर स्वप्न है। राहुल जी ने जीवन और समाज की विषम स्थितियों का अंकन करके साम्य-स्थापना एवं जन-मुक्ति के स्वप्न को चित्रित किया है। 'विस्मृत यात्री' में तथागत के दुःखवाद और मार्क्स के वर्गवाद में सामंजस्य स्थापित कर राहुल जी ने संत्रस्त मानवता को जीवन देने का प्रयास किया है। 'सिंह सेनापति' के कथानक में गणतन्त्रात्मक युग की स्वच्छन्दता, नारी की स्वतन्त्रता, श्रम की गरिमा, सम्पत्ति पर समानाधिकार का स्वर मुखरित कर राहुल जी मानव की समता चाहते हैं। अभिप्राय यह है कि राहुल जी के कथानक मानव-जीवन एवं मानवीय आदर्शों की अभिव्यक्ति के कारण प्रेरणाप्रद हैं। भदन्त आनन्द कौसल्यायन राहुल जी में भारत की भूखी-नंगी जनता के लिए असीम वेदना पाते हैं।[११७] यही वेदना उनके उपन्यासों में सर्वत्र प्रकट है। 'बाईसवीं सदी' में राहुल जी ने संत्रस्त मानवता की मुक्ति का स्वप्न देखा है। 'जीने के लिए' में इस मुक्ति के लिए संघर्ष है। साथ ही अपने ऐतिहासिक उपन्यासों में वे गणतन्त्रात्मक मानवतावाद की प्रस्थापना करते हैं।

कथाशिल्प के लिए अपेक्षित कौतूहल एवं जिज्ञासा के अभाव में भी राहुल जी के उपन्यास रोचक हैं। यह रोचकता प्रेम-प्रसंगों, युद्ध एवं साहस के प्रसंगों तथा यात्रा-प्रसंगों द्वारा राहुल जी अपने उपन्यासों में लाते हैं। 'जय यौधेय' तथा 'मधुर स्वप्न' की कथा अपेक्षाकृत अधिक रोचक है। 'जय यौधेय' मे चन्द्रगुप्त और कुरभक की प्रणय-कथा,[११८] पारिवारिक हास्य-विनोद के प्रसंग,[११९] हिमालय-यात्रा का प्रसंग तथा नन्दा और वसुनन्दा के संवाद[१२०] उपन्यास को रोचक बना देते हैं। 'मधुर स्वप्न' की कथा रोचक रूप मे प्रस्तुत मानवता का स्वप्न है। इसमें विस्मृति-कारा से शाहकवात् की सम्बिक् द्वारा उद्धार की कथा कौतूहलपूर्ण तथा रोचक है। 'जीने के लिए' का कथानक भी रोचक एवं प्रभावपूर्ण है।

राहुल जी के औपन्यासिक कथानकों में यौन-भावना का प्रचुर प्रयोग है। वे ... स्तर पर काममूलक समस्याओं का अंकन करते हैं। उन्होंने अपने उपन्यासों में ... शृंगारिक स्थितियों की सामाजिक स्वीकृति की स्थापना, मुक्त निर्बन्ध चुम्बनों,

खान-पान एवं नृत्य-गान-गोष्ठियों आदि की उपस्थिति प्राप्त की है। 'सिंह सेनापति' में यौन-भावना का अतिरेक है। मैथुन के पारंपरिक प्रयोग को डॉ० महेन्द्र मानसिक-प्रवृत्त मानते हैं। वे लिखते हैं—"जिस उदारता से राहुल जी के पात्र एक-दूसरे पर चुम्बनों की बौछारें करते हैं वह अनैतिक न भी मानी जाए परन्तु असह्य अवश्य है। भारत में रस की उद्भावना करने का यह तरीका उदार इतने संयम के साथ व्यवहृत किया गया है कि उसमें अरुचि होने लगती है।"[९९] यौन-भावना का अमर्यादित प्रयोग उक्त उपन्यास में अपेक्षाकृत अवश्य प्रतीत होता है, परन्तु 'मधुर स्वप्न', 'जय यौधेय', 'विस्मृत यात्री' एवं 'जीने के लिए' में इसका मर्यादित प्रयोग कथा में रोचकता लाता है, साथ ही मानवीय तत्वों का प्रतिष्ठापक है। डॉ० देवराज उपाध्याय के इस उपयोग को वर्तमान युग का प्रभाव स्वीकारते हैं। उनके शब्दों में—"राहुल जी ने ऐतिहासिक उपन्यासों में 'जय यौधेय', 'सिंह सेनापति' तथा 'मधुर स्वप्न' में जिस मुक्त और स्वच्छन्द विलास का महोत्सव मनाया है, वह इतिहास की रक्षा-मात्र नहीं है, उसमें इस युग का भी प्रभाव है। इसको द्विवेदी युग की उपदेशात्मक अस्वाभाविकता के बाह्य और झूठे आडम्बर के विरुद्ध प्रतिक्रिया-मात्र कह कर ही सन्तोष नहीं किया जा सकता। यह निश्चित रूप से फ्रायड के निकिटो कांत सिद्धान्त का परिणाम है जो यह प्रतिपादित करता है कि मनुष्य के अवचेतन की सारी प्रवृत्तियाँ काममूलक होती हैं। हमारे सारे मानसिक संघर्ष के मूल में काम-वासना है।"[१००]

निष्कर्ष यह कि राहुल जी का कथाशिल्प प्रौढ़ औपन्यासिक शिल्प के अनुकूल नहीं है। फिर भी यात्रा, प्रेम और शौर्य के प्रसंगों द्वारा कथा-विकास, मानवीय तत्त्वों एवं मानवतावाद की प्रतिष्ठा, प्राचीन मान्यताओं और धारणाओं के प्रति विद्रोह का स्वर, इतिहास और कल्पना का मधुर समन्वय, कथा आरम्भ की नई शैली एवं स्वस्थ दृष्टिकोण उनके कथा-शिल्प के मौलिक गुण हैं। इनके कथानकों में इतिहास और दर्शन, तथ्य और कल्पना का समन्वय दृष्टिगोचर होता है। कथाशिल्प की दृष्टि से 'जय यौधेय', 'मधुर स्वप्न' एवं 'जीने के लिए' राहुल जी की उत्तम कृतियाँ हैं। 'बाईसवीं सदी', 'राजस्थानी रनिवास' तथा 'भागो नहीं दुनिया को बदलो' तो कथाभास मात्र हैं। 'विस्मृत यात्री' इस दृष्टि से सामान्य रचना है और 'दिवोदास' एक सफल लघु उपन्यास है।

पात्र और चरित्र-चित्रण

उपन्यास मानव-जीवन का चित्र है।[१०१] उसके अस्तित्व का कारण ही यही है कि वह जीवन के चित्रण का प्रयास करता है।[१०२] उसमें नित्यप्रति के देखे और जिए जाने वाले जीवन का आभास होता है[१०३] आदि उक्तियों से स्पष्ट है कि मानव और उसका चरित्र ही उपन्यास का मूलाधार है। आधुनिक उपन्यास में घटना एवं वस्तु की अपेक्षा चरित्र-चित्रण को अधिक महत्त्व प्राप्त है। रॉबिन्सन के शब्दों में चरित्र-चित्रण से अभिप्राय "पात्रों को पर्याप्त मूर्तिमत्ता एवं स्वाभाविकता से चित्रित करना है। वे छायामात्र न होकर व्यक्तित्व-सम्पन्न होकर पुस्तक के पृष्ठों से उभरने

चाहिएं ।'[१७६] पाठक कथा, उसकी घटनाएँ एवं प्रसंग भूल सकता है, परन्तु पात्रों का व्यक्तित्व उसके अन्तःकरण पर ऐसी गहरी छाप अंकित कर देता है कि वे उसे सर्वदा अविस्मरणीय हो जाते हैं। अतः किसी भी उपन्यासकार से सर्वोपरि यह अपेक्षित है कि वह ऐसे सजीव पात्रों की सृष्टि करे, जो पाठक पर अमिट प्रभाव अंकित कर सकें। भले ही चरित्र-अवतारणा किसी भी क्षेत्र से हो।[१७७] इस प्रकार के पात्र स्वतन्त्र व्यक्तित्व वाले होते हैं, वे घटनाओं एवं परिस्थितियों को जन्म देते हैं। ऐसे स्वतन्त्र व्यक्तित्व-सम्पन्न पात्रों के बाह्य एव आन्तरिक पक्ष को उभारना उपन्यासकार का कर्त्तव्य है। राहुल साकृत्यायन ने अपने ऐतिहासिक एवं सामाजिक उपन्यासों में ऐसे पात्रों की अवतारणा की है जो अपने कृत्यों द्वारा समाज एवं इतिहास में मोड़ लाने वाले हैं। ऐतिहासिक पात्रों की सृष्टि द्वारा वे अपने साम्यवादी आदर्शों की प्रतिष्ठा करने में सफल हुए हैं।

पात्र-चयन-परिधि—राहुल जी ने अपने ऐतिहासिक उपन्यासों के प्रमुख पात्रों का चयन इतिहास से ही किया है। 'दिवोदास' के दिवोदास, पुरुकुत्स, त्रसदस्यु, ऋषि भरद्वाज एवं शम्बर ऋग्वेदकालीन ऐतिहासिक पात्र हैं। 'सिंह सेनापति' का नायक सिंह,मगधराज बिम्बसार तथा अजातशत्रु प्रसिद्ध ऐतिहासिक व्यक्तित्व हैं। 'जय यौधेय' के समुद्रगुप्त, चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य एवं कालिदास भी प्रख्यात हैं। 'मधुर स्वप्न' के दाहकवात्, खुसरो तथा तोरमान तथा 'विस्मृत यात्री' का नायक नरेन्द्रयश का चयन भी इतिहास से हुआ है। अन्य पात्र प्रायः काल्पनिक हैं। सामाजिक उपन्यास 'जीने के लिए' के सभी पात्र काल्पनिक हैं ही। ऐतिहासिक उपन्यासों में भी लेखक ने उक्त प्रमुख पात्रों के अतिरिक्त कल्पना से ही पात्र-सृष्टि की है, पर इनमें ऐतिहासिक वातावरण के अंकन में कहीं बाधा नहीं आई। ये नाम काल्पनिक अवश्य हैं, परन्तु इनका इतिहास सत्यमूलक है। डॉ० प्रभाकर मिश्र राहुल जी के उपन्यासों के पात्रों के चयन-क्षेत्र को अत्यन्त सीमित कहते हैं।[१७८] परन्तु उपर्युक्त चयन-क्षेत्र से स्पष्ट है कि उनका कथन सत्य नहीं है। राहुल जी ने अपने पात्र इतिहास और समाज दोनों क्षेत्रों से लिए हैं। पुनश्च ऐतिहासिक पात्रों का काल-क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है। वैदिक युग से लेकर गुप्त-युग तक और भारत से लेकर चीन और ईरान देशों तक फैले हुए पात्रों का चयन कर उन्होंने ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना की है। शताब्दियों के अन्तराल को पार कर राहुल जी की पैनी दृष्टि ने जहाँ इतिहास के अनेक युगों का साक्षात्कार करवाया है, वहाँ उन युगों के पात्रों का सजीव व्यक्तित्व भी प्रस्तुत किया है। साथ ही उनके पात्र विविध वर्गों से सम्बन्धित हैं। वे शासक और शासित, शोषक और शोषित, श्रमिक एवं कृषक वर्ग तक ही सीमित नहीं हैं, सामान्य जन भी हैं, जो समाज, राजनीति एवं धर्म सभी क्षेत्रों में अपना निजी स्थान रखते हैं। हाँ, राहुल जी के पात्रों का सीमित क्षेत्र इस दृष्टि से अवश्य कहा जा सकता है कि वे सभी साम्यवादी विचारों के अनुसारी हैं।

चरित्र-निर्माण का स्रोत—चरित्र-चित्रण का एक बहुत बड़ा अंग लेखक का

निजी व्यक्तित्व भी होता है। जर्मन उपन्यासकार गेटे ने अपने जीव
समस्याओं एवं विशिष्टताओं को उपन्यास के वर्ण्य-विषय के रूप में प्रयुक्त
उनके उपन्यास 'विल्हेम मीस्टर्स अप्रेंटिसशिप' के नायक विल्हेम मीस्टर
जार्ज ल्यू काक्स का कथन है कि 'उसमें गेटे के बहुत से व्यक्तिगत गुण सम
उसके विकास में उनके स्रष्टा के जीवन की अनेक घटनाएँ हैं।'[१८०] हेन
चरित्र-निर्माण का एक बहुत बड़ा स्रोत लेखक को ही मानते हैं।[१८१] ि
काल्पनिक पात्र तो लेखक के व्यक्तित्व का मूर्त्त रूप होते हैं। यही स्थि
के चरितनायकों की है। 'जीने के लिए' का नायक देवराज उनके अपने ज
प्रतिरूप है। वह जीवनगत परिस्थितियों, स्वभाव एवं विचारों मे तो र
साम्य रखता ही है, साथ ही उपन्यासकार और उनके नायक के अनेक व
सादृश्य है। वह राहुल जी की तरह ही साम्राज्यवाद से घृणा करता है,[१८२]
के परिणामों को भयंकर बतलाता है[१८३] और उन्हीं की तरह ही सत्या
गाँव-गाँव में जन-जागृति का प्रचार करता है।[१८४] साम्यवाद तो उसका इ
इसी प्रकार 'विस्मृत यात्री' का नायक नरेन्द्रयश राहुल की तरह यायाव
महेन्द्र चतुर्वेदी के शब्दों में—"विस्मृत यात्री मे एक बौद्ध यात्री नरेन्द्रयश :
चरित्र निरूपित हुआ है और उससे भी आगे उसमे स्वयं लेखक के जीवन व
प्रतिनिधित्व हुआ है।"[१८५] डॉ० सुषमा धवन 'विस्मृत यात्री' के नायक मे
लिखती हैं—"विस्मृत यात्री का चरित्र लेखक के लिये आकर्षक ही नहीं,
व्यक्तिगत जीवन के तारों को भी झंकृत करता है।"[१८६] इसी प्रकार 'जय :
जय, 'सिंह सेनापति' का सिंह, 'विस्मृत यात्री' का वुढ़िल तथा 'मधुर स्वप्न'
कवात् तथा मज्दक राहुल जी के विचारों का प्रतिनिधित्व करते हैं। डॉ० सुरे
के शब्दों मे कहा जा सकता है—"उनके पात्र समाज की रूढ़ियों एवं
परम्पराओं के प्रति विद्रोह करते हैं, उनमे शोषण एवं अन्याय के विरुद्ध :
ज़बरदस्त भावना है। इनमे से किसी को भी वर्तमान सामाजिक रूपविधान पर
है और वे इनमे आमूल-चूल परिवर्तन के लिए लेखक के संकेतों पर ·· कटिब
होते हैं।"[१८७] पुरुष-पात्रों की तरह स्त्री-पात्रों मे जेनी भी लेखक के विचारों :
करती है। अभिप्राय यह कि पात्रों के चरित्राकन में राहुल जी ने अपनी अ
का संस्पर्श प्रदान किया है। उनका अपना जीवन एवं व्यक्तित्व उनके औपन
पात्रों का एक बहुत बड़ा स्रोत बन गया है।

स्थिर एवं वर्गगत पात्र—राहुल जी के पात्र स्थिर एवं वर्गगत हैं। :
अथवा जन-समूह का प्रतिनिधित्व करने वाले हैं। 'ऐतिहासिक उपन्यासों मे
विशाल जन-समूह के महत्त्वपूर्ण आन्दोलनों का प्रतिनिधि होता है। उसकी इ
एवं उद्देश्य विशाल जन-समूह की इच्छाओं और उद्देश्यों के साथ सामंजस्य र
करने वाली होती हैं।'[१८८] 'जय' और 'सिंह' क्रमशः यौधेय-गण एवं लिच्छवि-
गुण-दोषों का मानदण्ड हैं, वे वर्गगत पात्र कहे जा सकते हैं। डॉ० नगेन्द्र के अनुस

उपन्यास एक प्रकार से नायिका-शून्य हैं। जीवन के कर्म-पक्ष को प्रधानता देने के कारण पात्रों का भाव-पक्ष कमजोर पड़ जाता है।[१६१] 'विस्मृत यात्री' में तो कोई प्रमुख नारी-पात्र है ही नहीं। 'जीने के लिए' में जेनी ब्राउन का चरित्र अवश्य कुछ उभरा है। जेनी देवराज की तरह राहुल जी की विचारधारा का वहन करने वाली है। वह क्रांतिकारिणी है, साम्यवादी विचारों की समर्थिका है। देवराज की तरह ही वह जन-जागृति में विश्वास रखती है और आर्थिक विषमता की कटु आलोचना करती है। वह देवराज के लिए प्रेरणाप्रद है, वह उसके देश-सेवा के मार्ग में बाधक नहीं है। इस प्रकार जेनी ब्राउन राहुल जी के नारी-पात्रों में सर्वाधिक सशक्त व्यक्तित्व है। इसी उपन्यास की 'राधा' देवराज की माता के रूप में चित्रित है। वह ग्रामीण जीवन का प्रतिनिधित्व करती है। 'दिवोदास' की पौरवी का चरित्र भी माता के रूप में अंकित किया गया है। अपने पति राजा वध्र्यश्व की मृत्यु होने पर दिवोदास को धैर्य देती है और उसे अपने कर्त्तव्यों के प्रति सचेत करती है। 'मधुर स्वप्न' की सम्बिक् शाह् कवात् की सहोदरा तथा पत्नी है। सम्बिक् को कर्त्तव्यपरायणा, सहिष्णु, पतिव्रता नारी के रूप में चित्रित किया गया है। 'सिंह सेनापति' की रोहिणी साहस और पराक्रम में पुरुषों के समान है। 'जय यौधेय' की वसुनन्दा जय के अनुकूल युद्ध-वीरता का परिचय देती है। अन्य नारी-पात्र सुनन्दा, भद्रा, नन्दा, वासन्ती (जय यौधेय) मामा, क्षेमा (सिंह सेनापति) वर्दक (मधुर स्वप्न) आदि प्रायः एक से लगते हैं। राहुल जी ने नारीत्व के चित्रण में प्रेयसीत्व रूप का ही अधिक चित्रण किया है। मातृत्व उनमें गौण है। राधा और पौरवी को छोड़कर सभी नारी-पात्र प्रेमिकाएँ, भाभियाँ तथा पत्नियाँ हैं। उनकी नायिकाएँ युद्ध-संचालन में भले ही कुशल हों, परन्तु गृहिणी अथवा माँ के दायित्वों का निर्वाह करने में अक्षम प्रतीत होती हैं। गार्हस्थ्य जीवन की समस्याओं के परिप्रेक्ष्य में उनका चित्रण अधूरा ही लगता है। उनके जीवन में प्रेम का ही एकमात्र महत्त्व है। इस प्रकार उनका चरित्र-चित्रण एकांगी बन गया है। इस सम्बन्ध में डॉ० नगेन्द्र का कथन सत्य प्रतीत होता है—"नारी-पात्रों में 'सिंह सेनापति' की रोहिणी और क्षेमा, 'जय यौधेय' की वासन्ती और सुनन्दा एक ही साँचे में ढली हुई हैं। मामा और नन्दा में तीखापन और ज्यादा है, उनका चित्रण देखकर अमरीकिन सैनिक द्वारा किये हुए स्त्रियों के वर्णन का स्मरण हो आता है।"[१६३] राहुल जी के नारी-चित्रण में वस्तुतः रूस की स्वच्छन्द-नारी का चित्रण है। 'राजस्थानी रनिवास' के गौरी आदि नारी-पात्र नारी की करुण स्थिति का चित्र अवश्य प्रस्तुत करते हैं।

बहिरंग चित्रण - बहिरंग चित्रण का सम्बन्ध पात्रों की आकृति, वेशभूषा, अवस्था, नाम, क्रिया, अनुभव आदि से होता है।[१६४] राहुल जी के उपन्यासों में पात्रों के बहिरंग चित्रण की प्रवृत्ति अधिक रही है। इस विषय में रणवीर राग्रा के उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा के विषय में कहे गये ये शब्द राहुल जी की चित्रण-विधि पर भी सही प्रतीत होते हैं—"उनके ऐतिहासिक उपन्यासों की लम्बी-लम्बी भूमिकाओं के

ास एक प्रकार से नायिका-शून्य हैं। जीवन के कर्म-पक्ष को प्रधानता देने के
ा पात्रों का भाव-पक्ष कमजोर पड़ जाता है।[६९] 'विस्मृत यात्री' में तो कोई
ा नारी-पात्र है ही नहीं। जीने के लिए' में जेनी ब्राउन का चरित्र अवश्य कुछ
ा है। जेनी देवराज की तरह राहुल जी की विचारधारा का वहन करने वाली
वह क्रांतिकारिणी है, साम्यवादी विचारों की समर्थिका है। देवराज की तरह ही
जन-जागृति में विश्वास रखती है और आर्थिक विषमता की कटु आलोचना करती
वह देवराज के लिए प्रेरणाप्रद है, वह उसके देश-सेवा के मार्ग में बाधक नहीं
इस प्रकार जेनी ब्राउन राहुल जी के नारी-पात्रों में सर्वाधिक सशक्त व्यक्तित्व
इसी उपन्यास की 'राधा' देवराज की माता के रूप में चित्रित है। वह ग्रामीण
ान का प्रतिनिधित्व करती है। 'दिवोदास' की पौरवी का चरित्र भी माता के
में अंकित किया गया है। अपने पति राजा वध्र्यश्व की मृत्यु होने पर दिवोदास
धैर्य देती है और उसे अपने कर्त्तव्यों के प्रति सचेत करती है। 'मधुर स्वप्न' की
वक् शाह कवात् की सहोदरा तथा पत्नी है। सम्बिक् को कर्त्तव्यपरायणा, सहिष्णु,
ावता नारी के रूप में चित्रित किया गया है। 'सिंह सेनापति' की रोहिणी साहस
: पराक्रम में पुरुषों के समान है। 'जय यौधेय' की वसुनन्दा जय के अनुकूल युद्ध-
ता का परिचय देती हैं। अन्य नारी-पात्र सुनन्दा, भद्रा, नन्दा, वासन्ती (जय
ेय) मामा, क्षेमा (सिंह सेनापति) वर्दक (मधुर स्वप्न) आदि प्रायः एक से
ते हैं। राहुल जी ने नारीत्व के चित्रण में प्रेयसीत्व रूप का ही अधिक चित्रण
या है। मातृत्व उनमे गौण है। राधा और पौरवी को छोड़कर सभी नारी-पात्र
सकाएँ, मामियाँ तथा पत्नियाँ हैं। उनकी नायिकाएँ युद्ध-संचालन में भले ही कुशल
परन्तु गृहिणी अथवा माँ के दायित्वों का निर्वाह करने में अक्षम प्रतीत होती हैं।
ृहस्थ जीवन की समस्याओं के परिप्रेक्ष्य में उनका चित्रण अधूरा ही लगता है।
के जीवन में प्रेम का ही एकमात्र महत्व है। इस प्रकार उनका चरित्र-चित्रण
ामी बन गया है। इस सम्बन्ध में डॉ० नगेन्द्र का कथन सत्य प्रतीत होता है—
ारी-पात्रों में 'सिंह सेनापति' की रोहिणी और क्षेमा, 'जय यौधेय' की वासन्ती और
न्दा एक ही साँचे में ढली हुई हैं। मामा और नन्दा में तीखापन और ज्वाल है,
ा चित्रण देखकर अमरीकित सैनिक द्वारा किये हुए स्त्रियों के वर्णन का स्मरण
आता है।"[७०] राहुल जी के नारी-चित्रण में वस्तुतः रूस की स्वच्छन्द-नारी का
ण है। 'राजस्थानी रनिवास' के गौरी आदि नारी-पात्र नारी की करुण स्थिति
चित्र अवश्य प्रस्तुत करते हैं।

बहिरंग चित्रण - बहिरंग चित्रण का सम्बन्ध पात्रों की आकृति, वेशभूषा,
स्था, नाम, क्रिया, अनुभव आदि से होता है।[७१] राहुल जी के उपन्यासों में पात्रों
बहिरंग चित्रण की प्रवृत्ति अधिक रही है। इस विषय में रणवीर रांग्रा के उपन्यास-
र वृन्दावनलाल वर्मा के विषय में कहे गये ये शब्द राहुल जी की चित्रण-विधि पर
सही प्रतीत होते हैं—"उनके ऐतिहासिक उपन्यासों की लम्बी-लम्बी भूमिकाओं के

ास एक प्रकार से नायिका-शून्य हैं। जीवन के कर्म-पक्ष को प्रधानता देने के
 पात्रों का भाव-पक्ष कमज़ोर पड़ जाता है।[६१] 'विस्मृत यात्री' में तो कोई
 नारी-पात्र है ही नहीं। 'जीने के लिए' में जेनी ब्राउन का चरित्र अवश्य कुछ
ा है। जेनी देवराज की तरह राहुल जी की विचारधारा का वहन करने वाली
वह क्रान्तिकारिणी है, साम्यवादी विचारों की समर्थिका है। देवराज की तरह ही
जन-जागृति में विश्वास रखती है और आर्थिक विषमता की कटु आलोचना करती
 वह देवराज के लिए प्रेरणाप्रद है, वह उसके देश-सेवा के मार्ग में बाधक नहीं
 इस प्रकार जेनी ब्राउन राहुल जी के नारी-पात्रों में सर्वाधिक सशक्त व्यक्तित्व
 इसी उपन्यास की 'राधा' देवराज की माता के रूप में चित्रित है। वह ग्रामीण
न का प्रतिनिधित्व करती है। 'दिवोदास' की पौरवी का चरित्र भी माता के
 में अंकित किया गया है। अपने पति राजा वध्र्यश्व की मृत्यु होने पर दिवोदास
धैर्य देती है और उसे अपने कर्तव्यों के प्रति सचेत करती है। 'मधुर स्वप्न' की
बक् शाह कवात् की सहोदरा तथा पत्नी है। सम्बिक् को कर्त्तव्यपरायणा, सहिष्णु,
व्रता नारी के रूप में चित्रित किया गया है। 'सिंह सेनापति' की रोहिणी साहस
 पराक्रम में पुरुषों के समान है। 'जय यौधेय' की वसुनन्दा जय के अनुकूल युद्ध-
ता का परिचय देती है। अन्य नारी-पात्र सुनन्दा, भद्रा, नन्दा, बासन्ती (जय
य) भामा, क्षेमा (सिंह सेनापति) वर्दक (मधुर स्वप्न) आदि प्राय एक से
ते हैं। राहुल जी ने नारीत्व के चित्रण में प्रेयसीत्व रूप का ही अधिक चित्रण
ा है। मातृत्व उनमें गौण है। राधा और पौरवी को छोड़कर सभी नारी-पात्र
काएँ, भामियाँ तथा पत्नियाँ हैं। उनकी नायिकाएँ युद्ध-संचालन में भले ही कुशल
 परन्तु गृहिणी अथवा माँ के दायित्वों का निर्वाह करने में अक्षम प्रतीत होती हैं।
ृहस्थ्य जीवन की समस्याओं के परिप्रेक्ष्य में उनका चित्रण अधूरा ही लगता है।
के जीवन में प्रेम का ही एकमात्र महत्त्व है। इस प्रकार उनका चरित्र-चित्रण
ागी बन गया है। इस सम्बन्ध में डॉ० नगेन्द्र का कथन सत्य प्रतीत होता है—
ारी-पात्रों में 'सिंह सेनापति' की रोहिणी और क्षेमा, 'जय यौधेय' की बासन्ती और
न्दा एक ही साँचे में ढली हुई हैं। भामा और नन्दा में तीखापन और ज्यादा है,
का चित्रण देखकर अमरीकिन सैनिक द्वारा किये हुए स्त्रियों के वर्णन का स्मरण
 आता है।"[६३] राहुल जी के नारी-चित्रण में वस्तुतः रूस की स्वच्छन्द-नारी का
त्रण है। 'राजस्थानी रनिवास' के गौरी आदि नारी-पात्र नारी की करुण स्थिति
 चित्र अवश्य प्रस्तुत करते हैं।

बहिरंग चित्रण —बहिरंग चित्रण का सम्बन्ध पात्रों की आकृति, वेशभूषा,
स्था, नाम, क्रिया, अनुभव आदि से होता है।[६४] राहुल जी के उपन्यासों में पात्रों
 बहिरंग चित्रण की प्रवृत्ति अधिक रही है। इस विषय में रणवीर रांग्रा के उपन्यास-
र वृन्दावनलाल वर्मा के विषय में कहे गये ये शब्द राहुल जी की चित्रण-विधि पर
 सही प्रतीत होते हैं—"उनके ऐतिहासिक उपन्यासों की लम्बी-लम्बी भूमिकाओं के

होता है। यह नाम सार्थक एवं उसके चरित्र का व्यंजक होता है। पात्रों का नाम रखते समय उपन्यासकार के सामने पात्रों का समूचा चरित्र-विकास आ जाता है, उसके गुणावगुण उसे प्रत्यक्ष हो जाते हैं। चरित्र-चित्रण में राहुल जी ने पात्रों के नामकरण का भी उपयोग किया है। 'यथा नाम तथा गुण' की उक्ति उनके अनेक पात्रों पर चरितार्थ होती है। 'त्रसदस्यु' 'सिंह' 'जय' आदि नाम उनके चारित्रिक गुणों—शौर्य, निर्भयता एवं साहस—आदि की अभिव्यक्ति करते हैं। देवराज नाम से उसके सात्विक व्यक्तित्व की झलक मिल जाती है। शान्तिल अपने नाम के अनुसार शान्त प्रकृति का है और बुद्धिल बुद्धिवादी है। वर्दक (गुलाब) में उसकी सुन्दरता, कोमलता आदि का बोध हो जाता है। ग्रामीण पात्रों के नाम लोटू सिंह, मंगूसिंह, मगरू, लछमी आदि स्वाभाविक नाम हैं और ग्रामीण अशिक्षित वर्ग के प्रतीक हैं। अभिप्राय यह कि राहुल जी ने अपने अधिकांश काल्पनिक पात्रों के नामकरण द्वारा भी उनके चरित्र की ओर संकेत कर दिया है।

उपन्यासों के कुछ शीर्षकों से भी पात्रों के व्यक्तित्व का प्रकाशन हुआ है। 'दिवोदास', 'विस्मृत यात्री', 'मधुर स्वप्न', 'सिंह सेनापति' तथा 'जीने के लिए' के अनेक अध्यायों के शीर्षक पात्रों के चरित्रांकन में सहायक हुए हैं। 'अश्व समन', 'दिवोदास राजा' तथा 'अतिथि-गृह' दिवोदास की वीरता एवं अतिथि-सेवा के गुणों की ओर संकेत करते हैं। 'जीने के लिए' के नायक देवराज का चरित्र 'शिकार और उपकार', 'प्रेम और आदर्श', 'सत्याग्रही', 'कोयले की खान', 'जेल यातना' आदि शीर्षकों से व्यक्त हो जाता है। 'महाचीन की ओर', 'व्यस्त जीवन' आदि शीर्षक नरेन्द्रयश के व्यक्तित्व को स्पष्ट करने वाले हैं। चरित्र-चित्रण की यह पद्धति प्राय: अस्वाभाविक होती है, क्योंकि नामकरण अथवा शीर्षक से ही चारित्रिक विशेषताओं की अभिव्यक्ति हो जाने से पाठकों की उत्सुकता मंद पड़ जाती है।"[११]

राहुल जी ने यत्र-तत्र पात्रों के अनुभाव-चित्रण के द्वारा भी उनके चरित्रों पर प्रकाश डाला है। देवराज तथा जेनी के मिलन में उनका अनुभाव-चित्रण देखिए—"जेनी के सुनहले बालों वाले सिर को अपनी गोद में लिए उसकी ठुड्डी पर अपने दाहिने हाथ की उंगली को रखे, उसकी नीली आंखों को गम्भीरता से देखते हुए देवराज कितने ही समय तक अपने हृदय को खोल कर रखता रहा। यद्यपि उनके वार्तालाप ने गम्भीरता का रूप धारण किया था, लेकिन मालूम होता था, वे दोनों इस धरती को छोड़कर किसी दूसरे लोक में चले गये हैं।"[१२] रोहिणी और सिंह के प्रेम-वर्णन में भी उनका अनुभाव-चित्रण दृष्टव्य है—"उसने मुँह फेरकर मेरी ओर ताका। उसकी आंखें मुंदी हुई थीं। उसके गोरे गालों पर स्निग्ध जल की परत पड़ी हुई थी। मैंने हाथ को हिलाना चाहा। उसने सर को पास कर दिया। कितने ही दिनों से उसने केशों को धोना-सजाना न था तो भी उसके होने पर भी वह कौशेय तन्तु की भांति कोमल थे। मैंने उनमें अंगुलियों को फेरते हुए कहा—रोहिणी। मैं अच्छा हूँ, तुम्हें चिन्ता न करनी चाहिए।"[१३] यहाँ सात्विक एवं कायिक दोनों प्रकार

'जीने के लिए' उपन्यास में मोहनलाल की मृत्यु देवराज के जीवन-क्रम को बदल देती है। वह देश-सेवा और कर्त्तव्य के मार्ग पर आरूढ़ हो जाता है। 'जय यौधेय' में जय और उसके साथी सिंह के पोत-भग्न से जय को एक नये जीवन का साक्षात्कार होता है।[२१५] 'विस्मृत यात्री' मे बुद्धिल की मृत्यु नरेन्द्रयश के जीवन मे परिवर्तन ला देती है।[२१६] 'मधुर स्वप्न' में शाह कवात् दुर्भिक्ष की घटना से प्रभावित हो मज्दक के मार्ग को अपना लेता है। अभिप्राय यह कि राहुल के पात्र जहाँ घटनाओं का निर्माण करते हैं, वहाँ घटनाएँ भी पात्रों के चरित्र को प्रकाशित करती हैं।

(ख) कथोपकथन द्वारा चरित्र-चित्रण – घटनाओं का सम्बन्ध तो उपन्यास के कथानक एवं पात्र दोनों से होता है, परन्तु उपन्यास में कथोपकथन का प्रयोग अधिकांशत. चरित्रोद्घाटन के लिए ही रहता है। राहुल जी ने आत्मकथात्मक ('सिंह सेनापति', 'जय यौधेय' एवं 'विस्मृत यात्री') तथा ऐतिहासिक ('जीने के लिए', 'मधुर स्वप्न') शैली मे लिखे अपने उपन्यासो मे संवादो की प्रचुर योजना की है। इनसे पात्रों के चरित्रोद्घाटन में विशेष सफलता मिली है। रोहिणी और सिंह के निम्न उद्धृत संवाद उनके मधुर एवं आशामय भावी जीवन की ओर संकेत करते हैं।

> 'और तुम रोहिणी ?'
>
> 'मैं भी, तभी तो फूली नही समाती थी।'
>
> 'मैंने उस राक्षस को परास्त करके छोड़ा, किन्तु उठकर देखता हूँ तो तुम वहाँ नहीं हो। मेरे प्राण निकलने से लगे। किन्तु उसी समय नींद खुल गई।'
>
> 'स्वप्न मे तुम विश्वास करते हो प्रियतम ?'
>
> 'नही, मैं विश्वास नही करता हूँ, रोहिणी।'
>
> 'तात भी विश्वास नही करते, किन्तु माँ करती है, स्वप्न का विपाक उल्टा होता है, अच्छे का बुरा, बुरे का अच्छा।'
>
> 'यदि विश्वास करना होगा, तो अम्मा के विचार के अनुसार मै विश्वास करूँगा।'[२१७]

'जीने के लिए' उपन्यास में देवराज और जेनी के संवाद उनके प्रेम और कर्त्तव्य सम्बन्धी आदर्शों की अभिव्यक्ति करते हैं।[२१८] श्रीमती ज्याफ़रे के संवादों मे माँ का वात्सल्यपूर्ण हृदय झांकता है।[२१९] 'जय यौधेय' मे जय और शक कुमारी के संवाद जय के संयमित प्रेम की ओर संकेत करते हैं।[२२०] निष्कर्ष यह कि पात्रों के स्वरूप को प्रकट करने मे राहुल जी के संवादों को सर्वाधिक श्रेय है।

(ग) पत्रात्मक-शैली—राहुल जी पात्रों के चरित्र को उद्घाटित करने के लिए 'जीने के लिए' उपन्यास मे पत्रात्मक शैली का प्रयोग करते हैं। जेनी के देवराज के नाम लिखे गए पत्रों मे जेनी का चरित्र उद्घाटित होता है। जेनी का अधूरा पत्र जिसे एनी स्पष्ट पूरा करती है, वह जेनी के आदर्शों एवं कार्यों को प्रकाशित करता है।[२२१]

(घ) उद्धरण शैली— राहुल जी मे इस शैली का अभाव है। फिर भी

पुरुरवा और उर्वशी विषयक गीत की टीका-टिप्पणी मे पौरवी का चरित्रांकन स
पूर्वक हुआ है।[१३३]

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि राहुल ने पात्रों के चरित्रांकन में
वाह्य रूप का ही अंकन अधिक किया है, अन्तरंग चित्रण का उनमें अभा
जहाँ तक चित्रण की प्रणालियों का प्रश्न है, राहुल जी ने आकृति-वेशभूषा
स्वभाव-वर्णन, अनुभाव-वर्णन, नामकरण द्वारा चरित्रांकन, कथोपकथन, पत्रात्मक
एवं घटनाओं के माध्यम से चरित्रांकन की पद्धति का उपयोग किया है।

राहुल जी का चरित्र-चित्रण इस प्रकार उत्कृष्ट कोटि का नहीं है वह ब
चित्रण तक ही सीमित है और यदि डॉ॰ राम्रा का रूपक ग्रहण किया जाये तो
कह सकते हैं कि उनके पात्रों का चरित्र जलमग्न हिमनग के समान है जिसका अल
ही व्यक्त क्रिया-प्रतिक्रियाओं में प्रतिबिम्बित हुआ है।[१३४] राहुल जी के पात्रों
चरित्रांकन का महत्त्व इस बात में है कि वे ऐतिहासिक पात्रों की सृष्टि
सामाजिक समस्याओं को अभिव्यक्ति प्रदान कर सके हैं। इस सामाजिक उद्
की पूर्ति के लिए उन्हें पात्रों के अन्तरंग चित्रण की आवश्यकता ही नहीं थी।
प्रभाकर माचवे के शब्दों में—'सर्वत्र राहुल जी अपने जिस उद्देश्य को लेकर
हैं, उस दृष्टि से पात्रों का उभारने-संवारने में उन्होंने कोई कोर-कसर बाकी
छोड़ी।'[१३५] अन्ततः हम कह सकते हैं कि चरित्र-चित्रण की दृष्टि से 'जीने के लि
'मधुर स्वप्न' एवं 'जय यौधेय' अपेक्षया राहुल जी के उपन्यासों मे उत्कृष्ट
पड़े हैं।

संवाद

प्रेमचन्द उपन्यासगत संवादों के महत्त्व के विषय में लिखते हैं—"उपन्या
मे वार्तालाप जितना अधिक हो और लेखक की कलम से जितना ही कम लिखा जा
उतना ही अच्छा है। इस सम्बन्ध में इतना ध्यान रखना आवश्यक है कि वार्तालाप
केवल रस्मी नहीं होना चाहिए। किसी भी चरित्र के मुँह से निकले हुए प्रत्येक वाक्य
को उसके मनोभावों और चरित्र पर कुछ प्रकाश डालना चाहिए। बातचीत का स्वाभा
विक, परिस्थितियों के अनुकूल और सूक्ष्म होना आवश्यक है।"[१३६] इस प्रकार उपन्यास
मे कथोपकथन का समावेश वस्तु के विकास एवं चरित्र तथा उद्देश्य की अभिव्यक्ति
के लिए किया जाता है। अच्छे कथोपकथन में सार्थकता, स्वाभाविकता और नाट-
कीयता का गुण अनिवार्य है।

राहुल जी ने अपनी औपन्यासिक कृतियों में संवादों का प्रचुर प्रयोग किया
है। 'भागो नहीं दुनिया को बदलो' उपन्यास तो संवादात्मक रचना है ही, अन्य
उपन्यासों मे भी संवादों का प्रभूत प्रयोग है। उनके 'जीने के लिए' तथा 'सिंह सेना-
पति' का आरम्भ संवादात्मक शैली मे हुआ है। राहुल जी के संवाद कोरी सजावट
के लिए नहीं हैं। उन्होंने संवादों द्वारा कथा का विकास करने के अतिरिक्त पात्रों के

व्यक्तित्व का उद्घाटन भी किया है। सर्वोपरि संवाद राहुल जी की विचार-धारा की मुखरित अभिव्यक्ति हैं। राहुल जी के संवाद संक्षिप्त एवं दीर्घ दोनों प्रकार के हैं। उनके लघु संवाद कथा-विकास एवं चरित्र-अभिव्यक्ति में सहायक हैं। लम्बे सवादों द्वारा लेखक के विचारों को मूर्तरूप मिला है, यद्यपि उनमे कलात्मक-उत्कर्ष का अभाव है।

संक्षिप्त-संवाद—राहुल जी के उपन्यासों मे संक्षिप्त संवादो की योजना उनकी संवादगत कलात्मकता की उत्कृष्टता का परिचायक है। छोटे-छोटे संवादों की योजना से वे कथा-विकास और पात्रों के चरित्र-विकास मे सफल हुए हैं। 'सिंह सेनापति' इस दृष्टि से उनकी उत्कृष्ट रचना है। इस उपन्यास के प्रारम्भिक संवाद उदाहरणार्थ प्रस्तुत हैं—

'(दूसरे साथियो के) बाद मुझे आचार्य के सामने जाना पड़ा। आचार्य बहुलाश्व ने पूछा—'तुम्हारा नाम गोत्र, तात!' 'गोत्र काश्यप और नाम सिंह' कहते मैंने गैंडे की ढाल आचार्य के सामने रखी।

आचार्य ने जहाँ-तहाँ लोहे की कीलों से जटित उस ढाल को हाथ मे लेकर कहा—'बड़ी सुन्दर है यह ढाल और साथ ही बहुत मजबूत भी।'

'मेरे पिता ने गैंडे को अपने हाथ से मारा था और उसी से बनी ढालों मे से एक है।'

'तो वत्स सिंह! तुम्हारे पिता को तक्षशिला वालो की प्रिय वस्तु मालूम है, तभी तो उन्होंने खास तौर से इसे सम्पादन करके भेजा।'

'लेकिन, आचार्य! मेरे पिता तेरह वर्ष पहले मर चुके। उस वक्त मैं पाँच वर्ष का था।'

'आह वत्स! बिना पिता के पुत्र का कष्ट मुझे खूब मालूम है। मैं आठ वर्ष का था, जब मेरे पिता मरे थे। किन्तु मेरे तीन बड़े भाई और माँ थी। तुम्हारी माँ तो होंगी?'

'हाँ मेरे पुत्र-प्राण जननी जीवित है। उनकी मैं पहली सन्तान था। माँ ने दूसरा ब्याह किया, किन्तु सौभाग्य से उनके नये पति मेरे द्वितीय पिता साबित हुए। उन्हीं की कृपा से मैं अब तक कुछ सीख-पढ़ सका हूँ।'

'तो वत्स! मैं समझता हूँ, तुम शुल्क देकर नहीं पढ़ सकोगे, किन्तु उसकी परवाह न करो। तुम्हारे जैसे धर्म-निशुल्क—अन्तेवासी (शिष्य) के लिए बहुलाश्व का घर खुला हुआ है।'

'आचार्य की इस असीम कृपा के लिए मैं मुँह से क्या कह सकता हूँ?'

'कुछ कहने की जरूरत नहीं। तुम अपने को मेरी विद्या का अच्छा पात्र साबित करना।''[११]

आचार्य बहुलाश्व और नायक सिंह के उक्त संवाद संक्षिप्त हैं। लघु प्रश्नों और लघु उत्तरों के रूप मे इन संवादों का संयोजन हुआ है। संवाद स्वाभाविक और रोचक

से हैं। कथावस्तु के विकास मे सहायक हैं तथा पात्रों के प्रारम्भिक रूप की झाँकी प्रस्तुत करते हैं। आचार्य बहुलाश्व की उदारता एवं शिष्यों के प्रति सहानुभूति इन संवादों से व्यक्त है। नायक सिंह के संवाद उसकी पारिवारिक स्थिति का अंकन करते हैं। संवादों की संक्षिप्तता एवं उनकी गत्यात्मकता का एक और उदाहरण इसी उपन्यास से द्रष्टव्य है —

'और मिठास है ?'

'कहने से तुम्हें विश्वास नहीं होगा, भैया। मैं खिलाके दिखलाऊँगी।'

'किन्तु सूखी द्राक्षा उतनी स्वादु थोड़े ही होगी।'

'सूखी नहीं, ताज़ी जैसी।'

'पाँच महीने पहले की टूटी द्राक्षा ताजी-जैसी कैसे रहेगी ?'

'देखे होगी। और कपिशा के द्राक्षा की सुरा तो तुमने न पी होगी भैया ?'

'नहीं, सिर्फ उपमा सुनी है।'[२२७]

रोहिणी एवं सिंह का उक्त संवाद संक्षिप्त, मधुर, स्वाभाविक बातचीत का रूप है और इस प्रकार के अनेक संवाद 'सिंह सेनापति' की विशिष्टता है। सारे उपन्यास में वर्णनात्मक शैली के स्थान पर संवादात्मक शैली का प्रयोग निखरा है। 'सिंह सेनापति' की तरह 'दिवोदास' के संवाद भी संक्षिप्त एवं कलात्मक हैं। इस उपन्यास में उपन्यासकार का विचाराभिव्यक्ति के प्रति आग्रह कम है एवं तर्क-वितर्क-पूर्ण संवाद भी नहीं है। इस लघु उपन्यास में संवाद सरल, प्रवाहपूर्ण एवं कथा-विकास में सहायक हैं। उदाहरणार्थ पुरुकुत्सानी तथा पौरवी के संवाद द्रष्टव्य हैं।[२२८]

भाभी और भी स्नेह प्रतिदान करती हुई कहती है – 'ननद, तू कितनी सुन्दर है ?'

(ननद-पौरवी) —'भाभी तुम किससे कम हो ? तुम्हारे लावण्य का बखान तो सारे सप्तसिंधु में हो रहा है।'

'(भाभी-पुरुकुत्सानी) – पर मैं तो पुत्रवती हो चुकी हूँ, तू तो अभी क्वाँर है।'

(ननद-पौरवी) —'पुत्रवती होना तो बड़े सौभाग्य की बात है, फिर तुम्हें त्रसदस्यु जैसा पुत्र मिला है।'

'नहीं ननद, तू भी पुत्रवती होने ही वाली है।'

'तब मैं भी पुरानी हो जाऊँगी।'

'तेरी जैसी का सौन्दर्य इतनी जल्दी पुराना नहीं हो सकता। पैजवन वध्र्यश्व सचमुच बड़ा भाग्यशाली है, जो उर्वशी जैसी पत्नी उसे मिली।'

'दिवोदास' के उक्त संवाद स्वाभाविक, मधुर एवं सरस हैं, इसमें सन्देह नहीं। 'सोने के लिए' उपन्यास के संवादों में भी उक्त गुण विद्यमान हैं। देवराज और जेनी के संवाद[२२९] उनके आदर्श प्रेम की अभिव्यक्ति करते हैं। 'मधुर स्वप्न' में कथा-विकास के लिए संवादों का सफल प्रयोग हुआ है। मन्दाकिनी के विनाश के लिए दूसरी जिम

छल-नीति के प्रयोग के पक्ष में है, उसे वह अत्यन्त संक्षिप्त रूप में अपने संवादों द्वारा प्रकट करता है।[१३०] उसके संवाद उपन्यास की भावी कथा की सूचना के साथ उसकी स्वार्थलोलुपता एवं अत्याचारों की ओर संकेत करते हैं। इस प्रकार के संवाद 'जय यौधेय' में भी विद्यमान हैं।[१३१]

लम्बे संवाद—संक्षिप्त एवं सजीव संवादों के विपरीत राहुल जी के उपन्यासों में लम्बे संवाद भी कम नहीं हैं। जहाँ राहुल जी अपनी विचारधारा को अभिव्यक्ति देना चाहते हैं अथवा समाज, धर्म एवं राजनीति के किसी पक्ष की आलोचना करते हैं, वहाँ संवाद लम्बे-लम्बे सम्भाषण अथवा प्रवचन बन गये हैं। इन संवादों में नाटकीयता का प्रायः अभाव है, कथा यहाँ अवरुद्ध हो जाती है और कहीं-कहीं तो पात्रों की दीर्घकालीन वार्ताओं में विषय-परिवर्तन के अभाव के कारण एकरसता एवं नीरसता प्रतीत होने लगती है। विचारों की पुनरुक्ति संवाद-कला को क्षति पहुँचाती है। राहुल जी के लम्बे संवाद तीनों रूपों में द्रष्टव्य हैं।

(क) युक्तिपूर्ण लम्बे-संवाद—राहुल जी के पात्रों के सम्भाषणों में मार्क्सवादी दार्शनिक युक्तियों एवं सिद्धान्तों की प्रचुरता है। ऐसे स्थलों पर संवाद दीर्घ हो गये हैं। 'जीने के लिए' में प्रमोद और मोहनलाल के संवाद इसी प्रकार के हैं। मोहनलाल देश की स्वतन्त्रता के लिए सार्वत्रिक क्रान्ति को अनिवार्य मानता है। उसका आग्रह है—"हम चाहते हैं क्रान्ति को आध्यात्मिक रूप देना। इस मनोवृत्ति से मुझे सबसे ज्यादा चिढ़ है। क्रान्ति सार्वत्रिक उथल-पुथल है। उसे राजनीति-क्षेत्र तक सीमित नहीं रखा जा सकता। सार्वत्रिक न करने पर वह कभी सफल नहीं हो सकती। इसका हमको पहले ही निर्णय कर लेना है कि हमारे क्रान्ति-पथ का प्रदीप विज्ञान होने जा रहा है या धर्म। धर्म को मानने पर निश्चय ही हम सारे देश में एक क्रान्तिकारी दल कायम नहीं कर सकते ...... भारत की राष्ट्रीय एकता, जात-पाँत और मजहबों की चिता पर होगी"[१३२] इसी उपन्यास में साम्राज्यवाद एवं पूँजीवाद के परिणामों की ओर संकेत करता हुआ नायक देवराज शोषितों की एक जाति मानता है—"मुझे मालूम होता है, हिन्दुस्तान और इंग्लैंड के श्रमजीवियों का भाग्य एक सूत्र में बंध गया है। एक की परतन्त्रता से दूसरे की परतन्त्रता स्थायी होती है। एक की स्वतन्त्रता से दूसरे की स्वतन्त्रता में बड़ी मदद मिलती है। दुनिया के शोषितों की जाति एक है ...... मेरी समझ में इंग्लैंड के मजदूरों को हिन्दुस्तानी मजदूरों के संगठन और आन्दोलन में उतनी ही दिलचस्पी लेनी चाहिये जितनी कि अपने यहाँ वे लेते रहे हैं।"[१३३] 'मधुर स्वप्न' में साम्यवादी कार्यप्रणाली के विषय में अम्दर्जगर मज्दक का संवाद भी इसी प्रकार का है।[१३४]

(ख) विचार-प्रधान लम्बे संवाद—राहुल जी ने युक्तियुक्त व लम्बे तर्क-वितर्कों द्वारा साम्यवाद एवं बौद्ध-दर्शन सम्बन्धी विचारों के प्रचार की ओर विशेष ध्यान दिया है। साथ ही समाज व जीवन के विविध पहलुओं के बारे में अपने विचारों [illegible] प्रदान की है। 'जय यौधेय' में परलोकवाद के [illegible] का कथन

है—'पुत्र पिता का परलोक है, पुत्र पिता का पुनर्जन्म है। पिता मरने से पहले अपने शरीर, अपने मानसिक और शारीरिक संस्कार का एक अंश माता के शरीर में स्थापित करता है। माता उसमें अपना अंश मिलाती है और नौ मास गर्भ में रखकर उस शिशु के रूप में अपने लोक, अपनी पीढ़ी के लिए देती है। इसे मैं परलोक मानता हूँ। इस परलोक का मैं पक्षपाती हूँ।''[154] जय के द्वारा लेखक ने आत्मा-अनात्मवाद, पुनर्जन्म, निर्वाण[155] आदि के विषय में भी विचार प्रकट किये हैं। 'मधुर स्वप्न' में मज़्दक के मज़्दक-पुत्र की जीवनधारा में मज़्दक और मज़्दकी नेताओं का वार्तालाप है।[156] मज़्दक बुद्ध, मानी आदि साम्यवादी विचारकों के विचारों को अपने संवादों में उद्धृत करता है। ये संवाद पात्रों के स्वतन्त्र संवाद न होकर लेखक के निजी विचार हैं। इस प्रकार राहुल जी ने संवादों के माध्यम से निजी विचारों की अभिव्यक्ति की है।

आलोचनात्मक संवाद—राहुल जी जब मार्क्सवादी विचारधारा एवं बौद्धदर्शन का समर्थन करते हैं तो अन्य राजनीतिक विचारधाराओं एवं धर्मों की तीव्र आलोचना एवं खण्डन करने लगते हैं। उनके पात्रों के आलोचनात्मक एवं खण्डनात्मक संवाद यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं। चार्वाक-दर्शन के विषय में जय का कथन है—''मेरा मतलब है, चार्वाक के नाम से आप जिस जीवन-दर्शन को हमारे सामने रख रहे हैं, वह चोरों, सेठों का दर्शन है। बिना कमाये के वे सभी इसी पर चलते आये हैं। किसी की परवाह मत करो, बाप और भाई को भी तलवार के घाट उतारो, विष पिलाकर सुलाने में ज़रा भी आना-कानी न करो, यदि तुम्हारे खाने-पीने, मौज करने में बाधा होवे।''[157] इसी प्रकार ज़मींदारी-प्रथा के उन्मूलन के विषय में कांग्रेस की नीति की आलोचना करते हुए कमाल कहता है—''जी हाँ, उठाने का अधिकार नहीं, लेकिन भारी शक्ति लगाकर उसकी रक्षा करने का काम तो कांग्रेस ने अपने ज़िम्मे लिया है न।''[158] इस प्रकार राहुल जी धर्मगत संकीर्णताओं एवं राजनीतिक क्षेत्र में स्वार्थ-लोलुपता आदि के वर्णन में आलोचनात्मक संवादों की सहायता लेते हैं।

निष्कर्ष यह है कि राहुल जी के लम्बे कथोपकथन उनकी मार्क्सवादी विचारधारा के प्रभाव से अस्पृष्ट नहीं हैं, और उन पर प्रचारात्मकता का गहरा रंग चढ़ा हुआ है। अतीत एवं वर्तमान की घटनाओं का मार्क्सवादी दृष्टिकोण से विश्लेषण करने के कारण उनके पात्रों के संवाद उनके अपने लक्ष्य के अनुकूल हैं।

राहुल जी के उपन्यासों के संवादों में भावानुरूपता एवं नाटकीयता का अभाव ही दृष्टिगोचर होता है। उनमें वांछनीय गुण-संक्षिप्तता, पैनापन और कार्य के अनुसार गति नहीं है। शुष्क विषयों के विवेचन से सम्बद्ध होने के कारण उनमें रोचकता, चुस्ती एवं हाज़िरजवाबी का अभाव है। देवराज और उसके साथियों में अंग्रेज़ी साम्राज्यवादी नीति-विषयक वार्ता[159] तथा जय और प्रसंग के बौद्धधर्म एवं दर्शन-विषयक संवादों में[160] ये त्रुटियाँ पाई जाती हैं। राहुल जी के कथोपकथन बौद्धिक अधिक हैं। उनके पात्र गणतन्त्र, साम्यवाद एवं बौद्ध-दर्शन जैसे गम्भीर विषयों पर तर्क-वितर्क

छल-नीति के प्रयोग के पक्ष में है, उसे वह अत्यन्त संक्षिप्त रूप में अपने संवादों द्वारा प्रकट करता है।[130] उसके संवाद उपन्यास की भावी कथा की सूचना के साथ उसकी स्वार्थलोलुपता एवं अत्याचारों की ओर संकेत करते हैं। इस प्रकार के संवाद 'जय यौधेय' में भी विद्यमान हैं।[131]

लम्बे संवाद—संक्षिप्त एवं सजीव संवादों के विपरीत राहुल जी के उपन्यासों में लम्बे संवाद भी कम नहीं हैं। जहाँ राहुल जी अपनी विचारधारा को अभिव्यक्ति देना चाहते हैं अथवा समाज, धर्म एवं राजनीति के किसी पक्ष की आलोचना करते हैं, वहाँ संवाद लम्बे-लम्बे सम्भाषण अथवा प्रवचन बन गये हैं। इन संवादों में नाटकीयता का प्रायः अभाव है, कथा यहाँ अवरुद्ध हो जाती है और कहीं-कहीं तो पात्रों की दीर्घकालीन वार्ताओं में विषय-परिवर्तन के अभाव के कारण एकरसता एवं नीरसता प्रतीत होने लगती है। विचारों की पुनरावृत्ति संवाद-कला को क्षति पहुँचाती है। राहुल जी के लम्बे संवाद तीनों रूपों में द्रष्टव्य हैं।

(क) युक्तिपूर्ण लम्बे-संवाद—राहुल जी के पात्रों के सम्भाषणों में मार्क्सवादी दार्शनिक युक्तियों एवं सिद्धान्तों की प्रचुरता है। ऐसे स्थलों पर संवाद दीर्घ हो गये हैं। 'जीने के लिए' में प्रमोद और मोहनलाल के संवाद इसी प्रकार के हैं। मोहनलाल देश की स्वतन्त्रता के लिए सार्वत्रिक क्रान्ति को अनिवार्य मानता है। उसका आग्रह है—"हम चाहते हैं क्रान्ति को साम्प्रदायिक रूप देना। इस मनोवृत्ति से मुझे सबसे ज्यादा चिढ़ है। क्रान्ति सार्वत्रिक उथल-पुथल है। उसे राजनीति-क्षेत्र तक सीमित नहीं रखा जा सकता। सार्वत्रिक न करने पर वह कभी सफल नहीं हो सकती। इसका हमको पहले ही निर्णय कर लेना है कि हमारे क्रान्ति-रथ का प्रदीप विज्ञान होने जा रहा है या धर्म। धर्म को मानने पर निश्चय ही हम सारे देश में एक क्रान्तिकारी दल कायम नहीं कर सकते ... भारत की राष्ट्रीय एकता, जात-पांत और मजहबों की चिता पर होगी ..."[132] इसी उपन्यास में साम्राज्यवाद एवं पूँजीवाद के परिणामों की ओर संकेत करता हुआ नायक देवराज शोषितों की एक जाति मानता है—"मुझे मालूम होता है, हिन्दुस्तान और इंग्लैंड के धनशोषितों का भाग्य एक सूत्र में बंध गया है। एक की परतन्त्रता से दूसरे की परतन्त्रता स्थायी होती है। एक की स्वतन्त्रता से दूसरे की स्वतन्त्रता में बड़ी मदद मिलती है। दुनिया के शोषितों की जाति एक है ... मेरी समझ में इंग्लैंड के मजदूरों को हिन्दुस्तानी मजदूरों के संगठन और आन्दोलन में उतनी ही दिलचस्पी लेनी चाहिए जितनी कि अपने यहाँ के [illegible] रहे हैं।"[133] 'मधुर स्वप्न' में [illegible] के लिए [illegible] संवाद भी इसी प्रकार का है।[134]

(ख) विचार-प्रधान लम्बे संवाद—राहुल जी ने [illegible] द्वारा [illegible] बौद्ध-दर्शन सम्बन्धी [illegible] के प्रचार की ओर [illegible] दिया है। [illegible]

है—"पुत्र पिता का परलोक है, पुत्र पिता का पुनर्जन्म है। पिता अपने से बढ़ कर अपने शरीर, अपने मानसिक और शारीरिक संस्कार का एक अंश माता के शरीर में स्थापित करता है। माता उसमें अपना अंश मिलाती है और जो भाग गर्भ में रहकर उसे शिशु के रूप में प्रकट होता, अगली पीढ़ी के लिए देती है। हम ने परलोक माना है। इस परलोक का मैं पक्षपाती हूँ।"[illegible] जय के द्वारा लेखक ने आत्मा-परमात्मा, पुनर्जन्म, निर्वाण[illegible] आदि के विषय में भी विचार प्रकट किये हैं। 'मधुर स्वप्न' में मजदक के अन्तःपुर की चोचलबाजी में मजदक और मजदकी नेताओं का वार्तालाप है।[illegible] मजदक बुद्ध, मानी आदि साम्यवादी विचारकों के विचारों का स्पष्ट संवादों में उल्लेख करता है। ये संवाद पात्रों के स्वतन्त्र संवाद न होकर लेखक के निजी विचार हैं। इस प्रकार राहुल जी ने संवादों के माध्यम से निजी विचारों की अभिव्यक्ति की है।

आलोचनात्मक संवाद—राहुल जी जब मार्क्सवादी विचारधारा एवं सोवियत का समर्थन करते हैं तो अन्य राजनीतिक विचारधाराओं एवं धर्मों की तीव्र आलोचना एवं खण्डन करने लगते हैं। उनके पात्रों के आलोचनात्मक एवं खण्डनात्मक संवाद यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं। चार्वाक-दर्शन के विषय में जय का कथन है—"मेरा मतलब है, चार्वाक के नाम से आप जिस जीवन-दर्शन को हमारे सामने रख रहे हैं, वह सामन्तों, सेठों का दर्शन है। बिना परवाह के वे सभी इसी पर चलते आये हैं। किसी की परवाह मत करो, बाप और भाई को भी तलवार के घाट उतारो, जिस सिंहासन सुख में जरा भी आना-कानी न करो, यदि तुम्हारे खाने-पीने, मौज करने में बाधा होवे।"[illegible] इसी प्रकार जमींदारी-प्रथा के उन्मूलन के विषय में कांग्रेस की नीति की आलोचना करते हुए कमाल कहता है—"जी हाँ, उठाने का अधिकार नहीं, लेकिन सारी शक्ति लगाकर उसकी रक्षा करने का काम तो कांग्रेस ने अपने जिम्मे लिया है न।"[illegible] इस प्रकार राहुल जी धर्मगत संकीर्णताओं एवं राजनीतिक क्षेत्र में स्वार्थ-लोलुपता आदि के वर्णन में आलोचनात्मक संवादों की सहायता लेते हैं।

निष्कर्ष यह है कि राहुल जी के सम्पूर्ण कथोपकथन उनकी मार्क्सवादी विचारधारा के प्रभाव से अस्पृष्ट नहीं हैं, और उन पर प्रचारात्मकता का गहरा रंग चढ़ा हुआ है। अतीत एवं वर्तमान की घटनाओं का मार्क्सवादी दृष्टिकोण से विश्लेषण करने के कारण उनके पात्रों के संवाद उनके अपने लक्ष्य के अनुकूल हैं।

राहुल जी के उपन्यासों के संवादों में भावानुकूलता एवं नाटकीयता का अभाव ही दृष्टिगोचर होता है। उनमें वांछनीय गुण-संक्षिप्तता, पैनापन और पात्र के अनुसार गति नहीं है। शुष्क विषयों के विवेचन में सम्बद्ध होने के कारण उनमें रोचकता, चुस्ती एवं हाजिरजवाबी का अभाव है। देवराज और उनके साथियों में अंग्रेजी साम्राज्यवादी नीति-विषयक वार्ता[illegible] तथा जय और अशोक के बौद्धधर्म एवं दर्शन-विषयक संवादों में[illegible] ये त्रुटियाँ पाई जाती हैं। राहुल जी के कथोपकथन बौद्धिक अधिक हैं। उनके पात्र गणतन्त्र, साम्यवाद एवं बौद्ध-दर्शन जैसे गम्भीर विषयों पर तर्क-वितर्क

करते है। ऐसे स्थलों पर विषय-प्रतिपादन की ओर अधिक ध्यान देने के कारण राहुल जी पात्रों के संवादों में प्रसंगानुसार माधुर्य, कोमलता एवं ओज आदि की सृष्टि नहीं कर सके हैं। कई स्थलों पर तो प्रणय-वार्ताएँ भी आकर्षक नहीं हैं। 'विस्मृत यात्री' में नरेन्द्र और उसकी प्रेमिका भद्रा की प्रणयवार्ता में प्रणय-सम्बन्धी उल्लास एवं आवेग का अभाव है।[१५२] राहुल जी के इन गम्भीर विषयों से सम्बन्धित संवादों के विषय में यह सहज ही कहा जा सकता है कि ये संवाद प्रायः वाद-विवाद के रूप में प्रस्तुत हैं। उपन्यास का मुख्य पात्र अथवा नायक विचारों का प्रतिपादन करता है और अन्य पात्र उसका समर्थन करते जाते हैं। अन्त में नायक के विचारों से सभी पात्र प्रभावित हो उसका अनुगमन करते हैं।

संवादों की भाषा - राहुल जी के उपन्यासों के संवादों की भाषा पात्रानुकूल एवं वातावरणानुरूप है। 'दिवोदास', 'जय यौधेय' तथा 'सिंह सेनापति' के प्रमुख पात्रों के कथनों में संस्कृत के तत्सम शब्दों की प्रधानता है, फलतः उनसे देशकाल को साकार रूप प्रदान करने में लेखक को सफलता मिली है। 'मधुर स्वप्न' में भी पात्रानुकूलता की विशिष्टता विद्यमान है। ईरानी वातावरण वहाँ सुचारु रूप में अंकित हुआ है। कहीं-कहीं तत्सम शब्दों की प्रचुरता से संवादों में दुर्बोधता भी आ गई है। परन्तु अन्यत्र भाषा सरल एवं प्रवाहमयी है। राहुल जी ने अपने ग्रामीण पात्रों के संवादों की भाषा में लोक-भाषा का पुट दिया है। इससे कथानक की एकरसता में वैविध्य और सजीवता आ गई है। 'जीने के लिए' में देवराज और लक्ष्मी के संवादों में लोक भाषा का प्रयोग हुआ है।[१५३]

राहुल जी के संवादों की अपनी विशेषताएँ एवं दुर्बलताएँ हैं। जहाँ उन्होंने संवादों को विचाराभिव्यक्ति का माध्यम न बनाकर वस्तु-विकास एवं चरित्रांकन के लिए उनका उपयोग किया है, वहाँ उनके संवाद संक्षिप्त, सजीव एवं गतिशील हैं, परन्तु अधिकांशतः राहुल जी के संवाद दीर्घ, आलोचनात्मक एवं वाद-विवाद का रूप धारण किये हुए हैं। संवाद-कला की दृष्टि से 'सिंह सेनापति' तथा 'दिवोदास' उत्तम रचनाएँ हैं।

देशकाल और वातावरण

वातावरण पात्रों का संसार है, जिसमें रहकर पात्र अपने व्यक्तित्व को उद्घाटित एवं विकसित करते हैं। आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र स्थान और समय के औचित्यपूर्ण नियोजन को देशकाल की संज्ञा देते हैं और ऐतिहासिक उपन्यासों में इसकी अनिवार्यता इन शब्दों में व्यक्त करते हैं—'ऐतिहासिक उपन्यासों का मानना रखने से इस तत्व के समावेश वैशिष्ट्य का भली-भाँति पता चल जाता है। क्योंकि यदि इन उपन्यासों में न मानसिक संसार के आचार-व्यवहार का ठीक-ठीक चित्रण न किया जाए तो उनका उद्देश्य ही नष्ट हो जाता है।'[१५४] डॉ० रमेश कुन्तल मेघ के शब्दों में 'सिंह सेनापति' का ऐतिहासिक और वातावरण-सृष्टि द्वारा बड़ी बढ़ाई में हुआ है। वेश-भूषा, शृंगार, खान-पान-व्यवहार, धर्म, कलाएँ, सामाजिक जीवन, नगर और

इसके उपादान हैं।"[२५४] वस्तुतः ऐतिहासिक उपन्यासों में ऐतिहासिक घटनाओं की अपेक्षा तत्कालीन जीवन-चित्रण का महत्त्व अधिक है। श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी का मत अवलोकनीय है—"इनमें ऐतिहासिक घटनाओं का इतना महत्त्व नहीं होता, जितना तत्कालीन जीवन के चित्रण का। उसी से हमें कौतूहल होता है, विस्मय होता है, आतंक होता है, श्रद्धा होती है और मानव-जीवन की चिरन्तन गरिमा पर दृढ़ विश्वास भी होता है।"[२५५] वातावरण के मुख्य दो रूप हैं—समाजगत एवं प्रकृतिगत। समाजगत वातावरण के अन्तर्गत समाज की विविध राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक आदि परिस्थितियों एवं पात्रों की वेश-भूषा, शृंगार, आचार-व्यवहार, खान-पान आदि आते हैं। प्राकृतिक वातावरण में प्रकृति के विविध रूपों, पशु, पक्षी, सरिता, सरोवर, पर्वत, निर्झर, कानन, उपवन आदि की गणना की जाती है।

राहुल जी के उपन्यासों में वातावरण-सृष्टि का तत्त्व सर्वाधिक उभरा है। वातावरण-सर्जना के लिए लेखक ने पर्याप्त उद्योग किया है और उसे सफलता भी मिली है। देश और काल दोनों ही उनके उपन्यासों में सजीव रूप से अंकित हैं। उनकी ऐतिहासिक कल्पना युग-परिस्थितियों को पूर्ण रूप से मूर्त्त कर सकी है। वातावरण-निर्माण के लिए राहुल जी ने कल्पित कथा एवं ऐतिहासिक वस्तु-वर्णन से साहाय्य लिया है, साथ ही ऐतिहासिक शब्दावली का प्रयोग भी वातावरण-निर्माण में सहायक सिद्ध हुआ है। राहुल जी ने अपने ऐतिहासिक उपन्यासों में जिस शब्दावली का प्रयोग किया है, वह प्राचीन भारत एवं प्राचीन ईरान के सांस्कृतिक ऐश्वर्य की अभिव्यक्ति में समर्थ है। डॉ० गोपीनाथ तिवारी लिखते हैं—"राहुल जी ने ऐतिहासिक वातावरण के निर्माण के लिए विशिष्ट शब्दों का प्रयोग किया है। 'सिंह सेनापति' एवं 'जय यौधेय' में यह कौशल मिलता है। वहाँ वह बहुत उचित और सौन्दर्य का साधक है।"[२५७] डॉ० नगेन्द्र को राहुल जी इस क्षेत्र में प्रसाद जी से भी बढ़े हुए दृष्टिगोचर होते हैं—"अतीत के सांस्कृतिक ऐश्वर्य को अभिव्यक्त करने के लिए जिस समृद्ध और समर्थ शब्दावली का प्रयोग प्रसाद जी ने अपने नाटकों में आरम्भ किया था राहुल जी ने उसकी और भी अधिक श्रीवृद्धि की है। वास्तव में इस क्षेत्र पर उनका अधिकार प्रसाद जी की अपेक्षा अधिक व्यापक है।"[२५८] निस्सन्देह राहुल जी के उपन्यासों में अन्य तत्त्वों की अपेक्षा देशकाल और वातावरण का तत्त्व अधिक सफल रहा है।

देश-चित्रण—राहुल जी के उपन्यास विविध घटनाओं एवं देशों से सम्बद्ध हैं। मुख्यतः उनकी रंगस्थली भारत तथा ईरान है। 'दिवोदास' का मुख्य घटनास्थल सप्त-सिन्धु, 'सिंह सेनापति' का वैशाली और तक्षशिला, 'जय यौधेय' का यौधेय प्रदेश, 'विस्मृत यात्री' का उद्यान प्रदेश तथा 'जीने के लिए', 'बाईसवीं सदी' और 'राजस्थानी रनिवास' का क्रमशः छपरा, पटना और राजस्थान है। 'मधुर स्वप्न' का मुख्य घटनास्थल ईरान देश की राजधानी तस्पोन् है। राहुल के नायक यायावर हैं और उनकी यात्राएँ भारत के बौद्ध तीर्थस्थानों के अतिरिक्त सिंहलद्वीप तथा महाचीन तक की

भूमि तक हैं। उपन्यासान्तर्गत ये यात्रा-विवरण उपन्यास-शिल्प का अंग बन गये हैं और उसका नियमन करते हैं। इसलिए मुख्य केन्द्रस्थलों के अतिरिक्त समूचे भारत तथा ईरान को घटनास्थल के रूप में उपन्यासकार ने ग्रहण किया है। राहुल जी ने देश अथवा भूगोल वर्णन में पर्याप्त सतर्कता से काम लिया है। ऐतिहासिक उपन्यासों मे भौगोलिक वर्णनों की ओर जितना ध्यान राहुल ने दिया है उतना किसी अन्य उपन्यासकार ने नही। राहुल जी के उपन्यासों में भूगोल के अनेक मानचित्र हैं। भौगोलिक यथार्थता एवं सजीवता राहुल जी की महती विशिष्टता है।

राहुल जी के उपन्यास ऐतिहासिक हैं, आंचलिक नहीं। फिर भी वे जब किसी प्रदेश-विशेष का भौगोलिक विवरण प्रस्तुत करते हैं अथवा यात्रा-प्रदेशों का वर्णन करते है, तो उस अंचल-विशेष का पूरा बिम्ब प्रस्तुत हो जाता है। इसीलिए विश्वनाथ प्रसाद तिवारी उनके उपन्यासों में स्थानीय रंग की महत्ता स्वीकारते हैं।[२५६] उपन्यासान्तर्गत नगर-वर्णन और यात्रा-वर्णन राहुल के भौगोलिक ज्ञान के प्रतीक हैं। उन्होंने अपने नायकों की यात्रा में आये नगरों का विशद वर्णन किया है। 'विस्मृत यात्री' के नायक की जन्मभूमि उद्यान-प्रदेश का वर्णन उदाहरणार्थ प्रस्तुत है—"अपनी-अपनी मातृभूमि सबको अच्छी लगती है, इसलिए मैं किसी के कुरूप और असुन्दर होने की बात नही करता, पर उद्यान तो सचमुच ही स्वर्ग का उद्यान है। उत्तर की ओर कर्पूर-श्वेत हिमों से आच्छादित, उत्तुंग शिखरों की पंक्तियाँ कितनी सुन्दर मालूम होती हैं ? बाल्य नेत्रों से मैंने पहले-पहल इन श्वेत-शिखर पंक्तियों को देखा था ··· ······उद्यान की भूमि वही है, जिसे कभी सुवास्तु कहा जाता था। अब भी हमारी एक नदी का नाम सुवास्तु (स्वात) है। हमारी नदियों का पानी, पानी नहीं, दूध है। सुवास्तु उसे अपने सुन्दर वास्तुओं (गृहों) के कारण कहा जाता था और अब अपने मधुर फलो के उद्यानों के कारण वही उद्यान के नाम से प्रख्यात है। हमारे उद्यान की द्राक्षा ·········· उदुम्बर (अंजीर) और दूसरे भी फल कितने मधुर होते हैं।"[२५७] इसी प्रकार उद्यान की भूमि, वहाँ की ऋतुओं, निवासियों, लोगों के रहन-सहन, पशु-चारण, कृषि आदि का वर्णन लेखक ने बड़े विस्तार और तन्मयता से किया है।[२५८] 'जय यौधेय' मे हिमालय के पर्वतीय सौन्दर्य, ग्रामों एवं ग्रामीणों तथा उनके रीति-रिवाजों आदि का भी वर्णन हुआ है।[२५९] इसके अतिरिक्त गान्धार, कोसी, सिहल, यौधेय-भूमि का वर्णन भी 'जय यौधेय' में आया है। इस प्रकार राहुल के भौगोलिक वर्णन उनके ऐतिहासिक उपन्यासों को यथार्थता प्रदान करते हैं एवं तत्कालीन वातावरण को मूर्त कर देते हैं। वे भौगोलिक मानचित्र प्रस्तुत कर ऐतिहासिक उपन्यासकार के कर्तव्य की रक्षा करते हैं। परन्तु लम्बे-लम्बे भौगोलिक वर्णनों एवं विवरणों को प्रस्तुत करते समय लेखक यह विस्मृत कर बैठता है कि वातावरण निर्माण उपन्यास के लिए साधन मात्र है, साध्य नहीं। राहुल जी का भूगोल-वर्णन या अंश भौगोलिक कथा को आगे बढ़ाता है। विशेष रूप से 'विस्मृत यात्री' में भौगोलिक वर्णन ही का होता लक्षित करते हैं। परन्तु सर्वत्र ऐसा नहीं। सिंह सेनापति, 'मधुर

स्वप्न', 'जीने के लिए' तथा 'दिवोदास' में यह भूगोल-वर्णन साधन-मात्र ही है। अभिप्राय यह है कि नगर-वर्णन एवं यात्रा-विवरण 'विस्मृत यात्री' में बाधक हैं, पर अन्य उपन्यासों में उनका आनुपातिक समावेश ही है।

समाजगत वातावरण—राहुल जी की कला-सर्जना की चरम परिणति जीवनगत यथार्थ के अंकन एवं प्राचीन भारतीय समाजगत-वातावरण के सजीव चित्रण में प्रकट हुई है। शचीरानी गुर्टू लिखती हैं—"तत्कालिक पारिवारिक जीवन, उसकी जटिल समस्याएँ और मधुर-रम्य प्रसंग, लोगों की संकीर्ण मनोवृत्ति एवं आदर्शवादिता आदि को राहुल जी ने अपने उपन्यासों में अतुल क्षमता एवं आत्मप्रतीति के साथ अंकित किया है। प्राच्य और पाश्चात्य इतिहास का गम्भीरतम अध्ययन होने के कारण देश-विदेशों के प्रमुख-प्रमुख आदर्शों और बौद्ध-संस्कृति का प्रभाव भी उनके ऐतिहासिक निरूपण में द्रष्टव्य है।"[५३]

(क) राजनीतिक अवस्था—'दिवोदास' से लेकर 'राजस्थानी रनिवास' तक के राहुल जी के ऐतिहासिक, सामाजिक-राजनीतिक उपन्यासों की कालावधि अत्यन्त विस्तृत है। आर्य-युग से लेकर अधुनातन समाज को उन्होंने अपने उपन्यासों में चित्रित किया है। आर्य-जाति के इतिहास-अंकन में वे विशेष सफल रहे हैं। श्री प्रकाशचन्द्र गुप्त के शब्दों में—'आर्यों के प्राचीन इतिहास को कथा के साँचों में ढालने में राहुल की प्रतिभा विशेष रूप से चमकती है।'[५४]

'दिवोदास' में दिवोदास-शासित सप्तसिंधु के आर्यों की राजनीतिक दशा का सुन्दर चित्र प्रस्तुत है। यह युग जनों का युग है। जनों की संख्या अनेक है जिनमें मुख्य पाँच जन हैं—"पुरु, यदु, द्रुह्यु, तुर्वश और अनु।"[५५] जनों की आगे कई शाखाएँ हैं जैसे पुरु-जन, कुशिक, भरत, तृत्सु आदि शाखाओं में विभक्त था।[५६] पुरु-जन का सम्मान सर्वाधिक था और यह राजवश वीरता एवं निर्भीकता में अग्रणी था। पुरुकुत्स इस जन के राजा थे। आर्य-जनों में परस्पर फूट थी, इसी कारण वे जर्जरित हो रहे थे। वध्र्यश्व और उनके पुत्र दिवोदास ने आर्यों को एकसूत्र में बाँधने का भरसक प्रयत्न किया तथा आर्य-राज्य का पूर्व में विस्तार किया। राज्यविस्तार के लिए आर्य पणियों और किरातों से संघर्षरत थे। दिवोदास ने शम्बर-वध करके असुरों की सौ पुरियों पर अधिकार स्थापित कर लिया। इस प्रकार यह युग आर्यों और किरातों का संघर्षयुग था जिसमें आर्यों ने किरातों पर अपनी प्रभुसत्ता स्थापित करने में सफलता प्राप्त की। दिवोदास के राज्यकाल में आर्य जन-प्रथा में निकल कर सामन्ती-शासन-व्यवस्था में आ चुके थे और पितृ-सत्ता के स्वच्छन्द वातावरण से निकल राजा की निरंकुशता की ओर बढ़ रहे थे। पर, वे जनतन्त्र के नियमों की अवहेलना नहीं करते थे।

दिवोदासकालीन शासन नीति में पुरोहित का महत्त्वपूर्ण स्थान था। पुरोहित केवल राजा को यज्ञ और धार्मिक कृत्यों में ही सलाह नहीं देते थे वरंच राजनीति में भी उनका सक्रिय सहयोग था। दिवोदास के शिक्षक एवं पुरोहित भरद्वाज ऋषि

पुरोहित-मात्र नहीं थे, बल्कि युद्ध की कला में निपुण थे। साथ ही आर्यों की महत्वाकांक्षा के प्रतीक थे।[५०]

'सिंह सेनापति' में ५०० ई० पू० की साम्राज्यवादी शासन-प्रणाली एवं गणतन्त्रीय शासन-व्यवस्था का तुलनात्मक चित्र है। मगध में पहली प्रकार की राजनीतिक व्यवस्था थी जिसके सूत्रधार बिम्बसार और अजातशत्रु थे और गान्धार तथा वैशाली में दूसरे प्रकार का शासन-प्रबन्ध था, जिसके स्वरूप की विशद व्याख्या राहुल जी को अभीष्ट है। प्रथम शासन-प्रणाली के प्रति उनकी घृणा व्यक्त है और दूसरी के प्रति अनुरक्ति। राजाओं एवं सम्राटों के लिए लेखक ने 'रजुल्ला' शब्द का प्रयोग किया है। राजतन्त्र शासन-प्रणाली राहुल जी की दृष्टि में जनहिताय की विरोधिनी है।[४८] इसके विपरीत गणशासित प्रदेशों की राजनीतिक अवस्था अधिक व्यवस्थित एवं जनहिताय है। तक्षशिला एवं वैशाली में इसी गणतन्त्र शासन-प्रणाली का निदर्शन है। गणतन्त्र में कोई किसी का स्वामी नहीं, वहाँ दास और स्वामी का भेद नहीं। इन प्रदेशों की शासन-व्यवस्था गण-संस्था द्वारा संचालित होती है। गणसंस्था के प्रधान को गणपति कहते हैं। गणसंस्था के सभी सदस्य गणतन्त्र की सभी मर्यादाओं का पालन करने की शपथ लेते हैं। गणसंस्था में निर्णय बहुमत से होता है और निर्णय से पूर्व छन्द-शलाका द्वारा मत जाना जाता है। इस प्रकार 'सिंह सेनापति' में दो विरोधी राज्य-व्यवस्थाओं के संघर्ष के चित्रण द्वारा राहुल जी ने तत्कालीन वातावरण को साकार रूप प्रदान किया है।

'जय यौधेय' गुप्तकालीन राजनीतिक रंगमंच को प्रस्तुत करता है। इस समय भारत में साम्राज्यवादी शासन-व्यवस्था अपनी नींवों को सुदृढ़ कर चुकी थी। समुद्रगुप्त एवं चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य चक्रवर्ती सम्राट् थे। इस काल में भी गणराज्यों का सर्वथा उच्छेद नहीं हुआ था। यौधेय आदि गणों की स्थिति पर्याप्त सुदृढ़ थी। इस उपन्यास में भी दो विरोधी शासन-व्यवस्थाओं के संघर्ष को दर्शाया गया है। यहाँ भी साम्राज्यवाद के दूषणों एवं गणतन्त्र-प्रणाली के गुणों का वर्णन है। साम्राज्यवादी शासन-व्यवस्था में पुत्र इसी ताक में रहता है कि बाप कब मरेगा। *बाप की चिता भी ठण्डी नहीं होने पाती कि भाई एक दूसरे का सिर काटने लगते हैं।*[४९] इसके विपरीत गणराज्य में "सारी भूमि सारे वंश की समझी जाती है ······ यौधेय अपने को एक घर का सगा भाई समझते हैं।"[५०] साम्राज्यवाद में सम्राट् सारी भूमि का स्वामी है, जनता उसके लिए दास से बढ़कर कुछ नहीं, उसका राजप्रासाद सुन्दरियों से भरा रहता है, पुरोहित उसकी प्रशस्ति गाते हैं, कवि उसकी यशोगरिमा की कविताएँ लिखते हैं—वह सर्वोपरि है, सब उसकी इच्छा के क्रीडाकन्दुक हैं। गणतन्त्रीय यौधेयगण गणशासन में आस्था रखता है। वहाँ किसी को कोई बन्धन नहीं, वहाँ प्रेम स्वच्छन्द वातावरण में विकसित होता है, वहाँ कोई स्वामी नहीं, कोई दास नहीं, सभी भूमिपुत्र समान हैं। उपन्यास के अन्त में आजीवन विरोध करते रहने पर भी यौधेयगण चन्द्रगुप्त की तीव्र राज्य-लिप्सा के सम्मुख विनष्ट हो जाता है। शचीरानी गुर्टू लिखती

है—"राहुल जी के प्रख्यात 'सिंह सेनापति' और 'जय यौधेय' उपन्यास उनकी समृद्ध कल्पना की सहज उद्‌भूति है, जिनमें लिच्छवि और यौधेयों के गणजीवन की अनेक-रूपता, उनके विरोधी राजकुलों का वर्णन और समकालीन परिस्थितियों के विभिन्न पहलुओं का समर्थ चित्रण हुआ है।"[२६१]

'मधुर स्वप्न' में राहुल प्राचीन ईरान के इतिहास को कथा के रूप में उठाते हैं। एक ईरानी परम्परा के अनुसार सासानी वंश में उत्पन्न व्यक्ति ही ईरान के राज्यसिंहासन का अधिकारी हो सकता है। कवात् इसी वंश का स्वेच्छाचारी शासक है। ईरानी राजाओं का जीवन भारतीय शासकों की तरह ही संकट का जीवन है, उनके सबसे नज़दीक के सम्बन्धी उनके जीवन के ग्राहक होते हैं। राजाओं एवं उनके सामन्तों को जनता के दुःख-दर्द सुनने का अवकाश नहीं है। ईरान की राजनीति में यह युग सामन्तवादी युग था। राज्य में सभी ऊँचे-ऊँचे पद भिन्न-भिन्न सामन्तीय वंशों के लिए निश्चित थे। सामन्ती-जीवन की विलासिता तथा उसकी देन—नारकीय जनजीवन—का चित्रण राहुल जी ने सजीव रूप में प्रस्तुत किया है।[६१]

'विस्मृत यात्री' में उद्यान-प्रदेश की स्थिति का वर्णन है। उद्यान प्रदेश कश्मीर के राजा मिहिरकुल के अधीन था। सन् ५४७ में मिहिरकुल की मृत्यु पर उद्यान स्वतन्त्र हो गया। कम्बोज आदि में सामन्तों ने छोटे-छोटे राज्य कायम कर लिए थे, परन्तु उद्यान में स्थानीय राजवंश ने फिर से प्रभुता स्थापित कर ली थी।[६३] 'विस्मृत यात्री' में कथानक भारत से बाहर अपनी यात्रा चीन तक करता है। उपन्यासकार ने चीन की राजनीतिक स्थिति की ओर भी संकेत किया है। महाचीन उत्तर तथा दक्षिण दो राज्यों में विभक्त था। इन राज्यों में राजनीतिक परिवर्तन थोड़े-थोड़े समय के बाद होते रहते थे।[६४]

'जीने के लिए' आदि राजनीतिक-सामाजिक उपन्यासों में बीसवीं शती के पूर्वार्द्ध के भारतीय समाज का अंकन है। 'जीने के लिए' में अंग्रेज़ी प्रभुसत्ता से मुक्ति प्राप्त करने के लिए भारतीयों द्वारा किये गए प्रयत्नों की झाँकी मिलती है। अंग्रेज़ी राज्य के उच्छेद के लिए आतंकवादी क्रान्तिकारिता, प्रथम-विश्वयुद्ध, अंग्रेज़ी साम्राज्य-वाद के अत्याचार, रौलट-एक्ट, जलियाँवाला-बाग-काण्ड, तिलक स्वराज्य-फण्ड, असहयोग की तैयारी, सत्याग्रहियों एवं स्वयं-सेवकों को कारावास का दण्ड आदि का उपन्यास में वर्णन बीसवीं शती के स्वतन्त्रता-प्राप्ति के लिए भारतीयों के संघर्षों की कहानी है।[६५] स्वतन्त्रता के लिए आन्दोलन और अंग्रेज़ों द्वारा उनका नृशंसतापूर्ण दमन—यही इस समय की राजनीतिक अवस्था का रहस्य है। 'भागो नहीं दुनिया को बदलो' उपन्यास में समाजवादी प्रजातन्त्र की स्थापना राहुल जी का उद्देश्य है। स्वतन्त्र भारत को मार्क्सवादी मार्ग-दर्शन लेखक को अभीष्ट है। अन्नवृद्धि, कल-कारखानों का प्रसार आदि समस्याओं पर उपन्यास में विचार किया गया है, जिससे तत्कालीन वातावरण की झाँकी भी मिल जाती है।[६६]

(ख) सामाजिक अवस्था—सामाजिक अवस्था के अन्तर्गत समसामयिक

समाज के रीति-रिवाजों तथा उनके आहार, वेशभूषा, रहन-सहन आदि का समावेश होता है। राहुल जी के उपन्यास विविध कालों एवं देशों से सम्बद्ध हैं। अतएव समाज चित्रण के विविध रूप उनके उपन्यासों में उपलब्ध हैं। 'दिवोदास' में ऋग्वेद के अनुरूप आर्य जनजीवन, उनके आहार-विहार, वेशभूषा, रहन-सहन आदि का उल्लेख है। प्राचीन भारत के आर्यों का रहन-सहन सरल एवं आडम्बर-रहित था। आर्य महिला के सर्वांग गौर अंग में ओढ़नियों से ढके रहते थे। उनके पास दासी नहीं थे। उनकी पुत्रियाँ सखियों की तरह वाली सेविकाओं से घिरी रहती थी।[१७] आर्यों के भोजन में पौष्टिक पदार्थों की प्रचुरता थी। मांस, सोम, मधु, दूध उनके भोजन की मुख्य वस्तुएँ थीं।[१८] आर्यों की वेशभूषा सीधी-सादी थी। आर्य पुरुष चमड़े या ऊन की टोपी पहनते थे। उनकी पोशाक में उष्णीष का भी प्रयोग होता था।[१९] आर्य पुरुष और स्त्रियाँ शारीरिक सज्जा की ओर विशेष ध्यान देते थे। पुरुष स्त्रियों की तरह लम्बे केश रखते थे। बालों को इकट्ठा करके वे जूड़े का रूप दे देते थे जिसे कपर्द कहा जाता था। आर्य स्त्रियाँ मणि-मुक्ता और सुवर्ण के आभरण (मणटीका) बहुत पसन्द करती थी। पुरुषों की दाढ़ियाँ सोने के तारों से खचित रहती थी।[२०] इस प्रकार 'दिवोदास' में आर्यों के रहन-सहन, भोजन, वेश-भूषा और सज्जा का यथार्थ चित्रण हुआ है।

'सिंह सेनापति' में गणराज्यों के सामाजिक जीवन का चित्रण राहुल जी को अभीष्ट है। तक्षशिला और वैशाली के वर्णन में लेखक ने वहाँ के लोगों के निवास, भोजन आदि का उल्लेख किया है। तक्षशिला और वैशाली दोनों के आवास-स्थान प्रायः एक से हैं। वे आडम्बर-रहित परन्तु सुरुचिपूर्ण हैं।[२१] लिच्छवियों का भोजन पुरा-आर्यों से साम्य रखता है। दूध, घी, सुरा तथा नाना प्रकार का मांस उनके खान-पान के विशेष अंग हैं। दधि, मधु और सत्तुओं का घोल भी उन्हें अत्यन्त प्रिय था। आवास एवं भोजन के अतिरिक्त उपन्यास में उनकी वेश-भूषा-सज्जा का भी उल्लेख है। पुरुष अन्तर्वासक (धोती) और उत्तरीय (चद्दर) पहनते थे और स्त्रियाँ उत्तरीय, अन्तर्वासक के अतिरिक्त छोटे कंचुक पहनती थीं। जूता पहनने का भी रिवाज था। स्त्रियों को आभूषणों से अधिक प्रेम नहीं था। धातु के आभूषणों की जगह वे लता के पत्र, फूल आदि को आभूषणों के रूप में प्रयोग करती थीं।[२२] गण-राज्य की स्त्रियों और राजप्रासादों की राजकुमारियों की वेश-भूषा में बहुत अन्तर था। राजकन्याएं सारे शरीर में आभूषणों से लदी रहती थीं। राजकुमारी विदा की भूषा-सज्जा राजकन्याओं की आभूषणप्रियता का प्रतीक है।[२३] 'जय यौधेय' में भी अन्त:पुर की रानियों के वस्त्राभूषण इसी प्रकार के दिखाए गये हैं। आभूषणों के अतिरिक्त शारीरिक-सज्जार्थ स्त्रियाँ आँखों को पतली-सी अंजन-रेखा से अंजित करती थी, पैरों में अलक्तक और अंगों में अंगराग और मुख पर मुखचूर्ण का भी प्रयोग करती थीं।[२४] यौधेयों और लिच्छवियों के भोजन आदि में भी पर्याप्त साम्य है। जय और चन्द्र को लकड़ी की आग पर भूने हुए सूअर का मांस बहुत पसन्द है। 'जय यौधेय' में जय की विविध

यात्राओं के प्रसंग हैं। इन यात्राओं में आए विविध स्थानों के स्त्री-पुरुषों की वेश-भूषा का लेखक ने बारीकी से अन्तर स्पष्ट किया है। गान्धार की पोशाक यौधेयों से भिन्न थी। "उनका सुथन बहुत विराबेदार और ऐसा टेढ़ा-मेढ़ा सिला होता कि कपड़े की ऐंठन बहुत-सी तिरछी रेखाएँ बनाती है। गान्धारियों का सुथन भी उसी तरह का होता है। ... स्त्री-पुरुष दोनों कंचुक पहनते हैं। सिर पर गान्धारियाँ उत्तरीय और गान्धार उष्णीष (पगड़ी) रखते हैं। पैरों में दोनों के तनीदार जूते हैं।[२७५] 'विस्मृत यात्री' में उद्यान-निवासी ऋतु-अनुकूल गाँवों को बदलते रहते थे। जाड़ों में बड़ी नदियों के निचले भागों में, वसन्त में पहाड़ों के ऊपरी गाँवों में, वर्षा में पथारों (अधित्यकाओं) में रहते थे।[२७६] उद्यान-निवासी घनी दाढ़ी-मूँछ रखते थे। यहाँ के लोग बौद्ध-धर्म के अनुयायी थे परन्तु मास उनका प्रिय भोजन था।[२७७] इसके अतिरिक्त द्राक्षा तथा दूसरे सूखे फल, गेहूँ की रोटी तथा शाली (धान) भी उनके भोजन के अंग थे।[२७८]

प्राचीन ईरान ('मधुर स्वप्न') में वर्ग-वैषम्य के कारण धनी और निर्धन के भोजन, आवास आदि में पर्याप्त अन्तर था। अमीर (जिनमें राजा, पुरोहित तथा सामन्त सम्मिलित हैं) भव्य प्रासादों में रहते थे, गरीब तंग तथा अन्धेरी कोठरियों में। 'नगरी के राजपथों और वीथियों में मृत्यु नग्न ताण्डव कर रही है और इधर वर्तुक और विस्पोह्न भोज उड़ा रहे हैं।[२७९] अंतःपुर की भोजनशाला का एक दृश्य अमीरों के भोजन, रहन-सहन का चित्र प्रस्तुत करने के लिए पर्याप्त है—"अन्तःपुर की भोजनशाला में नाना व्यंजनों की मधुर गन्ध आ रही थी। गर्म मास, शीतल मांस, पक्षि-मास, मेष-मास, दो मास के वत्सर का मास, जैतून के तेल में पका श्वेत् पाक, सिरके के साथ मिला कबूतर, हस, चकोर और तीतर का तला मास, घोड़े की छाती का मास, नाना भाँति के मास सोने की थालियों में अलग-अलग सजा के रखे जा रहे थे। ... भोजन के अतिरिक्त पान भी भिन्न-भिन्न प्रकार के सजा के रखे जा रहे थे।"[२८०] सामन्ती जीवन की झाँकी के कई चित्र उपन्यास में वातावरण को सजीव रूप में प्रस्तुत करते हैं। उनकी वेशभूषा, साज-सज्जा आदि का अलङ्कृत भाषा में राहुल जी ने अंकन किया है। इसके विपरीत सामान्य-जन जीवन की मामूली आवश्यकताओं से भी वंचित था।[२८१] 'मधुर स्वप्न' में घुमन्तुओं के जीवन की भी झाँकी है।[२८२]

'जीने के लिए' उपन्यास में आधुनिक भारत के नागरिक एवं ग्रामीण वातावरण का अंकन है। भारत के धनिक नगरों में पक्के मकानों में ठाट-बाट से रहते हैं।[२८३] ग्रामों में रहने वाले किसान और कमकरों का रहन-सहन उनकी निर्धनता का प्रतीक है। गाँव के मकान कच्चे, घास-फूस की छतों वाले, तंग और सड़ांद-युक्त हैं। ग्रामीणों का खान-पान दाल-रोटी तक सीमित है, जौ की रोटी, नून-मिरच, कड़वा तेल मजदूरों का खाद्य है। सोने के लिए चारपाई नहीं, पुआल ही उनकी शैया है।[२८४] खान-पान में पौष्टिक पदार्थों के अभाव के कारण ये लोग अस्वस्थ रहते हैं। बीमारी की अवस्था में इलाज करवाने में भी असमर्थ हैं।[२८५] इस उपन्यास में कारु-

युद्धों के प्रारम्भ का वर्णन कौशाम्बी के रहन-सहन का चित्र प्रस्तुत करता है।[८०] 'राजस्थानी रनिवास' में अन्तःपुर की नारियों को रूप-सज्जा के प्रकरण के साथ-साथ उनकी वेश-भूषा आदि के भी सुन्दर चित्र प्रस्तुत हैं। इस प्रकार राहुल जी ने अपने उपन्यासों में विभिन्न युगों के सामाजिक जीवन के चित्र अंकित करते हुए, उनके खान-पान, वेश-भूषा-आभूषण, रहन-सहन आदि के वर्णन द्वारा वातावरण को सजीव बना दिया है।

(ग) आर्थिक अवस्था—राहुल के उपन्यासों में प्राचीन तथा आधुनिक भारत की एवं प्राचीन ईरान की आर्थिक स्थिति का भी सफल अंकन हुआ है। आर्थिक दृष्टि से सप्तसिन्धु के आर्यों का जीवन सम्पन्न था। आर्यों का मुख्य धन गाय-घोड़े और भेड़-बकरियाँ थीं।[८७] वे कृषि भी करते थे। स्वादिष्ट जौ के सत्तू और मधुर उनके आहार में सम्मिलित थे। अधिक धनी और प्रभुताशाली आर्य पशुपालन और कृषि में दास-दासियों की सहायता लेते थे, पर साधारण आर्य स्वयं ही कृषि और पशुपालन का काम करते थे। आर्यों के समकालीन पणि वाणिज्य-व्यापार करते थे और वे पर्याप्त धनी थे।[८८]

'सिंह सेनापति' और 'जय यौधेय' में गान्धार, वैशाली तथा यौधेयों के गणराज्यों के वैभव का वर्णन है। वैशाली की समृद्धि तथा तक्षशिला के गौरव के वर्णन में राहुल जी ने गणतान्त्रिक प्रदेशों की आर्थिक अवस्था का सजीव वर्णन किया है। वैशाली की समृद्धि का वर्णन राहुल 'सिंह' के शब्दों में करते हैं—"वैशाली स्फीत समृद्ध है। उसकी क्यारियाँ सन्यशाली पैदा करती हैं, उसकी गायों का दूध, घी, मास लिच्छवियों के शरीर को हृष्ट-पुष्ट करते हैं।"[८८] तक्षशिला के व्यवसाय का वर्णन राहुल जी इस प्रकार करते हैं— "कर्मान्तों और उद्यानों की सम्पत्ति के अतिरिक्त वाणिज्य तक्षशिला के नागरिकों की आजीविका का बड़ा साधन है। स्थल-मार्ग से प्राची की वस्तुओं को पारसीं, केदरमों और यवनों के देशों में पहुँचाने में सहायता पहुँचाना तक्षशिला के स्थल-सार्थों का मुख्य काम है। तक्षशिला यदि श्रावस्ती, राजगृह, कौशाम्बी, उज्जयिनी से भी अधिक समृद्ध है, तो उसका प्रधान कारण यही है।"[९०] 'जय यौधेय' में गुप्त-साम्राज्य और यौधेय-गण की सम्पन्न आर्थिक स्थिति के संकेत हैं। जय चन्द्रगुप्त के विषय में कहता है —'अपने राज्यकोष को वह भरता जा रहा था, लेकिन साथ ही प्रजा को भी सन्तुष्ट रखना चाहता था। रास्तों को अब उसने चारों ओर डाकुओं से अकंटक कर दिया था। पाथों और सार्थों के ठहरने के लिए जगह-जगह पाथशालायें, कूप और वापी बनवाई थीं ·········उसके दीनारों में बहुत शुद्ध सोना था, और वह तरह-तरह के थे।"[९१]

'मधुर स्वप्न' में प्राचीन ईरान की जिस आर्थिक स्थिति का चित्रण किया गया है, वह अत्यन्त वैषम्यपूर्ण है। अमीर अत्यन्त अमीर हैं और गरीब अत्यन्त गरीब। दुर्भिक्ष की अवस्था में कमकरों, कृषकों आदि के पास खाद्यान्न नहीं है और सामन्त [illegible] रहे हैं।[९२] सामाजिक विषमता के अत्यन्त करुण-

चित्र उपन्यास के आरम्भिक पृष्ठों मे द्रष्टव्य हैं। 'विस्मृत यात्री' मे महाचीन की आर्थिक स्थिति का विवरण है। महाचीन में भी कुछ लोग ही अर्थ-सम्पन्न हैं, अधिकांशतः अर्थ-संकट से ग्रस्त हैं।[२६३]

'जीने के लिए' उपन्यास में भारत (२०वी शती पूर्वार्द्ध) की आर्थिक स्थिति को राहुल ने अंकित किया है, जो अत्यन्त यथार्थ है। भारतीय ग्रामीण जनता की आर्थिक स्थिति अत्यन्त शोचनीय है। अधिकांश कृषक ऋण-ग्रस्त हैं और ब्याज की दर अधिक होने से वे आजीवन अधमर्ण ही रहते हैं। आजीविका के लिए लोग ग्रामों को छोडकर दूर नगरो में नौकरी करते हैं, वहाँ भी मजदूरी बहुत थोड़ी है। देवराज के परिवार की आर्थिक स्थिति के अंकन में लेखक ने भारतीय ग्रामीण जनता की आर्थिक स्थिति का चित्र प्रस्तुत किया है।[२६४] सामाजिक वैषम्य शहरी जीवन में अधिक स्पष्ट है।[२६५] यही स्थिति 'भागो नही दुनिया को बदलो' में भी अंकित है।

प्रकृतिगत-वातावरण—वातावरण-सृजन मे राहुल के उपन्यासों के प्राकृतिक दृश्य भी सहायक हुए हैं। राहुल स्वयं महान् यायावर थे और उनके कथा-नायक नरेन्द्रयश, जय, सिंह आदि भी घुमक्कड हैं। इन नायकों की यात्राओ मे विविध प्राकृतिक दृश्यों एवं स्थानों का जहाँ भी आगम हुआ है, राहुल ने वहाँ की प्राकृतिक छटा का अवश्य ही अंकन किया है। राहुल बाह्य-प्रकृति को जीवन-सौन्दर्य का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भाग स्वीकारते हैं।[२६६]

राहुल तथा उनके कथानायक दोनों ही पर्वतीय-सौन्दर्य पर अनुरक्त हैं। हिमालय के प्रति उनका सर्वाधिक आकर्षण है। गिरिराज हिमालय तथा अन्य पर्वतो और उन पर उगी हुई वनस्पति के सजीव चित्र उनके उपन्यासों में अंकित हैं। हिमालय के तुषारमण्डित उत्तुंग शिखरों एवं गगनस्पर्शी देवदारुओ का वर्णन मनोमुग्धकारी है।[२६७] फलदार वृक्षों के भी आकर्षक चित्र राहुल ने प्रस्तुत किए हैं।[२६८] सजे-सजाए वृक्षों से युक्त उद्यान का सौन्दर्यांकन तो लेखक को और भी प्रिय है।[२६९]

राहुल के उपन्यासो मे प्रकृति-चित्रण ऋतु-वर्णन के रूप में अधिक हुआ है। षड्ऋतु-वर्णन उनके प्रकृति-चित्रण की प्रमुख विशेषता है। वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, हेमन्त तथा शिशिर—सभी का वर्णन अल्पाधिक रूप मे उनके उपन्यासो मे बिखरा हुआ है। वसन्तागमन और वसन्तावसान के चित्र 'मधुर स्वप्न' मे हैं। वसन्तर्तु का एक चित्र द्रष्टव्य है—"तिग्रा और दुफरात की उपत्यका में प्रकृति नव-जागृत हुई थी। वसन्त ने जाड़े की मृत्युच्छाया को हटाकर सभी जगह आनन्द का जीवन सचारित किया था। वृक्षो की पत्तियाँ कुडमुलित हो रही थी या कोमल किसलय निकल आये थे। पुष्पवाटिकाएँ नव हरित तृण और उत्फुल्ल पुष्पो से आच्छादित थीं।"[२७०] वसन्तावसान अथवा ग्रीष्मागमन के वर्णन मे ऋतु-अनुकूल पुष्पों, फलों एवं मखमली दूबो का वर्णन 'मधुर स्वप्न' में सजीव बन पडा है।[२७१]

वर्षा-ऋतु का वर्णन 'जय यौधेय' में प्रस्तुत है। जय को प्राकृतिक सौन्दर्य अत्यन्त प्रभावमय प्रतीत होता है। वह कहता है—"आज यह घने बादल छाये हुए हैं।

एक ओर सुनन्दा सागर की जलराशि की विशाल श्वेत चादर तनी हुई है और दूसरी ओर यह हरितशाली की साटी। घन शब्द के साथ मयूर-केका मिश्रित हो रही है। ऊपर शरीर मे शीतल मन्द पुरवा लग रही है। किसे प्रकृति का यह रूप पुलकित न करेगा।"[302] यहाँ राहुल ने प्रकृति के मानव पर पड़े प्रभाव का संक्षिप्त अंकन किया है। 'विस्मृत यात्री' मे वर्षा-ऋतु में सुवास्तु तट की छवि साकार हो उठती है।[303] अन्य तीन ऋतुओं—शरद्, हेमन्त और शिशिर को—पृथक् रूप में न लेकर राहुल ने सभी को शीतकाल के रूप में ही प्रस्तुत किया है। हेमन्त के एकाध स्वतन्त्र चित्र भी हैं, परन्तु वे वसन्त और वर्षा के चित्रों की तरह सरस नहीं।[304]

ऋतु-वर्णन के अतिरिक्त राहुल ने नदियों, पर्वतीय उपत्यकाओं, सन्ध्या एवं रात्रि आदि का भी प्राकृतिक सौन्दर्य अंकित किया है। 'दिवोदास' में परुष्णी (रावी) और विपाशा (व्यास) आदि सात सिन्धुओं का वर्णन है।[305] 'मधुर स्वप्न' में तिग्रा का वर्णन भावाक्षिप्त रूप मे हुआ है। यहाँ नदी और उसके तट पर स्थित राजभवन का सजीव वर्णन हुआ है।[306] तिग्रा की निस्तब्धता का प्रभावशाली चित्र भी उपन्यास में है।[307]

राहुल के प्रकृति-चित्र कई स्थलों पर औपन्यासिक कथा के अंग बन गये हैं। उनके पात्र अपनी यात्राओं में प्राकृतिक सौंदर्य को आप्यायित करते हुए अग्रसर होते हैं। 'मधुर स्वप्न' से प्रकृति का एक ऐसा ही चित्र प्रस्तुत है—"चौथे दिन सूर्यास्त से कुछ पहले सवार नदी के एक भाग को पार करते ही खुली उपत्यका में पहुँचे। यह जगह काफी खुली तो थी ही, साथ ही यहाँ प्राकृतिक सौंदर्य की अपार राशि एकत्रित थी, जिसे देखकर सवारों को मालूम हुआ कि वह किसी दूसरे लोक में आ गए हैं। यहाँ पहाड़ों के चारों ओर वृक्षों की हरियाली दीख पड़ती थी। जगह-जगह झरने बह रहे थे, जहाँ-तहाँ कुछ नगे पाषाणों को छोड़कर सभी जगह घास, जगली फूल लगे हुए थे। नदी कुछ समतल-सी भूमि में चलने की वजह से पत्थरों पर सदा तरंगित हो चलती थी, इतनी घर्घर-ध्वनि नही कर रही थी।"[308]

प्राकृतिक वातावरण अंकित करते हुए राहुल ने सन्ध्या और रात्रि के अलंकृत एवं रोचक चित्र प्रस्तुत किये हैं। 'मधुर स्वप्न' से सन्ध्या का एक चित्र द्रष्टव्य है—'सन्ध्या के समय प्रतीची को अरुण राग से रंजित कर एक ओर सूर्य का रोहित मण्डल लुप्त होने को था और दूसरी ओर पूर्ण चन्द्र के प्राची के क्षितिज पर आगमन की प्रतीक्षा के सारे लक्षण दिखलाई पड़ रहे थे। पक्षिगण अपनी कुलायों पर पहुँच कर रात्रि के मौन और विश्राम के पहले कलरव कर रहे थे।[309] रात्रि की नीरवता का चित्र भी इसी उपन्यास में है।'[310]

राहुल जी के प्रकृति-चित्र स्थिर एवं गत्यात्मक दोनों प्रकार के हैं। 'विस्मृत यात्री' मे अस्त होते हुए सूर्य का अंकन प्रकृति के शान्त रूप का स्थिर चित्र प्रस्तुत करता है।[311] इसके विपरीत 'जय यौधेय' में हिमालय की चचल-चपल नदियों का . गत्यात्मक कहा जाएगा। इस चित्र में नदियों एवं नारियों का तुलनात्मक रूप

अत्यन्त आकर्षक बन पड़ा है।[312] यात्रा-प्रसगों मे विभिन्न स्थानों की प्रकृति के तुलनात्मक चित्र 'सिंह सेनापति' मे भी मिलते हैं।[313]

इस प्रकार राहुल के उपन्यासों मे प्राकृतिक वातावरण के विविध रूप प्रस्तुत हैं। स्थान-विशेष के प्राकृतिक सौन्दर्य को अंकित कर उन्होंने वातावरण को भव्यता एवं मनोहारिता प्रदान की है। राहुल के प्रकृति-चित्र विविध हैं—आलम्बन रूप में प्रकृति इतिवृत्तात्मक एवं परिगणनात्मक रूप में भी प्रस्तुत हुई है और उसके संश्लिष्ट एवं आकर्षक रूप भी हैं। आलम्बन चित्रो में राहुल ने प्रकृति के भव्य एवं उग्र[314] सरस और शुष्क,[315] स्वतन्त्र एवं तुलनात्मक चित्र अंकित किये हैं। उद्दीपन एवं भावाक्षिप्त रूप मे भी प्रकृति प्रस्तुत हुई है और साथ ही उसके अलंकृत रूप की साज-सज्जा भी विद्यमान है। राहुल के इन विविध प्रकृति-चित्रों की उपयोगिता भी है। ये चित्र वातावरण-निर्माण के अंग तो हैं ही, कथा-विकास के भी अंश बन गये हैं और पात्रो की चारित्रिक विशेषताओं को उभारने में भी सहायक हुए हैं। हमारे इस विवेचन से स्पष्ट है कि राहुल के प्रकृति-चित्र इतिवृत्तात्मक और 'मात्र चलते हुए' नही हैं जैसा कि डॉ० प्रमाशंकर मिश्र ने माना है।[316] राहुल जी के बहुत से चित्र इतिवृत्तात्मक अथवा परिगणनात्मक मात्र न होकर रसात्मक भी हैं।

समग्रत: राहुल जी अपने ऐतिहासिक एवं सामाजिक उपन्यासो मे वातावरण-सर्जना के प्रति विशेष सजग प्रतीत होते हैं तथा समाजगत एवं प्रकृतिगत—दोनों प्रकार के वातावरण अंकन मे वे सफल रहे हैं।

जीवन-दर्शन एवं उद्देश्य

उपन्यास का लक्ष्य मानव-जीवन की व्याख्या है। प्राय: सभी उपन्यासकार एवं साहित्याचार्य अपनी-अपनी शब्दावली में मानव-जीवन की अभिव्यक्ति को ही उपन्यास का उद्देश्य मानते हैं। हेनरी जेम्स लिखते हैं—"उपन्यास के अस्तित्व का एक ही कारण है कि यह मानव-जीवन की अभिव्यक्ति का प्रयत्न करता है। यदि उपन्यास इस प्रयत्न को छोड दे, तो चित्रकला के समान इसकी विचित्र दशा हो जाएगी।"[317] रैल्फ़ फ़ॉक्स उपन्यास को मानव-जीवन का गद्य स्वीकारते हैं। उनकी दृष्टि में यह 'ऐसी पहली कला है जो सम्पूर्ण मानव को लेकर उसे अभिव्यक्ति प्रदान करने की चेष्टा करती है।'[318] जैनेन्द्र भी उपन्यास को मानव-जीवन को गति देने वाला साहित्य मानते हैं।[319] वस्तुत: उपन्यास-साहित्य परिवर्तित होते हुए मानव-समाज का इतिहास है और यही उसका महत्त्व है।[320] इस प्रकार मानव-जीवन की विविध समस्याओं का विवेचन उपन्यासकार का अभीष्ट है। वह जीवन के प्रति अपने विशिष्ट दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति के लिए इस कथा-रूप का आश्रय लेता है। जीवन के प्रति यह विशिष्ट दृष्टिकोण उपन्यासकार का जीवन-दर्शन कहा जा सकता है।

राहुल सांकृत्यायन कला के उपयोगितावादी सिद्धान्त के अनुयायी हैं। वे आस्था, धारणा या चिरस्थायी विश्वास के अच्छे-बुरे होने की कसौटी बहुजनहित

ग्रोर बहुजन-ग्रनहित को स्वीकारते हैं[३२१] तथा साहित्य में वे 'शिव' तत्त्व को 'सुन्दरम्' की अपेक्षा अधिक महत्त्व देते हैं। इसी कारण उनके ग्रौपन्यासिक कथारूपों में कलात्मकता को क्षति पहुँची है, परन्तु जिस स्पष्ट एवं स्वस्थ रूप से उन्होंने अपनी विचारधारा एवं जीवन-दर्शन को अभिव्यक्त किया है, वह ग्रसंदिग्ध रूप मे आशंसनीय है। वस्तुतः राहुल जी का स्पष्ट जीवन-दर्शन था। अतीत की ग्रोर जाने का उनका उद्देश्य था, अपने उस जीवन-दर्शन को गहनता से प्रभावित करना तथा सामाजिक परम्परा को समझने में मदद देना।[३२२] शचीरानी गुर्टू इस विषय में लिखती हैं—"सामयिक जनजीवन के प्रति न केवल जागरूकता ही, प्रत्युत एक मीमांसक का दृष्टिकोण उनमे दीख पड़ता है। एक ग्रोर तो वे भावनाग्रों के स्रोत मे बहकर चित्र-विचित्र अनुभवों मे कल्पना का रग भरते है, दूसरी ग्रोर एक स्वस्थ जीवन-उपभोक्ता की भाँति आध्यात्मिक तत्त्वो की ग्रवहेलना करके बुद्ध द्वारा प्रतिपादित ग्रनात्मवाद ग्रौर परिवर्तनवाद से खिचे रहते हैं।"[३२३] डॉ० जगदीश गुप्त राहुल की पात्र-सयोजना मे उनके जीवन-दर्शन की निहिति की ग्रोर संकेत करते हैं—"जिन ऐतिहासिक पात्रों की ग्रोर लेखक ने संकेत किया है तथा जिनसे प्रेरणा ग्रहण की है, वे उनके जीवन-दर्शन के प्रतीक हैं।"[३२४] डॉ० नगेन्द्र स्पष्टतः राहुल जी की ग्रौपन्यासिक कृतियो मे द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के रूप में उनका जीवन-दर्शन देखते हैं।[३२५] डॉ० चण्डीप्रसाद जोशी राहुल जी की ऐतिहासिक एवं सामाजिक-राजनीतिक कृतियो मे उनके इतिहास-प्रेम का कारण उनका मार्क्सवादी दर्शन मानते हैं।[३२६] वस्तुतः राहुल सांकृत्यायन के ऐतिहासिक एवं सामाजिक उपन्यासों का मूलभूत उद्देश्य मार्क्सवादी सिद्धान्तो के प्रचार एवं प्रसार द्वारा आदर्श समाज के निर्माण को प्रोत्साहित करना है ग्रौर इसी रूप मे उनके जीवन-दर्शन की ग्रभिव्यक्ति हुई है। श्री रत्नाकर पाण्डेय के शब्दों में—"राहुल का कृतित्व मायापुत्र गौतम के उपदेश से रूढ़ियो के बन्धन को काटता है। राहुल का दर्शन जीवन है, समाज के लिए उपादेयतापूर्ण स्थिरता मे इसी मे उनको विश्वास है ....मिट्टी की ममता ने राहुल को भौतिकता का दर्शन दिया।"[३२७] राहुल जी के उपन्यासों में इस प्रकार मार्क्सवादी एवं बौद्ध-दर्शन की व्याख्या एवं इन दोनों का समन्वय प्राप्त होता है, साथ ही वे सर्वत्र एक प्रगतिशील साहित्यकार की तरह जीवन की व्याख्या प्रस्तुत करते हैं। मैक्सिम गोर्की की तरह[३२८] राहुल ने साहित्य के माध्यम से मार्क्सवाद को अंकित किया है। यही कारण है कि अपने ऐतिहासिक उपन्यासों में प्राचीन काल से सम्बद्ध कथाग्रों के भीतर उन्होंने मार्क्सवाद की आधुनिक विचारधारा का सन्निवेश किया है।

मार्क्सवाद के आलोक में उपन्यास—मार्क्सवाद एक बुद्धिग्राह्य वैज्ञानिक दर्शन-पद्धति है। वहाँ मनुष्य की सभी समस्याग्रों के विश्लेषण का प्रयत्न विवेकयुक्त होता है। वहाँ किसी ग्रदृश्य, ग्रज्ञेय, ग्रपरोक्ष सत्ता या रहस्यात्मक शक्ति पर ग्रव- . नहीं रहा जाता। जो है, प्रत्यक्ष, प्रयोज्य ग्रौर तर्क की सीमा में है।"[३२९] राहुल ...वादी उपन्यासकारों में प्रतिष्ठित लेखक हैं। उन्होंने ऐतिहासिक यथार्थवाद

की व्याख्या मार्क्सवादी सिद्धान्तों द्वारा करने की परम्परा का प्रारम्भ किया है
उपन्यासों का मूलभूत उद्देश्य मार्क्सवादी सिद्धान्तों के प्राख्यान द्वारा आद
का निर्माण करना है। उनके औपन्यासिक कथानक मात्र माध्यम हैं और
जीवन। वे जीवन को अधिक समृद्ध बनाने के लिए लिखते हैं और इसी
अतीत की कथा भी कहते हैं।[330] राहुल जी का इतिहास की ओर झुकाव
कारण था कि वे अपने समाजवादी विचारों को अतीत के पृष्ठों से उद्धृत
चाहते थे। राहुल ने अपने उपन्यासों में प्राचीन सामाजिक जीवन से नवीन सा
तत्त्वों को खोज निकाला है और यह प्रमाणित किया है कि जब कभी समाज
सम्पत्ति आदि के आधार पर विषमता का समावेश हुआ है तब मानव-जीवन
न्मुख एवं पतनशील हुआ है।[331] राहुल जी की सभी औपन्यासिक कृतियाँ मा
विचारों की अभिव्यक्ति करती है। डॉ० गणपतिचन्द्र गुप्त राहुल के उपन्
भौतिकतावादी जीवन-दृष्टि को मुखरित देखते हैं—"उन्होंने अतीत की विभिन्
नामों एवं परिस्थितियों का अंकन करते हुए ऐसे तत्त्वों का उद्घाटन किया है,
भौतिकवादी जीवन-दृष्टि, वर्ग-संघर्ष की भावना, रूढ़िवादिता की निस्सारता
साम्यवादी सिद्धान्तों की पुष्टि हो सके।"[332] राहुल जी ने मार्क्सवादी विचा
दिग्दर्शन के लिए इतिहास का सिंहावलोकन किया है। वे आर्यों के जीवन में भी
अथवा परोक्ष रूप में समाजवादी विचारधारा का सिंहावलोकन करते हैं। सप्त
काल के आर्यों में यद्यपि 'राजा' का विकास हो रहा था, फिर भी उनका सामा
जीवन साम्य के आधार पर था, उनमें विषमता न थी—"अपनी जीविका के
उनके अपने गो, अश्व, अजा, अवि पर्याप्त थे। पर उनकी तो मान्यता थी—'केवल
भवति केवलादी'—केवल अपने आप खाने वाला, केवल पाप खाने वाला होता है।
एक अन्य स्थल पर भरद्वाज खानपान के पदार्थों को सभी के लिए समान कहते हैं
'दिवोदास' में यद्यपि स्पष्ट एवं प्रत्यक्ष मार्क्सवाद के उदाहरण नहीं हैं, तथापि राहु
आर्य लोगों की आजीविका और खाद्य-पेय पदार्थों पर समाधिकार को इंगित कि
है। 'सिंह सेनापति', 'जय यौधेय', 'मधुर स्वप्न', 'विस्मृत यात्री' ऐतिहासिक उपन्
में तथा 'जीने के लिए', 'भागो नहीं दुनिया को बदलो' और 'बाईसवीं सदी' राजनीि
उपन्यासों में तो साम्यवादी सिद्धान्तों का विशद प्रतिपादन है। इन उपन्यासों में प्राच
काल के महान् दार्शनिक प्रचारकों की भाँति राहुल कथाओं और उपाख्यानों
माध्यम से अपने सिद्धान्तों और विचारों का प्रतिपादन करते हैं। वह इतिहास का
दर्शन-दिग्दर्शन कराते हैं, सामाजिक न्याय की भावना जागृत करते हैं और समाज
अग्रगामी शक्तियों को बल देते हैं।[333] राहुल जी ने 'मधुर स्वप्न' में समाजवा
समाज का स्वप्न देखा है—"पराये श्रम को लूटने वाला संसार ध्वस्त हो जाता है
लेकिन उनका संसार ध्वस्त होकर रहेगा, आज नहीं तो कल, इस वर्ष नहीं तो
वर्ष, हजार पन्द्रह सौ वर्ष यह तुम्हारा माया-जाल टूट कर रहेगा। दो बाहु और ए
मस्तक वाले तुम करोड़ निन्यानबे मस्तक और निन्यानबे जोड़े हाथों वाले अपार जन

समुद्र को धोने में डालकर सदा सूखे नहीं रख सकते।"[३३६] सामाजिक साम्य का यह स्वप्न आधुनिक युग का स्वप्न है।

राहुल जी ने मार्क्सवादी सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते हुए अपने उपन्यासों में शोषक और शोषित का सम्बन्ध, आर्थिक विषमता, वैयक्तिकता की भावना का निषेध, जनशक्ति में विश्वास, द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की मान्यता, ईश्वर और धर्म में अविश्वास, बौद्ध एवं चार्वाक-दर्शन की मार्क्सवादी व्याख्या को प्रस्तुत किया है।

राहुल जी ने मार्क्सवादी लेखकों की भांति पूँजीवाद को समाज के लिए सबसे बड़ा अभिशाप माना है। यह पूँजीवादी व्यवस्था मजदूरों के जीवन को असह्नीय दुःख, दुर्दशा के निम्नतम स्तर की ओर धकेलती है।[३३७] पूँजीवादियों एवं शोषकों के प्रति राहुल के मन में अपार घृणा है। इनके विपरीत शोषित, श्रमिक एवं कृषकों के प्रति उनमें अपरिमित सहानुभूति है। शोषित वर्ग अनवरत श्रम करता है, परन्तु वह *अपने श्रम का भोक्ता नहीं, उसे तो केवल जीवित रहने के लिए धन का कुछ भाग प्राप्त* होता है, परन्तु शोषक-वर्ग उसके धन को हड़प कर विलासिता का जीवन व्यतीत करता है। शोषक और शोषित का सम्बन्ध मार्जार-मूषक का सम्बन्ध है। जय वासन्ती से कहता है—"मार्जार हैं यह दुनिया के ठगने वाले, जिनके फन्दों का कोई ठिकाना नहीं है। इनकी पण्यशालाएँ सब जगह सब रूप में खुली हुई हैं। शिवालय, जिनालय, सुगतालय, नृपालय, वणिकालय कहाँ-कहाँ तक गिनाऊँ और बेचारा बहुजन-साधारण जनता-मूसा है।"[३३८] 'विस्मृत यात्री' का यायावर नायक नरेन्द्रयश दुःखवाद की व्याख्या करता हुआ सामाजिक विषमता को प्रत्यक्ष दुःख मानता है।[३३९] पूँजीवादियों एवं *साम्राज्यवादियों की लोलुपता सामाजिक विषमता का कारण है। यही विषमता दुःख* का कारण है—"मनुष्यों में सम्पत्ति की जो विषमता है, वही सबसे अधिक दुःखों का कारण है। सम्राटों या सामन्तों को वैभव में इतना डूबे रहने का क्या अधिकार है? यह वैभव तथा धन उनके प्रासादों में आकाश से नहीं टपकता। परिश्रम करते-करते लोगों की कमर टूट जाती है, तब यह बहुमूल्य धातुओं और रत्नों के जेवर प्राप्त होते हैं ········ इस सबको जो हाथ तैयार करते हैं, वह दुनिया में सबसे गरीब हैं। जो अपने हाथ से एक तृण भी न हटाने की शपथ खाये हुए हैं, वह मौज में रहते हैं।"[३४०] सम्पत्ति का समविभाजन ही समूचे समाज को सुखी बना सकता है। अन्दर्जगर मज्दक इसी *समानता का अनुमोदन करता है—"भगवान् ने पृथ्वी पर अन्न पैदा किया कि* मनुष्य उसे अपने में समान विभाजित करे और कोई एक-दूसरे से अधिक न ले जाये। किन्तु मनुष्य एक-दूसरे पर अत्याचार करते हैं और हर एक व्यक्ति अपने को अपने भाई से पहले रखना चाहता है। इसमें सुधार तभी हो सकता है, यदि गरीबों के लिए धनियों के धन को ले लिया जाये। जिनके पास अधिक है, उनसे धन लेकर निर्धनों को दे दिया जाये। माल-असबाब या कोई सम्पत्ति जो अधिक हो उसे लेकर दूसरों में बराबर बाँट दिया जाये, जिससे व्यक्ति-व्यक्ति में अन्तर न हो।"[३४१] मज्दक 'मधुर स्वप्न' में अनेक स्थलों पर सामाजिक साम्य व भ्रातृत्व-भावना के लिए धन की समानता को अनिवार्य

कहता है। बहुजन के हित के लिए कुछ लोगों (पूँजीपतियों) को कष्ट होना भी स्वाभाविक है, परन्तु इस विशद दुःख के लिए उन्हें कष्ट भी सहन कर लेना चाहिए।[३४२]

राहुल जी का विचार है कि आर्थिक विषमता के लिए किसी एक व्यक्ति को उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता। जब तक परिस्थितियों को नहीं बदला जाता, शोषित लोगों को सचेत नहीं किया जाता, तब तक सामाजिक सामंजस्य स्थापित नहीं हो सकता। इसके लिए बहुजन को उद्बुद्ध करना होगा, उनमे ऐक्य स्थापित करना होगा, फिर शोषकों का अन्त अवश्यम्भावी हो जायेगा, और भूमि पर वस्तुत. स्वर्ग उतरेगा। फिर कोई भूखा न होगा, न कोई धन-वैभव में डूबा।[३४३]

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की व्याख्या 'मधुर स्वप्न' में बड़े विशद रूप मे राहुल जी ने प्रस्तुत की है। द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के अनुसार ईश्वर झूठी कल्पना के अतिरिक्त कुछ नहीं।[३४४] अतः यदि कोई देवता है तो वह मनुष्य ही है, मनुष्येतर कोई नही। 'मनुष्य में सिर्फ संहार की ही अद्भुत शक्ति नही है, वह निर्माण करने की भी अद्भुत क्षमता रखता है। मनुष्य के मस्तिष्क और भूमि के गर्भ मे क्या-क्या छिपा है, इसका अनुमान करना भी मुश्किल है········ तुम्हें शायद यह पसंद न लगे लेकिन मुझे तो मनुष्य की शक्ति देखकर विश्वास हो गया है कि जगत् का यही बग है, बाकी अनेक बग अथवा एक बगानबग झूठी कल्पना है।'[३४५] ईश्वर का अस्तित्व राहुल जी को स्वीकार्य नही। वह न तो सृष्टि का उपादान कारण है और न ही निमित्त कारण, कोई कार्य केवल एक कारण से नही होता, अपितु कारण-समुदाय से होता है। ऐसी अवस्था मे अकेला ईश्वर संसार का निर्माता नही हो सकता।[३४६] परिवर्तन विश्व का स्वाभाविक गुण है, अत. इसके कर्त्ता के रूप में ईश्वर की आवश्यकता नही है।[३४७] और यदि कहीं भगवान् है तो उसी ने दुनिया के कोने-कोने मे अन्याय, अत्याचार, खूनी संघर्ष और अव्यवस्था को भर रखा है।[३४८] ईश्वर का विचार राहुल जी की दृष्टि मे मनुष्य को पराश्रित बनाने वाला है।[३४९] इस प्रकार मार्क्सवादी राहुल ईश्वर की कल्पना पूँजीपतियों तथा राजाओं-महाराजाओं के स्वार्थ के लिए मानते हैं। ईश्वर की निरंकुशता की आड़ में वे अपनी निरंकुशता को उचित ठहराना चाहते हैं।[३५०] ईश्वर की तरह राहुल जी धर्म, परलोकवाद, पुनर्जन्म आदि मे भी विश्वास नही रखते।[३५१] राहुल के लिए ईश्वर एक मिथ्या धारणा-मात्र है और धर्म हलाहल विष, विशेषतः ब्राह्मण धर्म।[३५२] ब्राह्मण धर्म ही नहीं चार्वाक-दर्शन भी राहुल की दृष्टि में सामन्तों और सेठों का दर्शन है।[३५३] प्रगतिवादी लेखक की तरह सामाजिक रूढ़ियों एवं अन्ध-विश्वासों का राहुल जी ने सर्वत्र विरोध किया है। डॉ० नगेन्द्र राहुल के उपन्यासों मे प्रतिपादित दर्शन को द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद स्वीकारते हैं—'इन उपन्यासों का प्रतिपाद्य जीवन-दर्शन स्पष्ट रूप से द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद है, उसमें आत्मा, परलोक, ब्रह्म आदि आध्यात्मिक तत्त्वों का तीव्र निषेध करते हुए भौतिकवाद की प्रतिष्ठा है। त्याग, वैराग्य आदि काल्पनिक सुख-साधनों का तिरस्कार करते हुए स्वस्थ जीवन-उपभोग की स्वीकृति है। वैयक्तिक जीवन के ऊपर सामूहिक जीवन की सफलता का दिग्दर्शन

है। द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के अनुसार राहुल जी राजतन्त्र और अध्यात्मवाद दोनों को एक ही सिद्धान्त की दो अभिव्यक्तियाँ मानते हैं और स्पष्ट शब्दों में उनकी धारणा है कि अध्यात्म की कल्पना राजसत्ता को स्थिर करने के लिए ही की गई है।[३४४]

राहुल जी ने अपने उपन्यासों मे अनेक स्थलों पर साम्यवादी समाज का सृजन किया है। 'बाईसवीं सदी' उनके साम्यवादी समाज का स्वप्न है। जिसमें मनुष्य को जीवनयापन की सभी सुविधाएँ सर्वसुलभ होंगी, किसी भी प्रकार की वैयक्तिक सम्पत्ति मनुष्य के पास नहीं होगी, सभी कुछ राष्ट्र का होगा, अपने-पराये का भेद-भाव न होगा।[३४५] सामूहिक श्रम, सामूहिक भोजन, सामूहिक फल-प्राप्ति, रोगों से मुक्ति, जात-पाँत के भेद-भाव की समाप्ति, नारी-स्वतन्त्रता, मादक द्रव्यों का त्याग, वैयक्तिक सम्पत्ति न होने के कारण तत्सम्बन्धी अनेक कानूनों की समाप्ति, स्वस्थ पुरुष और स्त्रियाँ, शिक्षित नागरिक, वर्गहीन समाज—यह बाईसवीं सदी का स्वप्न है।[३४६] नारी और पुरुष का पारस्परिक सम्बन्ध प्रेम के तन्तुओं से है और किसी प्रकार का बन्धन उन्हें नहीं।[३४७]

'सिंह सेनापति' में तक्षशिला, उत्तरकुरु तथा वैशाली के जन-समाज के वर्णन मे राहुल का मार्क्सवादी स्वर है। तक्षशिला में दासों और भिखारियों का अभाव है, प्रत्येक व्यक्ति जीविका के लिए श्रम करता है और उसके फल का भोक्ता भी है।[३४८] तक्षशिला के लोगों का जीवन आनन्दमय है। उत्सवों का उनके जीवन में विशेष स्थान है।[३४९] प्रेम-विवाह अथवा उन्मुक्त प्रेम उनके जीवन का अधिकार है। कोई भी स्त्री स्वेच्छापूर्वक किसी भी पुरुष से प्रेम और विवाह करने के लिए स्वच्छन्द है।[३५०] उपन्यास मे उत्तर कुरु के रूप मे देवभूमि का अंकन है और यह देवभूमि साम्यवादी भूमि के अतिरिक्त और कुछ नहीं। इस भूमि में गणतन्त्रीय शासन-व्यवस्था है। रसुल्लों के अत्याचार यहाँ नहीं हैं। सभी उन्मुक्त स्वच्छन्द वातावरण मे जीवन जीते हैं, उनका जीवन आनन्दमय है।[३५१] स्त्री किसी एक पुरुष के साथ बंधकर नहीं रहती, उसे किसी भी पुरुष के साथ प्रेम करने का अधिकार है। सतान सम्बन्धी 'मेरे-तेरे' का भाव वहाँ नहीं, किसी देव का अपना पुत्र नहीं है, सब राष्ट्र के हैं—सभी देवों के हैं।[३५२] वैशाली भी गणतन्त्रीय नगरी है—यहाँ भी जीवन मे श्रम को ही सर्वाधिक महत्त्व प्राप्त है। स्त्रियाँ और पुरुष मिलकर खेतों में काम करते हैं, युद्धों मे भाग लेते हैं। उनके प्रेम की स्वतन्त्रता और स्वच्छता उनके नृत्य-उत्सवों और चुम्बन-उत्सवों मे दर्शनीय है।[३५३] दास-प्रथा का यहाँ भी अभाव है।[३५४]

'जय यौधेय' में यौधेय गण का रूप 'सोवियत संघ' से साम्य रखता है। यौधेय जब गणतन्त्र का नायक बनकर भूमि पर जनता का अधिकार प्रस्थापित करता है तथा जनहित के लिए सामूहिक योजनाएँ बनाता है। वह पलायनवाद एवं कर्मवाद का विरोधी है। वह मथुरा में युवक-युवतियों का एक संगठन तैयार करता है जो साम्यवादी दल से भिन्न नहीं है। वह साम्यवादी दल या युवक लीग [illegible] का

जीना दूभर कर देता है। 'जय यौधेय' मे सम्मिलित खेती का भी भी उदाहरण प्रस्तुत है।[३६५] साम्यवादी खेती का यह रूप रूसी कलखोज से साम्य रखता है।[३६६]

'मधुर स्वप्न' मे 'दिहबगान' का चित्रण लेखक की साम्यवादी कल्पना के अनुकूल है। डॉ० कमलकुमारी जौहरी के शब्दों में—'सिंह सेनापति' के तक्षशिला और वैशाली के गणतन्त्र तथा 'मधुर स्वप्न' के दिहबगान इन सभी का राजनीतिक तथा सामाजिक जीवन एक-सा है और यह जीवन लेखक की रुचि और कल्पना का साम्यवादी जीवन है।'[३६७] राहुल ने अन्दर्जगर मज्दक को उपन्यास मे साम्यवाद के स्वप्न-द्रष्टा के रूप में प्रस्तुत किया है। वह 'दिहबगान' नामक ग्राम की सृष्टि करता है जो उसके मधुर स्वप्न का साकार रूप है। इसमें वह अपने ममता के सारे सिद्धान्तो को प्रत्यक्ष करता है। 'दिहबगान' में अर्थ और काम की सारी व्यवस्था साम्यवादी है। स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध में मज्दक का कथन है—'यवन विचारक फलातोन ने बतलाया कि महान उद्देश्य को लेकर चलने वाले नर-नारियों को सम्पत्ति से ही मेरा-तेरा का सम्बन्ध नहीं हटाना चाहिए, बल्कि उनके लिए स्त्री मे मेरा-तेरा का भाव होना भी हानिकारक है क्योंकि स्त्री में केन्द्रित वह मेरा-तेरा का भाव फिर पुत्र-पुत्रियो मे केन्द्रित हो जाएगा, फिर उनकी सन्तानों मे।'[३६८] 'दिहबगान' मे 'बाईसवी सदी' की तरह सम्मिलित भोजनशालाओ का वर्णन है।[३६९] 'दिहबगान' मे राहुल का मधुर स्वप्न साकार हुआ है—'यहाँ किसी की कोई वैयक्तिक सम्पत्ति नही, सारे फलोद्यान, सारे खेत, सारी जंगम-स्थावर सम्पत्ति ग्राम के सारे व्यक्तियो की सम्मिलित सम्पत्ति है। जिससे जितना काम हो सकता है, उतना कोई-न-कोई उपयोगी कार्य करता है, और लोग शक्ति से अधिक कार्य करने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं और जैसी जिसके लिए आवश्यकता होती है, उस परिणाम मे लोगों को चीजें दी जाती हैं।'[३७०] दिहबगान का लक्ष्य है समस्त मानवो की समता, परस्पर प्रेम और सार्वत्रिक सुख-समृद्धि।[३७१] अन्दर्जगर भोग-साम्य को श्रम-साम्य के बिना अधूरा समझता है।[३७२] प्रेम उसकी दृष्टि मे जीवन का स्वाभाविक रस है।[३७३] मनुष्य को सुख समता में ही मिल सकता है।[३७४] इस प्रकार 'मधुर स्वप्न' मे दिहबगान साम्यवादी स्वप्न के अनुकूल है। 'जीने के लिए' मे देवराज तथा जैनी के माध्यम से राहुल जी ने अनेकत्र अपनी मार्क्सवादी विचार-धारा को अभिव्यक्ति दी है। साम्राज्यवादी निरंकुशता, स्वच्छन्द प्रेम, पूँजीवाद के अत्याचार आदि के वर्णन मे उन्होने मार्क्सवादी विचारों को ही प्रकट किया है।[३७५] 'भागो नही दुनिया को बदलो' मे समाज एवं विश्व को परिवर्तित करने के लिए राहुल जी मार्क्सवादी क्रांति का समर्थन करते हैं।[३७६]

निष्कर्ष यह कि लेखक के सभी उपन्यास उसके मार्क्सवादी जीवन-दर्शन के प्रतिबिम्ब हैं। पूँजी का समवितरण, पुरुष और नारी के समाधिकार, सहकारी जीवन, गणतन्त्रात्मक व्यवस्था, मुक्त प्रेम आदि से सम्बन्धित विचार उनके मार्क्सवादी जीवन-दर्शन से प्रेरित हैं। कहीं-कहीं तो ये विचार आरोपित से प्रतीत होते है और कथानक से सामंजस्य स्थापित नही कर पाते। राहुल जी स्वयं अपने औपन्यासिक

कथाशिल्प के प्रभावों से परिचित थे और उन्होंने अपने उपन्यासों की सोद्देश्यता की स्पष्ट घोषणा भी की है—'मेरे उपन्यासों या कहानियों में प्रोपेगेण्डा के तत्व को ढूंढने के लिए बहुत प्रयत्न करने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि उनको लिखने में मेरा उद्देश्य ही है, कुछ आदर्शों की ओर पाठकों को प्रेरित करना। अगर यह उद्देश्य मेरे सामने न रहता, तो शायद मैं कहानी या उपन्यास लिखता ही नहीं। इसलिए जिसे मेरे दोस्त प्रोपेगेण्डा कहते हैं, उसे मैं अपनी मजबूरी मानता हूँ।'[३७७] अतः हमारी धारणा है कि राहुल चिन्तक पहले हैं, उपन्यासकार बाद में।

बौद्ध दर्शन के आलोक में उपन्यास—राहुल जी ने अपने जीवन में बौद्ध-दर्शन का अध्ययन ही नहीं किया, प्रत्युत जीवन में उसका आचरण भी किया है। बौद्धधर्म में दीक्षित होकर उन्होंने इसके प्रचार एवं प्रसार के लिए अनथक प्रयत्न किया है। राहुल जी की अनुसन्धानात्मक उपलब्धियाँ बौद्ध-जगत् के क्षेत्र में अभूतपूर्व क्रान्ति मानी जा सकती है। अपनी औपन्यासिक कृतियों में राहुल जी ने मार्क्सवाद के अनन्तर बौद्ध-दर्शन को ही अभिव्यक्ति दी है। उनके प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यासों 'सिंह सेनापति', 'जय यौधेय' एवं 'विस्मृत यात्री' के नायक बौद्ध-धर्म के अनुयायी हैं। 'मधुर स्वप्न' तथा 'भागो नही दुनिया को बदलो' में भी अनेक स्थलों पर उपन्यासकार बौद्ध-धर्म का स्मरण करता है। 'विस्मृत यात्री' का नायक नरेन्द्रयश तो बौद्ध-धर्म के भिक्षु-यात्री के रूप में चित्रित है। 'जय यौधेय' का जय भी आचार्य असंग और वसुबन्धु से बौद्ध-दर्शन की शिक्षा प्राप्त करता है और 'सिंह सेनापति' में महात्मा बुद्ध स्वयं एक पात्र के रूप में विद्यमान हैं, जिनसे उपन्यास का नायक सिंह प्रभावित होता है। इन उपन्यासों में राहुल जी की बौद्ध दर्शन-विषयक विचारधारा अनेकत्र मुखरित हुई है।

बौद्ध दर्शन के चार आधार स्तम्भ हैं—(१) प्रतीत्य समुत्पाद, (२) अनित्यवाद, (३) अनात्मवाद तथा (४) निर्वाण। राहुल जी के उपन्यासों में इन चारों सिद्धान्तों का निरूपण एवं व्याख्या मिलती है। 'प्रतीत्य समुत्पाद' मध्यमार्ग का सिद्धात है। भगवान् बुद्ध प्रतीत्य समुत्पाद एवं धर्म में ऐक्य स्वीकारते हैं।[३७८] श्री वाचस्पति गैरोला के शब्दों में—'इस मध्यमत के अनुसार एक ओर तो वस्तुओं के अस्तित्व में कोई सन्देह नही है, किन्तु उनको नित्य नही कहा जा सकता। उनकी उत्पत्ति दूसरी वस्तुओं से होती है। दूसरे दृष्टिकोण के अनुसार वस्तुओं का पूर्ण विनाश भी नही होता, बल्कि उनका अस्तित्व बना रहता है। इसलिए वस्तुएँ न तो पूर्ण नित्य हैं और न पूर्ण विनाशशील ही।—एक वस्तु के बाद दूसरी वस्तु की उत्पत्ति होती है, इसी सनातन नियम को बुद्ध ने प्रतीत्य समुत्पाद नाम दिया है।—प्रतीत्य समुत्पाद के अनुसार कार्य-कारण-सम्बन्ध को विच्छिन्न माना जाता है।'[३७९] राहुल जी भी प्रतीत्य समुत्पाद की इसी रूप में व्याख्या करते हैं।[३८०] प्रतीत्य समुत्पाद के इस सिद्धान्त के विषय में 'विस्मृत यात्री' का नायक अपने अतीत के जीवन पर विचार करता हुआ

नहीं है, जैसा कि नैयायिक तथा दूसरे स्थिरतावादी कहते हैं। वह सर्पगति से नहीं—बल्कि मण्डुकप्लुति (मेंढक-कुदान) से होता है, प्रतीत्यसमुत्पाद—इसके बाद यह होता है—का नियम सर्वत्र व्यापक है।'३८१

अनित्यवाद अथवा क्षणिकवाद बौद्ध-दर्शन का दूसरा महत्वपूर्ण सिद्धान्त है। अनित्यवाद के अनुसार दुनिया की सभी वस्तुएँ अनित्य धर्मों के सघात पर टिकी होने के कारण अनित्य हैं। क्षणिकवाद प्रत्येक वस्तु को अनित्य तो मानता है, साथ ही वह उसे क्षणिक भी कहता है—'विकास की क्रिया में कोई भी दो क्षण एक नहीं हैं। कोई भी मनुष्य किन्हीं दो क्षणों में एक जैसा नहीं रहता। यह क्षणिकवाद का सिद्धान्त है।'३८२ राहुल भी इस विषय में लिखते हैं—"बुद्ध के दर्शन में अनित्यता एक ऐसा नियम है, जिसका कोई अपवाद नहीं है।"३८३ राहुल के उपन्यासों में अनित्यतावाद के स्वरूप की विस्तृत व्याख्या मिलती है। आत्मा की अनित्यता के विषय में महात्मा बुद्ध का कथन है—'मैं किसी ऐसी आत्मा को नहीं मानता जो दो पल भी वही हो, एक सारे जन्म या एक शरीर से दूसरे शरीर में जाने वाले नित्य ध्रुव आत्मा की तो बात ही क्या है।'३८४ इसी प्रसंग में वे आगे कहते हैं—'मैं किसी वस्तु जड़-चेतन, देव-ब्राह्मण को नित्य ध्रुव नहीं मानता। जो है, वह पैदा हुआ है, वह मरने वाला, नष्ट होने वाला है—जीवन नदी का प्रवाह है, जो हर क्षण नया होता है। यदि नया होने की गुंजाइश न होती तो हमारे सारे सुकर्म, हमारे सारे सुविचार, हमारे सारे सुवचन निष्फल होते।'३८५ 'विस्मृत यात्री' का नायक इस अनित्यतावाद में जीवन की सार्थकता देखता है—'पुराने को जीर्ण होना ही पड़ता है, उसे नवीन के लिए अपना स्थान खाली करना ही पड़ता है।'३८६ अनित्यतावाद में ईश्वर के अस्तित्व को भी नकारा गया है।३८७ आचार्य नरेन्द्रदेव अनीश्वरवाद के विषय में लिखते हैं—'समस्त कार्यकारणात्मक जगत् प्रतीत्य समुत्पन्न है। हेतु और प्रत्ययों की अपेक्षा करके ही समस्त धर्मों की धर्मता स्थित है। इसलिए इस नय में ईश्वर, ब्रह्मा आदि कल्पित कारकों का प्रतिषेध है।'३८८ 'जय यौधेय' में जय का अनीश्वरवाद के विषय में इसी प्रकार का कथन है—'बदलना विश्व का स्वाभाविक गुण है, इसलिए किसी बदल देने वाले कर्ता या ईश्वर की आवश्यकता ही नहीं है।'३८९

बौद्ध-दर्शन अनात्मवाद का अनुयायी है। अनात्मवाद को पुद्गल-प्रतिषेधवाद भी कहते हैं। बौद्ध आत्मा या पुद्गल को वस्तुसत् नहीं मानते। आत्मा नाम का कोई पदार्थ स्वभावतः नहीं है। अनात्मवाद के अनुसार—'जीवन के भीतर कोई भी वस्तु ऐसी नहीं है, जिसको हम आत्मा कह सकें। रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान—इन पाँचों का सघात हमारा जीवन है और ये वस्तुएँ अनित्य हैं।'३९० आचार्य वसुबन्धु 'जय यौधेय' में आत्मा की नित्यता का खण्डन करते हैं—'आत्मा के नित्य होने की लालसा, मृत्यु से डरने का भय बहुत ही तुच्छ स्वार्थान्धता और कायरता है।'३९१

'निर्वाण' का शाब्दिक अर्थ है अग्नि की लौ के समान बुझ जाना।३९२ बौद्ध

दर्शन के निर्वाण के विषय में श्री गैरोला लिखते हैं—'बुझ जाने को निर्वाण कहते हैं। विच्छिन्न प्रवाह के रूप से उत्पन्न नाम-रूप-तृष्णा के वशीभूत होकर जो एक जीवन प्रवाह का रूप धारण कर सतत गतिशील है, इस प्रवाह का सर्वथा विच्छेद हो जाना ही निर्वाण है।'[३६३] भरतसिंह उपाध्याय जीवन की विशुद्धि को विमुक्ति कहते हैं।[३६४] निर्वाण किसी पृथक् लोक का नाम न होकर उस अवस्था का नाम है जिसमें ज्ञान द्वारा अविद्यारूपी अंधकार दूर हो जाता है।[३६५] वसुबन्धु 'जय यौधेय' में जीवन-निर्वाण को दीप-निर्वाण की तरह बुझ जाने के रूप में ग्रहण करते हैं।[३६६] उपन्यास का नायक जय परलोकवाद को धोखे की टट्टी कहता है।[३६७] इसी उपन्यास में एक बौद्ध उपासिका के निर्वाण-सम्बन्धी विचार द्रष्टव्य हैं—'आत्मा नहीं बल्कि चेतना का एक प्रवाह है, जो सदा नष्ट होते तथा नया पैदा होते चेतना-बिन्दुओं की धारा-मात्र है, धारा में एकत्व का ख्याल हो सकता है, लेकिन निर्वाण तो उस अवस्था को कहते हैं, जबकि यह चेतना-प्रवाह निरुद्ध हो जाता है।'[३६८]

उपर्युक्त दार्शनिक-सिद्धान्तों के अतिरिक्त बौद्ध-धर्म एवं दर्शन की अन्य मान्यताओं एवं उपलब्धियों का भी यत्र-तत्र उल्लेख राहुल जी ने किया है। राहुल जी बौद्ध-धर्म को बहुजनहिताय धर्म स्वीकारते हैं। इसके बहुजनहिताय रूप के विषय में आचार्य असंग का कथन है—'उसके भीतर प्राणिमात्र के लिए प्रेम था, ज्ञान-प्रकाश फैलाने की लगन थी और बहुजन के उपकार की भावना थी।'[३६९] बोधिसत्वों के मार्ग के विषय में वे आगे कहते हैं—'मनुष्य को अपने सुख, अपने निर्वाण के लिए नहीं दौड़ना चाहिए, उसका जीवन, प्राण बहुजन-हिताय होना चाहिए। जब तक एक भी मानव दुःख में है, बन्धन में है, तब तक हमें निर्वाण नहीं चाहिए।'[३७०] 'विस्मृत यात्री' में बुद्धिल भी बौद्धधर्म को 'बहुजनहिताय' तथा 'बहुजन सुखाय' कहता है।[३७१]

बुद्ध के चार आर्य-सत्यों—दुःख, दुःख-हेतु, दुःख-निरोध तथा दुःखनिरोध के मार्ग की व्याख्या 'विस्मृत यात्री' में बुद्धिल करता है।[३७२] बौद्ध-दर्शन के ये चार आर्य-सत्य बौद्ध-दर्शन के मार्ग से जीवन की अनुभूति तथा निर्वाण-प्राप्ति के चार सिद्धान्त हैं।[३७३] बुद्ध के साधना-विषयक विचार कि दो अतियों का त्याग होना चाहिए,[३७४] 'सिंह सेनापति' में बुद्ध द्वारा इस प्रकार व्यक्त है—'मैं सेनापति! नाना प्रकार के काम [illegible] पर [illegible] को बुरा कहता हूँ। आदमी को न [illegible] शरीर का [illegible] ही न करना चाहिए, न शरीर को सुखाकर उसे [illegible] बनाना ही [illegible] चाहिए।'[३७५] इसे बुद्ध द्वारा प्रतिपादित मज्झिमा-पटिपदा (मध्यम मार्ग) कहा जा सकता है। न [illegible] न ही सर्वथा [illegible] रहना और न कठोर [illegible] न [illegible]

[illegible][३७६] बुद्ध की यह मज्झिमा-पटिपदा [illegible] बुद्ध द्वारा 'सिंह सेनापति' [illegible] है।

[illegible] बुद्ध की दृष्टि में [illegible] नहीं [illegible] कोई वस्तु नहीं है, [illegible][३७७]

राहुल जी अपने उपन्यासो में सर्वत्र जातिभेद पर प्रहार करते हैं। 'जय यौधेय' का नायक जाति-भेद ब्राह्मण-धर्म की उपज मानता है और बौद्ध-धर्म द्वारा इसका निवारण सम्भव कहता है।[१०८] बुद्धिल भी बौद्ध धर्म मे जाति-भेद का अभाव देखता है।[१०९] इस प्रकार राहुल जी जाति-भेद के कटु आलोचक बन गये हैं। इसके अतिरिक्त बौद्ध धर्म के विचार-स्वातन्त्र्य[११०] एवं आचरण-विषयक सिद्धान्तो[१११] का भी उनके उपन्यासो मे यत्र-तत्र उल्लेख है। निष्कर्ष यह कि राहुल जी के मन में बौद्ध-धर्म के प्रति असीम आस्था थी। वे इसे बहुजन-हिताय धर्म मानते थे और बुद्ध तथा मार्क्स मे उन्हे साम्य दृष्टिगोचर होता था। बौद्ध धर्म के दार्शनिक एवं व्यावहारिक सिद्धान्तो की अभिव्यक्ति उनके ऐतिहासिक उपन्यासो में विशेष रूप से हुई है।

बौद्ध दर्शन एवं मार्क्सवादी दर्शन का समन्वय—भदन्त आनन्द कौसल्यायन बौद्ध-दर्शन के प्रतीत्य-समुत्पाद तथा वैज्ञानिक भौतिकवाद मे प्रायः साम्य स्वीकारते हैं। यद्यपि बौद्ध दर्शन को भूत के साथ मन की स्थिति भी ग्राह्य है, परन्तु सार्वत्रिक अनित्यता के कारण वैज्ञानिक भौतिकवाद एवं बौद्ध-दर्शन में अपने व्यापक रूप में विशेष अन्तर नही। वे लिखते हैं—'दोनो दर्शनों को गति का निरन्तर अस्तित्व न केवल मान्य ही है, किन्तु दोनों को उसका आग्रह है। वैज्ञानिक भौतिकवाद परिमाणात्मक परिवर्तन होते-होते गुणात्मक परिवर्तन की बात करता है तो बौद्ध दर्शन प्रतीत्य समुत्पाद की। दोनों विचार यदि एकदम एक नही हैं, तो दोनो परस्पर अविरोधी हैं।'[११२] राहुल जी बौद्ध-दार्शनिक एवं मार्क्सवादी-विचारक हैं। उनकी कृतियों मे बौद्ध-दर्शन एवं द्वन्द्वात्मक-भौतिकवादी विचारधारा का समन्वय प्राप्त होता है। वे बुद्ध और मार्क्स की विचारधारा मे पर्याप्त साम्य देखते हैं और दोनो विचारकों की विचारधारा के समन्वय-सामंजस्य को अपनी कृतियो मे प्रस्तुत करते हैं। उनकी दृष्टि में बौद्ध-दर्शन मार्क्सीय दर्शन को समझने के लिए प्रथम सोपान है।[११३] इस प्रकार बौद्ध दर्शन और द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद में तारतम्य एवं सामंजस्य दार्शनिक-उपन्यासकार राहुल जी की मौलिकता कही जा सकती है। राहुल ने देश-विदेश का पर्यटन किया, विविध आस्तिक एवं नास्तिक दर्शनों का चिन्तन और मनन किया तथा उनके समन्वय-सामंजस्य द्वारा मौलिक विचारो की उद्भावनाएँ अपनी सर्जनात्मक कृतियों को प्रदान की। राहुल जी की इस मौलिकता को डॉ० जगदीश गुप्त 'राहुलवाद' की संज्ञा देते हैं।[११४] श्री महेन्द्र चतुर्वेदी लिखते हैं—'लेखक की दृष्टि मे प्राचीन ब्राह्मण-संस्कृति तथा पूँजीवादी-संस्कृति परिस्थिति-भेद के अनुसार प्रायः परस्पर समकक्ष हैं—दोनो ने वैषम्य का पोषण किया है, मानवीय समता का निषेध किया है। उनके अनुसार मार्क्स अभिनव बुद्ध है—दोनों की चिन्ताधारा की तात्त्विक समानता को लेखक ने रेखांकित किया है।'[११५] राहुल जी के कथानायक दोनो विचारधाराओ के समन्वय के वाहक है। 'विस्मृत यात्री' मे बौद्ध-धर्मानुयायी नरेन्द्र यश के जीवन द्वारा मार्क्सवादी विचारधारा की अभिव्यक्ति हुई है। बौद्ध-यात्री नरेन्द्रयश भी जन-सेवा तथा समाज-कल्याण को अदम्य मानता है, उनको बहुजन-हिताय

की चेतना समाजवादी-चेतना के रूप में परिणत हो जाती है। 'सिंह सेनापति' के अन्त में सिंह और तथागत के परस्पर विचार-विनिमय द्वारा बौद्धमत तथा मार्क्सवाद में सामंजस्य स्थापित किया गया है। डॉ० सुषमा धवन लिखती हैं—'उनकी दृष्टि में मार्क्स आधुनिक परिस्थिति में बुद्ध का रूप है। तथागत की विचार-पद्धति और द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद में तात्त्विक साम्य है। बुद्ध और मार्क्स मानव की बुद्धि तथा अनुभूति की कसौटी पर जीवन के स्वरूप को निर्णीत करने के पक्ष में हैं, दोनों परम्परा के अन्धानुसरण में विश्वास नहीं रखते, दोनों पर नास्तिकता का आरोप लगाया जाता है, दोनों को जीवन तथा समाज की अनित्यता एवं परिवर्तनशीलता में आस्था है। दोनों सामाजिक वैषम्य और मानवीय भेद-भाव के विरोधी हैं।'[१११] 'जय यौधेय' का नायक जय भी तथागत के विचारों एवं सिद्धान्तों को मार्क्सवादी विचारधारा में ढाल कर उन्हें नवीन रूप प्रदान करने का प्रयत्न करता है। 'मधुर स्वप्न' में मज्दकी धर्म और साम्यवादी-जीवन-दर्शन में राहुल जी ने साम्य दिखलाया है। राहुल जी के इस मौलिक समन्वयवादी चिन्तन को निम्नांकित रूप में देखा जा सकता है।

परलोकवाद व पुनर्जन्मवाद की मौलिक व्याख्या—राहुल जी ने परलोकवाद एवं पुनर्जन्मवाद की मौलिक व्याख्या की है। हिन्दुओं के आत्मवादी दर्शन को धोखे की टट्टी कहकर राहुल जी उसकी आलोचना करते हैं और बौद्ध-दर्शन के अनात्मवाद एवं क्षणिकवाद में अपनी आस्था प्रदर्शित करते हैं। परलोकवाद के लिए जीवन के एक क्षण का व्यय वे जीवन का अपव्यय समझते हैं। परलोकवाद उन्हें एक रूप में मान्य है, जिसकी व्याख्या वे जय के शब्दों में करते हैं—'पुत्र पिता का परलोक है, पुत्र पिता का पुनर्जन्म है। पिता मरने से पहले अपने शरीर, अपने मानसिक और शारीरिक संस्कार का एक अंश माता के शरीर में स्थापित करता है। माता उसमें अपना अंश मिलाती है और नौ मास गर्भ में रख उसे शिशु के रूप में अगले लोक, अगली पीढ़ी के लिए देती है। इसे मैं परलोक मानता हूँ।'[११४] परलोकवाद एवं पुनर्जन्मवाद की प्रस्तुत व्याख्या आधुनिक युग में ग्राह्य है। इस विषय में डॉ० नगेन्द्र लिखते हैं—'इसमें एक विशेष संगति है। यह अस्वीकृत नहीं किया जा सकता, यह व्याख्यान भी अपने ढंग से सटीक और मनोग्राही है और आज के वैज्ञानिक युग में अधिक ग्राह्य भी हो सकता है।'[११५] जय परलोकवाद एवं पुनर्जन्म के सिद्धान्त को स्वार्थान्धता एवं कायरता का सिद्धान्त समझता है और उसे पूँजीवाद की समर्थिका ब्राह्मण-संस्कृति का अस्त्र समझता है—'यदि पुनर्जन्म का विश्वास हाथ-पैर और मन को न बाँधे होता तो हजार में नौ सौ निन्यानवे जनता अपने सामने परोसी थाली एक आदमी के सामने रखकर भूखों न मरती, और न भूखे और नंगे रहने वालों की कमाई से, उनके खून और हड्डियों से बड़े-बड़े प्रासाद तैयार होते।'[११६] 'सिंह सेनापति' में आचार्य बहुलाश्व पुनर्जन्मवाद को रजुल्लों की कल्पना मानते हैं, जिससे वे अपनी प्रजा को अन्धकार में रख सकते हैं।[११७] इस प्रकार राहुल जी की परलोकवाद एवं पुनर्जन्मवाद-विषयक व्याख्या भौतिकवादी है। परलोकवाद की यह व्याख्या इस लोक से आँखें

मूँदकर किसी कल्पित लोक को बेहतर बनाने की प्रेरणा नहीं देती।[११] अतः राहुल जी परलोकवाद की व्याख्या लोक की धरती पर करते हैं। वे परलोकवाद के स्थान पर लोकवाद की स्थापना करते हैं।

(ख) दुःखवाद की मार्क्सवादी व्याख्या—राहुल जी ने बौद्ध-दर्शन के दुःखवाद की व्याख्या मार्क्सवादी-दृष्टि से की है। डॉ० सुषमा धवन के शब्दों में—"राहुल ने तथागत के दुःखवाद तथा मार्क्स के वर्गवाद में सामंजस्य स्थापित किया है। बुद्ध जहाँ दुःखों के कारणों का विश्लेषण और उनके निवारण का उपचार धार्मिक दृष्टि से करते हैं, वहाँ मार्क्स का विवेचन तथा उपादान आर्थिक तथा वर्गवाद पर आधारित है।"[१२४] 'विस्मृत यात्री' में नरेन्द्रयश बौद्ध-सिद्धान्तों की मार्क्सवादी विवेचना प्रस्तुत करता है। दुःख-हेतु के विषय में वह कहता है—'मनुष्यों में सम्पत्ति की जो विषमता है, वह सबसे अधिक दुःखों का कारण है।'[१२५] दुःख-निवारण के उपाय के विषय में उसका कथन है—'धनी-गरीब का भेद मिटाकर ही संसार में मनुष्य-जाति को दुःख-सागर से उबारा जा सकता है।"[१२६] इस प्रकार नरेन्द्रयश बौद्ध विचारों को मार्क्सवादी शब्दावली में व्यक्त करता हुआ इस मत पर बल देता है कि 'अभाव के कारण होने वाले दुःख की जड़ को मैं अकेला नहीं काट सकता और समाज में आर्थिक विषमता ही दुःख का मूल कारण है।"[१२७] वह अहिंसावादी होते हुए भी सम्राटों एवं आततायियों के प्रति सहानुभूति दिखलाना उचित नहीं समझता। यह कहना कि निर्धन व्यक्ति अपने पूर्वजन्मों के कारण दुःखी है, उसे मान्य नहीं। इसे वह विषमता को स्थिर रखने का उपाय मानता है। वह अनुभव करता है कि शोषक अल्प हैं, शोषित बहुसंख्यक हैं। तथागत ने बहुजन-हिताय का उपदेश दिया था, इस उद्देश्य की पूर्ति बहुजन (शोषित) को उद्बुद्ध करने से ही हो सकती है।[१२८] इस प्रकार नरेन्द्रयश के द्वारा राहुल ने चार आर्य-सत्यों की मार्क्सवादी व्याख्या प्रस्तुत की है। इस उपन्यास में बुद्धिल द्वारा भी दुःखवाद की व्याख्या इसी रूप में की गई है।[१२९] 'जय यौधेय' का नायक जय भी दुःखवाद की आर्थिक दृष्टि से व्याख्या करता है।[१३०] जय की कुशाग्र बुद्धि एवं संवेदनशील हृदय सामाजिक विसंगतियों से पूर्णरूपेण अभिज्ञ हैं और उसका प्रबुद्ध-विवेक दुःख के मूल कारणों को समझने की क्षमता रखता है। इस प्रकार दुःखवाद एवं वर्गवाद का सामंजस्य राहुल की नई उद्भावना है।

(ग) भोगवाद का सिद्धान्त—डॉ० गोपीनाथ तिवारी के अनुसार राहुल जी 'खाओ, पियो और मौज करो' के भोगवादी सिद्धान्त के समर्थक हैं।[१३१] वे चाहते हैं कि मनुष्य संसार के सभी उपभोगों का आस्वादन करे क्योंकि संसार के सभी पदार्थ उसके उपभोग के लिए ही निर्मित हुए हैं। राहुल जी खाद्य-पदार्थों में पक्वान्न से अधिक मांस-भक्षण का समर्थन करते हैं। 'सिंह सेनापति' में संस्थागार का सामूहिक भोजन बलसतरी के भुने मांस और गर्मागर्म सूकर मार्दव से होता है।[१३२] 'जय यौधेय' का नायक अपनी रुचि के विषय में कहता है—'लकड़ी की आग पर भुने सूअर के मांस को हम बहुत पसंद करते थे।'[१३३] 'राजस्थानी रनिवास' में राजपूत ठाकुरों एवं

की चेतना समाजवादी-चेतना के रूप में परिणत हो जाती है। 'सिंह सेनापति' के अन्त में सिंह और तथागत के परस्पर विचार-विनिमय द्वारा बौद्धमत तथा मार्क्सवाद में सामंजस्य स्थापित किया गया है। डॉ० सुषमा धवन लिखती हैं—'उनकी दृष्टि से मार्क्स आधुनिक परिस्थिति में बुद्ध का रूप है। तथागत की विचार-पद्धति और द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद में तात्त्विक साम्य है। बुद्ध और मार्क्स मानव की बुद्धि तथा अनुभूति की कसौटी पर जीवन के स्वरूप को निर्णीत करने के पक्ष में हैं, दोनों परम्परा के अन्धानुसरण में विश्वास नहीं रखते, दोनों पर नास्तिकता का आरोप लगाया जाता है, दोनों की जीवन तथा समाज की अनित्यता एवं परिवर्तनशीलता में आस्था है। दोनों सामाजिक वैषम्य और मानवीय भेद-भाव के विरोधी हैं।'[११६] 'जय यौधेय' का नायक जय भी तथागत के विचारों एवं सिद्धान्तों को मार्क्सवादी विचारधारा में ढाल कर उन्हें नवीन रूप प्रदान करने का प्रयत्न करता है। 'मधुर स्वप्न' में मज्दकी धर्म और साम्यवादी-जीवन-दर्शन में राहुल जी ने साम्य दिखलाया है। राहुल जी के इस मौलिक समन्वयवादी चिन्तन को निम्नांकित रूप में देखा जा सकता है।

परलोकवाद व पुनर्जन्मवाद की भौतिक व्याख्या—राहुल जी ने परलोकवाद एवं पुनर्जन्मवाद की भौतिक व्याख्या की है। हिन्दुओं के आत्मवादी दर्शन को धोखे की टट्टी कहकर राहुल जी उसकी आलोचना करते हैं और बौद्ध-दर्शन के अनात्मवाद एवं क्षणिकवाद में अपनी आस्था प्रदर्शित करते हैं। परलोकवाद के लिए जीवन के एक क्षण का व्यय वे जीवन का अपव्यय समझते हैं। परलोकवाद उन्हें एक रूप में मान्य है, जिसकी व्याख्या वे जय के शब्दों में करते हैं—'पुत्र पिता का परलोक है, पुत्र पिता का पुनर्जन्म है। पिता मरने से पहले अपने शरीर, अपने मानसिक और शारीरिक सस्कार का एक अंश माता के शरीर में स्थापित करता है। माता उसमें अपना अंश मिलाती है और नौ मास गर्भ मे रख उसे शिशु के रूप मे अगले लोक, *अगली पीढ़ी के लिए देती है। इसे मैं परलोक मानता हूँ।*'[११७] परलोकवाद एवं पुनर्जन्मवाद की प्रस्तुत व्याख्या आधुनिक युग में ग्राह्य है। इस विषय में डॉ० नगेन्द्र लिखते हैं—'इसमे एक विशेष संगति है। यह अस्वीकृत नहीं किया जा सकता, यह व्याख्यान भी अपने ढंग से सटीक और मनोग्राही है और आज के वैज्ञानिक युग मे अधिक ग्राह्य भी हो सकता है।'[११८] जय परलोकवाद एवं पुनर्जन्म के सिद्धान्त को स्वार्थान्धता एवं कायरता का सिद्धान्त समझता है और उसे पूँजीवाद की समर्थिका ब्राह्मण-संस्कृति का अस्त्र समझता है—'यदि पुनर्जन्म का विश्वास हाथ-पैर और मन को न बाँधे होता तो हजार मे नौ सौ निन्यानवे जनता अपने सामने परोसी थाली एक आदमी के सामने रखकर भूखों न मरती, और न भूखे और नंगे रहने वालों की कमाई से, उनके खून और हड्डियों से बड़े-बड़े प्रासाद तैयार होते।'[११९] 'सिंह सेनापति' में आचार्य बहुलाश्व पुनर्जन्मवाद को रजुल्लो की कल्पना मानते हैं, जिससे वे अपनी प्रजा को अन्धकार में रख सकते हैं।[१२०] इस प्रकार राहुल जी की परलोकवाद एवं पुनर्जन्मवाद-विषयक व्याख्या भौतिकवादी है। परलोकवाद की यह व्याख्या इस लोक से आँखें

मूँदकर किसी कल्पित लोक को बेहतर बनाने की प्रेरणा नही देती।"[२१] अतः राहुल जी परलोकवाद की व्याख्या लोक की धरती पर करते हैं। वे परलोकवाद के स्थान पर लोकवाद की स्थापना करते हैं।

(ख) दुःखवाद की मार्क्सवादी व्याख्या—राहुल जी ने बौद्ध-दर्शन के दुःखवाद की व्याख्या मार्क्सवादी-दृष्टि से की है। डॉ० सुषमा धवन के शब्दों में—"राहुल ने तथागत के दुःखवाद तथा मार्क्स के वर्गवाद मे सामंजस्य स्थापित किया है। बुद्ध जहाँ दुःखों के कारणो का विश्लेषण और उनके निवारण का उपचार धार्मिक दृष्टि से करते हैं, वहाँ मार्क्स का विवेचन तथा उपादान आर्थिक तथा वर्गवाद पर आधारित है।"[२२] 'विस्मृत यात्री' मे नरेन्द्रयश बौद्ध-सिद्धान्तो की मार्क्सवादी विवेचना प्रस्तुत करता है। दुःख-हेतु के विषय मे वह कहता है—'मनुष्यों मे सम्पत्ति की जो विषमता है, वह सबसे अधिक दुःखों का कारण है।"[२३] दुःख-निवारण के उपाय के विषय मे उसका कथन है—'धनी-गरीब का भेद मिटाकर ही संसार में मनुष्य-जाति को दुःख-सागर से उबारा जा सकता है।"[२४] इस प्रकार नरेन्द्रयश बौद्ध विचारों को मार्क्सवादी शब्दावली मे व्यक्त करता हुआ इस मत पर बल देता है कि 'अभाव के कारण होने वाले दुःख की जड़ को मैं अकेला नही काट सकता और समाज मे आर्थिक विषमता ही दुःख का मूल कारण है।"[२५] वह अहिंसावादी होते हुए भी सम्राटों एवं आततायियों के प्रति सहानुभूति दिखलाना उचित नही समझता। यह कहना कि निर्धन व्यक्ति अपने पूर्वजन्मों के कारण दुःखी है, उसे मान्य नही। इसे वह विषमता को स्थिर रखने का उपाय मानता है। वह अनुभव करता है कि शोषक अल्प हैं, शोषित बहुसंख्यक हैं। तथागत ने बहुजन-हिताय का उपदेश दिया था, इस उद्देश्य की पूर्ति बहुजन (शोषित) को उद्बुद्ध करने से ही हो सकती है।"[२६] इस प्रकार नरेन्द्रयश के द्वारा राहुल ने चार आर्य-सत्यो की मार्क्सवादी व्याख्या प्रस्तुत की है। इस उपन्यास मे बुद्धिल द्वारा भी दुखवाद की व्याख्या इसी रूप में की गई है।"[२७] 'जय यौधेय' का नायक जय भी दुःखवाद की आर्थिक दृष्टि से व्याख्या करता है।"[२८] जय की कुशाग्र बुद्धि एवं संवेदनशील हृदय सामाजिक विसंगतियों से पूर्णरूपेण अभिज्ञ है और उसका प्रबुद्ध-विवेक दुःख के मूल कारणो को समझने की क्षमता रखता है। इस प्रकार दुःखवाद एवं वर्गवाद का सामंजस्य राहुल की नई उद्भावना है।

(ग) भोगवाद का सिद्धान्त—डॉ० गोपीनाथ तिवारी के अनुसार राहुल जी 'खाओ, पियो और मौज करो' के भोगवादी सिद्धान्त के समर्थक हैं।"[२९] वे चाहते हैं कि मनुष्य संसार के सभी उपभोगों का आस्वादन करे क्योंकि संसार के सभी पदार्थ उसके उपभोग के लिए ही निर्मित हुए हैं। राहुल जी खाद्य-पदार्थों मे पक्वान्न से अधिक मांस-भक्षण का समर्थन करते हैं। 'सिंह सेनापति' में सन्थागार का सामूहिक भोजन बकसतरी के भूने मांस और गर्मागर्म शूकर मार्दव से होता है।"[३०] 'जय यौधेय' का नायक अपनी रुचि के विषय में कहता है—'लकड़ी की आग पर पूरे सूअर के मांस को हम बहुत पसंद करते थे।"[३१] 'राजस्थानी रनिवास' में राजपूत ठाकुरों एवं

ठाकुरानियों का प्रिय खाद्य भी मांस है।[४३२] इस प्रकार राहुल जी के उपन्यासों में सभी पात्रों का प्रिय खाद्य मांस है।

पेय-पदार्थों में राहुल जी ने दूध के साथ मदिरा का अधिक उल्लेख किया है। अग्रोदका में कोई घर ऐसा नहीं जहाँ मदिरा-पान न होता हो। लोग द्राक्षा और कापिशेयी सुरा का पान करते हैं। नृत्य-उत्सवों पर यौधेयों में सुरापान एक आवश्यक अंग था।[४३३] 'सिंह सेनापति' में आचार्य बहुलाश्व मदिरा-प्रेमी हैं। रोहिणी मैया सिंह का स्वागत कापिशायिनी सुरा से करती है।[४३४] अतिथि-सत्कार मदिरा के बिना अधूरा है। विभिन्न समारोहों पर तो मदिरा-पान में स्त्री-पुरुषों में प्रायः होड़ लग जाती है।[४३५] 'राजस्थानी रनिवास' में अधिकांश राजपूत ठाकुर एवं सामन्त मदिरा एवं मदिरेक्षणा के उपासक हैं। राहुल जी लिखते हैं—'राजस्थान के राजपूतों में—विशेषकर पैसे वालों में—शराब पानी से अधिक महत्त्व नहीं रखती और स्त्री-पुरुष दोनों बेरोक-टोक उसे पीते हैं।'[४३६]

राहुल जी ने यौन-सम्बन्धों का भी स्वच्छन्द चित्रण किया है। उनकी दृष्टि में स्त्री-पुरुष स्वाभाविक यौन-आकर्षणों से मुक्त नहीं हो सकता।[४३७] वे प्रेम को जीवन का स्वाभाविक रस मानते हैं।[४३८] मुक्त-प्रेम के प्रसंगों का वर्णन वे निस्संकोच करते हैं। 'सिंह सेनापति' में आचार्य बहुलाश्व के शिष्य-शिष्याएँ दिगम्बर तैरते हैं।[४३९] 'जय यौधेय' में कुटिया के भीतर लड़के और लड़कियाँ नग्न सोते हैं।[४४०] 'मधुर स्वप्न' में नग्नदेवी अनाहिता के मन्दिर की परिचारिकाएँ नग्न रहती हैं।[४४१] राहुल जी के पात्र चुम्बन और आलिंगन का निस्संकोच आदान-प्रदान करते हैं। 'सिंह सेनापति' में चुम्बन-महोत्सव मनाया जाता है।[४४२] 'मधुर स्वप्न' में राहुल जी ने भोग-साम्य अथवा सम्मिलित-पत्नी प्रथा की ओर संकेत किया है। अन्दर्जगर मज्दक का कथन है—'महान् उद्देश्य को लेकर चलने वाले नर-नारियों को सम्पत्ति से ही 'मेरा-तेरा' का सम्बन्ध नहीं हटाना होगा, बल्कि उनके लिए स्त्री में मेरा-तेरा का भाव होना भी हानिकारक है, क्योंकि स्त्री में केन्द्रित वह मेरा-तेरा का भाव फिर पुत्र-पुत्रियों में केन्द्रित हो जाएगा, फिर उनकी सन्तानों में।'[४४३] सम्मिलित-पत्नी के इस सिद्धान्त की व्याख्या राहुल जी की अपनी कल्पना है। इस मत का समर्थन लेनिन आदि मार्क्सवादियों ने भी नहीं किया। इस विचारधारा में राहुल जी का निजी स्वर अनुगुंजित हो रहा है। उपन्यासकार का विद्रोही व्यक्तित्व मार्क्सवाद की सीमाओं को लाँघ गया है। 'मधुर स्वप्न' के ये शब्द द्रष्टव्य हैं—'इसी तरह इस दुनिया से दुःखों को दूर करने के लिए मनुष्य-मात्र में समता, भोगों की समता, कामों की समता स्थापित करने का एक ही मार्ग है—मैं और मेरा का ख्याल छोड़कर विश्व को एक कुटुम्ब बना उसमें समता की स्थापना ही सारे रोगों की दवा है।'[४४४]

राहुल जी के इस भोगवादी सिद्धान्त की समालोचकों ने कटु आलोचना की है। डा० नगेन्द्र उनके पात्रों के दरबार चुम्बनों के आदान-प्रदान को आपत्तिजनक मानते हैं।[४४५] गोपीनाथ तिवारी का मानना है कि चुम्बन-आलिंगन द्वारा पाठकों की

सस्ती भावविह्वलता उभारकर लेखक पाठकों की संख्या बढ़ाने की धुन में है।'[८६] राहुल जी द्वारा निर्देशित सम्मिलित-पत्नी का सिद्धान्त भी ठीक नहीं जंचता। 'मानवता के विकास और सभ्यता के इतिहास का सूक्ष्म पर्यवेक्षण करने पर ज्ञात होता है कि जिज्ञासा, ज्ञान और एकनिष्ठा मनुष्य के उच्चतर स्वभाव के द्योतक हैं। सम्मिलित पत्नी का सिद्धान्त इन तीनों के विरुद्ध है, अतएव वे मानवीय चेतना के विकास का चरम आदर्श नहीं हो सकता।'"[८७] इन आक्षेपों का उत्तर स्वयं राहुल जी ने इन शब्दों में दिया है—'मैं आज की संकीर्ण हिन्दू-प्रवृत्ति की परवाह नहीं करता, मैं परवाह करता हूँ सत्य की।'[८८]

राहुल जी ने मानव-जीवन की स्वाभाविक आवश्यकताओं को सत्य माना है। वे खान-पान तथा यौन-सम्बन्धों के विषय में अध्यात्मवादी अथवा परम्परावादी संकीर्ण धारणाओं से मुक्त हैं। राहुल जी का यह भौतिकवादी दृष्टिकोण पाश्चात्य देशों के खान-पान एवं भोग-सम्बन्धी दृष्टिकोण से प्रेरित तथा भारतीय परम्परा एवं इतिहास से अनुमोदित है। साथ ही यह भौतिकवादी चार्वाक-दर्शन से भिन्न है, क्योंकि उपन्यासकार की दृष्टि में चार्वाक दर्शन का भोगवादी दृष्टिकोण व्यष्टिवादी है और लेखक समष्टिवादी दृष्टिकोण से भोगवाद की व्याख्या करता है—'भोग सबके सम्मिलित प्रयत्न का फल है, इसलिए अकेले भोगने का हमें कोई हक नहीं है। दुनिया को सारे भोगों से समृद्ध तभी करना सम्भव है जबकि सभी सम्मिलित प्रयत्न करें।'"[८९] इस प्रकार राहुल जी का भोगवादी दृष्टिकोण चार्वाक-दर्शन से भिन्न एवं मौलिक है एवं मार्क्सवाद से प्रभावित है। वे उस भोगवाद का समर्थन करते हैं जो मानव हृदय के अनुकूल है एवं मानव-बुद्धि द्वारा अनुमोदित है तथा जिस भोगवाद में सारे मानव सम्मिलित हों।[९०]

उपर्युक्त विवेचन के अनन्तर यह सहज कहा जा सकता है कि राहुल जी ने बौद्ध-दर्शन एवं मार्क्सवाद प्रतिपादित द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी दर्शन में समन्वय एवं तारतम्य निर्देशित करके एक क्रान्तिकारी कार्य किया है। बौद्ध दर्शन की मार्क्सवादी व्याख्याओं द्वारा उन्होंने पाठक को आधुनिक दिव्य दृष्टि प्रदान की है। मार्क्सवाद विश्व की व्याख्या के साथ विश्व को बदलना चाहता है, बौद्ध दर्शन ने भी संसार के दुःख की व्याख्या और उसके नाश के उपाय भी बताये हैं। ईश्वर तथा आत्मा की अस्वीकृति एवं सृष्टि की परिवर्तनशीलता के विषय में प्रतीत्य समुत्पाद एवं वैज्ञानिक भौतिकवाद में विशेष अन्तर नहीं। मार्क्सवाद व्यक्तिगत सम्पत्ति के नाश और व्यक्तिगत सम्पत्ति रखने के सिद्धान्त के समर्थकों के विनाश को मानवी कल्याण के लिए आवश्यक मानता है, बौद्ध-दर्शन में इस दृष्टि से भी मार्क्सवाद के निकट होने की विशेषता है। यदि एक दर्शन लाभ के विरुद्ध लड़ाई ठानता है तो दूसरा लोभ के विरुद्ध।[९१] इस प्रकार बौद्धदर्शन और मार्क्सवादी द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद में सिद्धान्त और व्यवहार—दोनों क्षेत्रों में राहुल जी ने जिस साम्य का रेखांकन किया है, वह निस्सन्देह हिन्दी में उनकी मौलिक सूझ-बूझ है। उनके उपन्यासों में दोनों ही दर्शन

बहुजनहिताय के साधक हैं। मानवता का हित ही उनका साध्य है। कहीं-कहीं राहुल जी ने दोनों दर्शनों में साम्य दर्शाते हुए अपने मौलिक विचारों की भी अभिव्यक्ति की है, यथा परलोकवाद की लौकिक व्याख्या, भोग-साम्य में सम्पत्ति के साथ-साथ नारी को भी सामूहिक सम्पत्ति मानना आदि। इस मौलिकता को 'राहुलवाद' की संज्ञा दी जा सकती है।

राहुल जी की प्रगतिशीलता— औपन्यासिक कृतियों में प्रतिपादित राहुल जी के जीवन-दर्शन एवं विचारधारा के अनन्तर उनके विचारों की प्रगतिशीलता दर्शनीय है। राहुल जी प्रगतिशील विचारक एवं प्रगतिवादी विचारधारा के प्रौढ़ विद्वान् हैं। वे अपनी कृतियों द्वारा सामन्ती शोषणचक्र हटाकर जन-जागरण, जन-स्वातंत्र्य, नारी-स्वातन्त्र्य एवं आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक एवं राजनीतिक रूढ़ियों से मुक्त होने और प्रजातांत्रिक मानवतावाद की प्रतिष्ठा करने'[५२] की प्रेरणा देते हैं। प्रगतिशील साहित्यकार के विषय में राहुल अपने एक निबन्ध में लिखते हैं—'प्रगतिशीलता जीवन के हर एक अंग ज्ञान और कर्म दोनों से सम्बन्ध रखती है और जरूरी है कि उनके प्रति प्रगतिशील साहित्यिक अपने दृष्टिकोण को साफ-साफ समझे। प्रगतिशीलता कभी अपने को अपनी पूर्वगामी संस्कृति-धारा की विरासत से महरूम नहीं कर सकती—प्रगतिशील लेखकों के बारे में कभी-कभी आक्षेप सुना जाता है कि वह नग्नता, अश्लीलता और यौन-दुराचार को अपनी लेखनी का विषय बनाते हैं। दरअसल यदि कोई प्रगतिशील लेखक ऐसा करता है, तो वह भारी गैर-जिम्मेवारी दिखलाता है और प्रगतिशील कहे जाने का अधिकारी नहीं हो सकता।'[५३] इस प्रकार राहुल जी प्रगतिशील साहित्यकार के लिए आवश्यक मानते हैं कि वह परम्परागत संस्कृति और साहित्य की अवहेलना न करे और साहित्य में अश्लीलता को स्थान न दे। परन्तु स्वयं राहुल जी ने अनेक स्थलों पर पूर्वगामी भारतीय संस्कृति के उत्तराधिकार को भुठलाया है और प्राचीन साहित्यकारों यथा कालिदास आदि को चाटुकार बतलाया है।[५४] कालिदास के प्रति उनका यह मत उनकी अप्रगतिशीलता का ही प्रतीक माना जायेगा। इसी प्रकार 'जीने के लिए' उपन्यास में मोहनलाल प्राचीन-संस्कृति को विशेष महत्त्व नहीं देता—'देश की संस्कृति, सभ्यता, इतिहास की मौके-बेमौके जिस प्रकार दुहाई दी जाती है, वह भी हमारे कार्य में बाधा डालने वाली है।'[५५]

राहुल जी के उपन्यासों में फ्रायड के यौनवाद से प्रभावित सेक्स का चित्रण भी अतिरेक से हुआ है। 'सिंह सेनापति', 'जय यौधेय' तथा 'मधुर स्वप्न' में अनेक स्थलों पर राहुल जी ने नग्न, अश्लील एवं उत्तेजक चित्र प्रस्तुत कर पाठक की वासना को उभारा है। साहित्य में नारी की स्वतन्त्रता के स्थान पर उसके नग्न चित्र का ... करना प्रगतिशीलता के अनुकूल नहीं है। इन त्रुटियों को छोड़ कर भी राहुल ... प्रगतिशील साहित्यकार हैं। उनके उपन्यासों में प्रगतिशील तत्त्वों का बाहुल्य ... प्राप्त होता है।

राहुल जी प्रगतिशील साहित्यकार का जनशक्ति में अडिग विश्वास है।[४१] और उन्होंने अपने उपन्यासों में भी जनशक्ति का आह्वान एवं उपयोग है। 'जीने के लिए' में मोहनलाल शस्त्र-प्रयोग की उपयोगिता जनहित की दृष्टि स्वीकार करता है। 'शस्त्र-प्रयोग एक विज्ञान है। उसकी एक खास व्यवस्थ उसके प्रयोग में देश की जनता की सहानुभूति और सहायता भी आवश्यक है यह तभी हो सकता है जबकि जनता समझे कि इस सफलता से उसे कुछ ि उसके जीवन की कटुता कुछ कम होगी, उसके सामने का निविड़ अन्धकार कुछ होगा।'[४२] जनशक्ति का आह्वान एवं उसका उपयोग राहुल के सभी उपन्या है। 'सिंह सेनापति', 'जय यौधेय' तथा 'बाईसवीं सदी' में जनशक्ति का महत्‍ राहुल की प्रगतिशीलता का प्रतीक है।

राहुल जी जनतन्त्रवाद के समर्थक हैं। उनके उपन्यासों में सामन्त पूँजीवाद एवं साम्राज्यवाद के दोषों का उल्लेख है, जिससे वे पाठकों की जनतन एवं मार्क्सवाद में आस्था बढ़ाना चाहते हैं। 'सिंह सेनापति', 'जय यौधेय', 'जी लिए', 'मधुर स्वप्न' आदि में राहुल की प्रगतिशीलता का यह रूप दर्शनीय है।[४]

राहुल जी प्राचीन भारतीय परम्परा से वर्तमान काल में दिशा-निर्देश भी हैं। राहुल जी ब्राह्मण-संस्कृति के विरोधी हैं, परन्तु प्राचीन भारत की स्वस्थ प रायों के नहीं। लिच्छवियों और यौधेयों की गणराज्य-प्रणाली की उपयोगित वर्णन द्वारा राहुल जी उनके आदर्शों को वर्तमान प्रजातन्त्र में अपनाने के पक्ष में इसी उद्देश्य से उन्होंने 'जय यौधेय' एवं 'सिंह सेनापति' में गणतांत्रिक प्रणाल गुण-दोषों का सिंहावलोकन किया है। वे साम्राज्यवाद की अपेक्षा गणतन्त्र शा प्रणाली के प्रबल समर्थक हैं।[४४]

राहुल जी प्रगतिशील साहित्यकार की तरह मनुष्य और उसकी सभ्यता-संस्कृ के विकासशील रूप को ग्रहण करने के पक्ष में हैं। वे ह्रासवादियों की तरह वर्तम प्रौढ़ावस्था से लौटकर अबोधता एवं असहायावस्था के प्रतीक अतीत की ओर उन्‍ नहीं होना चाहते।[४५] वे अतीत और वर्तमान के अविच्छिन्न सम्बन्ध को मानते ; भी वर्तमान में आस्था रखते हैं।[४६] आधुनिक वैज्ञानिक प्रगति को वह देश की उन्न का सबसे बड़ा बल मानते हैं।[४७] इस प्रकार राहुल जी की वर्तमान वैज्ञानिक युग आस्था उनकी प्रगतिशीलता की परिचायिका है।

राहुल जी वर्तमान भारतीय समाज के अप्रगतिशील तत्त्वों—वर्ग-विषमता, वर्ण व्यवस्था, अन्ध-रूढ़ियों का अनुसरण आदि—का भी विरोध करते हैं। सामाजिक विष मता उनकी दृष्टि में समाज के लिए अभिशाप है।[४८] जाति-भेद राष्ट्रीय-एकता ं बाधक है।[४९] अतः उनका एक प्रमुख पात्र मोहनलाल देश की स्वतन्त्रता के लि महत्त्वपूर्ण कार्य की ओर निर्देश करता है—'वह ठोस काम यही है कि देश के भीत धर्म और जाति-भेद ने जितनी दीवारें खड़ी की हैं ...

स्थल पर वह कहता है—'भारत की राष्ट्रीय-एकता जात-पाँत और मज़हबों की चिता पर होगी।'[११]

राहुल अपने उपन्यासों में नारी-स्वातन्त्र्य के प्रबल समर्थक हैं और साथ ही नारी को उत्तरदायित्वपूर्ण जीवन व्यतीत करने की प्रेरणा देते हैं। साम्राज्यवादी एवं सामन्तवादी सभ्यता में नारी की स्वतन्त्रता का अपहरण हुआ और राहुल जी इसलिए साम्राज्यवाद के प्रति घृणा की भावना प्रकट करते हैं। अन्त.पुरों को वे कामशास्त्र की खुली पाठशाला बतलाते हैं[१७] जिसमें नारियों का जीवन अमानुषिक एवं नारकीय बना हुआ है।[१८] 'राजस्थानी रनिवास' में घुट-घुट कर मरती सामन्ती समाज की नारी के दयनीय चित्र राहुल जी ने प्रस्तुत किये हैं—'सभी अन्त.पुरों में एक ही तरह की हवा, एक ही तरह की आह और कराह है। सभी अन्त.पुरिकाओं का एक ही सा दम घुटना, अमानुषिक, अप्राकृतिक अत्याचार और दुर्व्यवहारों का शिकार होना देखा जाता है, इसीलिए तो सदियों तक वह चुपचाप सारे अत्याचारों को बर्दाश्त करती आ रही हैं।'[१९] इसके विपरीत वे गणराज्यों में नारी-जीवन की स्वतन्त्रता एवं स्वच्छन्दता को देखते हैं। यौधेयगण में नर और नारी का भेद नहीं। पुरुष की तरह वह स्वच्छन्द है, उसका अपना व्यक्तित्व एवं अस्तित्व है। 'सिंह सेनापति' में कपिल नारी को 'उन्मुक्त देवी' कहता है।[२०] नारी-स्वातन्त्र्य के साथ नारी के उत्तरदायित्वों की ओर भी राहुल संकेत करते हैं। 'जीने के लिए' में जेनी तथा 'सिंह सेनापति' की रोहिणी कर्त्तव्यपरायणा स्त्रियाँ हैं, केवल स्वच्छन्द रमणियाँ नहीं। जेनी देवराज से अपने प्रेम के विषय में कहती है—'हम वह हलाहल प्रेम नहीं चाहते। हम उस प्रेम को चाहते हैं जो दुरारोह घाटियों पर चढने वाले दो साथियों को हिम्मत न हारने दे, थकावट से चूर-चूर हुए उनके शरीर में स्फूर्ति पैदा करे, भारी-से-भारी खतरे और अन्तिम उत्सर्ग के लिए उनके दिलों को मजबूत करे। यदि तुम्हें श्रमजीवियों के स्वतन्त्र युद्ध में जाना होगा तो जेनी रायफल हाथ में लिए कन्धे-से-कन्धा मिलाकर तुम्हारे साथ जायेगी।'[२१] उपन्यास में वर्णित जेनी का देवराज से स्वच्छन्द प्रेम केवल वासना नहीं, वह कर्त्तव्य और दायित्वों का भी प्रतीक है।

राहुल के उपन्यासों में अपने अधिकारों के लिए संघर्ष एवं आदर्शों के लिए बलिदान का चित्रण है। 'जीने के लिए' में देवराज और जेनी इसी संघर्ष एवं बलिदान के प्रतीक हैं। जेनी अपने अंतिम पत्र में देवराज को लिखती है—'मृत्यु! कितना भयंकर और अवाञ्छनीय शब्द है। लेकिन मेरे लिए उस में वह भयंकरता नहीं। 'जीने के लिए हम मृत्यु का आलिंगन करते हैं। मृत्यु के लिए तैयार हुए बिना जीना असम्भव है। ...जो जीना मृत्यु के मोल न बिकता हो, वह जीना किस काम का?'[२२] इसी जीने के लिए अथवा आदर्शों एवं कर्त्तव्यों के पालन के लिए मोहनलाल, देवराज तथा जेनी संघर्ष एवं बलिदान का मार्ग अपनाते हैं। 'मधुर स्वप्न' में साम्य-स्थापना के लिए मज्दकियों को संघर्ष करना पड़ता है। 'जय यौधेय' में गणराज्य एवं साम्राज्यवादी शासन-पद्धति का संघर्ष है और इस संघर्ष का नायक जय अपने प्राणों की

आहुति देता है। इस प्रकार राहुल जी के उपन्यासो के पात्र कर्त्तव्यों के लिए संघर्ष-शील हैं।

राहुल जी के उपन्यासों मे प्रतिपादित विचारधारा—पूँजीवाद के स्थान पर साम्य-वाद तथा साम्राज्यवाद के स्थान पर गणतन्त्रवाद की स्थापना, धार्मिक अन्धविश्वासो एवं परम्पराओ का विरोध, वर्तमान मे आस्था, वैज्ञानिक प्रगति में विश्वास, नारी की स्वच्छन्दता एवं कर्त्तव्यपरायणता, सामाजिक विषमता पर प्रहार एवं स्वस्थ प्राचीन भारतीय परम्पराओं का समर्थन—राहुल जी को प्रगतिशील उपन्यासकार बना देती है। मार्क्सवादी उपन्यासकार सामाजिक क्रांति को प्रेरणा देना और उसका दिग्दर्शक बनना अपना धर्म स्वीकारता है। हावर्ड फास्ट ने जन-विप्लव मे सहयोग देना उप-न्यासकार का अनिषेध्य कर्त्तव्य माना है।'[१०३] राहुल भी इस क्रांति के समर्थक प्रगति-शील कलाकार हैं।

भाषा-शैली

राहुल जी की भाषा-शैली मूलतः वर्णनात्मक है। 'जय यौधेय' तथा 'सिंह सेनापति' आत्मकथात्मक शैली में रचित उपन्यास हैं, जिनमे संवादात्मक शैली का भी प्रचुर प्रयोग हुआ है, पर अधिकांशतः उन्होने वर्णनात्मक शैली का ही प्रयोग किया है। डॉ० गणेशन के शब्दो मे—'राहुल जी की विकास-शैली मूल रूप मे सदा विवरणा-त्मक ही रही है, यद्यपि उसके अन्तर्गत उन्होंने फ्लैश-बैक, दृश्य-विधान आदि पर भी प्रयोग किये हैं।'[१०४] राहुल की वर्णनात्मक शैली प्रकृति-वर्णन, भाव-वर्णन, वस्तु-वर्णन आदि मे दर्शनीय है। 'जीने के लिए' उपन्यास की वर्णनात्मक शैली सरल, रोचक, प्रवाहपूर्ण एवं प्रभावोत्पादक है। सामान्यतः वर्णनात्मक शैली में प्रभाव और चमत्कार का अभाव होता है, परन्तु इस उपन्यास की शैली में यह न्यूनता नही। सजीव कथोप-कथनो, देश एवं पात्रानुकूल भाषा, मार्मिक प्रसगों एवं रोचक वर्णनों से 'जीने के लिए' की शैली सुन्दर बन पड़ी है। वर्णनात्मक शैली के बीच आलकारिक एवं हास्य-व्यग्या-त्मक शैली के भी सुन्दर उदाहरण इस उपन्यास मे प्राप्त होते हैं।[१०५] समग्रतः राहुल की लेखन-शैली वर्णनात्मक है। घटना, पात्र, वातावरण सर्वत्र इतिवृत्तात्मकता एवं वर्णनों की प्रधानता है।

राहुल जी की भाषा मे एकरसता नही है। कही-कही वह संस्कृतनिष्ठ रूप धारण कर लेती है तो कही अपने सहज एव सरल रूप में प्रस्तुत है। हिन्दी मुहावरो, लोकोक्तियो एवं सूक्तियो का उसमें प्रचुर प्रयोग है। डॉ० सरोजिनी शर्मा उनके ऐतिहासिक उपन्यासो की भाषा के विषय में लिखती हैं—'राहुल सांकृत्यायन ने ऐति-हासिक उपन्यासो में विशिष्ट भाषा-शैली का परिचय दिया है। उन्होंने उपन्यासों में स्थानीय रंग की सृष्टि के हेतु भारत की ही संस्कृति नही भारतवर्ष के बाहर की संस्कृति, जन-जीवन की भाषा के शब्द ग्रहण किये हैं..............जिससे स्थानीय वाता-वरण मुखर हो उठता है।'[१०६] संक्षेपतः राहुल की शैली आत्मकथात्मक एवं वर्णनात्मक है। उनकी भाषा प्रधान रूप से सरल, सहज, मुहावरेदार तथा सुबोध है। प्राचीन

वातावरण को साकार करने के लिए उन्होंने संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग 'दिवोदास', 'जय यौधेय' तथा 'सिंह सेनापति' में किया है, जिसमें उन्हें पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई है। वस्तुतः राहुल की भाषा सर्वत्र स्वाभाविक एवं सहज है, कृत्रिमता उसमें नहीं।

राहुल जी के औपन्यासिक शिल्प की विवेचना के अनन्तर निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि राहुल जी सामाजिक-राजनीतिक उपन्यासकार की अपेक्षा ऐतिहासिक उपन्यासकार के रूप में अधिक सफल रहे हैं। अतीत की विस्मृतियों को स्मृतिपट पर विकीर्ण करने वाले राहुल ऐतिहासिक प्रतिभा के धनी हैं और उन्होंने ऐतिहासिक उपन्यासों के वर्ण्य के रूप में उन विषयों को ग्रहण किया है, जिनकी ओर अभी तक अन्य उपन्यासकारों का ध्यान नहीं गया था। 'दिवोदास', 'सिंह सेनापति', 'जय यौधेय' तथा 'मधुर स्वप्न' विषय की मौलिकता एवं नवीनता को लिये हुए हैं। राहुल का ऐतिहासिक तथ्यों के प्रति ईमानदारी का आग्रह भी प्रशंसनीय है। राहुल की औपन्यासिक कला की अनेक न्यूनताएँ हैं, यथा सुसंगठित कथानक का अभाव, पात्रों के बहिरंग चित्रण की प्रचुरता, अतिशय सोद्देश्यता आदि, जिससे उनके उपन्यास उच्चकोटि के कलात्मक उपन्यास नहीं बन सके। फिर भी उनकी औपन्यासिक कृतियों की अपनी विशेषताएँ हैं। विषय-वस्तु की मौलिकता, वस्तु-विकास के लिए यात्रा-प्रसंगों की नियोजना, इतिहास और कल्पना का सुसामंजस्य, व्यक्तित्व के अनुकूल पात्र-सृष्टि, पात्रानुकूल संवाद-योजना तथा भाषा-शैली, आत्मकथात्मक एवं वर्णनात्मक शैली के सफल प्रयोग, वातावरण-अंकन की अद्भुत क्षमता, मार्क्सवाद तथा बौद्ध-दर्शन का समन्वय तथा प्रगतिशील दृष्टिकोण—राहुल के उपन्यासों में दर्शनीय हैं। वस्तुतः राहुल जी ने ऐतिहासिक उपन्यास-लेखन की शैली का मार्ग-दर्शन किया है, इसमें किंचित् भी सदेह नहीं। 'जय यौधेय' तथा 'सिंह सेनापति' राहुल के दो सशक्त उपन्यास हैं, जिनके वर्ण्य-विषय एवं शैली ने हिंदी के ऐतिहासिक उपन्यासकारों को प्रभावित किया है।

सन्दर्भ

१. राहुल सांकृत्यायन का कथा-साहित्य, पृ० ७७।
२. वही, पृ० ५८, ५६।
३. हिन्दी में उच्चतर साहित्य-सं० राजबली पाण्डेय, पृ० ४४८।
४. दृष्टिकोण (जुलाई-सितम्बर, १९५२), पृ० ३।
५. उपन्यास का रूप-विधान, पृ० ३७।
६. मिथक और स्वप्न कामायनी की मनस्सौन्दर्य सामाजिक भूमिका, पृ० १६७।
७. माडर्न पोलिटिकल फिलोसोफीज-लुई वासरमैन, पृ० ५७।
८. दि इंग्लिश यूतोपिया-ए० एल० मार्टन, पृ० ११।
९. आइडियोलोजी एण्ड यूटोपिया-मानहाइम, पृ० १७३-१७४ के आधार पर।
१० बाईसवीं सदी, दो शब्द।
११. यूतोपिया-ओल्ड एण्ड न्यू-हेनरी रोस, पृ० २१७।
१२. बाईसवीं सदी, पृ० १११।
१३ हिन्दी उपन्यास : समाजशास्त्रीय विवेचन, पृ० ३९६।
१४. भागो नहीं दुनिया को बदलो, पृ० ४।
१५. हिन्दी उपन्यास का अध्ययन-डॉ० गणेशन, पृ० ८६।
१६. हिन्दी उपन्यास : सिद्धान्त और समीक्षा-डॉ० मक्खनलाल शर्मा, पृ० १२६।
१७. हिन्दी साहित्य-कोश, पृ० १४६।
१८. समीक्षा के सिद्धान्त-डॉ० सत्येन्द्र, पृ० १५४।
१९ समालोचक (फरवरी, १९५९), पृ० १६२।
२०. हिन्दी उपन्यास : सिद्धान्त और समीक्षा, पृ० १२९।
२१ सत्यं शिवं सुन्दरम् (प्रथम भाग)-रामानन्द तिवारी, पृ० ३६५।
२२. हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद-डॉ० त्रिभुवनसिंह, पृ० १४२।
२३. आलोचना (उपन्यास-विशेषांक), पृ० १७०-१७१।
२४. वही।
२५ वही, पृ० ७२।
२६. विस्मृत यात्री (दो शब्द), पृ० १।
२७. दृष्टिकोण (जुलाई-सितम्बर, १९५२), पृ० ४।
२८. आलोचना (जुलाई, १९५२), पृ० १०१।
२९ हिन्दी उपन्यास : एक सर्वेक्षण, पृ० १६८।
३०. वही।
३१. सिंह सेनापति, दो शब्द।
३२. जय यौधेय-(प्राक्कथन), पृ० १, २।
३३. मधुर स्वप्न, परिशिष्ट।
३४. विस्मृत यात्री (दो शब्द), पृ० १।
३५. साहित्य-सन्देश (आधुनिक उपन्यास अंक), पृ० ८६।
३६. ज्ञानोदय (नवम्बर, १९६०), पृ० ५।
३७. साहित्य दर्शन-वचोरानी गुर्टू, पृ० ३१३, ३१८।
३८ हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष, पृ० ११६, ११०।

३९. दिवोदास, दो शब्द।
४०. ऋग्वेदिक आर्य, पृ० ३७६, ३७८, ३६८, ३४८, ३३४. ३८४।
४१. संस्कृत काव्यधारा, पृ० ५।
४२. वैदिक इण्डेक्स (भाग १) अनुवादक रामकुमार राय पृ० ६१७।
४३. हिन्दी ऋग्वेद-प० रामगोविन्द त्रिवेदी, पृ० ६६६।
४४ ऋग्वेदिक इण्डिया (भाग १)-अविनाशचन्द्र दास, पृ० १५१-१८०।
४५. भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति का विकास-बी० एन० लूनिया, पृ० ५१।
४६. ऋग्वेदिक आर्य, पृ० ३४।
४७. हिन्दू सभ्यता-राधाकुमुद मुकर्जी, पृ० ७३।
४८. ऋग्वेदिक आर्य, पृ० २६।
४९. वैदिक देवशास्त्र-अनुवादक डॉ० सूर्यकान्त, पृ० १२५।
५०. ऋग्वेदिक इण्डिया (भाग १), पृ० १५१।
५१. हिन्दू सभ्यता, पृ० ८१।
५२. ऋग्वेदिक इण्डिया (भाग १), पृ० ११८।
५३. ऋग्वेदिक आर्य, पृ० २७२।
५४. वही।
५५. दिवोदास, पृ० २४-२७।
५६. वही, पृ० ४६-५०।
५७. वही, पृ० ७६-७८।
५८. वही, पृ० ७४-७५।
५९. वही, पृ० ७६-८६।
६०. वही, पृ० ११८-१२३।
६१. सिंह सेनापति, भूमिका।
६२. वही।
६३. वही, विषय-प्रवेश।
६४. वही, पृ० ११।
६५. वही, पृ० १३।
६६. विस्मृत यात्री, पृ० ४।
६७. सिंह सेनापति (द्वितीय संस्करण), नागार्जुन की ओर से।
६८. विचार और विवेचन, पृ० १२७-१२८।
६९. सम क्षत्रिय ट्राइब्स ऑफ एन्शीयंट इण्डिया, पृ० ७३-७४।
७०. डिक्शनरी ऑफ पाली प्रापर नेम्ज (द्वितीय खण्ड), पृ० १६६५।
७१. महामानव बुद्ध, पृ० ७६-८०।
७२. प्राचीन भारत, पृ० ४६।
७३ प्राचीन भारत का इतिहास, पृ० ९७-९८।
७४. प्राचीन भारत, पृ० ४३।
७५. प्राचीन भारत का इतिहास, पृ० ९९।
७६. परिषद् पत्रिका (अप्रेल, १९६६ ई०), पृ० ५६।
७७. प्राचीन भारत का इतिहास, पृ० ७२।
७८. प्राचीन भारत-राधाकुमुद मुकर्जी, पृ० ७५।
७९. बौद्ध दर्शन-मीमांसा-बलदेव उपाध्याय, पृ० १८।

८०. प्राचीन भारतीय परम्परा और इतिहास-डॉ० रांगेय राघव, पृ० ४२५, ४२७।
८१. कारपोरेट लाइफ इन एन्शीयंट इण्डिया, पृ० २२३ से २३३।
८२. दि ऑक्सफोर्ड हिस्टरी ऑफ इण्डिया-वी० ए० स्मिथ, पृ० ७२-७४।
८३. प्राचीन भारत का इतिहास, पृ० ६६ तथा १०५।
८४. प्राचीन भारतीय परम्परा और इतिहास, पृ० ४२७-४२८।
८५. बौद्ध धर्म और बिहार-हवलदार त्रिपाठी, पृ० २४, २५, ८४।
८६. गुप्त साम्राज्य का इतिहास (प्रथम खण्ड)-डॉ० वासुदेव उपाध्याय, पृ० ५६-५७।
८७. दि वाकाटक-गुप्त एज, पृ० २८, २६, ३२, ३३।
८८. विक्रमादित्य-डॉ० राजबली पाण्डेय, पृ० ८४।
८९. अन्धकारयुगीन भारत-डॉ० काशीप्रसाद जायसवाल, पृ० १२७।
९०. दि गुप्ता एम्पायर-डॉ० राधाकुमुद मुकर्जी, पृ० ४५, ४७, ४८।
९१. जय यौधेय (प्राक्कथन), पृ० १।
९२. प्राचीन भारत का इतिहास, पृ० १८८।
९३. वही, पृ० १८६।
९४. गुप्त साम्राज्य का इतिहास, पृ० ७८।
९५. वही, पृ० ४२।
९६. दि एज ऑफ इम्पीरियल गुप्ताज, पृ० २६।
९७. वही, पृ० ३३।
९८. गुप्त साम्राज्य का इतिहास (प्रथम भाग), पृ० ११८।
९९. वही, पृ० ११६-४०।
१००. वही, पृ० १४३।
१०१. जय यौधेय (प्राक्कथन), पृ० २।
१०२. भारत का प्राचीन इतिहास, पृ० २७६-२८०।
१०३. दि गुप्ता एम्पायर, पृ० ५३-५४।
१०४. जय यौधेय (प्राक्कथन), पृ० १।
१०५. गुप्त साम्राज्य का इतिहास (भाग २), पृ० १०२-१०३।
१०६. प्राचीन भारत का इतिहास, पृ० २०६।
१०७. प्राचीन भारत का इतिहास-डॉ० एन० एन० घोष, पृ० १०५।
१०८. एन एडवान्स्ड हिस्ट्री ऑफ इण्डिया (पार्ट १), पृ० १४६।
१०९. गुप्त साम्राज्य का इतिहास (भाग २), पृ० १०२-१०३।
११०. कालिदास का भारत (भाग १)-भगवतशरण उपाध्याय, पृ० २६-२७।
१११. कालिदास का भारत (भाग २), पृ० १, ६, ६।
११२. जय यौधेय, पृ० ३३८।
११३. गुप्त साम्राज्य का इतिहास (भाग १), पृ० ६२।
११४. भारत की संस्कृति और कला, पृ० १३१।
११५. हूणा और बाटे-डॉ० हरिजी जिन्दल, पृ० ३७।
११६. जय यौधेय (प्राक्कथन) पृ० ३।
११७. ईरान-आर० घिर्शमैन, पृ० १०१।
११८. इनसाइक्लोपीडिया ऑफ रिलीजन एण्ड एथिक्स (भाग ८), पृ० १००।
११९. ईरान-आर० घिर्शमैन, पृ० १०२।
१२०. दीपवंस-टर्नर, पृ० ४८।

१२१. ईरान-आर० घिर्शमैन, पृ० ३०२।
१२२. इनसाइक्लोपीडिया ऑफ़ रिलीजन एण्ड एथिक्स, पृ० ५०८-५०६।
१२३. ए हिस्ट्री ऑफ़ परशिया (खण्ड प्रथम)-सर परसी स्काईस,
पृ० ४४१, ४४३, ४४६, ४५०।
१२४. वही।
१२५. ईरान, पृ० ३०१, ३०२।
१२६. दि इनसाइक्लोपीडिया अमेरिकना (खण्ड १८), पृ० ४७२।
१२७. ईरान-आर० घिर्शमैन, पृ० ३०२।
१२८. ईरान-राहुल, पृ० ४५।
१२९. ए हिस्ट्री ऑफ़ परशिया-(प्रथम खण्ड), पृ० ४४६-४५०।
१३०. ईरान, पृ० ४६।
१३१. हिन्दी के स्वच्छन्दतावादी उपन्यास, पृ० ४७५।
१३२ विस्मृत यात्री (दो शब्द), पृ० १।
१३३ अतीत से वर्तमान-राहुल, पृ० ३ से १४।
१३४. वही, पृ० १०।
१३५. वही, पृ० १४।
१३६. इण्डिया एण्ड चाइना-प्रबोधचन्द्र बागची, पृ० २१६।
१३७. भारत की संस्कृति और कला-राधाकमल मुकर्जी, पृ० २११-२१२।
१३८. चीनी बौद्ध-धर्म का इतिहास-डॉ० चाऊ सियांग कुआंग, पृ० १२७।
१३९ आज का हिन्दी साहित्य-प्रकाशचन्द्र गुप्त, पृ० ७६।
१४०. हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास-रामबहोरी शुक्ल तथा भगीरथ मिश्र, पृ० २५१।
१४१. विचार और विवेचन, पृ० १२७।
१४२ राजस्थानी इतिहास, प्राक्कथन।
१४३. हिन्दी उपन्यास में कथाशिल्प का विकास, पृ ३३१।
१४४. गुप्ता और तारे, पृ० ५७।
१४५. विचार और विवेचन, पृ० १२६।
१४६ हिन्दी उपन्यास-सुषमा धवन, पृ० २७५-२७६।
१४७. नींव के लिए, पृ० ३३२।
१४८. ऐतिहासिक उपन्यास और उपन्यासकार, पृ० १४१।
१४९. आलोचना (जुलाई, १९५२), पृ० १०२।
१५०. हिन्दी के स्वच्छन्दतावादी उपन्यास, पृ० ४७७।
१५१. विचार और विवेचन, पृ० १२७।
१५२. हिन्दी उपन्यास में कथा-शिल्प का विकास, पृ० ३३२।
१५३. हिन्दी उपन्यास : एक सर्वेक्षण, पृ० ११८।
१५४ ऐतिहासिक उपन्यास और उपन्यासकार, पृ० १४३।
१५५. नव यौवन, पृ० ३०-३१।
१५६. वही, पृ० १०६ से ११३।
१५७. वही, पृ० २०५-२०७।
१५८. नींव के लिए, पृ० ३३३।
१५९. ऐतिहासिक उपन्यासों के कथानक और [illegible], पृ० ४६।
१६०. आलोचना (जुलाई, १९५२), पृ० १०४।

उपन्या

१६१. मधुर स्वप्न, पृ० ८, ६, १०, ८४, ८५, ७१, १४४, १४१, १२७, २३३, २३४।
१६२. जय यौधेय, पृ० १-५।
१६३. सिंह सेनापति, पृ० २६-३३।
१६४. आलोचना (दिसम्बर, १९६६), पृ० १२५।
१६५. विचार और विवेचन, पृ० १२८।
१६६. आज का हिन्दी साहित्य, पृ० ७६।
१६७. जो लिखना पड़ा, पृ० १०५।
१६८. जय यौधेय, पृ० ११-१७।
१६९. वही, पृ० ७४-७५।
१७०. वही, पृ० २६१-२६४।
१७१. विचार और विवेचन, पृ० १३०।
१७२. आधुनिक हिन्दी कथा-साहित्य और मनोविज्ञान, पृ० ३४५।
१७३. कुछ विचार मुन्शी प्रेमचन्द, पृ० ३८।
१७४. दि पोर्टेबल हेनरी जेम्स-हेनरी जेम्स, पृ० ३६३।
१७५. बीसवीं शताब्दी हिन्दी साहित्य . नये सन्दर्भ-लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, पृ० २५३।
१७६. राइटिंग फ़ार यंग पीउपल-एम० एल० रॉबिन्सन, पृ० ११।
१७७. एन इण्ट्रोडक्शन टू दि स्टडी ऑफ़ लिटरेचर, पृ० १४५।
१७८. राहुल सांकृत्यायन का कथा-साहित्य, पृ० १३१।
१७९. दि हिस्टारीकल नॉवल्ज-जार्ज ल्यू कास, पृ० ३०१।
१८० वही, पृ० ३०३।
१८१. आलोचना (दिसम्बर, १९६६), पृ० १२६।
१८२. जीने के लिए, पृ० १५३।
१८३. वही, पृ० १७०।
१८४. वही, पृ० २६०।
१८५ हिन्दी उपन्यास एक सर्वेक्षण, पृ० १७१।
१८६. हिन्दी उपन्यास, पृ० ३७५।
१८७. हिन्दी उपन्यास का उद्भव और विकास, पृ० ३४०।
१८८. दि हिस्टारीकल नॉवल्ज, पृ० ३८।
१८९. विचार और विवेचन, पृ० १२५।
१९०. स्काट नेवर शोज दि ऐवोल्यूशन ऑफ़ सच ए परसनेलिटी। इनस्टेड हा आलवेज
प्रेजन्टस अस विद दि परसनेलिटी कम्पलीट-दि हिस्टारिकल नॉवल्ज, पृ० ३८।
१९१. दि स्ट्रक्चर ऑफ़ दि नॉवल-एडविन म्यूर, पृ० २४-२५।
१९२. कन्तुनन-प्रभाकर माचवे, पृ० १३३।
१९३. विचार और विवेचन, पृ० १२६।
१९४. आधुनिक हिन्दी कथा-साहित्य और चरित्र-विकास-डॉ० बेचन, पृ ६४।
१९५. हिन्दी उपन्यास में चरित्र-चित्रण का विकास, पृ० ३०७।
१९६. दिवोदास, पृ० १३।
१९७. मधुर स्वप्न, पृ० २१।
१९८. वही, पृ० २१०।
१९९. सिंह सेनापति, पृ० ३४।
२००. दिवोदास, पृ० १४५।
२०१. कुछ विचार, पृ० ४८।

२४३. जीने के लिए, पृ० २२४-२२५।
२४४. वाङ्मय-विमर्श-आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ० ६४।
२४५. आलोचना (जनवरी, १९६४), पृ० ११७-११८।
२४६. हिन्दी कथा-साहित्य-पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, पृ० २३०।
२४७ ऐतिहासिक उपन्यास और उपन्यासकार-डॉ० गोपीनाथ तिवारी, पृ० १५८
२४८. विचार और विवेचन, पृ० १३१।
२४९. आलोचना (अंक ३६), पृ० ७२।
२५० विस्मृत यात्री, पृ० ४-५।
२५१ वही, पृ० ५, ४३।
२५२. जय यौधेय, पृ० ७८, ९८।
२५३. साहित्य-दर्शन, पृ० ३१८।
२५४. आज का हिन्दी साहित्य, पृ० ७६।
२५५. दिवोदास, पृ० २।
२५६. वही।
२५७. वही, पृ० ६६।
२५८ सिंह सेनापति, पृ० ६२, ९६, १४०, १४३।
२५९ जय यौधेय, पृ० ५१।
२६०. वही, पृ० २०।
२६१. साहित्य-दर्शन, पृ० ३१९।
२६२. मधुर स्वप्न, पृ० ६८, १६४।
२६३. विस्मृत यात्री, पृ० २०२।
२६४. वही, पृ० ३८१।
२६५. जीने के लिए, पृ० ५४, ८९, १०४-१३७, १५३, १७०, २११, २१२, २३४, २६०।
२६६. भागो नहीं दुनिया को बदलो, पृ० ४, ६, २१८, २८८।
२६७ दिवोदास, पृ० ३, ४, ५।
२६८. वही, पृ० २२, ३०, ४५, ९१, ११०, ११२।
२६९. ऋग्वैदिक आर्य, पृ० १२७
२७०. दिवोदास, पृ० १३।
२७१ सिंह सेनापति, पृ० २४-२५।
२७२. वही, पृ० १५-१६।
२७३. वही, पृ० ९६-९७।
२७४. जय यौधेय, पृ० १३।
२७५. वही, पृ० २३।
२७६ विस्मृत यात्री, पृ० ५।
२७७ वही, पृ० ७, १५, २१, २७।
२७८. वही, पृ० १४-१५।
२७९. मधुर स्वप्न, पृ० ९।
२८० वही, पृ० ४२-४३।
२८१ वही, पृ० १३८।
२८२. वही, पृ० २१३-२१४।
२८३. जीने के लिए, पृ० ३९-४०।

२८४ जीने के लिए, पृ० २०, २१।
२८५. वही, पृ० २०, २२।
२८६ वही, पृ० २३२।
२८७ दिवोदास, पृ० ५२, ७६।
२८८ वही, पृ० ६७।
२८९ *सिंह सेनापति*, पृ० १७।
२९०. वही, पृ० ३३।
२९१. जय यौधेय, पृ० ३१५।
२९२. मधुर स्वप्न, पृ० ८, १०।
२९३. विस्मृत यात्री, पृ० ३६३।
२९४. जीने के लिये, पृ० ८, २६।
२९५. वही, पृ० ४३।
२९६. जय यौधेय, पृ० ४१२।
२९७. विस्मृत यात्री, पृ० ३, ६, १३ तथा जय यौधेय, पृ० ६३।
२९८. जय यौधेय, पृ० ३४ तथा सिंह सेनापति, पृ० २४ तथा बाईसवीं सदी, पृ० ३।
२९९. मधुर स्वप्न, पृ० ११५।
३००. वही, पृ० ५४।
३०१. वही, पृ० २८३।
३०२ जय यौधेय, पृ० ३१२।
३०३. विस्मृत यात्री, पृ० ६०।
३०४. मधुर स्वप्न, पृ० २४२।
३०५. दिवोदास, पृ० १८।
३०६. मधुर स्वप्न, पृ० १।
३०७. वही, पृ० ११।
३०८. वही, पृ० ११५।
३०९. वही, पृ० २८३।
३१०. वही, पृ० १०२।
३११ विस्मृत यात्री, पृ० ३०३।
३१२. जय यौधेय, पृ० ६१, ६२।
३१३. सिंह सेनापति, पृ० २१४।
३१४. द्रष्टव्य—'दिवोदास' में जल-प्लावन का वर्णन, पृ० ६४।
३१५. द्रष्टव्य—'विस्मृत यात्री' में चीन के निकटवर्ती मरुस्थल का वर्णन, पृ० ३३८।
३१६. राहुल सांकृत्यायन का कथा-साहित्य, पृ० ३३८।
३१७. दि आर्ट ऑफ़ रियलिज्म इन लिटरेरी क्रिटिसिज्म इन अमेरिका,
—हेनरी जेम्स एस्सेज सम्पादक एलबर्ट डी० वन नास्टरेण्ड, पृ० १४१।
३१८. उपन्यास और लोकजीवन-रैल्फ फॉक्स (भूमिका रामविलास शर्मा), पृ० २।
३१९ साहित्य का श्रेय और प्रेय, पृ० १६३।
३२०. ए नार्दर्न ग्लान नावल्स—डब्ल्यू० एल० जार्ज, पृ० ४।
३२१ हंस (अक्तूबर, १९५७), पृ० ६०।
३२२ अवन्तिका (अप्रैल १९६२), पृ० १६।

३२४. आलोचना (जुलाई, १९५२), पृ० १०१।
३२५. विचार और विवेचन, १३०।
३२६ हिन्दी उपन्यास : समाजशास्त्रीय अध्ययन—डॉ० चण्डीप्रसाद जोशी, पृ० ३६८।
३२७. स्वतन्त्रता और साहित्य, पृ० २१२।
३२८. ऐतिहासिक उपन्यासों में कल्पना और सत्य, पृ० ८४।
३२९ सन्तुलन-प्रभाकर माचवे, पृ० ३७।
३३०. आज का हिन्दी साहित्य, पृ० ८३।
३३१. हिन्दी उपन्यास-सुषमा धवन, पृ० ३६५।
३३२ हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास-डॉ० गणपतिचन्द्र गुप्त, पृ० ६२५।
३३३ दिवोदास, पृ० २०।
३३४ वही, पृ० ११९।
३३५. आज का हिन्दी साहित्य, पृ० ८३।
३३६ मधुर स्वप्न, पृ० २९९।
३३७ मार्क्सवाद और साहित्य-महेन्द्रचन्द्र राय, पृ० ५४।
३३८ जय यौधेय, पृ० १७४।
३३९ विस्मृत यात्री, पृ० ३८५।
३४०. वही, पृ० ३७२।
३४१. मधुर स्वप्न, पृ० १९-२०।
३४२. वही, पृ० २६५।
३४३. विस्मृत यात्री, पृ० ३७०, ३७३, ३७५।
३४४. मार्क्सवाद यशपाल, पृ० ५३।
३४५ मधुर स्वप्न, पृ० १८३।
३४६. वैज्ञानिक भौतिकवाद-राहुल, पृ० ७६।
३४७ जय यौधेय, पृ० ११२।
३४८. मधुर स्वप्न, पृ० १८४।
३४९. वही, पृ० १८५।
३५०. जय यौधेय, पृ० ११२-११३।
३५१. वही, पृ० ११०-१११।
३५२ वही, पृ० २०७।
३५३ वही, पृ० १६२।
३५४. विचार और विवेचन, पृ० १३०।
३५५. बाईसवीं सदी, पृ० १०।
३५६. वही, पृ० ६, ४७, ३६, २७, १२६, १२७।
३५७ वही, पृ० १२७।
३५८. सिंह सेनापति, पृ० २३।
३५९ वही, पृ० ३२।
३६०. वही, पृ० ४१।
३६१. वही, पृ० ७१ से ७४।
३६२. सिंह सेनापति, पृ० ७६।
३६३. वही, पृ० १३७, २३८, १८८, १८६, १५७।
३६४ वही, पृ० १५७।

३६५. जय यौधेय, पृ० २८० ।
३६६. शादी, पृ० १३८ ।
३६७. हिन्दी के स्वच्छन्दतावादी उपन्यास, पृ० ४७५ ।
३६८. मधुर स्वप्न, पृ० ५१ ।
३६९ वही, पृ० ११६ ।
३७०. वही ।
३७१. वही, पृ० १२८ ।
३७२. वही, पृ० १३७ ।
३७३. वही, पृ० १३८ ।
३७४. वही, पृ० १४० ।
३७५. जीने के लिए, पृ० १५३, १५१, १७० ।
३७६. भागो नहीं दुनिया को बदलो, पृ० ७३ ।
३७७. दृष्टिकोण (जुलाई-सितम्बर, १९५२), पृ० ४ ।
३७८. बौद्ध दर्शन तथा अन्य भारतीय दर्शन-भरतसिंह उपाध्याय, पृ० ३७४ ।
३७९. भारतीय दर्शन वाचस्पति गैरोला, पृ० १८८ ।
३८०. दर्शन-दिग्दर्शन, पृ० ५१४ ।
३८१. विस्मृत यात्री, पृ० १९९ ।
३८२. भारतीय-दर्शन, पृ० १९० ।
३८३. बौद्ध-दर्शन, पृ० ३९ ।
३८४. सिंह सेनापति, पृ० २७३ ।
३८५. वही ।
३८६. विस्मृत यात्री, पृ० ९५ ।
३८७. भारतीय दर्शन-डॉ० राधाकृष्णन्, पृ० ४१८-४१९ ।
३८८ बौद्ध धर्म दर्शन-आचार्य नरेन्द्रदेव, पृ० २४१ ।
३८९ जय यौधेय, पृ० ११२ ।
३९०. भारतीय दर्शन-वाचस्पति गैरोला, पृ० १६२ ।
३९१. जय यौधेय, पृ० १११ ।
३९२. बुद्ध एण्ड दि गॉस्पल ऑफ बुद्ध-इज़म-आनन्दकुमार स्वामी, पृ० ११७ ।
३९३. भारतीय दर्शन, पृ० १९९ ।
३९४. बौद्ध दर्शन तथा अन्य भारतीय दर्शन, पृ० ४८७ ।
३९५. भारत का सांस्कृतिक इतिहास-सत्यकेतु विद्यालंकार, पृ० ९२, ९३ ।
३९६. जय यौधेय, पृ० १११ ।
३९७. वही, पृ० ११० ।
३९८. वही, पृ० २२० ।
३९९. वही, पृ० ३१ ।
४००. वही, पृ० ३२ ।
... विस्मृत यात्री, पृ० ११३ ।
..., पृ० ११३ ।
... रिचर्ड ए० गार्ड, पृ० १०८ ।
दो अतियाँ (१) काम-सुख में लिप्त होना (२) शरीर पीड़ा में लगना
...और दर्शन पृ० ३३ ।

४०५. सिंह सेनापति, पृ० २७५।
४०६. बुद्ध और बौद्ध धर्म-चतुरसेन शास्त्री, पृ० २७।
४०७ वही, पृ० ३७।
४०८ जय यौधेय, पृ० २०६।
४०९ विस्मृत यात्री, पृ० २०७।
४१०. सिंह सेनापति, पृ० २६६।
४११. मधुर स्वप्न, पृ० ४८।
४१२ रेल का टिकट-भदन्त आनन्द कौसल्यायन, पृ० १५१।
४१३. रामराज्य और मार्क्सवाद-राहुल, पृ० ६३।
४१४. आलोचना (जुलाई, १९५२), पृ० १०४।
४१५. हिन्दी उपन्यास एक सर्वेक्षण, पृ० १६६।
४१६. हिन्दी उपन्यास, पृ० ३६७।
४१७. जय यौधेय, पृ० ११०, १११।
४१८. विचार और विवेचन, पृ० १३१।
४१९. जय यौधेय, पृ० १११।
४२०. सिंह सेनापति, पृ० ५३।
४२१. जय यौधेय, पृ० ११२।
४२२. हिन्दी उपन्यास, पृ० ३७७।
४२३ विस्मृत यात्री, पृ० ३७२।
४२४. वही, पृ० ३७३।
४२५. वही, पृ० ३७२।
४२६. वही, पृ० ३७५।
४२७. वही, पृ० ११२-११३।
४२८. जय यौधेय, पृ० ३०।
४२९. ऐतिहासिक उपन्यास और उपन्यासकार, पृ० १५१।
४३०. सिंह सेनापति, पृ० १५३।
४३१. जय यौधेय, पृ० १५।
४३२. राजस्थानी रनिवास, पृ० १५३।
४३३. जय यौधेय, पृ० ७७।
४३४ सिंह सेनापति, पृ० २५।
४३५ वही, पृ० १३५।
४३६ राजस्थानी रनिवास, पृ० १७८।
४३७ मधुर स्वप्न, पृ० ८३।
४३८. वही, पृ० १३८।
४३९. सिंह सेनापति, पृ० ३१।
४४०. जय यौधेय, पृ० १४६।
४४१. मधुर स्वप्न, पृ० ७१।
४४२. सिंह सेनापति, पृ० १३८।
४४३. मधुर स्वप्न, पृ० ५१।
४४४. वही, पृ० २६१-२८३।
४४५. विचार और विवेचन पृ० १३०।

४४६. ऐतिहासिक उपन्यास और उपन्यासकार, पृ० ११५।
४४७. आलोचना (जुलाई, १६५२), पृ० १०३।
४४८. सिंह सेनापति, पृ० १३।
४४६ जय यौधेय, पृ० १६१।
४५०. वही, पृ० १६४।
३५१. रेल का टिकट, पृ० १५३।
४५२. आलोचना (दिसम्बर, १६६६), पृ० १३१।
४५३. आज की समस्याएँ, पृ० ४४-४८।
४५४ जय यौधेय, पृ० ३४१।
४५५. जीने के लिए, पृ० ५६।
४५६. आज की समस्याएँ, पृ० ६१।
४५७. जीने के लिए, पृ० ५२।
४५८. (क) सिंह सेनापति, पृ० ५३, ५४ (ख) जय यौधेय, पृ० २६४, १६२, १६४
(ग) जीने के लिए, पृ० १००, १८६, १८७ (घ) मधुर स्वप्न, पृ० २८, १६, २०।
४५६. (क) जय यौधेय, पृ० ३०, ५४ (ख) सिंह सेनापति, पृ० ६८, १५, १६।
४६०. जय यौधेय, पृ० १५७।
४६१. जीने के लिए, पृ० ६०।
४६२. वही, पृ० २६८।
४६३. वही, पृ० ४४।
४६४. जीने के लिए, पृ० ५१।
४६५. वही।
४६६. वही, पृ० ५६।
४६७. जय यौधेय, पृ० ५४।
४६८. वही, पृ० ६२।
४६६. राजस्थानी रनिवास, पृ० २२०।
४७०. सिंह सेनापति, पृ० ७३।
४७१. जीने के लिए, पृ० १६१।
४७२. वही, पृ० ३१४।
४७३. लिटरेचर एण्ड रीयलिटी- हावर्ड फास्ट, पृ० १५।
४७४. हिन्दी उपन्यास का अध्ययन-डॉ० गणेशन, पृ० १३०।
४७५. जीने के लिए, पृ० ६५, ११३।
४७६. राहुल जी का कथा-साहित्य (टंकित शोध-प्रबन्ध)-डॉ० मुकटलाल गुप्त, पृ० ३१६।

राहुल जी के अनूदित उपन्यास

अनूदित रचनाएँ किसी भी भाषा के साहित्य की निधि होती हैं। राहुल सांकृत्यायन हिन्दी मे अनूदित रचनाओं के विषय मे लिखते हैं—'अनुवाद या स्वतन्त्रानुवाद से ही हमारे गद्य-साहित्य की सृष्टि हुई है और जहाँ तक हमारे प्राचीन या प्रान्तीय साहित्य का सम्बन्ध है, हमारी भाषा मे काफी अनुवाद हैं। किन्तु उनमे भी अधिक मूलापेक्षी सरस अनुवादो की कमी है। और हमारे साहित्य मे विश्व की कृतियो के प्रामाणिक अनुवाद तो अभी हुए ही नही है।'[1] इस दृष्टि से मौलिक साहित्य-सर्जना के साथ राहुल जी की अनूदित कृतियों का भी हिन्दी-साहित्य में अक्षुण्ण महत्व है। संस्कृत, पालि, तिब्बती से बौद्ध धर्म एवं दर्शन सम्बन्धी ग्रन्थो के अनुवादो के अतिरिक्त राहुल जी ने अंग्रेजी तथा ताजिक भाषा से अनेक औपन्यासिक कृतियो का अनुवाद भी किया है। हिन्दी के अनूदित उपन्यासों मे इनका विशिष्ट स्थान है। अंग्रेज़ी से अनूदित उपन्यासों मे राहुल जी ने पर्याप्त स्वच्छन्दता से काम लिया है, अतः इन्हें अनुवाद के स्थान पर 'रूपान्तरण' कहना अधिक उपयुक्त होगा। ताजिक भाषा से ऐनी के महत्त्वपूर्ण उपन्यासों के अनुवाद का श्रेय राहुल जी को ही प्राप्त है। अतः राहुल जी के अनूदित उपन्यासो को दो भागो मे विभक्त किया जा सकता है—(क) अंग्रेज़ी से रूपान्तरित उपन्यास, (ख) ताजिक से अनूदित उपन्यास।

(क) अंग्रेज़ी से रूपान्तरित उपन्यास

राहुल जी के रूपान्तरित उपन्यास हैं—'शैतान की आँख', 'विस्मृति के गर्भ मे', 'जादू का मुल्क' तथा 'सोने की ढाल'। अंग्रेज़ी भाषा मे दक्षता प्राप्त करने के व्यक्तिगत उद्देश्य से राहुल जी ने इन चार उपन्यासो का रूपान्तरण किया है। एतद्विषयक राहुल जी का कथन द्रष्टव्य है- '१९२३-२५ ई० मे दो वर्ष मुझे हजारीबाग जेल मे रहना पड़ा था। उस समय 'स्वान्तः-सुखाय' मैं कुछ काम करता रहता था। उसी मे अंग्रेजी उपन्यासो के अनुवाद का काम भी था। ………मुझे अफसोस है, जिन ग्रन्थो के अनुवाद हैं, उनका और उनके कर्त्ताओ का नाम मैंने नोट नहीं कर

रखा, दूसरी तरह से प्रयत्न करने पर मुझे नाम नहीं मालूम हो सके। अनुवाद में बहुत अधिक स्वतन्त्रता से काम लिया गया है।'[2] 'जादू का मुल्क' की भूमिका में भी राहुल जी की इसी प्रकार की स्वोक्ति है—'शैतान की आँख', 'विस्मृति के गर्भ में', 'सोने की ढाल' तथा 'जादू का मुल्क' चारों उपन्यासों को स्वान्तः-सुखाय के अतिरिक्त अपने नवतरुणों में साहस पैदा करने के ख्याल से भी १९२४ ई० में मैंने किन्हीं विस्मृत अंग्रेज़ी लेखकों के उपन्यासों में बहुत परिवर्तन के साथ अनुवादित किया था।'[3] राहुल जी के इन कथनों से स्पष्ट है कि ये रूपान्तरित उपन्यास उन्होंने स्वान्तः सुखाय के साथ तरुणों में उत्साह एवं साहस के संचार के लिए रचे हैं। हिन्दी में साहसिक उपन्यासों की कमी ने भी उन्हें रूपान्तरण की प्रेरणा दी है।[4] इन उपन्यासों के मूल लेखक तथा मूल कृतियों के नाम अज्ञात है। अनुवादक ने अपने अंग्रेज़ी भाषा-सम्बन्धी ज्ञान को विकसित करने के उद्देश्य से इन रूपान्तरणों को प्रस्तुत किया है, अतः उच्च-कोटि के कलात्मक एवं भावात्मक अनुवादों की विशेषताएँ इनमें उपलब्ध नहीं हो सकतीं।

'शैतान की आँख' एक रहस्य-रोमाचपूर्ण कृति है। 'शैतान की आँख' कथा का केन्द्र है, यही उपन्यास का रहस्य है। उपन्यास के अन्त में विजयशंकर द्वारा इसका रहस्य उद्घाटित किया जाता है कि 'मुर्दों की गुफावाली शैतान की आँख' एक अमूल्य वज्रमणि थी। हरि, मोहन और माधव इस उपन्यास में साहसी नायक के रूप में चित्रित हैं। 'विस्मृति के गर्भ में' का कार्यक्षेत्र अफ्रीका का अन्धमहाद्वीप है। मिस्र की प्राचीन सभ्यता से सम्बद्ध अनेक विचित्रतापूर्ण तथ्यों का उद्घाटन इस रोमांचक कल्पना-प्रधान उपन्यास का प्रतिपाद्य है। मितनीहूर्पी की सेराफिस की समाधि उपन्यास का रहस्य है और उससे भी बढ़कर रहस्य वह 'गोबरेला' है जिसके लिए शिवनाथ जौहरी की हत्या होती है तथा धनदास जौहरी प्रो० विद्याव्रत को साथ लेकर मितनीहूर्पी जाना चाहता है। इस उपन्यास में कप्तान धीरेन्द्रनाथ, महाराय चाङ्, प्रो० विद्याव्रत तथा धनदास जौहरी की अफ्रीका के तप्त मरुस्थल की पदयात्रा एवं मिस्र की विचित्रतापूर्ण सभ्यता का वर्णन है। यह उपन्यास लेखक की कल्पनाशक्ति एवं सुविकसित ऐतिहासिक रुचि का भी परिचायक है। इस उपन्यास का घटनाचक्र अथवा कथानक काल्पनिक है, परन्तु सर्वत्र यथार्थ एवं इतिहास-रस से युक्त प्रतीत होता है। 'जादू का मुल्क' मध्य अफ्रीका के अन्धकाराच्छन्न देश की विचित्रताओं का अंकन करने वाला रोमांचक उपन्यास है। पाली एक जादूगर बादशाह है, जो तुंगाना जाति पर राज्य करता है, उसके प्रदेश का अन्वेषण ही कुमार नरेन्द्र, सत्यव्रत तथा वाचस्पति मिश्र का उद्देश्य है। इस प्रकार उपन्यास में नूतन भौगोलिक परिवेश एवं नई सभ्यता की खोज प्रतिपाद्य है तथा दारट, मेगसोनियम जैसे प्रागैतिहासिक पशुओं का वर्णन अत्यधिक रोचक है। 'सोने की ढाल' घटना-प्रधान साहसिक उपन्यास है। उपन्यास का सम्बन्ध भी अफ्रीका महादेश के साथ है। पर्यटन एवं रहस्यों से पूर्ण उपन्यास अत्यन्त सरस है। 'सोने की ढाल' के वास्तविक अधिकारी की खोज

उपन्यास का रहस्य है। नाथन इसका वास्तविक अधिकारी है, मोटियो इस रहस्य को जानता है। वह सर्वत्र नाथन के मार्ग मे बाधक बनकर आता है। उपन्यास के अन्त में वह ढाल नाथन को प्राप्त होती है, जिसकी प्राप्ति में कैप्टन प्रतापनारायण तथा उसके परिवार के लोग सहायक बनते हैं।

राहुल जी के रूपान्तरित उपन्यासों में उनके मौलिक ऐतिहासिक एवं सामाजिक उपन्यासो से भिन्न प्रवृत्तियाँ दृष्टिगत होती हैं। इनमे सर्वत्र एक रहस्यमय वातावरण बना रहता है जिसके अनावरण मे नायको के साहसिक कृत्यो का अंकन हुआ है। इनमे जासूसी एव तिलस्मी उपन्यासो की तरह रहस्यमयता एवं कौतूहल जैसे तत्व विद्यमान हैं, पर ये जासूसी अथवा तिलस्मी उपन्यास नही हैं। इन उपन्यासों में उपन्यासकार ने पर्यटन, युद्ध-शान्ति और रोमाचक साहस को लेकर विस्मृत अतीत के गर्भ मे प्रवेश किया है तथा अपनी कल्पना से इन रोमाचक कथाओं को निर्मित किया है। कहीं-कहीं इनमे इतिहास का-सा भी आभास होता है, यद्यपि वृत्त काल्पनिक ही हैं। अतः इन्हें 'रोमाचक उपन्यास' का अभिधान देना ही संगत प्रतीत होता है। तिलस्मी, जासूसी, साहसिक एवं ऐतिहासिक उपन्यासों के समान ही कल्पना की अजस्र धारा इन उपन्यासो की विशिष्टता है। ये रोमाचक उपन्यास राहुल जी की हिन्दी को नई देन है। 'रहस्य' और 'साहसिकता' इन रोमांचक उपन्यासो की वस्तु के मुख्य तत्त्व हैं। वैज्ञानिक तथ्य, अज्ञात एवं विचित्र स्थान यहाँ रहस्य एवं कौतूहल की सृष्टि करते हैं। श्रीनारायण अग्निहोत्री 'जादू का मुल्क' आदि राहुल जी के रूपान्तरित उपन्यासों को वैज्ञानिक तथ्यों से पूर्ण कथानक वाले उपन्यास कहते हैं।[४] 'साहसिकता' इन रोमाचक उपन्यासो की वस्तु की दूसरी विशिष्टता है। इन उपन्यासो के नायको का साहस युद्ध मे पराक्रम-प्रदर्शन एवं पर्यटन-प्रियता के रूप में प्रदर्शित है। इस प्रकार राहुल जी के रोमाचक उपन्यास विभिन्न वैज्ञानिक आविष्कारो एवं अज्ञात प्रदेशो की खोज के लिए प्रेरक का कार्य करते हैं। इनका उद्देश्य सस्ता मनोरंजन-मात्र नहीं है।

भाषा-शैली की दृष्टि से राहुल जी के ये रूपान्तरण सफल ही कहे जायेंगे। मुहावरों एवं लोकोक्तियो से युक्त प्रवाहमयी भाषा 'जादू का मुल्क' तथा 'विस्मृति के गर्भ में' दर्शनीय है। 'जादू का मुल्क' मे तुंगालो के रहस्यमय प्रदेश का सुन्दर चित्रण है। प्रवाहमयी भाषा का एक उदाहरण विस्मृति के गर्भ मे' से दर्शनीय है—'यह थे मेरे स्वप्न के भिन्न-भिन्न दृश्य ! मैंने अपना जीवन विगत लोगो में बिताया है। मैंने उनके दुःख-सुख, उनकी आशा-निराशा सबमे उनका साथ दिया है। मैंने उनके शिल्प-कौशल और कला-चातुर्य को जाना है। मैंने उनकी विजयो और सफलताओं का आनन्द लूटा है। मैंने दुष्काल, विषूचिका और मृत्यु के समयों की उनकी विपत्ति मे आँसू बहाया है। और अब, जान पड़ता है किसी दैवी चमत्कारो द्वारा, यह मेरे अख्तियार में है, कि मैं इन्हीं आँखो से उन्हें देखूँ, इन्ही कानों से उनके संगीत और स्तुति-पाठ को सुनूँ।'[५] 'सोने की ढाल' मे राहुल जी की अपार वात्सल्य, हास-परिहास आदि

भावों के चित्रण में सफल रही है। भावानुकूल शब्दावली तथा अलंकारमयी शब्द-योजना 'शैतान की आँख' में मिलती है। राहुल जी भाषा के विषय में दुराग्रही नहीं हैं। वे संस्कृत, अरबी, फारसी, अंग्रेजी तथा ग्रामीण शब्दों का भी स्वतन्त्रता से प्रयोग करते हैं।[७]

राहुल जी की भाषा में कहीं-कहीं वाक्य-गठन एवं व्याकरण-सम्बन्धी भूलें भी हैं। मिहनत, कानविस, शर्करिला आदि अशुद्ध प्रयोग 'शैतान की आँख' में हैं। 'आदिमी मिथियों', 'आँसू बहाया' आदि व्याकरण-सम्बन्धी त्रुटियाँ 'विस्मृति के गर्भ मे' भी हैं।[८] कहीं-कहीं वाक्य-गठन भी शिथिल है—'जब तक उसके पास गोबरेला मूर्ति रहेगी, वह कभी नहीं विश्राम, शान्ति और सुख पायेगा।'[९] वचन, लिंग एवं विभक्ति सम्बन्धी ऐसी भूलें 'शैतान की आँख' में और भी अधिक हैं। इसमें भौगोलिक एवं अंग्रेजी नामों के उच्चारण भी अशुद्ध हैं।

राहुल जी की शैली इन उपन्यासों में भी प्रधानतया वर्णनात्मक है। 'शैतान की आँख' में आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग है। बीच-बीच में संवादात्मक एवं वर्णनात्मक शैली भी मिलती है। 'सोने की ढाल' में भाषा-शैली वर्णनात्मक एवं सम्भाषणमूलक है। 'जादू का मुल्क' भी वर्णनात्मक शैली में ही प्रस्तुत है। शैली की दृष्टि से राहुल जी का 'विस्मृति के गर्भ मे' एक सुन्दर रूपान्तरण है। 'सिंह सेनापति' की तरह यह उपन्यास आत्मकथात्मक शैली में लिखा गया है। इस उपन्यास के उपोद्घात की 'सिंह सेनापति' के 'विषय प्रवेश' से पर्याप्त समानता है। 'उपोद्घात' यहाँ उपन्यास का अध्याय ही प्रतीत होता है।

संक्षेपतः राहुल जी के रूपान्तरित उपान्यास हिन्दी में 'रोमांचक उपन्यास' की एक नई विधा के मार्ग-दर्शक कहे जा सकते हैं। ये उपन्यास यायावर राहुल के व्यक्तित्व के अनुकूल हैं। कहीं-कहीं भाषा-सम्बन्धी कुछ त्रुटियाँ होने पर भी अनुवाद की दृष्टि से ये उपन्यास अच्छे बन पड़े हैं। विशेषकर 'विस्मृति के गर्भ मे' तो अत्यन्त सुष्ठु रूपान्तरण कहा जा सकता है।

(ख) ताजिक से अनूदित उपन्यास

राहुल जी के अनूदित उपन्यास हैं—'दाखुंदा', 'जो दास थे', 'अनाथ', 'अदीना', 'सूदखोर की मौत' तथा 'शादी'। इन उपन्यासों का राहुल जी ने सन् १९४७ से १९५२ के मध्य अनुवाद किया था। प्रथम पाँच उपन्यास सदरुद्दीन ऐनी द्वारा लिखित हैं तथा 'शादी' जलाल इकरामी द्वारा। सदरुद्दीन ऐनी सोवियत ताजिक साहित्य के संस्थापक एवं प्रवर्तक हैं। ऐनी ताजिक जनता के जीवन का वास्तविक चित्रण करने वाले प्रथम उपन्यासकार हैं। राहुल जी उन्हें *ताजिक भाषा तथा सोवियत मध्य एशिया का प्रेमचन्द* मानते हैं।[१०] यदि प्रेमचन्द की कृतियाँ भारतीय जनता के जीवन-संघर्ष को प्रस्तुत करती हैं तो ऐनी की साहित्यिक कृतियाँ ताजिकिस्तान की जनता की वीरगाथाएँ हैं।[११] जलाल इकरामी ऐनी के शिष्य एवं

ताजिक-जनजीवन का चित्रण करने वाले दूसरे महत्त्वपूर्ण उपन्यासकार हैं। इन दोनों उपन्यासकारों ने ताजिक-जनजीवन का अमीरों द्वारा शोषण एवं शोषण से मुक्ति के लिए जनता के क्रान्तिकारी प्रयत्नों तथा जन-जागृति का चित्रण अपने उपन्यासों में किया है।

राहुल जी ने उक्त उपन्यासों को अपनी साम्यवादी विचारधारा के अनुकूल पाया और भारतीय पाठकों को ताजिकिस्तान में हुए साम्यवादी क्रान्तिकारी परिवर्तन से परिचित करवाने के लिए ही इन उपन्यासों का हिन्दी में अनुवाद किया। राहुल जी भारत के शोषित समाज की स्थिति एवं अस्वस्थ जीवन-पद्धति का उद्धार साम्यवाद द्वारा ही सम्भव मानते हैं। ताजिकिस्तान भी इन्हीं स्थितियों से गुजरा है और वह समस्त क्रान्तिकारी परिवर्तनों को देख चुका है। 'सूदखोर की मौत' की भूमिका में राहुल जी लिखते हैं—"वह मध्य एशिया के उस शोषित जीवन का यथार्थ चित्रण करते हैं, जो कि क्रान्ति के बाद समाप्त हो गया लेकिन हमारे यहाँ अंग्रेजों के भाग जाने के बाद आज तक वह वैसा ही बेरोकटोक चल रहा है। उनके चित्रित समाज की बहुत-सी प्रथाएँ तथा कमजोरियाँ हमारे समाज में भी मौजूद हैं, इसका पता हम ऐनी के ग्रन्थों से मिलता है।"[१] इस प्रकार ऐनी तथा इकरामी के उपन्यासों की केन्द्रीय विचारधारा लेखक के मनोनुकूल साम्यवादी विचारधारा ही है। अतएव इन उपन्यासों का अनुवाद लेखक ने अपने निश्चित उद्देश्य एवं विचारधारा के प्रचार-प्रसार के लिए किया है। इसके साथ ही अनुवादक ताजिक भाषा को हिन्दी के समीप समझता है। इस विषय में उसका कथन है—'ताजिक भाषा वही फारसी भाषा है, जिससे अब भी हमारे यहाँ के लाखों आदमी परिचित हैं और हमारी हिन्दी के निर्माण में उसका हाथ है।...हमारी भाषा पर जो प्रभाव पड़ा है, उसके देखने से स्पष्ट मालूम होता है कि वह ईरानी-फारसी का नहीं बल्कि ताजिक-फारसी का है।"[११] इस प्रकार ताजिक के कई शब्दों से भारतीय पाठक परिचित हैं तथा इन उपन्यासों में वे परिचित-सा परिवेश अनुभव करते हैं।

'दाखुन्दा' ऐनी की यथार्थवादी औपन्यासिक कृति है। इसमें बुखारा के अमीर के शासन में ऐनी अपने नायक यादगार और गुलनार के कठिन जीवन को दिखलाता है और उस स्वतन्त्रता को भी चित्रित करता है, जिसे क्रान्ति के बाद उन्होंने प्राप्त किया। दवारोफ के शब्दों में 'दाखुन्दा का महत्त्व सबसे अधिक इस बात में है कि इसमें बुखारा और ताजिकिस्तान की बहुत-सी महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक घटनाओं और वर्ग-संघर्ष का चित्र खींचा गया है।"[१२] दाखुन्दा में सन् १८६८ से १९३० तक के ताजिकिस्तान के इतिहास का चित्रण है। 'जो दास थे' ऐनी के बृहद् उपन्यास 'गुलामान' का अनुवाद है। राहुल जी ने पहले इसे उर्दू में तथा बाद में हिन्दी में अनूदित किया।[१३] इस उपन्यास में सन् १८४० से १९३४ ई० तक के ताजिकिस्तान के इतिहास का यथार्थ एवं कलात्मक अंकन हुआ है। इसमें [illegible] एवं इरानी दासों की दयनीय स्थिति, अलीदाद (नवबुखारा) के आगमन, [illegible] का

विनाश, बोलशेविक क्रान्ति, बाचमचियों का उदय, अत्याचार एवं अवसान तथा ताजिकिस्तान में कलख़ोज़ों की स्थापना आदि का यथातथ्य वर्णन है।

अदीना,' 'अनाथ' तथा 'सूदख़ोर की मौत' ऐनी के तीन लघु उपन्यास हैं। 'अदीना' ताजिक भाषा तथा ऐनी का प्रथम उपन्यास है। इसमें एक अनाथ ताजिक तथा उसकी मंगेतर गुलबीबी की कहानी के माध्यम से शोषित वर्ग की करुण कथा कही गई है। यह उपन्यास दु:खान्त है। 'अनाथ' का घटनाकाल सन् १६२१ से १६३१ तक है। इस समय ताजिकिस्तान में सर्वत्र अशांति एवं अव्यवस्था थी। तत्कालीन जनता द्वारा अप्रगतिशील शक्तियों का सामना किस प्रकार किया गया—यही उपन्यास का प्रतिपाद्य है। 'सूदख़ोर की मौत (मर्गिसूदख्वूर) में ऐनी ने बुखारा के सूदख़ोरों का जीवन अंकित किया है। कारी इश्कम्बा के रूप में लेखक ने कफ़न-खसोट सूदख़ोर का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया है।

'शादी' उपन्यास में जलाल इकरामी ने ताजिक सामूहिक-कृषि (कलख़ोज़) का वर्णन किया है। सामूहिक श्रम के फल को दिखलाते हुए सामूहिक खेतियों की उन्नति, ताजिक ग्रामों के सुधार तथा उनके आधुनिकीकरण का यथातथ्य वर्णन इस उपन्यास में हुआ है। इस उपन्यास में सन् १६२६ से १६४६ के ताजिकिस्तान के आर्थिक विकास को प्रस्तुत किया गया है।

उक्त अनूदित औपन्यासिक कृतियों के आधार पर राहुल जी की अनुवाद-कला की कतिपय प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं—

(१) राहुल जी ने मूल ताजिक भाषा से सीधे हिन्दी में अनुवाद प्रस्तुत किए हैं तथा मूल की मौलिकता एवं सरसता को हानि नहीं पहुँचने दी।

(२) गद्य-भागों के अनुवाद में ताजिक लेखकों की मूल विभिन्न शैलियों की राहुल जी ने पूर्णतया रक्षा की है। यथा 'दाखुंदा' में सामान्य वर्णनात्मक शैली के साथ कथोपकथन-शैली, भावात्मक शैली, चित्रात्मक शैली एवं आलंकारिक शैली का यथास्थान प्रयोग हुआ है।[11] इसी प्रकार 'शादी' में प्राकृतिक चित्रों, पर्वतीय सौन्दर्य के चित्रण, मानवीय सौन्दर्य-चित्रों को अंकित करते समय, आकर्षक एवं भव्य व्यक्तित्वों के प्रस्तुतीकरण तथा तुलनात्मक चित्र प्रस्तुत करने में राहुल जी ने विभिन्न शैलियों का प्रयोग किया है।[12] 'सूदख़ोर की मौत' में भी व्यक्तित्व-अकन, व्यंग्यात्मक चित्रण, प्रकृति के दृश्यों के सूक्ष्म चित्रण तथा आलंकारिक एवं प्रतीकात्मक वर्णन में विभिन्न शैलियों का सुन्दर निदर्शन है।[13]

(३) राहुल जी ने उपन्यासान्तर्गत पद्य-भाग का अनुवाद समानान्तर हिन्दी छंदों में करने का प्रयास किया है। अधिकांश अनुवाद मुक्त छंद में हुए हैं। इस क्षेत्र में राहुल जी को विशेष सफलता नहीं मिली। वे भावरक्षा में तो सफल रहे हैं, पर मूल में जो नाद-सौंदर्य एवं ध्वन्यात्मकता है, उसकी रक्षा राहुल जी नहीं कर सके। एक-दो उदाहरण प्रस्तुत हैं।

दस्तके मन दस्तके तू,
दस्तके नीरस्तके तू ।
चे मी शब्द व गर्दनम्
हलका शब्द दस्तके तू । (दाखुंदा (मूल), पृ० १६८)

राहुल जी का अनुवाद है :—

तेरा हाथ औ मेरा हाथ,
तेरा हाथ सुन्दर है यह ।
क्या हो अच्छा मेरे गले,
हार होए तेरा हाथ यह । (दाखुंदा, पृ० १२५)

यहाँ 'चे मी' के भाव की रक्षा नहीं हो सकी । 'चे मी' का अर्थ है 'तो क्या होगा ?' जिसमें कौतूहल है जो 'क्या हो' में नहीं आ सका । इसी प्रकार 'हार' कह कर भी मूल के सौंदर्य की रक्षा नहीं हुई । भाव-सौंदर्य की रक्षा निम्न पद में भली-भाँति हुई है :—

चश्मके मन चश्मके तू,
चश्मके पुरखशमके तू ।
चे मी शब्द व मूर्ये मन,
गमजा कुनद चश्मके तू । (दाखुंदा (मूल), पृ० १६८)

राहुल जी ने इसका अनुवाद किया है :—

मेरी अखियाँ तेरी अखियाँ,
गुस्सा भरी तेरी अखियाँ,
क्या अवस्था मेरी होगी,
घायल करें तेरी अखियाँ । (दाखुंदा, पृ० १२५)

चश्मक चश्मा का लघु रूप है और अनुवाद में उसके लिए अखियाँ का प्रयोग सार्थक है । इसी प्रकार 'जो दास थे' के पद्यानुवादों में भी संगीत का अभाव है । यही स्थिति 'धादी' के पद्यानुवादों की है । 'मेरा मस्त चित्र माया—फूल पर फूल रखा'[६] साधारण अनुवाद है, न छन्द है, न गीत । अभिप्राय यह कि राहुल जी के पास कवि का हृदय नहीं है, विचारक का मस्तिष्क है, अतएव उनके पद्यानुवाद सरस नहीं बन पड़े ।

(४) राहुल जी के अनुवादों की गद्य-भाषा सशक्त एवं सजीव है । 'सूदखोर की मौत' से एक उदाहरण द्रष्टव्य है—'घोड़े की लाश पर तीन-चार कुत्ते भी थे, जो एक-दूसरे पर गुर्राते गोश्त काट-काट कर खा रहे थे । कभी-कभी लोभ के मारे जैसे साम्राज्यवादी एक-दूसरे पर टूटते हैं, वैसे ये भी भूँकते हुए एक-दूसरे के सिर पर दाँत और पंजा मारते और उसके बाद फिर गोश्त खाना शुरू करते । कौए भी चारों तरफ से आकर जो कुछ मिल जाता, उसे पकड़ते, लेकिन जब कुत्ते उनकी तरफ लपकते, तो काँव-काँव करते उड़ने के लिए मजबूर होते । मानो यह छोटे-छोटे पूँजीपति थे, जो

कि विश्व के स्वामी साम्राज्यवादियों की अनुमति से कुछ और पाकर गुजारा कर रहे थे।'[४०] इस उदाहरण में साम्राज्यवाद की समीक्षा बड़ी सरल एवं प्रवाहमयी भाषा में की गई है। भाषा में व्यंग्यात्मकता एवं अलंकृति है। व्यंग्य अत्यन्त सटीक हैं। 'जो दास थे' में युद्ध-वर्णन में भी भाषा का यही रूप मिलता है।[४१] कई स्थलों पर मुहावरों एवं लोकोक्तियों का भी सुन्दर एवं सार्थक प्रयोग हुआ है।[४२]

(५) राहुल जी ने अनुवादों की भाषा में रूसी, ताजिक, फ़ारसी, उर्दू आदि के प्रचलित एवं अप्रचलित शब्दों का भी प्रचुर प्रयोग किया है। उन्होंने विदेशी शब्दों के कोष्ठकों में अर्थ भी दिये हैं, परन्तु इसमें स्वाभाविक वाचन में तो कठिनाई होती ही है। फारसीनिष्ठ भाषा का एक उदाहरण देखिए – 'तुम दमुल्ला जुजियात (गौण-काम्य आदि) में डूब रहे हो, तुमने मुख्य बातों को छोड़ रखा है। तुम शेरख्वानी और शेरगोई (कविता-पाठ) में बहुत मत फँसो। कौन-सा शायर बाय (सेठ) हुआ कि तुम भी (सेठ) बनोगे।'[४३] इस प्रकार की भाषा हिन्दी पाठक के लिए कठिन एवं अरुचिकर है।

(६) राहुल जी ने अनूदित उपन्यासों में अध्यायों के शीर्षकों का भी अनुवाद किया है। यथा 'दाखुंदा' शीर्षक में तो परिवर्तन नहीं लेकिन राहुल जी ने इस उपन्यास को पाँच शीर्षकों में विभाजित किया है। यथा प्रथम खण्ड (बेचारे किसान), द्वितीय खण्ड (अमीर का बुखारा शरीफ़), तृतीय खण्ड (अमीर भगा), चतुर्थ खण्ड (डाकुओं का राजा) तथा पंचम खण्ड (कमकरों का राजा)। इन खण्डों के शीर्षकों के अतिरिक्त प्रत्येक खण्ड आगे कई उपखण्डों में विभक्त है और राहुल जी ने उन सभी के शीर्षक भी दिये हैं। इसी प्रकार मूल 'शादी' उपन्यास दो खण्डों में विभक्त है, परन्तु राहुल जी ने तैंतीस अध्यायों में विभक्त किया है और प्रत्येक अध्याय का शीर्षक भी दिया है। शीर्षक देने की यह प्रवृत्ति राहुल जी के मौलिक उपन्यासों में भी मिलती है। शीर्षक कहीं हिन्दी के हैं और कहीं ताजिक शब्दावली में ही हैं। यथा 'दाखुंदा' ताजिक भाषा का शब्द है, 'तरुण पनिहारिन' हिन्दी में अनुवाद करके दिया गया है। शीर्षक देने के लिए राहुल जी ने किसी विशेष नियम का अनुसरण नहीं किया।

(७) कई स्थलों पर राहुल जी की भाषा व्याकरण के नियमों की अवहेलना करती चलती है। इससे लिंग, वचन, विभक्ति सम्बन्धी त्रुटियाँ आ गई हैं।[४४]

उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि राहुल जी के अनुवादों में भाषा-सम्बन्धी कुछ त्रुटियाँ अवश्य हैं, फिर भी समष्टि रूप से उनके अनुवाद सहज एवं सुन्दर हैं। विशेषकर 'दाखुंदा', 'जो दास थे', 'सूदखोर की मौत' तथा 'शादी' बहुत सीमा तक साहित्यिक अनुवाद की श्रेणी में गिने जा सकते हैं। सर्वोपरि राहुल जी ने जिस उद्देश्य के लिए यह अनुवाद-कार्य सम्पादित किया है, उसमें उन्हें पर्याप्त सफलता मिली है। डॉ० सुबोधचन्द्र सक्सेना के शब्दों में 'जिस क्रान्ति, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक संगठन में आमूल परिवर्तन का सन्देश अनुवादक हमें उन कृतियों देना चाहता है, वह हमें विवश है और हम अपने देश की धीमी प्रगति की तुलना

ताजिकिस्तान जैसे सोवियत प्रजातन्त्रों की तीव्रगामी प्रगति से करने पर बाध होते हैं।'[४४]

इस प्रकार राहुल जी ने ताजिक भाषा के अनुवादों से हिन्दी को समृद्ध बनाय है। डॉ० नलिन विलोचन शर्मा के शब्दों में हम कह सकते हैं कि 'राहुल जी ने मध्य एशिया के एक ऐसे लेखक की कला से हमारा परिचय कराया है जो रूसी होने पर भी प्रादेशिक भाषा में लिखता है, पर जो रूस के शोलोकोव जैसे रूसी भाषा के लेखकों के समकक्ष है।'[४५] हिन्दी में अनूदित उपन्यासों की परम्परा में राहुल जी के अनुवाद एवं स्वतन्त्रानुवाद (रूपान्तरण) निश्चय ही महत्त्वपूर्ण स्थान के अधिकारी हैं।

सन्दर्भ

१. साहित्य निबन्धावलि, पृ० १६६ ।
२. सोने की ढाल (प्राक्कथन), पृ० ४ ।
३ जादू का मुल्क (भूमिका) ।
४. दृष्टिकोण (जुलाई-सितम्बर, १९५२), पृ० ३ ।
५. उपन्यास का रूप-विधान, पृ० ३७ ।
६. विस्मृति के गर्भ में, पृ० ३४ ।
७. वही, पृ० ३० ।
८ वही, पृ० १६, ३४ ।
९ वही, पृ० २१ ।
१० अनाथ (अनुवादक की ओर से), पृ० ५ ।
११ पूर्वी सोवियत लेखकों की दस कहानियाँ, पृ० २७३ ।
१२. सूदखोर की मौत, पृ० ६ ।
१३. वही, पृ० ७ ।
१४. दाखुंदा, पृ० ४४२ ।
१५. मेरी जीवन-यात्रा (४), पृ० १११ ।
१६. दाखुंदा, पृ० २८६, ३०५-६, ५५, ६, १७-१८, ७६ ।
१७. शादी, पृ० १, ४, ५, ८, ४८ ।
१८. सूदखोर की मौत, पृ० ६, १०, ७२, ७३-७४ ।
१९. शादी, पृ० ६० ।
२०. सूदखोर की मौत, पृ० ७३ ।
२१. जो दास थे, पृ० ३१६ ।
२२. सूदखोर की मौत, पृ० २३ ।
२३. वही, पृ० ६४ ।
२४. वही, पृ० ७७, ८०, ८८ ।
२५. राहुल का कथा-साहित्य, पृ० ३७४ ।
२६. दृष्टिकोण (जनवरी, १९४९), पृ० ५९ ।

चतुर्थ खण्ड / आठवाँ परिवर्त

राहुल जी के निबन्ध

निबन्ध का स्वरूप

वैज्ञानिक दृष्टिकोण के विकास के साथ मनुष्य की प्रवृत्ति रागात्मकता की ओर से हटकर बौद्धिकता की ओर उन्मुख होती है। मनुष्य में वस्तुओं के स्वरूप को समझने और उनसे तारतम्य स्थापित करने की जिज्ञासा बढ़ती है। बुद्धिवादी लेखक कल्पना-विलास से ही सन्तुष्ट न रहकर तार्किक सत्य की शोध में लग जाता है। उसकी इसी बौद्धिक जिज्ञासा का परिणाम निबन्ध-साहित्य है।[1]

निबन्ध शब्द संस्कृत से हिन्दी में आया है। इसकी दो व्युत्पत्तियाँ हैं (१) नि+√बंध्+ल्युट्—निबध्यते अस्मिन् इति अधिकरणे निबन्धनम्। ऐसी रचना, जिसमें विचार बाँधा या गूँथा जाता है। (२) नि+√बन्ध्+घञ्—निश्चितार्थेन विषयम् अधिकृत्ये बन्धनम् अर्थात् निश्चित रूप से किसी विषय पर विचारों की शृंखला बाँधना, रोकना, संग्रह करना आदि। प्राचीन काल में मुद्रणालय नहीं थे। उस समय ऋषि-मुनि अपने विचार भोजपत्रों पर लिखते थे और उनका संग्रह कर बाँधने और कसने की क्रिया को निबन्ध कहते थे। कालान्तर में इसका प्रयोग साहित्यिक रचना के लिए होने लगा।[2] आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी प्राचीन संस्कृत-साहित्य में निबन्ध को पृथक् साहित्यांग के रूप में स्वीकारते हैं। वे लिखते हैं—'इन निबन्धों में धर्मशास्त्रीय सिद्धान्तों की विवेचना है। विवेचना का ढंग यह है कि पहले पूर्वपक्ष में ऐसे बहुत से प्रमाण उपस्थित किये जाते हैं जो लेखक के अभीष्ट सिद्धान्त के प्रतिकूल पड़ते हैं। इस पूर्वपक्ष वाली शंकाओं का एक-एक करके उत्तर-पक्ष में जवाब दिया जाता है। सभी शंकाओं का समाधान हो जाने के बाद उत्तर-पक्ष के सिद्धान्त की पुष्टि में कुछ और प्रमाण उपस्थित किए जाते हैं। चूँकि इन ग्रन्थों में प्रमाणों का निबन्धन होता है इसलिए इन्हें निबन्ध कहते हैं।'[3] अपने शाब्दिक अर्थ में निबन्ध से अभिप्राय ऐसी रचना से है जिसमें सम्यक् संगठन हो और जिसके विभिन्न अंग भली-भाँति व्यवस्थित हों।

आधुनिक निबन्ध अंग्रेजी के 'एस्से' के अर्थ में व्यवहृत होता है, परन्तु इनके मूल अर्थ में बड़ा अन्तर है। अंग्रेजी में 'एस्से' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम मॉन्तेन द्वारा 'प्रयत्न' के अर्थ में किया गया था। मॉन्तेन ने अपने निबन्धों में ...

बनाया है। उसके अनुसार 'निबन्ध विचारों, उद्धरणों एवं आख्यानात्मक वृत्तों का सम्मिश्रण होता है।'[४] मॉन्तेन निबन्ध मे वैयक्तिकता को प्रमुख मानते हैं। इसके विपरीत बेकन निबंध में विचारात्मकता पर अधिक बल देते हैं। उन्होंने अपने व्यावहारिक अनुभवों और मौलिक विचारों को छोटे-छोटे गद्य-लेखों मे निबद्ध किया है। बेकन के अनुसार 'निबन्ध कुछ इने-गिने पृष्ठों के लघु-विस्तार में होना चाहिये, जिसमें सारगर्भित ठोस विचारों का निर्देश हो।'[५] मॉन्तेन और बेकन के निबन्ध प्रयोगात्मक कहे जा सकते हैं, उनमें आन्तरिक व्यवस्था का प्रायः अभाव है। डॉ० जॉनसन ने निबन्ध की परिभाषा देने का उल्लेखनीय प्रयत्न किया है। उनकी सुविख्यात परिभाषा इस प्रकार है—'मन का अनियमित और तात्कालिक उद्रेक, एक अक्रमबद्ध अपरिपक्व खण्ड, जो नियमित तथा सुव्यवस्थित कृति न हो।'[६] इस परिभाषा से दो बातें स्पष्ट होती हैं, निबन्ध की उत्पत्ति तात्कालिक प्रेरणा से होती है और उसमें क्रम का अभाव रहता है। डॉ० जॉनसन की यह परिभाषा निबन्ध की सामान्य विशेषताओं के रूप में स्वीकार की जा सकती है किन्तु आज के विकसित एवं वैविध्यपूर्ण निबन्ध-साहित्य को देखते हुए यह परिभाषा संकुचित एवं एकांगी ही प्रतीत होती है। जे० बी०प्रीस्टले के अनुसार 'अच्छा निबन्ध वही है, जो साधारण बातचीत-सा प्रकट हो। निबन्धकार एक चतुर आत्मवृत्त कहने वाला होता है और जिसका प्रत्येक वाक्य अपने व्यक्तित्व के ढंग का दर्शक हो।'[७] यह परिभाषा भी एक विशिष्ट प्रकार के निबन्धों का ही अन्तर्भाव करती है। प्रीस्टले ने निबन्ध को 'साधारण बातचीत' कहा है जबकि वह साहित्यिक रचना है। एडीसन के अनुसार 'निबन्ध मे विचारधारा तरल और मिश्रित होती है। उसका प्रवाह कभी साधारण उपदेशात्मकता की ओर उन्मुख रहता है, कभी वैयक्तिक आत्माभिव्यंजना की ओर।'[८] इस परिभाषा में निबन्ध की लघुता और उसमें नियमन की ओर संकेत नहीं। ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी की परिभाषा उक्त परिभाषाओं से व्यापक एवं समन्वित प्रतीत होती है—'सीमित आकार का ऐसा लेख जो किसी एक विषय-विशेष अथवा उसकी किसी शाखा-प्रशाखा पर लिखा गया हो, जिसमें आरम्भ में परिष्कारहीनता का आभास मिलता था और जो एक अनियमित अपरिपक्व खण्ड माना जाता था, किन्तु जिससे अब न्यूनाधिक विस्तृत शैली में लिखी हुई किन्तु आकार में लघु रचना का बोध होता है।'[९] इस परिभाषा में निबन्ध की विविध विशेषताओं का यथेष्ट समावेश हुआ है।

हिन्दी के आलोचकों एवं निबंधकारों ने भी निबंध को परिभाषित करने का प्रयास किया है। आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल निबन्ध को गम्भीर विचारों के प्रकाशन का माध्यम मानते हैं। 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में वे लिखते हैं—'आधुनिक पाश्चात्य लक्षणों के अनुसार निबन्ध उसी को कहना चाहिए जिसमें व्यक्तित्व अर्थात् व्यक्तिगत विशेषता हो। बात तो ठीक है यदि ठीक तरह से समझी जाए। व्यक्तिगत

न जाय या जानबूझ कर जगह-जगह से तोड़ दी जाय, भावों की विचित्रता दिखाने के लिए ऐसी अर्थ-योजना की जाय, जो उनकी अनुभूति के प्रकृत या लोक-सामान्य स्वरूप से कोई सम्बन्ध ही न रखे अथवा भाषा से सरकस वालों की कसरतें या हठ-योगियों के से आसन कराये जायें, जिनका लक्ष्य तमाशा दिखाने के सिवाय कुछ न हो।' [1] आचार्य शुक्ल निबन्ध को 'गद्य की कसौटी' स्वीकारते हैं। [1] डॉ० लक्ष्मी-सागर वार्ष्णेय निबन्ध में विषय की अपेक्षा व्यक्तित्व को प्रधानता देते हैं। [1] श्री रामचन्द्र वर्मा ने निबन्ध की व्याख्या इस प्रकार दी है—'निबंध का स्वरूप मुख्यतः साहित्यिक होता है। किसी विषय या उसके किसी अंश का अच्छा अध्ययन कर के नये और मौलिक ढंग से उसका संक्षेप में विवेचन करते हुए जो गम्भीर और अपेक्षया कुछ विवरणात्मक लेख प्रस्तुत किया जाता है, वही पारिभाषिक क्षेत्र में निबन्ध कह-लाता है। इसमें तर्क और उसकी दृष्टि से सब अंगों के विवेचन का पूरा ध्यान रखा जाता है और इस पर लेखक के व्यक्तित्व की स्पष्ट छाप व्यक्त होती है। इसका रूप गठा हुआ और ठोस होता है। प्रायः दार्शनिक, नैतिक, राजनीतिक, सामाजिक, साहित्यिक आदि सभी विषयों पर निबंध लिखे जा सकते हैं।' [1] इस व्याख्या में लेखक ने निबंध की विशेषताओं एवं उसके क्षेत्र को बाँधने का प्रयत्न किया है।

इस प्रकार निबंध-विषयक विविध परिभाषाएँ वस्तुतः पूरक प्रतीत होती हैं। उनमें से किसी एक को हम सम्पूर्ण एवं सर्वांगीण नहीं मान सकते। परन्तु उक्त परि-भाषाओं पर विचार करने से निबंध के कतिपय अनिवार्य तत्त्वों का निर्धारण सम्भव है। वे तत्त्व हैं—(१) निबंध के लिए गद्य का माध्यम अनिवार्य है। (२) वह आकार में लघु होता है। (३) निबंध में लेखक के व्यक्तित्व का आभास मिलता है। (४) निबंध में विवेच्य-विषय की सांगोपांग व्याख्या नहीं रहती, फिर भी वह स्वतः-पूर्ण रचना है। (५) रोचकता निबंध की सफलता और लोकप्रियता के लिए अनिवार्य गुण है। (६) अच्छे निबंध में विचारों के साथ भावों का पुट भी रहता है। (७) निबंध में भाषा के स्वरूप तथा अभिव्यक्ति की शैली का अत्यधिक महत्त्व है। (८) निबंध-लेखन के कई प्रयोजन हो सकते हैं। वह कलात्मक आत्मप्रकाशन का माध्यम भी है और ज्ञान तथा अनुभवों के सम्प्रेषण का साधन भी। (९) अन्य रचना-प्रकारों की अपेक्षा निबंध में औपचारिकता कम होती है।

इस प्रकार निबन्ध में किसी विषय पर लेखक की व्यक्तिगत भावनाओं, अनुभवों, विश्वासों तथा विचारों का विवेचन रहता है और उसमें यथासम्भव उक्त तत्त्वों का सन्निवेश होना चाहिए।

राहुल जी के निबन्ध

महापण्डित राहुल सांकृत्यायन हिन्दी-निबन्ध के प्रतिष्ठित लेखकों में से हैं। डॉ० ओंकारनाथ शर्मा के शब्दों में, 'प्रगतिशील लेखकों में श्री राहुल सांकृत्यायन पृथक् महत्त्व के अधिकारी हैं, क्योंकि वे इन सबमें अधिक प्रतिभाशाली हैं। राजनीति, दर्शन, भाषातत्त्व, पुरातत्त्व, साहित्य, इतिहास, नृतत्त्व, शोध, पर्यटन आदि सभी क्षेत्रों

मे ये प्रख्यात हुए हैं और इन्होने सभी प्रकार के विषयो को निबन्ध में भी अभिव्यक्त किया है ।'[१४]

राहुल जी का निबन्ध-साहित्य प्रमुखतः निम्नलिखित आठ संग्रहों में उपलब्ध है— (१) साहित्य निबन्धावलि, (२) पुरातत्त्व निबन्धावलि, (३) तुम्हारी क्षय, (४) दिमागी गुलामी, (५) साम्यवाद ही क्यों ?, (६) अतीत से वर्तमान (द्वितीय व तृतीय खण्ड), (७) घुमक्कड़ शास्त्र, (८) अज्ञात तिब्बत ('यात्रा के पन्ने' में संकलित) । इनके अतिरिक्त डॉ० ओंकारनाथ शर्मा 'तिब्बत मे सवा वर्ष', 'किन्नर देश मे', 'हिमालय-परिचय' एवं 'बचपन की स्मृतियाँ' भी राहुल जी की निबन्ध रचनाएँ मानते हैं ।[१५] परन्तु ये कृतियाँ निबन्ध रचनाएँ नहीं हैं । प्रथम तीन रचनाएँ उनकी यात्रा-कृतियाँ हैं और 'बचपन की स्मृतियाँ' एक संस्मरण-रचना है । 'घुमक्कड़-शास्त्र' यद्यपि यात्रापरक कृति है परन्तु उसमें यात्रा-विवरण न होकर यात्रा-सम्बन्धी सैद्धान्तिक विवेचन है । अतः यहाँ इसका मूल्यांकन निबन्ध-रचना के रूप में किया गया है । राहुल जी की निबंध-रचनाओं में विषय-वैविध्य है । पुरातत्त्व, राजनीति, दर्शन, धर्म, साम्यवाद, भाषा आदि सभी विषयों पर उनके निबंध प्राप्य हैं ।

राहुल जी के निबंधों का वर्गीकरण

निबन्ध के न विषयों की कोई सीमा है और न ही रूप व शैली की । इस अनेकरूपता एवं विशालता के कारण निबन्ध का वर्गीकरण सहज नहीं । फिर भी रूप-आकार, विषय-शैली आदि को निबन्ध के वर्गीकरण का आधार बनाया जा सकता है—

(क) व्यक्तित्व-सापेक्षता की दृष्टि से ।
(ख) प्रवृत्ति की दृष्टि से ।
(ग) विषय की दृष्टि से ।
(घ) रचना-प्रकार और वर्णन-शैली की दृष्टि से ।

(क) व्यक्तित्व-सापेक्षता की दृष्टि से—इस दृष्टि से निबन्ध दो प्रकार के होते हैं—(१) परिबंध निबन्ध (विषयपरक) तथा (२) निर्बन्ध निबन्ध (व्यक्तिपरक) । निबन्ध का यह विभाजन लेखक के व्यक्तित्व अथवा विषय की प्रधानता पर आधारित है । जिन निबंधों में लेखक की दृष्टि वर्ण्य-विषय के निरूपण में केन्द्रित रहती है, वे विषयपरक निबन्ध कहलाते हैं । यद्यपि इनमें लेखक का व्यक्तित्व सर्वथा निषिद्ध नहीं होता तथापि प्रधानता विषयगत विवरण की ही होती है । दूसरी ओर निर्बन्ध निबन्ध में लेखक की मनःस्थिति स्वच्छन्द रहती है । इस प्रकार की रचना हृदय से उद्भूत होने के कारण मानवीय संवेदनाओं से पूर्ण होती है । ऐसे निबन्धों में लेखक का व्यक्तित्व प्रधान होता है । इसी कारण इन्हें आत्माभिव्यंजक निबन्ध भी कहते हैं ।[१६] राहुल जी के निबन्ध इस दृष्टि से विषय-प्रधान निबन्धों के अन्तर्गत आते हैं ।

(ख) प्रवृत्ति की दृष्टि से—इस दृष्टि से 'साहित्य-कोश' में निबन्ध के
रूप से तीन भेद स्वीकार किये गये हैं—(१) कथात्मक (२) वर्णनात्मक
(३) चिन्तनात्मक। भावात्मक निबन्ध को इस वर्गीकरण में स्थान नहीं दिया
'चिन्तन-प्रधान निबन्धों में लेखक अपनी प्रवृत्ति, स्वभाव या परिस्थिति के अ
भावना को मुख्य आधार बना सकता है।'[१७] कहकर यहाँ भावात्मक निबन्धो
चिन्तनात्मक निबंधों में ही समाविष्ट कर लिया गया है। श्री सीताराम च
निबंधों में वर्णन एवं विवरण को महत्त्व ही नहीं देते और वे विचार-तत्त्व की प्रध
के आधार पर निबंध को पाँच भागों में विभक्त करते हैं - (१) व्याख्यात्मक नि
(२) विचारात्मक निबंध, (३) गवेषणात्मक निबंध, (४) भावात्मक नि
(५) समीक्षात्मक निबंध।[१८] पण्डित सीताराम चतुर्वेदी द्वारा किया गया नि
विषयक प्रस्तुत वर्गीकरण प्रामाणिक नहीं माना जा सकता। इस वर्गीकरण में के
चिंतनपक्ष को ही आधार बनाया गया है। आज निबंध जिस विकसित रूप को प्र
कर चुका है, उसका इस वर्गीकरण में अंतर्भाव होना सहज नहीं है। पुनश्च व्याख
त्मक, समीक्षात्मक, गवेषणात्मक आदि निबंध विचारात्मक निबंध के ही रूप हैं। अ
साहित्य-कोश में दिया गया उपर्युक्त वर्गीकरण इससे अधिक व्यापक लगता है।
वर्गीकरण में भी भावात्मक निबंध को पृथक् वर्ग के रूप में रखा जाना चाहिए क्यो
अध्यापक पूर्णसिंह एवं डॉ० रघुवीरसिंह के निबंध उक्त तीन वर्गों मे समाहित न
किए जा सकते। अतः निबंध को इन चार भागों में बाँटना ही अधिक उपयुक्त है-
(१) वर्णनात्मक, (२) कथात्मक, (३) भावात्मक, (४) विचारात्मक। वर्णनात्म
निबंधों में प्राकृतिक दृश्य अथवा मानव-जीवन-संबंधी किसी भी घटना का वर्णन ह
सकता है। राहुल जी के यात्रा-वर्णनो में कही-कही वर्णनात्मक निबंधकार का रूप भ
उभर आता है। कथात्मक निबंधों में किसी काल्पनिक वृत्त, पौराणिक आख्यान
आत्मचरितात्मक वृत्तांत आदि को स्थान मिलता है। भावात्मक निबंधो में रस औ
भावो की व्यंजना प्रधान रूप से परिलक्षित होती है। 'भावात्मक निबंध का लेखक
भावावेश में आकर भावनाओं का एक तूफान-सा खड़ा कर देता है। उसके हृदय मे
रस की एक धारा-सी उमड़ पड़ती है जो लेखनी द्वारा कागज़ पर ढल पडती है।'[१९]

चिन्तनात्मक निबधों में लेखक के विचारो का प्राधान्य होता है। इनमें तर्क का
आश्रय लिया जाता है। ये निबंध प्राय. गम्भीर तथा प्रयोजनीय विषयो पर लिखे
जाते हैं। आचार्य शुक्ल के शब्दो मे, 'शुद्ध विचारात्मक निबंधो का चरमोत्कर्ष वहीं
कहा जा सकता है, जहाँ एक-एक पैराग्राफ में विचार दबाकर कसे गये हो और एक-
एक वाक्य किसी सम्बद्ध विचार-खण्ड को लिये हुए हो।'[२०] पण्डित विश्वनाथप्रसाद
मिश्र शुद्ध विचारात्मक निबंधों में हृदय और बुद्धि के समान योग का होना आवश्यक
मानते हैं।[२१] राहुल सांकृत्यायन के निबन्ध इन कोटियों में से विचारात्मक कोटि के
अंतर्गत आते हैं। कहीं-कहीं उनके विचारात्मक निबधो में वर्णनात्मक, कथात्मक,
भावात्मक तथा हास्य-व्यंग्यात्मक प्रवृत्तियाँ भी दृष्टिगत होती हैं।

(ग) विषय की दृष्टि से—निबंध के विषयों की कोई सीमा नहीं। साहित्य, समालोचना, पुरातत्त्व, इतिहास, पुराण, धर्म, दर्शन, राजनीति, समाज-शास्त्र, अर्थशास्त्र, मनोविज्ञान, जीवन-चरित, संस्कृति, भाषा, लिपि, प्राकृतिक दृश्य आदि अनेक विषयों पर निबंध लिखे जा सकते हैं। राहुल जी का निबंध-क्षेत्र इस दृष्टि से पर्याप्त विशद है। विषय की दृष्टि से उनके निबंधों को निम्नलिखित भागों में बाँटा जा सकता है—

(१) साहित्य-सम्बन्धी निबन्ध—'हमारा साहित्य', 'प्रगतिशील लेखक', 'साहित्य चर्चा' (साहित्य निबन्धावलि), 'प्रगतिशीलता का प्रश्न', 'आज का साहित्यकार' (आज की समस्याएँ) आदि निबन्ध राहुल जी के साहित्य एवं साहित्य-समीक्षा सम्बन्धी निबन्ध माने जा सकते हैं।

(२) भाषा-विषयक निबन्ध—'हिन्दी भाषा की प्राचीनता', 'मुंगेर में', 'भोजपुरी', 'मातृभाषाओं का प्रश्न', 'बलिया के भाषण' आदि निबन्धों में लेखक के भाषा एवं लिपि सम्बन्धी विचार मिलते हैं।

(३) पुरातत्त्व-सम्बन्धी निबन्ध—'पुरातत्त्व-निबन्धावलि' के अठारह निबंधों के अतिरिक्त 'जय लुम्बिनी', 'सांस्कृतिक निधियों की उपेक्षा क्यों?', 'वैशाली का प्रजातन्त्र' आदि निबन्ध इसी श्रेणी के हैं।

(४) यात्रा-सम्बन्धी निबन्ध—'घुमक्कड़-शास्त्र' के निबन्धों को इस कोटि के निबन्ध माना जा सकता है।

(५) राजनीति-विषयक निबन्ध—राहुल जी के अधिकाश निबन्ध इस श्रेणी में आते हैं। 'साम्यवाद ही क्यों?', 'दिमागी गुलामी' तथा 'तुम्हारी क्षय' रचनाओं के निबन्ध इसी वर्ग के हैं।

(६) सांस्कृतिक निबन्ध—'अज्ञात तिब्बत' के अधिकांश निबन्ध सांस्कृतिक निबन्ध हैं।

(७) कला-सम्बन्धी निबन्ध—'हमारे संगीत में अन्धेर नगरी' इसी प्रकार का निबन्ध है।

(८) दर्शन-सम्बन्धी निबन्ध—'बुद्ध का दर्शन' इस कोटि का निबन्ध है।

इस प्रकार राहुल जी के निबन्धों का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। राहुल जी के विचारात्मक निबन्धों में विषय की अनेकरूपता दर्शनीय है। दर्शन, संस्कृति, परम्परा, आधुनिकता, ज्ञान-विज्ञान, समाज, राजनीति, जीवन, प्रकृति, इतिहास, पुरातत्त्व आदि विषयों पर उन्होंने स्वतंत्र रूप से और वैयक्तिक ढंग से चिन्तन किया है।

(घ) रचना-प्रकार और वर्णन-शैली की दृष्टि से—रचना-प्रकार और वर्णन-शैली की दृष्टि से भी निबंधों के अनेक रूप-प्रकार हो सकते हैं। आकार-प्रकार की भिन्नता की दृष्टि से हिन्दी में अनेक प्रकार के निबन्ध उपलब्ध होते हैं। कई निबन्ध पुस्तकों के अध्यायों के रूप में हैं। पुस्तकों की प्रस्तावनाएँ एवं भूमिकाएँ इसी प्रकार के निबन्धों में सम्मिलित की जा सकती हैं। 'पुरातत्त्व-निबन्धावली' की भूमिका इसी श्रेणी का निबन्ध है।

कतिपय निबन्ध भाषण-रूप में होते हैं। राहुल के 'साहित्य-निबन्धावली' के अधिकांश निबन्ध इसी कोटि के हैं। भाषण-शैली के निबन्धों में पर्याप्त रोचकता रहती है। राहुल जी के निबन्धों में यह विशेषता प्रमुखतः विद्यमान है।

निष्कर्षतः राहुल जी के निबंध मूलतः विषयपरक हैं और उनमें विषय-वैविध्य है। प्रवृत्ति के आधार पर उन्हें प्रधानतः विचारात्मक कहा जा सकता है और राहुल जी ने उनमें विविध रचना-प्रयोगों का परिचय दिया है।

राहुल जी के निबंधों में विचार-तत्त्व

राहुल जी के निबंधों में इतिहास, पुरातत्त्व, भाषा, साहित्य, कला, दर्शन, राजनीति आदि विषयों का विवेचन होने से 'बुद्धितत्त्व' की सहज ही प्रधानता है। उनके व्यक्तित्व में निरन्तर अन्वेषण एवं सतत जागृत जिज्ञासा विद्यमान है। निरन्तर अध्ययन एवं शोध की प्रवृत्ति ने जहाँ उनके साहित्य को विषय-वैविध्य प्रदान किया है, वहाँ उनके विचारों में इससे गहनता, गम्भीरता एवं सुलझी हुई दृष्टि का भी समावेश हुआ है। निबन्धों में व्यक्त उनके उद्‌गार दीर्घकालीन अध्ययन, मनन एवं चिन्तन के परिणाम हैं।

राहुल जी के निबन्धों में व्यक्त विचारधारा प्रधानतः साहित्यिक, सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, इतिहास, पुरातत्त्व-विषयक एवं यात्रापरक-छः वर्गों में निरूपित की जा सकती है।

(क) साहित्य-सम्बन्धी विचारधारा—यहाँ राहुल जी के भाषा, साहित्य एवं कला सम्बन्धी विचारों का संक्षेप में दिग्दर्शन है।

भाषा-सम्बन्धी दृष्टिकोण—राहुल जी प्रगतिशील लेखक थे। भाषा-सम्बन्धी निबन्धों से उनके भाषा-विषयक प्रगतिशील विचारों का स्पष्ट परिचय मिलता है।

राहुल जी हिन्दी के प्रबल समर्थक थे। वे इसे भारत की राष्ट्रभाषा स्वीकारते थे। हिन्दी भाषा का प्रबल समर्थन उनके निबन्धों में मिलता है। एक स्थान पर वे लिखते हैं—"अब भाषा को लीजिए। सारे भारत के प्रान्तों की नब्बे फी सदी जनता के लिए हिन्दी का पढ़ना-लिखना बहुत आसान है। हिन्दी में प्रयुक्त होने वाले साठ-सत्तर फी सदी संस्कृत शब्द समान हैं। वे असमिया, बंगाली, गुजराती, मराठी, तामिल, तेलगू, कन्नड़ भाषा-भाषियों के पहले ही से परिचित हैं। इसके विरुद्ध उर्दू के साठ फी सदी अरबी-फारसी के शब्द उनके लिए बिल्कुल नये हैं। उर्दू का अपनाना बहुत महँगा सौदा है।"[११] इन पंक्तियों में उर्दू की अपेक्षा हिन्दी के राष्ट्रभाषा-रूप का समर्थन है। हिन्दी भाषा भारत की राष्ट्रीयता का प्रतीक है—'हिंदी भाषा में न हिंदुओं का सवाल है, और न इसमें हिंदू-सभा तथा उसके आधुनिक पैगम्बरों की गुहार है। यह तो राष्ट्रीयता की मौत का तकाज़ा है।"[१२]

विदेशी भाषाओं के माध्यम से अध्ययन करने के राहुल जी समर्थक हैं, पर अंग्रेजी को राष्ट्रभाषा बनाये रखना देश की मानसिक पराधीनता समझते हैं। विदेशी

भाषाओं के बहिष्कार के पक्ष में राहुल जी नहीं हैं—"बहिष्कार की बात तो अलग, मैं तो समझता हूँ, अंग्रेज़ों की देखादेखी हममें भी यह दुर्गुण आ गया है, कि हम केवल अंग्रेज़ी भाषा को ही सारे ज्ञान-विज्ञान का भण्डार समझते हैं। विद्वान् जानते हैं कि कितने ही ऐसे विषय हैं जिनके सुपरिचय के लिए फ्रेंच तथा जर्मन भाषाओं की अंग्रेज़ी से भी अधिक आवश्यकता है।"[१३] अतः राहुल विदेशी भाषाओं द्वारा ज्ञानार्जन के विरुद्ध नहीं हैं बल्कि वे कूपमण्डूकता के निवारण एवं प्रगतिशीलता के लिए इसे आवश्यक भी मानते हैं।[१४] वे लेखकों को उनके साहित्य के स्थायित्व के लिए हिंदी में लिखने की प्रेरणा देते हैं।[१५]

हिंदी भाषा की सामर्थ्य एवं उसकी दुर्बलताओं से राहुल भली-भाँति परिचित हैं। हिंदी की समृद्धि के विषय में वे लिखते हैं—"सरहपा से सूरदास, बिहारी से पद्माकर तक के पुराने काव्य-साहित्य की जो अद्वितीय निधि हम हिन्दियों को प्राप्त है, उसके लिए सुरपुर के बृहस्पति और बलिपुर के शुक्राचार्य को भी रश्क होगा, भूतल के दूसरे भाषा-भाषियों के बारे में तो कहना ही क्या।"[१६] हिंदी की वर्तमान प्रगति के सम्बन्ध में उनका कथन है कि—"सरहा-स्वयम्भू से पंत, निराला, महादेवी तक का हिंदी काव्य-साहित्य बहुत सुन्दर और विशाल है। नाटक छोड़कर सभी अंगों में विश्व के किसी भी प्राचीन और नवीन साहित्य से उसकी तुलना की जा सकती है। कथा-साहित्य में प्रेमचन्द ने जो परम्परा छोड़ी है, वह काफी आगे बढ़ी है।"[१७] हिंदी के अभावों से भी राहुल जी अवगत हैं—"एक बात और है, हिंदी को हमें समृद्ध और उन्नत बनाना है। विज्ञान आधुनिक जगत् की विशेषता है। वह हमारे जीवन के प्रत्येक अंग को नये साँचे में ढाल रहा है। ऐसी अवस्था में हिन्दी का भण्डार विज्ञान से अपूर्ण रहे, यह हमारे लिए श्रेयस्कर और उचित नहीं।"[१८]

राहुल जी ने हिन्दी भाषा के व्यावहारिक एवं प्रयोगात्मक रूप पर भी विचार प्रकट किये हैं। हिन्दी के शब्द-भण्डार, व्याकरण, लिपि, मुद्रण आदि पर उन्होंने यत्र-तत्र अनेक टिप्पणियाँ दी हैं। हिन्दी के शब्द-भण्डार को समृद्ध बनाने के लिए वे संस्कृत के तत्सम शब्दों को ग्रहण करने के पक्ष में हैं।[१९] उनकी दृष्टि में वैज्ञानिक शब्दावली की प्राप्ति प्राचीन भाषाओं के स्थान पर संस्कृत भाषा से ही सम्भव है।[२०] स्थानीय भाषाओं के शब्दों को ग्रहण करने में भी उन्हें आपत्ति नहीं। वे स्थानीय भाषाओं के व्यावहारिक शब्दों को हिन्दी में अपनाने के पक्ष में हैं।[२१] वस्तुतः राहुल जी भाषा के विषय में दुराग्रही नहीं हैं। उनकी अपनी रचनाओं में संस्कृत, प्राकृत, पालि, उर्दू, फारसी, तिब्बती, रूसी और अंग्रेज़ी के शब्दों का प्रयोग मिलता है।

राहुल जी हिन्दी के सरल और सुबोध व्याकरण-प्रयोगों का पक्ष लेते हैं। "हिन्दी व्याकरण को भी हमें भाषा के सार्वदेशिक रूप को ध्यान में रखकर कुछ काट-छाँट करना होगा। पाणिनि ने भी अपने व्याकरण में उदीची, प्राची आदि के [illegible] ही स्वतंत्रता को स्वीकार किया है।"[२२] भाषा को सुगम और सार्वजनीन बनाने [illegible] राहुल जी ने वचन, क्रिया, लिंग, सम्बन्धकारक एवं [illegible] पर

बल दिया है।[३४] इस प्रकार राहुल जी हिन्दी भाषा के प्रबल समर्थक और उसे व्यावहारिक रूप देने के पक्षपाती हैं। इस दृष्टि से वे अपने पूर्ववर्ती आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी सरीखे भाषा-शास्त्रियों की परम्परा में अधिक यथार्थवादी एवं प्रगतिशील सिद्ध हुए हैं।

हिन्दी भाषा की तरह देवनागरी लिपि में सुधार लाने के राहुल जी प्रबल समर्थक है। वे देवनागरी लिपि की वैज्ञानिकता तथा रोमन एवं अरबी लिपि से उसकी श्रेष्ठता[३५] प्रतिपादित करते हुए उसमें यथासम्भव सुधार लाना चाहते हैं। इस क्षेत्र में वे लिपि की सौन्दर्य-रक्षा एवं उसकी उपयोगिता दोनों दृष्टियों से विचार करते हैं। लिपि-सुधार-विषयक लोगों की प्रतिक्रियाओं से वे अवगत हैं—"कुछ लोग ऊपर-नीचे की मात्राओं के आकार और स्थान-परिवर्तन से नाक-भौं सिकोड़ेंगे, किन्तु वैसा करने से न तो अक्षर कुरूप होते हैं, और न उनके पढ़ने में दिक्कत होती है। नयी चीज़ पर नज़र पड़ने के लिए कुछ समय की आवश्यकता ज़रूर होती है।"[३६] हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की लिपि-सुधार-समिति की वे इसलिए प्रशंसा करते हैं कि इससे प्रेस और टाइपराइटर की कुछ सुविधाएँ हो जाती हैं परन्तु उनके सुधार वे इसलिए अमान्य ठहराते हैं क्योंकि लिपि के परम्परागत सौन्दर्य की रक्षा नहीं हो सकती।[३७] 'हमारा साहित्य' लेख में भी राहुल जी ने विस्तारपूर्वक लिपि-सुधार-सम्बन्धी विचार प्रकट किये हैं।[३८]

राहुल जी ने राष्ट्रभाषा के अतिरिक्त मातृभाषाओं के प्रश्न पर भी विशदतः विचार किया है। यदि हिन्दी अन्तःप्रांतीय भाषा है तो प्रत्येक प्रान्त की अपनी मातृभाषा भी है। मातृभाषा को वे इन शब्दों में परिभाषित करते हैं—"मातृभाषा की हमारी परिभाषा है जिसके बोलने में अनपढ़-से-अनपढ़ आदमी और बच्चा तक भी व्याकरण की गलती नहीं कर सके।"[३९] मातृभाषा और हिन्दी के सम्बन्ध के विषय में वे लिखते हैं—"हिन्दी को हम अन्तःप्रान्तीय भाषा मान सकते हैं, पर वह हमारी मातृभाषा नहीं है, और उसे कभी किसी भी मातृभाषा को मारकर पूतना बनने का अधिकार नहीं है। .... मातृभाषाओं के अधिकार को स्वीकार कर लेने पर भी जनता-युग में हिन्दी को क्षति बिल्कुल नहीं पहुँचेगी, उसके अनेक साहित्यिक तब भी दूसरे क्षेत्रों में पैदा होते रहेंगे।"[४०] मातृभाषाओं की उपयोगिता के विषय में उनका कथन है—"मातृभाषाओं को ज्ञान का माध्यम बनाने से ही शिक्षा की प्रगति हो सकती है, ... हम विशाल जनता को चन्द सालों में साक्षर और शिक्षित करने की बात सोचते हैं तो यह छोड़ 'नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय' साफ मालूम होता है।"[४१] राहुल जी भारत की प्रगति के लिए मातृभाषाओं के आधार पर प्रान्त-निर्माण को आवश्यक समझते हैं और इसमें भारत का विकेन्द्रीकरण न मानकर केन्द्रीकरण मानते हैं।[४२] इस प्रकार राहुल जी हिन्दी भाषा को राष्ट्रभाषा का गौरव प्रदान करते हुए मातृभाषाओं के स्वतन्त्र अस्तित्व को भी स्वीकारते हैं, उन्हें ज्ञानार्जन का माध्यम एवं शिक्षा की कसौटी मानते हैं। राहुल जी के भाषा-सम्बन्धी ये मौलिक विचार निस्सन्देह प्रगतिशील एवं जनवादी कलाकार के विचार हैं।

साहित्य-सम्बन्धी विचार—राहुल जी ने 'हिन्दी-भाषा की प्राचीनता', 'हमारा साहित्य', 'बर्मा के भारतीयों का कर्तव्य', 'प्रगतिशील लेखक', 'आज का साहित्यकार', 'प्रगतिशीलता का प्रश्न' आदि निबन्धों में हिन्दी-साहित्य, छायावाद, प्रगतिवाद, साहित्यकार का दायित्व आदि प्रश्नों पर विचार किया है। यहाँ लेखक के विचार प्रगतिवादी विचारधारा से प्रभावित प्रतीत होते हैं। कई स्थलों पर राहुल जी का समीक्षक-रूप भी उभरा है।

राहुल जी हिन्दी-साहित्य का आरम्भ चौरासी सिद्धों के काल से मानते हैं। 'हिन्दी काव्यधारा' की भूमिका में उन्होंने हिन्दी के आदिकाल की परिधि को १०-११वीं शती से बढ़ाकर ८वीं शती तक पहुँचाया है। 'चौरासी सिद्धों का काल हिन्दी-साहित्य का आरम्भकाल है, जो कि तिब्बती ग्रन्थों के आधार पर निश्चित है।' वे आगे लिखते है "७५०ई० में सरहपा का होना ठीक जँचता है।"[४१] राहुल जी के इस काल-निर्णय मे उनकी सूक्ष्म अन्वेषण-प्रतिभा एवं अध्ययन-वृत्ति दृष्टिगोचर होती है। हिन्दी के सन्त-साहित्य एवं नाथ-साहित्य के सम्बन्ध के विषय में उनके शोधपूर्ण निष्कर्ष हैं—"सिद्धो की कविता का प्रचार ही पीछे कबीर, नानक, दादू आदि सन्तों के वचन-प्रवाह के रूप में परिणत हो गया। किन्तु सिद्ध-काव्य-प्रवाह को पन्द्रहवीं शताब्दी के आरम्भ मे आरब्ध होने वाले कबीर आदि सन्तों की कविता के प्रवाह से जोड़ने के लिए नाथ-पन्थ की कविताएँ संयोजक शृंखला है।"[४२]

रीति-प्रभावित काव्य एवं छायावादी काव्य में से राहुल जी छायावादी काव्य को श्रेष्ठतर कहते हैं। उनकी दृष्टि में छायावादी काव्य रूढ़ियों के विरुद्ध विद्रोह का प्रतीक है। "गत अर्द्ध शताब्दी हिन्दी कविता के लिए हेमन्त काल था। नायक, नायिकाओं की रीतियों के गोरखधन्धे द्वारा सम्मोहित लोग भले ही तारीफ के पुल बाँधते हों, किन्तु इस काल में मस्तिष्क को उद्भासित और हृदय को द्रवित कर देने वाली उक्त कविताओं का अभाव ही रहा है। इस निराशामयी स्थिति में भी आशा की झलक आने लगी है, और यह झलक मुझे तो उस कविता द्वारा आती मालूम होती है, जिसे लोग निन्दा अथवा प्रशंसा के भाव से छायावाद कहते हैं। इस छायावाद की परिभाषा दूसरे चाहे कुछ भी करते हो, मैं तो इसे समझता हूँ पुरानी रूढ़ियों और नाना भाँति की जकड़बन्दियों के प्रति विद्रोह का झण्डा उठाना।"[४३] इन पंक्तियों से लेखक की विचारगत प्रगतिशीलता का परिचय मिलता है।

हिन्दी मे रचना-वैचित्र्य का अभाव राहुल जी को खटकता है। वे इस साहित्यिक अभाव को इन शब्दों मे प्रकट करते हैं—"चाहे बिहार के धान के खेत या विस्तीर्ण मैदान हों, चाहे गढ़वाल के देवदारु वृक्षों से आच्छादित हिमालय की पर्वत-श्रेणियाँ या शिखर, चाहे मारवाड़ की मरुभूमि हो या जबलपुर की विन्ध्याटवी, सभी जगह के लेखक और कवि मानो आपस मे समझौता कर चुके हैं कि भरसक वे अपने लेखों में इन स्थानीय दृश्यों को आने न दें। इसी के कारण हिन्दी-साहित्य मे रचना-

वैचित्र्य ग्राने नहीं पाता।"[३६] साहित्य में नारी-चित्रण से विषय में भी लेखक के विचार द्रष्टव्य हैं—"केवल लिखने-मात्र से ही ये दिव्यलोक की प्राणी नहीं हो सकती। वे भी पुरुषों की तरह इसी लोक की जीव हैं, पुरुषों के भोग-विलास की सामग्री-मात्र भी नहीं हैं, बल्कि उन्हीं की तरह वे अपना स्वतन्त्र ग्रस्तित्व भी रखती हैं और वास्तव में इसी दृष्टि से साहित्य में उनका चित्रण भी होना चाहिए।"[३७] नारी-सम्बन्धी राहुल जी का यह दृष्टिकोण उनके यथार्थवादी विचारक का है। इस प्रकार राहुल जी ने अपने निबन्धों में साहित्य की समस्याओं एवं उपलब्धियों पर विचार किया है। 'हमारा साहित्य' में लेखक ने हिन्दी के काव्य, कथा, समालोचना, नाटक, अनुवाद, पत्र, साहित्यकार की समस्याओं आदि के सम्बन्ध में विचार व्यक्त किये हैं।

राहुल जी की प्रगतिशील एवं जनवादी विचारधारा के प्रतीक निबन्ध विशेष रूप से उल्लेख्य हैं। वे हैं 'प्रगतिशीलता का प्रश्न', 'प्रगतिशील लेखक' तथा 'ग्राज का साहित्यकार'। प्रगतिवाद लेखक की दृष्टि में "कोई 'कल्ट' या संकीर्ण सम्प्रदाय नहीं है। प्रगतिवाद का काम है प्रगति के बँधे रास्ते को खोलना, उसके पथ को प्रशस्त करना। प्रगतिवाद कलाकार की स्वतन्त्रता का नहीं, परतन्त्रता का शत्रु है।"[३८] राहुल जी प्रगतिवाद को कला की अवहेलना भी स्वीकार नहीं करते।[३९] प्रगतिशील लेखक उनकी दृष्टि में जनकल्याण का समर्थक है।[४०] 'प्रगतिशीलता का प्रश्न' निबन्ध में लेखक प्रगतिवादी साहित्य पर लगाये गए आक्षेपों का उत्तर देता है। राहुल प्रगतिशीलता को जीवन के प्रत्येक ग्रंग से सम्बन्धित मानते हैं।[४१] वह अपनी पूर्वगामी संस्कृति-धारा से वंचित नहीं।[४२] साथ ही वह प्रतिगति की ग्रोर भी अग्रसर नहीं हो सकती।[४३] प्रगतिशील साहित्य के लक्ष्य के विषय में राहुल जी लिखते हैं—"प्रगतिशील साहित्य या लेखक को समझने की सबसे बड़ी बात यह होनी चाहिए कि वह दुनिया को व्याख्या करने के लिए नहीं ग्राया है और न उसके लिए दो-चार ग्राँसू बहा देने या दो-चार ठहाके लगा देने से ही उसका फर्ज पूरा हो जाता है।.........हमने ससार को जैसा पाया उससे बेहतर ग्रवस्था में ग्राने वालों के हाथ में देना है।"[४४] राहुल प्रगतिशील साहित्यकार को जनवादी कलाकार मानते हैं। उनकी दृष्टि में प्रगति का स्रोत लेखक का मस्तिष्क न होकर साधारण जनता है।[४५] साहित्यिक प्रगतिशीलता के विषय में राहुल जी का यह कथन ध्यातव्य है—"साहित्य में प्रगतिशीलता हमसे माँग करती है कि जितनी ही विस्तृत हो उतनी ही गहरी भी हो, जितनी ही देश में फैली हो उतनी ही एक-एक व्यक्ति के पास पहुँची भी हो। इसके लिए मातृभाषाओं के द्वारा शीघ्र-से-शीघ्र सारी जनता को साक्षर और शिक्षित, कला-साहित्य-पारखी बनाने के सिवा और कोई रास्ता नहीं।"[४६] ग्रतः ग्राज के प्रगतिशील साहित्यकार को जन-साहित्यकार बनना है, उसे जन-मन का रंजन करना है, जन-मन में शक्ति और स्फूर्ति पैदा करनी है, उसे पलायन के स्थान पर संघर्ष का संदेश देना है, उसे दुनिया बदलनी है।[४७] जनता और लेखक का ग्रविच्छिन्न सम्बन्ध है—"साहित्यकार जनता का जबरदस्त साथी, साथ-ही-साथ उसका अगुवा भी है। वह सिपाही है और सिपहसालार

भी है। लेकिन आज का सिपहसालार, आज का अगुवा तभी अपने कर्त्तव्य को ठीक तरह से पूरा कर सकता है, यदि वह जनता से अभिन्नता स्थापित करे।"[४८] राहुल जी के साहित्य-सम्बन्धी विचारों से स्पष्ट है कि उनकी विचारधारा में प्रगतिशीलता है और वे जनवादी निबन्धकार हैं।

कला—राहुल जी 'कला कला के लिए' सिद्धान्त के अनुयायी न होकर 'कला जीवन के लिए' सिद्धांत के अनुगामी हैं। वे कलाकार का लक्ष्य-केन्द्र जनता को स्वीकारते हैं। संगीत एवं नृत्यकला की प्रगतिशीलता के विषय में राहुल जी लिखते हैं—"संगीत में प्रगतिशीलता हम से माँग करती है कि हम जन-संगीत से अपनी संगीत-प्रतिमा को जोड़कर एक नये संगीत का निर्माण करें। नृत्यकला में प्रगतिशीलता हमसे माँग करती है कि हम अश्लील, दरबारी, निर्जीव नृत्य के स्थान पर जन-नृत्य को कला के क्षेत्र में लायें।"[४९] 'हमारे संगीत मे अन्धेर नगरी' निबन्ध में वे 'कला-कला के लिए' सिद्धान्त की आलोचना करते हैं "स्वयं संगीत के कर्णधार संगीत की जड़ काटने को उतारू हैं। ..... 'कला कला के लिए' इस सूत्र को वह संगीत-कला के क्षेत्र मे बड़ी कड़ाई के साथ लागू करना चाहते हैं। वह संगीत को जन-मनोरंजन का साधन न रहने देकर कुछ और ही बनाना चाहते हैं।"[५०] इस प्रकार राहुल जी साहित्य की तरह कला के क्षेत्र में जनवादी विचारों की अभिव्यक्ति करते हैं।

(ख) समाज-जीवन-दर्शन—"निबन्धकार अपने विशेष रूप में एक जीवन का व्याख्याता, जीवन का आलोचक होता है। वह एक इतिहासवेत्ता या एक दार्शनिक अथवा कवि या उपन्यासकार की तरह जीवन का अवलोकन नहीं करता किन्तु इन सबका मिश्रित रंग उसमें पाया जाता है।"[५१] इस दृष्टि से निबन्धकार राहुल जी की एक बहुत बड़ी विशेषता है उनका जीवनावलोकन अथवा जीवन की व्याख्या। राहुल जी के समाज-दर्शन अथवा जीवन-दर्शन में एक उपन्यासकार की-सी व्यापकता है, कवि की-सी मार्मिक अनुभूति है, इतिहासकार की-सी ऐतिहासिक दृष्टि है, समाजशास्त्री और दार्शनिक की-सी गहराई एवं सूक्ष्मता है। उनके सास्कृतिक, ऐतिहासिक एवं सामाजिक निबन्धो में उनकी जीवन और समाज सम्बन्धी विचारधारा व्यापकता, सूक्ष्मता तथा पूर्णता से प्रकट हुई है। साम्यवादी जीवन-दृष्टि का अन्तर्भाव उनकी विचारधारा में समानान्तर रूप से हुआ है।

राहुल सामाजिक साम्य को मानवोन्नति के लिए आवश्यक मानते हैं। इस साम्य-स्थापना के लिए वे जीवन को नारकीय बनाने वाले तत्त्वों का उन्मूलन अनिवार्य समझते हैं। समाज की वर्तमान अवस्था का चित्रण इन पक्तियों में देखिए—"आज समाज ने प्राकृतिक और पशु-जगत् के दूसरे शत्रुओं को पैदा कर दिया है, जिन्होंने कि उन प्राकृतिक और पाशविक शत्रुओं से भी अधिक मनुष्य-जीवन को नारकीय बनाने का काम किया है।"[५२] लेखक ऐसे समाज की क्षय चाहता है क्योंकि इसमे अपने भीतर के व्यक्तियों के प्रति न्याय नहीं है, व्यक्ति को अपने परिश्रम का फल प्राप्त नही होता, किसान, मज़दूर और निर्धन का शोषण हो रहा है।[५३] शोषित वर्ग के प्रति

लेखक को सहानुभूति है। उसकी करुण-अवस्था का एक चित्र अवलोकनीय है—"लेकिन खुद उसके लिए क्या मिलता है? उसकी झोपड़ी शायद ही बरसात में साबित रहती हो। उसके बदन के लिए चीथड़े भी ढकने के लिए नहीं मिलते। कितनी ही उसकी बनाई चीजें उसके लिए स्वप्न की-सी मालूम होती हैं और मजदूरों की हड्डियों, पसीने और चिन्ता से बनी इन चीज़ों का उपभोग कौन करता है? उनके गारे से उठी अट्टालिकाओं में विहार कौन करता है? वह बड़ी-बड़ी जोंकें-ज़मींदार, महाजन, मिल-मालिक, बड़ी-बड़ी तनखाहों वाले नौकर, पुरोहित।"[१४] भारतीयों की निर्धनता के अनेक चित्र उनके निबन्धों में मिलते हैं।[१५]

सामाजिक वैषम्य का एक बहुत बड़ा कारण जात-पांत की भेद-भावना है। इसी कारण भारतीय लोग विदेशियों से पददलित होते रहे और उनमें कभी राष्ट्रीयता का भाव जागृत नहीं हुआ। इसीलिए लेखक को जात-पांत की क्षय अभीष्ट है। वह इससे समाज के स्वर्णिम भविष्य का स्वप्न देखता है।[१६] राहुल जी भारत की प्रगति के लिए सारे भारतीयों को एक जाति देखना चाहते हैं—"हिन्दुस्तानी जाति एक है। सारे हिन्दुस्तानी, चाहे वे हिन्दू हों या मुसलमान, बौद्ध हों या ईसाई, मज़हब के मानने वाले हों या ला-मज़हब, उनकी एक जाति है—हिन्दुस्तानी, भारतीय।"[१७] उन्होंने हिन्दू-मुस्लिम-समस्या का समाधान साम्यवादी पद्धति से ही सम्भव माना है।[१८]

सामाजिक सदाचार पर भी राहुल जी ने अपने विचार प्रकट किये हैं। सदाचार की प्रचलित धारणा के विषय में राहुल जी व्यंग्यमयी शैली में लिखते हैं—"सद् आचार अर्थात् श्रेष्ठ पुरुषों का आचार। श्रेष्ठ किसे कहते हैं? क्या श्रेष्ठ की कोटि में उस गरीब की गिनती हो सकती है, जो ईमानदारी से की गई अपनी कमाई को खाने का हक न रखकर दाने-दाने को मुहताज है? नहीं, श्रेष्ठ से मतलब है, पुराने-नये राजा, राजऋषि, बड़े-बड़े राजाओं के पुरोहित और गुरु, ऋषि-मुनि जिन्होंने कि सदाचार-प्रतिपादक शास्त्र और स्मृतियाँ बनाई हैं। श्रेष्ठ से मतलब है पीर-पैगम्बर, मूसा दाऊद से जो कि खुद राजा या शासक थे, अथवा किसी दूसरे तरीके से बहुत जन-धन के स्वामी बन गये थे।"[१९] लेखक का यह स्पष्ट मन्तव्य है कि "सदाचार का जितना कम पालन धर्मानुयायी और ईश्वर-भक्त करते हैं, जितनी अवहेलना उनके यहाँ इस नियम की होती है, उतनी और जगह नहीं"[२०] वस्तुतः धर्म-सुधारकों द्वारा सदाचार की स्थापना तथा अन्य सामाजिक सुधारों की सम्भावना ही नहीं की जा सकती।[२१]

मिथ्या विश्वास भी सामाजिक प्रगति में बाधक और मानसिक दासता के प्रतीक हैं। लेखक इसी मानसिक दासता का विरोधी है और इसकी एक-एक कड़ी को निष्ठुरता के साथ तोड़ फेंकने के लिए[२२] आह्वान करता है। सामाजिक रूढ़ियों को तोड़ने का कार्य किसी भी प्रकार के बलिदान से कम नहीं—"लोग जेल जाने और फाँसी चढ़ जाने के लिए बड़ी हिम्मत की बात कहते हैं। समाज की रूढ़ियों को तोड़ना और उसके साथ उसकी आँखों में काँटे की तरह खटकना जेल और फाँसी से

भी ज्यादा साहस का काम है।"[73] इस प्रकार राहुल जी ने अपने निबन्धों में समाज-सम्बन्धी विचारों की उत्तेजक अभिव्यक्ति सरस रूप में की है।

(ग) धार्मिक एवं सांस्कृतिक दृष्टिकोण—राहुल जी ने यत्र-तत्र धर्म, ईश्वर, संस्कृति और सभ्यता सम्बन्धी मन्तव्य दिये हैं, उसका विवेचन यहाँ अभीष्ट है।

धर्म तथा ईश्वर—*राहुल जी बौद्धधर्म एवं द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के* अनुयायी थे। रूढ़िगत धर्म पर कुठाराघात करने के लिए उनकी लेखनी सर्वत्र तत्पर दिखाई देती है। धर्म के परम्परागत रूप के विषय में राहुल जी के क्रान्तिकारी विचार उल्लेखनीय हैं—"धर्म या मजहब का असली रूप क्या है? मनुष्य जाति के शैशव की मानसिक दुर्बलताओं और उनसे उत्पन्न मिथ्या विश्वासों का समूह ही धर्म है। यदि उसमें और भी कुछ है, तो वह है पुरोहितों और सत्ताधारियों के धोखे-फरेब, जिनसे वह अपनी भेड़ों को अपने गल्ले से बाहर जाने देना नहीं चाहते।"[74] धर्म, लेखक की दृष्टि में प्रगति के मार्ग में बाधक है—"धर्म पुराने का पूजक और भविष्य की प्रगति का विरोधी रहेगा ही। वह तो श्रद्धा और भक्ति के नाम पर हमारे गले में मुर्दा बाँधने का ही प्रयत्न करेगा।"[75] इस रूढ़िगत धर्म का उद्देश्य खून चूसने वाली जोंकों के स्वार्थ की रक्षा[76] करना है। अतएव लेखक मूढ़ विश्वासों तथा रूढ़ियों के पोषक[77] धर्म की क्षय चाहता है—'हिन्दुस्तानियों की एकता मजहबों के मेल पर नहीं होगी, बल्कि मजहबों की चिता पर। कौए को धोकर हंस नहीं बनाया जा सकता। कमली को धोकर रंग नहीं चढ़ाया जा सकता। उसका, मौत को छोड़कर कोई इलाज नहीं।'[78]

राहुल जी के मतानुसार धर्म की तरह ईश्वर भी मानवीय प्रगति में बाधक है। वे ईश्वर को अन्धकार की उपज मानते हैं—'जिस समस्या, जिस प्रश्न, जिस प्राकृतिक रहस्य को जानने में आदमी अपने को असमर्थ समझता था, उसी के लिए वह ईश्वर का ख्याल कर लेता था। दर-असल ईश्वर का ख्याल है भी तो अन्धकार की उपज।'[79]

ईश्वर मनुष्य की अज्ञानता और उसकी असमर्थता का द्योतक है और ईश्वर का विश्वास करने के आगे-पीछे विज्ञान न बढ़कर कुछ नहीं है।"[80] साम्यवादी राहुल के लिए ईश्वर का ख्याल हमारी सभी प्रकार की प्रगतियों का बाधक है। मानसिक दासता को वह प्रश्रय देती है। शोषकों का वह समर्थक रहा है।[81] धर्म और ईश्वर के नाम पर हुए अत्याचारों का वर्णन करने के लिए उन्होंने इतिहास से अनेक उद्धरण प्रस्तुत किये हैं।[82] 'तुम्हारी क्षय' में राहुल जी धर्म के विरुद्ध लिखते हैं—"धर्म और ईश्वर के ठेकेदारों ने जनता का अब तक कितना नुकसान [illegible]

में साम्यवाद के समीप होने के कारण उन्हें मान्य रहा है। बौद्धधर्म के 'क्षणि
'सर्वानित्यवाद' एवं 'अनात्मवाद' में उनकी आस्था है।[८४]

संस्कृति-सभ्यता—राहुल जी संस्कृति को धर्म से पृथक् वस्तु
है—'संस्कृति का अपना स्वतन्त्र अस्तित्व और व्यक्तित्व है। उसके लिए न
अनिवार्य चीज़ है न पूँजीवाद पर आधारित आज की सामाजिक व्यवस्था। सा
जाति के सहस्राब्दियों के आन्तरिक और बाह्य अनुभवों की हमारे जातीय की ख
है।'[८५] संस्कृति को लेखक गतिशील वस्तु मानता है, साथ ही रूढ़िगत राजतां
संस्कृति को वह प्रगति-विरोधी वस्तु समझता है। 'जिस अपने इतिहास और संस्
का अभिमान हम करते हैं वह हमें एक साधारण मनुष्य जैसा जीवन भी बिताने
नहीं चाहता।'[८६]

संस्कृति की तरह हमारी प्राचीन सभ्यता भी लेखक को मानसिक दासता
कारण प्रतीत होती है—'जिस जाति की सभ्यता जितनी पुरानी होती है, उस
मानसिक दासता के बन्धन भी उतने ही अधिक होते हैं। भारत की सभ्यता पुरानी
इसमें तो शक ही नहीं और इसलिए इसके आगे बढ़ने के रास्ते में रुकावटें भी अधि
हैं।'[८७] भारतीयों को अपनी प्राचीन सभ्यता पर गर्व है लेकिन उनके पास वर्तमान
क्या है, इस बात को लेकर निबन्धकार व्यंग्यपूर्ण शब्दों में कहता है—'आज हमा
हाथ में चाहे आग्नेय अस्त्र न हों, नई-नई तोपें और मशीनगन न हों, समुन्दर के नीचे
और हवा के ऊपर से प्रलय का तूफान मचाने वाली पनडुब्बियाँ और जहाज़ न हों
लेकिन यदि हम राजा भोज के काठ के उड़ने वाले घोड़े और शुक्रनीति में बारूद
साबित कर दें तो हमारी पाँचों अँगुलियाँ घी में। इस बेवकूफी का भी कहीं ठिकाना
है कि बाप-दादों के झूठ-मूठ के ऐश्वर्य से हम फूले न समायें और हमारा आधा जोश
उसी की प्रशंसा में खर्च हो जाय।'[८८] संस्कृति और सभ्यता विषयक उक्त उग्र
विचारों से यह निष्कर्ष निकालना कदापि उचित न होगा कि राहुल को भारतीय
संस्कृति से अनुराग नहीं। यहाँ वे केवल उसके अभावात्मक पक्ष को ही स्पष्ट करते
हैं और रूढ़िवादिता की प्रवृत्ति पर प्रहार करते हैं। राहुल को भारतीय संस्कृति से
अनन्य अनुराग है। सांस्कृतिक निधियों की उपेक्षा उन्हें असह्य है। एतद्विषयक राहुल
जी के विचार निम्न पंक्तियों में द्रष्टव्य हैं—'दीर्घकालव्यापी संस्कृति किसी जाति के
लिए अभिमान की ही नहीं, बल्कि वह जिम्मेदारी की भी चीज़ है। हमारी संस्कृति
दुनिया की तीन-चार अत्यन्त प्राचीन संस्कृतियों में से एक है। जैसे हमारे ... ...
निर्माण में पीढ़ियों से गुज़रती हुई हमारी संस्कृति आज भी सजीव रूप में विद्यमान
है, उसी तरह वह ठोस और साकार रूप में हमारी धरती के भीतर और ऊपर अपने
समकालीन अस्तित्व को छोड़े हुए है।'[८६]

राहुल जी की दृष्टि में राष्ट्रीय संस्कृति सर्वोपरि है। हिन्दी-उर्दू ...
तथा हिन्दू-मुस्लिम-वैमनस्य की ...

सौ वर्ष से रहते आ रहे हैं, कुछ को छोड़कर बाकी सब यहाँ के निवासियों की ही सन्तान हैं, तब भी *यहाँ की संस्कृति को वे अपनी संस्कृति नहीं समझते और इसीलिए* इस देश के प्रति मातृभूमि होने का भाव भी नहीं रखते। आजकल का हर एक *जीवित-जागृत देश अपनी राष्ट्रीय संस्कृति का सम्मान करना कर्त्तव्य समझता है।'*[९०] संस्कृति-विषयक उपर्युक्त विचारों से स्पष्ट है कि राहुल जी संस्कृति के प्रगतिशील तत्त्वों के उपासक हैं। वे उसके रूढ़िवादी रूप के प्रति आक्रोश प्रकट करते हैं। उन्हें अपनी संस्कृति पर गर्व है और राष्ट्रीय संस्कृति को वे सर्वाधिक महत्त्व देते हैं।

(घ) राजनीतिक विचारधारा—राहुल जी की साम्यवादी जीवन-दृष्टि एवं गणतन्त्र-शासन-पद्धति सम्बन्धी विचारों का विवेचन निम्नलिखित है।

साम्यवादी जीवन-दृष्टि—राहुल जी का साम्यवादी जीवन-दर्शन—*'दिमागी गुलामी', 'तुम्हारी क्षय' तथा 'साम्यवाद ही क्यों ?'*—इन निबन्ध-संग्रहों में अभिव्यक्त हुआ है। राहुल जी ने साम्यवाद की उत्पत्ति, पूँजीवाद से उसके संघर्ष एवं उसके ध्येय आदि पर सविस्तार विचार किया है। साम्यवाद मनुष्य के विकास की एक अवस्था की उपज है।[९१] वह आर्थिक साम्य स्थापित करने का एकमात्र साधन है। पूँजीवाद जहाँ समाज का शोषण करता है, वहाँ साम्यवाद सभी को समाधिकार प्रदान करता है। पूँजीवाद के विषय में राहुल जी लिखते हैं—'पूँजीवाद धनार्जन का वह खास ढंग है, जिस में एक मनुष्य, दूसरा कोई प्रभुत्व न रखते हुए भी, सिर्फ अपनी पूँजी के बल पर चीज़ों के बनाने के बहुमूल्य साधनों पर अधिकार कर, बहु-संख्यक मनुष्यों के श्रम के कितने ही भाग को मुफ्त ही अपने निजी लाभ और अपनी मददगार पूँजी के बढ़ाने में उपयोग करता है।'[९२] लाभ-प्राप्ति पूँजीवाद के जीवन-मरण का प्रश्न है।[९३] युद्धों की विभीषिकाएँ एवं समाज की दरिद्रता पूँजीवाद के परिणाम हैं।[९४] इसके विपरीत साम्यवाद का ध्येय वैज्ञानिक आविष्कारों के उप-योग द्वारा मानव-समाज के लिए सुख-साधनों की वृद्धि करना है।[९५] वस्तुतः साम्य-वाद पूँजीवाद से उत्पन्न कठिनाइयों की औषधि है।[९६] भारत एक निर्धन देश है। इसकी निर्धनता का उपचार साम्यवाद ही है, पूँजीवाद नहीं, क्योंकि 'पूँजीवाद में श्रम का अपव्यय और नाश भारी परिमाण में होता है।'[९७] आर्थिक समस्या किसी भी देश की सबसे बड़ी समस्या है जिसे पूँजीवाद और भी अधिक विकट बनाता है।[९८] इसके अतिरिक्त अन्य सामाजिक कुरीतियाँ तथा जातीय भेद-भाव, प्रान्तीय भेद-भाव आदि सभी इसी आर्थिक समस्या से सम्बद्ध होने के कारण साम्यवाद द्वारा ही निवारणीय हैं।[९९] पूँजीवाद जोंक के सदृश है। वह दूसरों द्वारा अर्जित सम्पत्ति रूपी रक्त पर अपना निर्वाह करता है। ऐसी जोंकों से समाज का हित असम्भव है।[१००]

गणतन्त्र-प्रजातन्त्र—राहुल जी के राजनीतिक विचार साम्यवादी विचारधारा से प्रभावित हैं जो राजतन्त्र एवं साम्राज्यवाद के स्थान पर गणतन्त्र एवं

हैं। यही कारण है कि इतिहास-विषयक निबन्ध लिखते हुए उन्होंने ऐसे विषयों
चयन किया जिनसे प्रजातान्त्रिक शासन-पद्धति का महत्त्व व्यक्त किया जा सके त
आधुनिक भारतीय प्रजातन्त्र का समुचित उन्नयन हो सके। 'वैशाली का प्रजात
निबन्ध मे वे लिखते हैं—'वैशाली से उत्प्रेरित हो नवीन प्रजातन्त्रीय भारत के लि
यहाँ एक आदर्श भूखण्ड तैयार करना चाहिए।'[101] जनतन्त्र-शासन-प्रणाली से
बहुजनहित सम्भव है—'जनतन्त्रता से ही बहुजनहित हो सकता है, हमारे देश
गौरवपूर्ण भविष्य इसी बात पर निर्भर करता है कि यहाँ जनतन्त्रता का एकच्छ
राज्य हो और इस जनतान्त्रिक भावना के सार्वजनीन प्रसार के लिए हमारे प्राची
प्रजातन्त्रो का इतिहास बहुत सहायक हो सकता है।'[102] वैशाली के राज्य-प्रबन्ध[104] तथ
संन्यासी अखाड़ों की व्यवस्था[103] मे लेखक ने प्रजातन्त्रीय प्रणाली की व्यवस्था क
उल्लेख किया है। लिच्छवि और यौधेय प्राचीन भारतीय गणतन्त्र-प्रणाली के प्रबल
पोषक थे।[105]

राहुल जी के अनुसार राजतन्त्र गणतन्त्र का प्रबल शत्रु है। यौधेयो एव
लिच्छवियों का उच्छेद करने वाली राजतन्त्रीय शासन-प्रणाली थी। लेखक राजत-त्र
की निरंकुशता एवं अत्याचारो का वर्णन 'सन्यासी अखाड़ो की जनतन्त्रता' शीर्षक
निबन्ध मे करता है—'आकाशीय ईश्वर के शासन मे हस्तक्षेप करने का अधिकार जैसे
किसी को नही है, उसी तरह विष्णु के अंश इस राजा के काम में भी किसी को दखल
देने की ज़रूरत नहीं है।'[106] संक्षेप में यहाँ इतना ही कहना उपयुक्त होगा कि राहुल
जी का राजनीतिज्ञ गणतन्त्र-प्रणाली का प्रबल समर्थक एव प्रशंसक है।

(ङ) इतिहास-पुरातत्त्व-विवेचन—राहुल जी इतिहास एवं पुरातत्त्व के
प्रकाण्ड विद्वान् हैं। उनके निबन्धों मे इतिहास एवं पुरातत्त्व को भी वर्ण्य-विषय
बनाया गया है। 'अज्ञात तिब्बत' तथा 'पुरातत्त्व निबन्धावली' के निबन्धों के
अतिरिक्त 'संन्यासी अखाड़ों की जनतन्त्रता', 'वैशाली का प्रजातन्त्र', 'सोवियत के दो
भारतीय तत्त्वज्ञ', 'जय लुम्बिनी', 'इतिहास का अध्ययन', 'कुरुदेश के ठापे' आदि निबंध
उनकी ऐतिहासिक प्रतिभा एवं पुरातात्त्विक शोध के परिचायक है। इन निबन्धों मे
उनकी इतिहास एवं पुरातत्त्व-सम्बन्धी मान्यताओ को सुन्दर अभिव्यक्ति मिली है।

इतिहास की परिभाषा एवं उपयोगिता राहुल जी ने इन शब्दों में प्रकट की
—'मनुष्य जिज्ञासा का पुतला है। वह अपनी जिज्ञासाओ की पूर्ति के लिए कैसे-
से प्रयत्न करता रहा, इसे जानने की कुछ-न-कुछ जिज्ञासा हरेक प्रकृतस्थ पुरुष मे
होती है। इस पूर्ति के प्रयत्न मे जो कुछ लिखा या कहा गया, या कहा जा रहा है या
कहा जायेगा, वह इति-ह-आस (ऐसा ही था) है। इतिहास के अध्ययन से बौद्धिक
मनोरंजन होता है और आर्थिक लाभ मे वृद्धि एक साधन है। इस प्रकार इतिहास के
अध्ययन को केवल स्वान्तः-सुखाय या परान्तः सुखाय नही कह सकते
प्राकृतिक सूत्र।'[107] पुरातत्त्व और इति

सामग्री कही जाती है। हमारा वही इतिहास सच्चा है, जो ऐसी सामग्री को आधार बनाकर चलता है।[107] पुरातात्विक सामग्री के आधार के बिना पौराणिक गाथाओं को ले कल्पना के सहारे इतिहास नहीं लिखा जा सकता।'[108] पुरातात्विक सामग्री का महत्त्व लेखक की इन पंक्तियों में दर्शनीय है—'पुरातात्विक निधियाँ अत्यन्त ठोस और निर्भ्रान्त समकालीन अभिलेख हैं, उनका महत्त्व उसी तरह सबसे अधिक है, जिस तरह यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति के लिए प्रत्यक्ष का।'[109] भारत की पुरातात्विक सामग्री का उल्लेख वे इन शब्दों में करते हैं—'इतिहास की सबसे ठोस सामग्री ही पुरातत्व-सामग्री है, और उस सामग्री से भारत की कोई जगह शून्य नहीं है। गांवों के पुराने डीहों पर फैले मिट्टी के बर्तनों के चित्र-विचित्र टुकड़े भी हमें इतिहास की कभी-कभी बहुत-सी महत्त्वपूर्ण बातें बतलाते हैं।'[110] इस प्रकार राहुल जी इतिहास-निर्माण के लिए पुरातत्व को सर्वाधिक प्रामाणिक एवं उपयोगी सामग्री स्वीकार करते हैं।

राहुल जी ने इतिहास को मार्क्सवादी दृष्टिकोण से देखा है। मार्क्सवाद की इतिहास-विषयक व्याख्या में इतिहास-निर्माण में सामान्य जन को महत्त्व प्रदान किया गया है न कि विशिष्ट व्यक्ति को।[111] राहुल जी को भी इतिहास-विषयक मार्क्सवादी मान्यता स्वीकार्य है। वे भारतीय इतिहास को राजाओं और सम्राटों के कृत्यों का आलेखन-मात्र मानते हैं—'हमारा इतिहास तो राजाओं और पुरोहितों का इतिहास है जो कि आज की तरह उस जमाने में भी मौज उड़ाया करते थे। उन अगणित मनुष्यों का इतिहास में कहाँ जिक्र है जिन्होंने खून के गारे से ताजमहल और पिरामिड बनाये, जिन्होंने हड्डियों की मज्जा से नूरजहाँ को अत्तर से स्नान कराया, जिन्होंने कि लाखों गर्दनें कटाकर पृथ्वीराज के रनिवास में संयोगिता को पहुंचाया।'[112] इस प्रकार का इतिहास पुरानी बेड़ियों को और अधिक मजबूत बनाता है।[113] भारतीय इतिहास के विषय में राहुल जी एक अन्य स्थल पर लिखते हैं—'हिन्दुस्तान का इतिहास बहुत लम्बा-चौड़ा है ही—काल और देश दोनों के ख्याल में। हमारी बेवकूफियों की लिस्ट भी उसी तरह बहुत लम्बी-चौड़ी है।'[114] राहुल जी की उक्त धारणाओं से स्पष्ट है कि वे इतिहास और पुरातत्व का अविभाज्य सम्बन्ध मानते हैं और इतिहास को मार्क्सवादी दृष्टि से देखते हुए इतिहास-निर्माण में जन-सामान्य को महत्त्व देना चाहते हैं।

(च) यात्रा-विवेचन—राहुल जी ने 'घुमक्कड़ शास्त्र' में यात्रा-सम्बन्धी विचारों को प्रकट किया है। वे यायावरी को मनुष्य की आदि प्रवृत्ति, सर्वश्रेष्ठ वस्तु एवं सर्वोत्तम धर्म मानते हैं।[115] यात्रा मनुष्य को रस प्रदान करती है, उसे ज्ञानार्जन में सहायता देती है तथा वह किसी योग से कम सिद्धिदायिनी नहीं है।[116] यात्रा के रस की तुलना काव्यरस एवं ब्रह्मानन्द से की जा सकती है।[117] यात्रा मनुष्य के व्यक्तित्व का विकास करती है, उसे सुसंस्कृत, शिक्षित, स्वावलम्बी, कर्मण्य एवं समाज के प्रति उत्तरदायी बनाती है।[118] यायावर और साहित्यिक का अविच्छिन्न सम्बन्ध है। यात्राएँ व्यक्ति की सर्जनात्मक प्रतिभा को जागृत करती हैं।[119] यात्राएँ निरुद्देश्य न होकर सोद्देश्य होती हैं। 'स्वान्तः सुखाय' के अतिरिक्त भी उनका मूल्य होता है।[120]

वस्तुतः 'घुमक्कड़ी लेखक और कलाकार के लिए धर्म-विजय का प्रमाण है, वह कला-विजय का प्रमाण है, और साहित्य-विजय का भी। घुमक्कड़ी को साधारण बात नहीं समझना चाहिए, वह सत्य की खोज के लिए, कला के निर्माण के लिए, सद्भावनाओं के प्रसार के लिए महान् दिग्विजय है।'[१३१] राहुल जी के यात्रा-सम्बन्धी ये विचार उनके जीवन-अनुभवों एवं पर्यटनों से सिद्ध हैं।

राहुल जी की विचारधारा के विभिन्न पक्षों की विवेचना के अनन्तर यह सहज ही कहा जा सकता है कि राहुल जी प्रगतिशील एवं जनवादी लेखक, वस्तुवादी समाज-द्रष्टा, साम्यवादी एवं प्रजातान्त्रिक राजनीतिज्ञ एवं इतिहास-पुरातत्त्व के सच्चे पारखी हैं। वस्तुतः वे मानवता के उपासक एवं मानव-श्रेष्ठ हैं। उनकी विचारधारा साहित्य एवं समाज की प्रगतिशीलता की अभिवाहक है।

राहुल जी के निबन्धों में भाव-तत्त्व

राहुल जी अपने सर्जनात्मक साहित्य में प्रमुखतया विचारक के रूप में विद्यमान हैं, परन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं कि उनमें भाव-तत्त्व का सर्वथा अभाव है। राहुल जी के निबन्ध-साहित्य में चिन्तन-भूमि के साथ उनकी भाव-भूमि भी अत्यन्त पुष्ट है। चिन्तन की गहराइयों के साथ उनकी निबन्ध-कृतियों में सरलता एवं भावुकता भी वर्तमान है। उनकी भावानुभूति एवं भावात्मक हृदय की प्रतिक्रिया सर्वत्र लक्षित है। समाज की विषमता के प्रति भावात्मक प्रतिक्रियाओं में, समाज के मिथ्याडम्बरों पर व्यंग्य-धारा में, अतीत के स्मरण में तथा अन्य साहित्यिक एवं पुरातात्त्विक प्रसंगों में राहुल जी का भावुक हृदय क्षुब्ध, मुग्ध एवं लुब्ध हुआ है। उनमें भावुकता, तल्लीनता, उत्साह एवं उल्लास दर्शनीय है। राहुल जी के निबन्धों में व्याप्त उनके भाव-तत्त्व के विविध रूपों का विवेचन यहाँ प्रस्तुत है।

(क) सामाजिक वैषम्य के प्रति भावनात्मक प्रतिक्रिया—राहुल जी की समाज-जीवन-मीमांसा में उनकी भावात्मक प्रतिक्रियाएँ भी व्यक्त हैं। सामाजिक वैषम्य को देखकर उनका हृदय विक्षुब्ध हो उठा है। ऐसे स्थलों पर उनका घृणा-मिश्रित क्षोभ उग्र रूप में व्यक्त हुआ है। पूँजीवादियों एवं पुरोहितों के विषय में राहुल जी का एक व्यंग्य-युक्त क्षोभ द्रष्टव्य है—"मरने के बाद भी बहिश्त और स्वर्ग के सबसे अच्छे महल, सबसे सुन्दर बगीचे, सबसे बड़ी आँखों वाली हूरें और अप्सराएँ, सबसे अच्छी शराब और शहद की नहरें, उल्लू शहर के नवाब बहादुर तथा मरदूद गाँव के महाराज और उनके भाई-बन्धुओं के लिए रिज़र्व हैं, क्योंकि उन्होंने दो-चार मस्जिदें, शिवालें बना दिये हैं, कुछ साधु-फकीर और ब्राह्मण-मुजावर रोज़ाना उनके यहाँ हलवा पूड़ी, कबाब-पुलाव उड़ाया करते हैं।"[१३२] राहुल जी का यह व्यंग्य अत्यन्त उग्र एवं पैना है। राहुल जी सामाजिक-वैषम्य के कारणों के प्रति जहाँ विक्षोभ दर्शाते हैं, वहीं शोषितों के प्रति उनकी करुणा भी व्यक्त है। बिहार और युक्त-प्रान्त के निर्धन मज़दूरों का उन्होंने अत्यन्त करुणामय चित्र अंकित किया है।[१३३] धनिकों के शिकारवाद के विषय में राहुल जी का यह व्यंग्य दर्शनीय है—"अज्ञान और अकर्मण्यता के

अतिरिक्त यदि कोई और भी आधार, ईश्वर-विश्वास के लिए है तो वह है धनिकों और धूर्तों की अपनी स्वार्थ-रक्षा का प्रयास।"[१२४] इस प्रकार राहुल जी की सामाजिक वैषम्य-विषयक प्रतिक्रियाओं में ओज एवं उग्रता की प्रधानता है।

(ख) सामाजिक एवं धार्मिक रूढ़ियों पर व्यंग्य—राहुल जी समाज एवं धर्म में व्याप्त मिथ्याडम्बरों एवं रूढ़ियों के विरोधी थे, अतः उन्होंने समाज और धर्म के इस विकृत पक्ष पर व्यंग्य एवं आक्रोश प्रकट किया है। राहुल जी के अनेक निबन्धों में तीव्र और पैना व्यंग्य है। भक्ति-मार्ग के प्रादुर्भाव के विषय में राहुल जी का एक आक्रोश-समन्वित व्यंग्य देखिए—"दांव उसकी आंखों में कुछ चकाचौंध भले ही पैदा कर दे, मगर वह जनता को अपनी गोद में नहीं बिठा सकता। उसके लिए एक नये मार्ग की ज़रूरत थी, पुराना तरकश ढूंढा गया, वहीं एक भोथा (खूंटा) मुर्चा खाया वाण मिला। यह था भक्ति का तीर। १३वीं शताब्दी के पराजित भारत की अधिकार-शून्य, दिशा-ज्ञान-शून्य जनता में भक्ति की बाढ़ आ गई। जगह-जगह नये-नये मठ-मन्दिर स्थापित होने लगे, साधु और महन्तों के सिंहासन और चरण-पादुकाएँ फिर सोने और चांदी की बनने लगी। लेकिन लक्ष्मी अकेली तो नहीं आ सकती, उसे सदा उलूक-वाहनों की ज़रूरत होती है। ऐश्वर्य मदमत्त चौधरी और महन्त फिर मनमाना करने लगे, विष्णु-अवतार अब हिन्दू नहीं थे, कि उलूकों पर अंकुश रखते।"[१२५] यहाँ भक्ति को *कुण्ठित वाण, सन्त-महन्तों को उलूक तथा सम्राटों को विष्णु-अवतार कहने में* लेखक का व्यंग्य मुखरित हो रहा है।

समाज की ह्रासवादी विचारधारा का बड़े रोचक एवं व्यंग्यमय शब्दों में अंकित एक चित्र द्रष्टव्य है—*"क्यों न हम इस शैतानी खुराफात यन्त्रवाद को ही छोड़* उस पुराने युग में चले-चलें, जहाँ इन यन्त्रों का नाम न था, जिस वक्त हर एक गाँव एक पूरा संसार था ...... जिन यन्त्रों के कारण हमारी वह सोने की दुनिया—वह सत युग छिन गया, चलो हम फिर वहीं चले चलें।"[१२६]

गांधीवाद की प्रगतिविरोधी विचारधारा एवं ईश्वरवादिता पर राहुल जी ने उग्र व्यंग्य-वर्षा की है—"उसके अनुसार तुलसीकृत रामायण को सुन-पढ़ लेना एक आदमी की शिक्षा के लिए काफी है। मिट्टी और पानी, सभी बीमारियों के लिए रामवाण है ही। अस्पताल तोड़ देना चाहिए, डाक्टरों को बरखास्त कर देना चाहिए और मैडिकल कालेज पर 'टूलेट' लगा देना चाहिए। वास्तव में ईश्वरवादियों के लिए इसकी है भी क्या जरूरत।"[१२७] समाज की कूपमण्डूकता के प्रति विगर्हणा इन पंक्तियों में देखिए—"लेकिन कूपमण्डूकता तेरा सत्यानाश हो, इस देश के बुद्धुओं ने उपदेश देना शुरू किया कि समुन्दर के खारे पानी और हिन्दू-धर्म में बड़ा वैर है, उसके छूने-मात्र से वह नमक की पुतली की तरह गल जाएगा।[१२८]

(ग) *अतीत-प्रेम, इतिहास तथा पुरातत्व के प्रसंग*—*राहुल जी इतिहास एवं* पुरातत्व-वर्णन के प्रसंगों में विशेषकर लिच्छवियों और यौधेयों के वर्णन में अत्यन्त तन्मय एवं रसमग्न हो जाते हैं। बौद्धधर्म से सम्बन्धित पुराने ऐतिहासिक स्थानों के

वर्णन में भी उनका हृदय विशेष रूप से रमा है। 'जय लुम्बिनी' निबन्ध का शीर्षक ही उनकी प्रसन्नता एवं मुग्धता का प्रतीक है। 'वैशाली प्रजातन्त्र' निबन्ध के आरम्भ में लेखक कहता है—"वैशाली की यह भूमि कितनी पुनीत है, इसका इतिहास कितना गौरवपूर्ण है, इसका स्मरण करते ही हृदय इतने भावों से भरा हुआ है जिनके प्रकट करने के लिए वाणी असमर्थ है।"[१२९] लिच्छवियों के गौरव का मुग्ध रूप में वर्णन लेखक ने 'ज्ञातृ-उयरिया' नामक पुरातात्त्विक निबन्ध में भी किया है।[१३०]

(घ) साहित्य एवं कला के प्रसंग—राहुल जी की अनुरक्ति एवं विरक्ति के अनेक प्रसंग उनके साहित्य एवं कला-सम्बन्धी निबन्धों में भी मिलते हैं। शास्त्रीय संगीत के उस्तादों पर उनका प्रस्तुत व्यंग्य उनकी विरक्ति का प्रतीक है—"संगीत-प्रेम की उनकी नई व्याख्या से मुट्ठी-भर लोग प्रभावित होकर उस्ताद के गर्दभ-स्वर में उठती लम्बी तान को सुनकर वाह-वाह करने लग जाते हैं, इस पर वह फूलकर कुप्पा हो जाते हैं, और समझते हैं कि हम महान् गायक हैं।"[१३१] साहित्यिक निबन्धों में राहुल जी कहीं साहित्यकारों के प्रति अनुरक्ति दिखाते हैं और कहीं साहित्य पर मुग्ध होकर कविताश उद्धृत करते हैं। प्रेमचन्द का स्मरण लेखक इन पंक्तियों में करता है—"कहानी और उपन्यास को इतना समृद्ध बनाने में जिस एक आदमी का सबसे अधिक भाग रहा है, अफसोस है कि वह प्रेमचन्द इस साल अपनी लेखनी को अनन्त विश्राम देकर चले गये। इस समय अपने चारों ओर जब हम नजर दौड़ाते हैं, तो उनकी जगह लेने वाले की तो बात ही क्या उनके पास बैठने योग्य भी कोई आदमी दिखाई नहीं पड़ता।"[१३२] ब्रजभाषा के क्रिया-रूपों का विश्लेषण करते हुए राहुल श्रीधर पाठक का प्रस्तुत उद्धरण बड़ी मुग्धता से प्रस्तुत करते हैं—

"प्रकृति यहाँ एकान्त बैठि निज रूप सँवारति।
पलपल पलटति भेस छनिक छवि छिन-छिन धारति।"[१३३]

हिन्दुस्तानी भाषा की कविता के प्रति विरक्ति इन पंक्तियों में व्यंजित है—

"मन हरषाता है कैसा—खुश हुई तबियत कैसी।
जिससे हो उपकार देश का—हो मुल्क भलाई जिससे।"

अन्तिम उदाहरण को देखकर तो एक कहावत याद आती है। तेली ने जाट को चिढ़ाने के लिए कहा, 'जाट रे जाट तेरे सिर पर खाट'। जाट ने जवाब दिया, 'तेली रे तेली तेरे सिर पर कोल्हू'। कहा 'तुक तो नहीं मिली।' तुक नहीं मिली तो क्या, कोल्हू से दबकर मरेगा तो सही।"[१३४] इस प्रकार साहित्य, भाषा एवं कला-सम्बन्धी निबन्धों में उनकी प्रतिक्रियायें अनेकत्र व्यक्त हुई हैं।

(ङ) प्रकृति-प्रेम-व्यंजना—प्रकृति एवं यात्रा-सम्बन्धी निबन्धों में प्रकृति-चित्रण के प्रसंगों में भी राहुल जी का भावुक-रूप दृष्टिगत होता है। मसूरी में 'प्रथम हिमपात' की नीरवता का वर्णन राहुल जी तन्मय होकर करते हैं—"और हिमपात के साथ यह नीरवता! यह भयानक नहीं मोहक है, कहीं कोई शब्द सुनाई नहीं देता। कीट-पतंग बरफ में दब गये होंगे, किन्तु कल तक फुदकती चिड़ियाँ कहाँ गईं? न

शब्द, न गति। क्षण भर के लिए हम हिमयुग में पहुँच गये। हिम के आले ही पवन देवता ने यहाँ अपनी आवश्यकता नहीं समझी। घर मे, घर से बाहर भी निःशब्दता का राज्य है, यदि घर में कोई शब्द सुनाई देता है, तो कागज पर चलती इस लेखनी का अथवा श्वास-प्रश्वास का, मन की एकाग्रता के लिए इस समय किसी योगिराज या योगाभ्यास की आवश्यकता नहीं, मस्तिष्क मानो सद्य:पतित हिम-जैसा निर्मल हो गया है।"[134] इसी प्रकार पहाड़ी दीवाली मनाती स्त्रियों एवं बाल-वृद्धों के स्वच्छन्द नृत्यगान को देख राहुल जी वैदिक युग मे विचरण करने लगते हैं।[135]

(च) वैयक्तिक प्रसंग एवं घटनाएँ—वैयक्तिक प्रसंगों और घटनाओं के अनुभवों-द्वारा भी राहुल जी ने अपने भाव-पक्ष को दृढ़ किया है। शुक्ल जी की तरह उनके निबन्धों में व्यक्तिगत संस्मरणों एवं उद्धरणों की प्रधानता है, जिससे उनके निबन्ध रोचक बन गये हैं। पुरानी अन्धश्रद्धा को मानसिक दासता बतलाते हुए राहुल जी एक महात्मा का प्रसंग प्रस्तुत करते है—"अयोध्या में एक महात्मा थे। उनसे राम जी इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने स्वयं वैकुण्ठ से आकर उनका पाणिग्रहण किया। हाँ, पाणिग्रहण किया। पुरुष थे पहले, पीछे तो भगवान् की कृपा से वह उनकी प्रियतमा के रूप में परिवर्तित कर दिये गये। राम जी के लिए क्या मुश्किल है ? जब पत्थर मनुष्य के रूप मे बदल सकता है तो पुरुष को स्त्री के रूप में बदल देना कौन-सी बड़ी बात है।"[136]

'यूरोप के रोमनी भारतीय' निबन्ध मे भी राहुल जी ने एक व्यक्तिगत संस्मरण दिया है—"एक दिन लेनिनग्राद के एक बाग में टहल रहा था। दो रोमन स्त्रियाँ मेरे पास आई और 'भाग्य' बाखने के लिए कहने लगीं। मुझे अधिक शिक्षा-सम्पन्न जान उन्हें भ्रम हुआ होगा। मैंने कहा—'क्या सिगान भी सिगान का भाग्य बाखेगा ?' एक ने "बारिन" (भद्रजन) कहना चाहा किन्तु उसकी सखी ने दृढ़ता-पूर्वक कहा—'देख नहीं रही है, भवन-मूरत रोम की है ?' सिगान भाषा मे बातचीत नहीं हुई, अन्यथा पोल खुल जाती।"[137]

इस प्रकार राहुल जी के निबन्धों में भावतत्त्व भी पर्याप्त प्रबल एवं पुष्ट है। उनका हृदय सर्वत्र अपनी प्रवृत्ति के अनुसार प्रतिक्रिया प्रकट करता चलता है, रमता है, क्षुब्ध एवं लुब्ध होता है, आक्रोश एवं अनुराग प्रकट करता है। हृदय की इन्हीं प्रतिक्रियाओं से समन्वित उनके विचार-प्रधान निबन्ध शुष्क एवं नीरस नहीं रह गये अपितु उनमें यथास्थान सरसता एवं मार्मिकता का भी संचार हुआ है।

राहुल जी की निबन्ध-शैलियाँ

महापण्डित राहुल सांकृत्यायन हिन्दी के उन विरल लेखकों में गण्य हैं जिन्होंने व्यक्तित्व तथा पाण्डित्य के संयोग-द्वारा हिन्दी गद्य-शैली को विकसित किया है। प्रगतिशील लेखकों में राहुल जी का गद्य-शैली के निर्माता के रूप में अपना विशिष्ट महत्त्व है। राहुल जी की गद्य-शैली सरल, रोचक, चिन्तना-सम्पृक्त एवं भावप्रवण है। डा० प्रभाकर माचवे लिखते हैं—"सरल, सहज, प्रवाहमयी भाषा, तथ्य कुदान और

जानकारी देने की ओर विशेष रुझान, रूढ़िवादिता पर प्रखर प्रहार, उदार बुद्धिवाद और कहानी कहने की-सी सीधी-सादी शैली राहुल जी के लेखन की विशेषताएँ हैं।"[१३६]

डॉ० रवीन्द्र भ्रमर शैली को लेखक की प्रतिच्छवि मानते हुए लिखते हैं—"किसी महान् व्यक्तित्व वाले लेखक से ही श्रेष्ठ तथा उदात्त शैली की आशा रखनी चाहिए। जिसने ज्ञान-राशि का मन्थन नहीं किया, जिसने सृष्टि के रहस्य को समझते रहने की साधना नहीं की, जिसने मनुष्य की दिक्कालव्यापी महिमा का कुछ बोध नहीं प्राप्त किया और जिसने स्वयं अपने निजत्व का मूल्यांकन करने की चेष्टा नहीं की, ऐसे मेरुदण्ड-विहीन एवं निराधार लेखक से शैली-निर्माण की आशा मात्र दुराशा होगी।"[१३७] राहुल जी की हिन्दी के उन बहुत थोड़े-से लेखकों में गणना की जा सकती है जो विराट् पाण्डित्यपूर्ण व्यक्तित्व से सम्पन्न हैं। यही कारण है कि वे हिन्दी-गद्य के समर्थ शिल्पी एवं शैलीकार हैं। भाषा-शैली के निर्माण में उनका योगदान प्रशंसनीय है। राहुल जी ने निबन्ध की अनेक शैलियों—विवेचनात्मक, व्याख्यात्मक, आलोचनात्मक, तर्कप्रधान, तुलनात्मक, निर्णयात्मक, वर्णनात्मक, विवरणात्मक, हास्य-व्यंग्यात्मक आदि का निर्वाह सफलता एवं प्रौढ़ता से किया है।

विचारात्मक निबन्धों की प्रमुख शैली विवेचनात्मक होती है। डॉ० नगेन्द्र उपाध्याय के अनुसार "इस शैली में तर्क-वितर्क-प्रमाण द्वारा कथित बातों की पुष्टि, निर्णय-परीक्षा सभी का समावेश रहता है। प्रत्येक अगला वाक्य पहले वाक्य का तार्किक परिणाम होता है।"[१३८] शब्द-प्रयोग एवं अर्थ की दृष्टि से यह शैली दो प्रकार की होती है—समास-शैली तथा व्यास-शैली। राहुल जी के निबन्धों में व्यास-शैली का प्रयोग है। उनके निबन्ध चाहे वे भाषा और साहित्य-विषयक हैं, चाहे इतिहास एवं पुरातत्त्व-सम्बन्धी या साम्यवादी विचारधारा से सम्बन्धित सर्वत्र उन्होंने व्यास-शैली का प्रयोग किया है। 'प्रगतिशीलता का प्रश्न' से उनकी व्यास-शैली का एक उदाहरण प्रस्तुत है—'बीते हुए से हम सहायता लेते हैं, आत्मविश्वास प्राप्त करते हैं, लेकिन बीते की ओर लौटना—यह प्रगति नहीं प्रतिगति—पीछे लौटना—होगी। हम लौट तो सकते नहीं क्योंकि अतीत को वर्तमान बनाना प्रकृति ने हमारे हाथ में नहीं दे रखा है। फिर जो कुछ आज इस क्षण हमारे सामने कर्म-पथ है, यदि केवल उस पर ही डटे रहना चाहते हैं तो यह प्रतिगति नहीं है, यह ठीक है, किन्तु यह प्रगति भी नहीं हो सकती, यह होगी सहगति—लगू-भगू होकर चलना—जो कि जीवन का चिह्न नहीं है। लहरों से थपेड़े के साथ बहने वाला सूखा काष्ठ जीवन वाला नहीं कहा जा सकता। मनुष्य होने से, चेतनावान् समाज होने से हमारा कर्तव्य है कि हम सूखे काष्ठ की तरह बहने का ख्याल छोड़ दें और अपने अतीत तथा वर्तमान को देखते हुए भविष्य के रास्ते को साफ करें जिसमें हमारी आने वाली सन्तानों का रास्ता ज्यादा सुगम रहे।"[१३९] इन पंक्तियों में लेखक व्यास-शैली का सहारा लेकर प्रगति, सहगति एवं प्रतिगति के विषय में सविस्तार व्याख्या करता चलता है।

व्याख्यात्मक-शैली राहुल जी की विवेचनात्मक शैली का एक अंग है। वे

शब्द, न गति। क्षण भर के लिए हम हिमयुग में पहुँच गये। हिम के आते ही पवन देवता ने यहाँ अपनी आवश्यकता नहीं समझी। घर में, घर से बाहर भी निःशब्दता का राज्य है, यदि घर में कोई शब्द सुनाई देता है, तो कागज पर चलती इस लेखनी का अथवा श्वास-प्रश्वास का, मन की एकाग्रता के लिए इस समय किसी योगिराज या योगाभ्यास की आवश्यकता नहीं, मस्तिष्क मानो सद्यःपतित हिम-जैसा निर्मल हो गया है।"[134] इसी प्रकार पहाड़ी दीवाली मनाती स्त्रियों एवं बाल-वृद्धों के स्वच्छन्द नृत्यगान को देख राहुल जी वैदिक युग में विचरण करने लगते हैं।[135]

(च) वैयक्तिक प्रसंग एवं घटनाएँ— वैयक्तिक प्रसंगों और घटनाओं के अनुभवों-द्वारा भी राहुल जी ने अपने भाव-पक्ष को दृढ़ किया है। शुक्ल जी की तरह उनके निबन्धों में व्यक्तिगत संस्मरणों एवं उद्धरणों की प्रधानता है, जिससे उनके निबन्ध रोचक बन गये हैं। पुरानी अन्धश्रद्धा को मानसिक दासता बतलाते हुए राहुल जी एक महात्मा का प्रसंग प्रस्तुत करते हैं—"अयोध्या में एक महात्मा थे। उनसे राम जी इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने स्वयं वैकुण्ठ से आकर उनका पाणिग्रहण किया। हाँ, पाणिग्रहण किया। पुरुष थे पहले, पीछे तो भगवान् की कृपा से वह उनकी प्रियतमा के रूप में परिवर्तित कर दिये गये। राम जी के लिए क्या मुश्किल है? जब पत्थर मनुष्य के रूप में बदल सकता है तो पुरुष को स्त्री के रूप में बदल देना कौन-सी बड़ी बात है।"[137]

'यूरोप के रोमनी भारतीय' निबन्ध में भी राहुल जी ने एक व्यक्तिगत संस्मरण दिया है—"एक दिन लेनिनग्राद के एक बाग में टहल रहा था। दो रोमन स्त्रियाँ मेरे पास आई और 'भाग्य' माखने के लिए कहने लगी। मुझे अधिक शिक्षा-सम्पन्न जान उन्हें भ्रम हुआ होगा। मैंने कहा—'क्या सिगान भी सिगान का भाग्य माखेगा?' एक ने "वारिन" (भद्रजन) कहना चाहा किन्तु उसकी सखी ने दृढ़ता-पूर्वक कहा—'देख नहीं रही है, शकल-सूरत रोम की है?' सिगान भाषा में बातचीत नहीं हुई, अन्यथा पोल खुल जाती।"[138]

इस प्रकार राहुल जी के निबन्धों में भावतत्त्व भी पर्याप्त प्रबल एवं पुष्ट है। उनका हृदय सर्वत्र अपनी प्रवृत्ति के अनुसार प्रतिक्रिया प्रकट करता चलता है, रमता है, क्षुब्ध एवं लुब्ध होता है, आक्रोश एवं अनुराग प्रकट करता है। हृदय की इन्हीं प्रतिक्रियाओं से समन्वित उनके विचार-प्रधान निबन्ध शुष्क एवं नीरस नहीं रह गये अपितु उनमें यथास्थान सरसता एवं मार्मिकता का भी संचार हुआ है।

राहुल जी की निबन्ध-शैलियाँ

महापण्डित राहुल सांकृत्यायन हिन्दी के उन विरल लेखकों में गण्य हैं जिन्होंने व्यक्तित्व तथा पाण्डित्य के संयोग-द्वारा हिन्दी गद्य-शैली को विकसित किया है। प्रगतिशील लेखकों में राहुल जी का गद्य-शैली के निर्माता के रूप में अपना विशिष्ट महत्त्व है। राहुल जी की गद्य-शैली सरल, रोचक, चिन्तना-सम्पृक्त एवं भावप्रवण है। डॉ॰ प्रभाकर माचवे लिखते हैं—"सरल, सहज, प्रवाहमयी भाषा, तथ्य जुटाने और

जानकारी देने की ओर विशेष रुझान, रूढ़िवादिता पर प्रखर प्रहार, उदार बुद्धि और कहानी कहने की-सी सीधी-सादी शैली राहुल जी के लेखन की विशेषताएँ हैं।"

डॉ० रवीन्द्र भ्रमर शैली को लेखक की प्रतिच्छवि मानते हुए लिखते हैं "किसी महान् व्यक्तित्व वाले लेखक से ही श्रेष्ठ तथा उदात्त शैली की आशा रख चाहिए। जिसने ज्ञान-राशि का मन्थन नहीं किया, जिसने सृष्टि के रहस्य को समझ रहने की साधना नहीं की, जिसने मनुष्य की दिक्कालव्यापी महिमा का कुछ बो नहीं प्राप्त किया और जिसने स्वयं अपने निजत्व का मूल्यांकन करने की चेष्टा न की, ऐसे मेरुदण्ड-विहीन एवं निराधार लेखक से शैली-निर्माण की आशा मात्र दुराश होगी।"[20] राहुल जी की हिन्दी के उन बहुत थोड़े-से लेखकों में गणना की जा सकती है जो विराट् पाण्डित्यपूर्ण व्यक्तित्व से सम्पन्न हैं। यही कारण है कि वे हिन्दी-गद्य के समर्थ शिल्पी एवं शैलीकार हैं। भाषा-शैली के निर्माण में उनका योगदान प्रशंसनीय है। राहुल जी ने निबन्ध की अनेक शैलियों—विवेचनात्मक, व्याख्यात्मक, आलोचनात्मक, तर्कप्रधान, तुलनात्मक, निर्णयात्मक, वर्णनात्मक, विवरणात्मक, हास्य-व्यंग्यात्मक आदि का निर्वाह सफलता एवं प्रौढ़ता से किया है।

विचारात्मक निबन्धों की प्रमुख शैली विवेचनात्मक होती है। डॉ० नगेन्द्र उपाध्याय के अनुसार "इस शैली में तर्क-वितर्क-प्रमाण द्वारा कथित बातों की पुष्टि, निर्णय-परीक्षा सभी का समावेश रहता है। प्रत्येक अगला वाक्य पहले वाक्य का तार्किक परिणाम होता है।"[21] शब्द-प्रयोग एवं अर्थ की दृष्टि से यह शैली दो प्रकार की होती है—समास-शैली तथा व्यास-शैली। राहुल जी के निबन्धों में व्यास-शैली का प्रयोग है। उनके निबन्ध चाहे वे भाषा और साहित्य-विषयक हैं, चाहे इतिहास एवं पुरातत्व-सम्बन्धी या साम्यवादी विचारधारा से सम्बन्धित सर्वत्र उन्होंने व्यास-शैली का प्रयोग किया है। 'प्रगतिशीलता का प्रश्न' से उनकी व्यास-शैली का एक उदाहरण प्रस्तुत है—'बीते हुए से हम सहायता लेते हैं, आत्मविश्वास प्राप्त करते हैं, लेकिन बीते की ओर लौटना—यह प्रगति नहीं प्रतिगति—पीछे लौटना—होगी। हम लौट तो सकते नहीं क्योंकि अतीत को वर्तमान बनाना प्रकृति ने हमारे हाथ में नहीं दे रखा है। फिर जो कुछ आज इस क्षण हमारे सामने कर्म-पथ है, यदि केवल उस पर ही डटे रहना चाहते हैं तो यह प्रतिगति नहीं है, यह ठीक है, किन्तु यह प्रगति भी नहीं हो सकती, यह होगी सहगति—लग्गू-भग्गू होकर चलना—जो कि जीवन का चिह्न नहीं है। लहरों से थपेड़े के साथ बहने वाला सूखा काष्ठ जीवन वाला नहीं कहा जा सकता। मनुष्य होने से, चेतनावान् समाज होने से हमारा कर्तव्य है कि हम सूखे काष्ठ की तरह बहने का ख्याल छोड़ दें और अपने अतीत तथा वर्तमान को देखते हुए भविष्य के रास्ते को साफ करें जिसमें हमारी आने वाली सन्तानों का रास्ता ज्यादा सुगम रहे।'[22] इन पंक्तियों में लेखक व्यास-शैली का सहारा लेकर प्रगति, सहगति एवं प्रतिगति के विषय में सविस्तार व्याख्या करता चलता है।

व्याख्यात्मक-शैली राहुल जी की विवेचनात्मक शैली का एक अंग है। वे

अपनी बात को उदाहरण, उद्धरण आदि द्वारा व्याख्यापूर्वक समझाते हैं। हिन्दी के लिए संस्कृत के तत्सम शब्द ग्राह्य हैं, इसके लिए वे व्याख्यात्मक शैली में लिखते हैं —"कुछ भाई अपनी निष्पक्षता दिखलाने के लिए, यह भी कहने लगे हैं कि हमें हिन्दी को न संस्कृत शब्दों से भरना चाहिये और न अरबी शब्दों से। यह भी भारी भूल है। अरबी भारतीय भाषा नहीं है और न जिस भाषा वंश में भारतीय भाषाओं का सम्बन्ध है, उससे इसका सम्बन्ध है। इसके विपरीत संस्कृत हिन्दी की जननी है। हिन्दी की विभक्तियाँ, क्रिया-पद तक संस्कृत पर अवलम्बित हैं। इस प्रकार यदि विचार करके देखा जाय, तो संस्कृत का यह स्वाभाविक अधिकार है कि हिन्दी-कोष को अपने शब्द-कोष से भरे। हाँ, उसमें यह ख्याल तो जरूर रखना पड़ेगा, कि शब्द उतने ही परिमाण में लिए जायें, जितने आसानी से हज़म हो सकें। कुछ लोगों का कहना है कि हमें क्या आवश्यकता है शब्दों को संस्कृत से लेने की? हमें गाँव की ओर चलना चाहिए, किन्तु यदि आप तनिक विचार करें, तो यह बात भी हास्यास्पद ही मालूम होगी। भला गाँव से इस वैज्ञानिक युग के लिए अपेक्षित शब्द कहाँ मिलेंगे। किसी समय इसी धुन में मस्त एक पंजाबी सज्जन ने 'छात्रावास' का पर्याय 'पढ़ाकुओं दा कोठ्ठा' बनाया था। वास्तविक बात तो यह है कि हमारे आज के प्रयोग के लिए अपेक्षित वैज्ञानिक शब्दों की प्राप्ति के लिए ग्राम की साधारण जनता की बोलचाल की शरण लेना तो वैसा ही है जैसे मोटर के हलों और बिजली की कलों की शक्ति को बाबा आदम से चले हुए हलों में ढूँढ़ा जाए।" (साहित्य निबंधावली)। यहाँ लेखक प्रश्नोत्तर, उदाहरण, उद्धरण एवं तर्क-वितर्क द्वारा अपने कथन की व्याख्या करता है। यहाँ यह कहना अनुचित न होगा कि राहुल जी की शैली में शुक्ल जी की विवेचनात्मक-व्याख्यात्मक शैली का निदर्शन नहीं होता। शुक्ल जी समास-शैली के लेखक हैं। आगमन-निगमन शैली द्वारा वे सूत्रवाक्य देकर उसकी व्याख्या प्रस्तुत करते हैं। राहुल जी ने सूत्र-शैली का प्रयोग नहीं किया। वे एक बात को लेकर उस पर प्रश्न उठाते हुए, उसका उत्तर देते चलते हैं और इस प्रकार वे अपनी बात को व्याख्या-द्वारा समझाते हैं। अपने विषय को उलट-पुलट कर वे अच्छी तरह समझाने का प्रयत्न करते हैं।

राहुल जी की विवेचनात्मक शैली के विविध रूप हैं। वे निर्णय देते हैं, आदेश-निर्देश करते है, तुलना करते हैं, व्यंग्य करते हैं और तर्क देते हैं। अतएव उनके निबन्धों में निर्णयात्मक, उद्बोधनात्मक, तुलनात्मक, व्यंग्यात्मक एवं तर्कपूर्ण शैलियों के निदर्शन प्राप्य है। निर्णयात्मक शैली में वे भाषा-साहित्य-विषयक मत-स्थापना करते हैं।[११] उद्बोधनात्मक शैली में वे साहित्यकारों को आदेश-निर्देश करते हैं।[१२] पुरातत्त्व-सम्बन्धी निबन्धों में वे पाठकों को पुरातात्त्विक सामग्री के संरक्षण एवं सचयन के लिए निर्देश करते हैं।[१३] तुलनात्मक शैली का प्रयोग लेखक ने हिन्दी भाषा एवं देवनागरी लिपि की उर्दू भाषा एवं रोमन लिपि से श्रेष्ठता प्रतिपादित करते समय किया है।[१४] राहुल जी की व्यंग्यात्मक शैली सर्वत्र मुखरित है। भक्ति, धर्माडम्बर, गाँधीवाद तथा समाज के

धन्य विद्वानों पर राहुल जी ने व्यंग्य किए हैं। राहुल जी आधुनिक युग में खड़ी बोली के विरोधियों के विषय में लिखते हैं—'हमारे हिन्दी-साहित्य में इसी शताब्दी में जब कविता की भाषा का सवाल आया था तो कितने ही लोग बड़े ज़ोर के साथ फ़तवा दे रहे थे कि खड़ी बोली कविता की भाषा कभी नहीं हो सकती। वह किसी बीते युग की भाषा को कविता का माध्यम बनाना चाहते थे। यह काव्य में प्रतिगति थी जो ज्यादा दिन तक चल नहीं सकी। मजमा आगे बढ़ गया, बेचारा पलटूदास अकेला बियाबान में पड़ा रह गया।'[१४७] शास्त्रीय-संगीत-गायकों पर उनका व्यंग्य तो शुक्ल जी के एतद्विषयक व्यंग्य का स्मरण दिला देता है।[१४८] तर्क-प्रधान शैली के भी अनेक प्रयोग राहुल जी के निबन्धों में मिलते हैं। भाषा एवं दर्शन-सम्बन्धी निबन्धों में इस शैली के उदाहरण द्रष्टव्य हैं।[१४९]

इस प्रकार राहुल जी के निबन्धों में विवेचनात्मक-व्याख्यात्मक शैली अनेक शैलियों को समेट कर चली है। प्रासादिकता का गुण उसमें सर्वत्र विद्यमान है, दुरूहता कहीं भी नहीं। स्पष्टता और स्वच्छता उनकी विवेचना-प्रधान शैली के मुख्य गुण हैं। तर्क, कार्य-कारण-सम्बन्ध एवं निष्कर्ष तक पहुँचने के लिए वे सीधे ढंग से अपनी बात कह देते हैं। दृढ़ता, अडिग विश्वास और बल उनकी शैली में सर्वत्र हैं।

विवेचनात्मक शैली के साथ-साथ लेखक ने वर्णनात्मक एवं विवरणात्मक शैली का भी प्रयोग किया है। यह अत्यन्त सरल और सुबोध शैलियाँ हैं। राहुल जी में वर्णन की अपूर्व क्षमता है। उनके यात्रा-वर्णन उनकी वर्णन-शक्ति के ज्वलन्त निदर्शन हैं। निबन्धों में भी इस शैली के सफल प्रयोग द्रष्टव्य हैं। 'सोवियत के दो भारतीय तत्त्वज्ञ', 'वैशाली का प्रजातन्त्र', 'संन्यासी अखाड़ों की जनतन्त्रता', 'जय लुम्बिनी' आदि निबन्धों में वर्णनात्मक शैली के प्रयोग मिलते हैं। यहाँ एक उदाहरण पर्याप्त होगा—'श्चेर्वात्स्की सौहार्द और सौजन्य की मूर्ति थे। स्नेह, भक्ति, वात्सल्य उनमें अपार थे। माँ की आज्ञा उनके लिए ब्रह्मवाक्य थी। वह ४३ वर्ष के थे, जब माँ मरी, श्चेर्वात्स्की के आँसू सप्ताहों बन्द नहीं हुए। अपने शिष्यों को पुत्रवत् नहीं, आत्मवत् समझते थे।'[१५०] अथवा 'लुम्बिनी अकेले ही बुद्ध के गौरव-स्तम्भ को अपने भीतर नहीं रखे हुए है, बल्कि पिछली शताब्दी के मध्य तक घोर जंगलों से ढकी शाक्यों की भूमि में जगह-जगह पुराने अवशेष मिलते हैं। इसी भूमि में और लुम्बिनी से नातिदूर पिपरहवा में मानव बुद्ध के अस्तित्व का दूसरा बहुत जबर्दस्त प्रमाण वह लेख मिला, जिसके द्वारा मालूम हुआ कि वहाँ स्तूप में भगवान् की पवित्र अस्थियाँ उनके शाक्यों ने स्थापित की।'[१५१]

राहुल जी की वर्णनात्मक-शैली का एक रूप प्रशंसात्मक वर्णन के रूप में भी मिलता है। 'बुद्ध का दर्शन' निबन्ध में भगवान् बुद्ध का परिचय इसी शैली में दिया गया है।[१५२] इसके अतिरिक्त प्रकृति-वर्णनों एवं पुरातात्त्विक स्थानों के वर्णन में भी वर्णन-शैली ही प्रधान है।

कहीं-कहीं कथा-प्रसंगों के उल्लेख में राहुल जी ने विवरणात्मक शैली का भी

अच्छा परिचय दिया है। 'कुरुदेश के ठावें' में अघोई से सम्बन्धित कथा,[१४१] 'जय लुम्बिनी' में चौधरी साहब के साथ लेखक का चाय-पान का प्रसंग,[१४२] 'यूरोप के रोमनी भारतीय' में दो स्त्रियों के भाग्य-रेखा देखने का प्रसंग[१४४] विवरणात्मक शैली में प्रस्तुत हैं।

राहुल जी के 'साहित्य निबन्धावलि' के अधिकतर निबन्ध भाषण-रूप में लिखे गये हैं। इनमें उनकी सम्भाषण-शैली का भव्य रूप देखा जा सकता है। सम्भाषण-शैली में लेखक (वक्ता) श्रोताओं को सम्बोधित कर उनसे आत्मीयता स्थापित कर लेता है और अपनी वक्तृता को इस ढंग से प्रस्तुत करता है कि श्रोता उसकी ओर आकृष्ट हो जायें। वह श्रोता-समूह की मन:स्थिति पहचान कर चलता है और अपने व्याख्यान को प्रभावशाली बनाने के लिए विविध उपायों का अवलम्ब लेता है। वह भाषा को लोकोक्तियों, मुहावरों एवं उपमाओं से अलंकृत करता है और विषय को विस्तारपूर्वक एवं रोचक ढंग से प्रस्तुत करता है। राहुल जी एक सफल वक्ता एवं वागीश हैं। उनके निबन्धों में सम्भाषण-शैली की आत्मीयता, रोचकता, सजीवता एवं आकर्षण विद्यमान है। प्रभावपूर्ण सम्बोधन-शैली का एक उदाहरण प्रस्तुत है—'बहिनो और भाइयो! पीढ़ियाँ जिसका स्वप्न देखती चली गईं, सदियाँ जिसकी प्रतीक्षा में बीत गईं, सैकड़ों नीतिकुशल भग्नमनोरथ रह गये, लाखों ने जिसके लिए अपने प्राणों की आहुतियाँ दीं—लाखों जो बालू के पद-चिह्न और पानी पर की रेखा की तरह अपना जीवन-सर्वस्व खो सदा के लिए गुमनाम हो विलीन हो गये। परन्तु जाति ने हिम्मत नहीं हारी, वीरों ने और-और आगे बढ़कर जिसके लिए अपने को बलिवेदी पर चढ़ाया। वह स्वतन्त्रता हमारे सामने आई, अनन्त आशाओं का सन्देश लिए, सफलताओं के लिए अवसर प्रदान करती।'[१४६]

राहुल जी की इस सम्भाषण-शैली में भव्य आकर्षण विद्यमान है जो पाठक एवं श्रोता को मुग्ध कर लेता है। लेखक इस शैली द्वारा अपने पाठक अथवा श्रोता के साथ निकट का सम्बन्ध स्थापित कर लेता है और उसे अपने विचार-प्रवाह के साथ बहा ले चलता है। कहीं-कहीं लेखक स्वयं वक्तव्य के बीच आ उतरता है। जैसे 'अब भाषा को लीजिए।'[१४७] 'साथियो! मुझे अफसोस है कि भाषा के सवाल पर विवेचन करते मैंने इतना समय आपका ले लिया।'[१४८] 'अन्त में अखाड़ों के सम्बन्ध में दो बातें और कह कर मैं इस लेख को समाप्त करता हूँ।'[१४९] आदि। इस प्रकार सम्भाषण-शैली का सौन्दर्य राहुल जी के निबन्धों में दर्शनीय है। यदि यह कहा जाये कि विवेचनात्मक होते हुए भी राहुल जी के निबन्ध व्याख्यान-शैली में हैं तो अनुपयुक्त न होगा।

इस प्रकार राहुल जी की विवेचनात्मक, वर्णनात्मक, विवरणात्मक एवं सम्भाषण शैलियों की विवेचना के अनन्तर हम कह सकते हैं कि उनकी शैली सर्वत्र सजीव, रोचक और सरल रही है। पुरातत्व-सम्बन्धी निबन्धों में कहीं-कहीं रूक्षता अवश्य आ गई है, जो ऐसे विषय के लिए स्वाभाविक भी है। अन्त में उनके शिल्प-विधान के विषय में इस तथ्य की ओर संकेत करना समीचीन ही होगा कि बहुपठित

स्वभाव के कारण राहुल जी के निबन्धों में अन्य भाषाओं के उद्धरण यथा
व्यवहृत होते रहते हैं। संस्कृत, अपभ्रंश, पालि एवं उर्दू-फारसी के अनेक उ
उनके स्मृतिकोश में विद्यमान रहते हैं जिन्हें वे अपने विचारों के समर्थन के
अलकरण-उपादान के रूप में सहज ही प्रयुक्त करते चलते हैं। एक उद्धरण देखि
'बन्धु-बान्धवों के स्नेह-बन्धन के बारे में वही बात है। हजारों तरह की जिम्मेदा
के बारे में इतना ही समझ लेना चाहिए, कि घुमक्कड़-पथ सबसे परे, सबसे
है। इसलिए—'निस्त्रैगुण्ये पथि विचरतः को विधिः को निषेधः' को फिर यहाँ
राना होगा। बाहरी जंजालों के अतिरिक्त एक भीतरी भारी जंजाल है—मन
निर्बलता। आरम्भ में घुमक्कड़ी पथ पर चलने की इच्छा रखने वाले को अनज
रास्ता होने से कुछ भय लगता है। आस्तिक होने पर तो यह भी मन में आता है
'का चिन्ता मम जीवने यदि हरिविश्वम्भरो गीयते।'[13] 'बिहार प्रान्तीय सभापति
भाषण' नामक वक्तृता में राहुल जी उर्दू और फारसी के उद्धरण प्रस्तुत करते हैं
इसी प्रकार अंग्रेजी तथा पालि के उद्धरण भी उन्होंने अपने विचारों के समर्थन
लिए प्रयुक्त किये हैं। 'पुरातत्त्व-निबन्धावली' में ऐसे उद्धरण पर्याप्त हैं।

शैली के साथ भाषा का प्रश्न जुड़ा हुआ है। समर्थ भाषा सफल शैली
संवाहिका है। राहुल जी की भाषा-सम्बन्धी मान्यताओं एवं उपलब्धियों पर एतद्विष
परिवर्त में विस्तार से विवेचन किया गया है अतः यहाँ केवल इतना ही कहना पर्या
है कि राहुल जी भाषा के विषय में दुराग्रही नहीं। सर्वत्र सरल सहज प्रवाहमयी ए
अकृत्रिम भाषा उनके निबन्धों की अपनी विशिष्टता है। डॉ० जयनाथ नलिन
शब्दों में 'संस्कृत के परम विद्वान् होते हुए भी भाषा-शैली में आप जन-जन की भा
को लिखने के पक्षपाती हैं। सरल-से-सरल भाषा में गूढ़ बात कहने की शक्ति अ
में है।'[14]

राहुल जी हिन्दी के समर्थ प्रगतिशील निबन्धकार हैं। उनके निबन्धों
प्रगतिशीलता के जिस स्वरूप का विवेचन है, उससे उन्हें जनवादी एवं मानवतावा
निबन्धकार कहा जा सकता है। राहुल जी का निबन्ध-क्षेत्र उनके अपने विरा
व्यक्तित्व की तरह ही विराट् है। निबन्ध के क्षेत्र में विषय-विस्तार एवं वैविध
को जितना राहुल जी ने अपनाया है, उतने आयामों का स्पर्श करने वाले विरले हं
निबन्धकार होते हैं। उनमें राजनीति, इतिहास, पुरातत्त्व, यात्रा, शोध, साहित्य
भाषा, प्रकृति, दर्शन सभी आकर समाहित हो गये हैं। इस विषय-विस्तार में उनक
प्रकाण्ड एवं गौरवपूर्ण पाण्डित्य है, साथ ही उनका सवेदन प्रतिक्रियाओं से सम्पन्न
हृदय भी है, जिससे उनके निबन्धों के भीतर भावों की अन्तःसलिला भी प्रवाहित
होती दिखाई देती है। शैलियों की विविधता भी उनमें दर्शनीय है और सरल एवं
व्यंग्यमयी भाषा का सहज चमत्कार तो उनकी अपनी वस्तु है ही।

राहुल जी के निबन्धों की अपनी कुछ सीमाएँ भी हैं। वे अपने विचारों को
अपने निबन्धों में अनेकशः दोहराते हैं, ये पुनरुक्तियाँ खटकती हैं। वे विषय में बन्ध

र नहीं लिखते। 'प्रगतिशील लेखक' में उनका भाषा-सम्बन्धी विस्तृत विवेचन मिका-मात्र बनता है और प्रगतिशीलता पर वे कुछ ही पंक्तियाँ कहते हैं। उनका तिहास एवं पुरातत्त्व के प्रति अनुराग उनके कई निबन्धों की पृष्ठभूमि बनता है। षा-शैली में विशेष गुम्फन और निखार नहीं, न ही इसके लिए उन्होंने सम्भवतः त्न ही किया है। फिर भी वे हिन्दी निबन्ध-शिल्प के निर्माता एवं विचारक बन्धकार हैं। उनके निबन्ध उनके गम्भीर अध्ययन एवं अनुभव के परिणाम हैं। के विषय सामयिक एवं दृष्टि नूतन है।"[13] श्यामनन्दन प्रसाद सिंह के शब्दों में – नुभवों के आधार पर लिखे जाने के कारण उनका साहित्य सत्य के एकदम समीप जिसका स्पष्ट उदाहरण हम उनके निबन्धों में देख सकते हैं। उनके निबन्धों में र और विश्लेषण की पद्धति मिलती है और दूसरी ओर उनकी आत्मीयता भी वहाँ क्षित है। यही कारण है कि वहाँ व्यक्तित्व का प्रदर्शन भी मिलता है, हालांकि मान्य ढंग पर समष्टि के लिए उनकी कृतियाँ जान पड़ती हैं।"[14] श्री ब्रह्मदत्त शर्मा ल के निबन्धों में उनके बुद्धिवाद को प्रमुख रूप से देखते हैं—'उन्होंने अपने धों में रूढ़ियों के विरुद्ध बहुत लिखा है। वे बुद्धिवाद के परिपोषक हैं। स्वरूप की ट से इनके निबन्ध विचारात्मक श्रेणी के अन्तर्गत आयेंगे। ये अपने विचारों की भिव्यक्ति इस ढंग से करते हैं कि उनका ज्ञान पाठकों को सहज हो जाता है।"[15] तुतः राहुल हिन्दी के प्रौढ़ प्रगतिशील विचारक एवं निबन्धकार हैं और विचारात्मक न्ध के विकास में उनका अपना ही महत्त्व है।

सन्दर्भ

१. समीक्षा-शास्त्र-डॉ० दशरथ ओझा, पृ० १७४।
२. हिन्दी निबन्ध का विकास-डॉ० ओंकारनाथ शर्मा, पृ० १७।
३. साहित्य-सहचर-हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० १३६।
४-५. एन इन्ट्रोडक्शन टु दि स्टडी ऑफ़ इंग्लिश लिटरेचर, पृ० १३९।
६. साहित्य-रूप-रामअवध द्विवेदी, पृ० १०६ से उद्धृत।
७ हिन्दी निबन्ध का विकास, पृ० ३७ से उद्धृत।
८. एन इन्ट्रोडक्शन टु दि स्टडी ऑफ़ इंग्लिश लिटरेचर, पृ० ३३१।
९. दि ऑक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी (भाग २), पृ० २९३।
१०-११. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ५०५।
१२. हिन्दी साहित्य का इतिहास-डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, पृ० १३२।
१३. शब्द-साधना-रामचन्द्र वर्मा, पृ० २७२।
१४. हिन्दी निबन्ध का विकास, पृ० २१६।
१५. वही, पृ० २२१।
१६. निबन्धकार रामचन्द्र शुक्ल-डॉ० कृष्णदेव झारी, पृ० ११।
१७. हिन्दी साहित्यकोश, पृ० ४०६।
१८ समीक्षा-शास्त्र-सीताराम चतुर्वेदी, पृ० ६७३-७४।
१९. समीक्षा-शास्त्र-डॉ० दशरथ ओझा, पृ० १८३।
२०. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ५०६।
२१. वाङ्मय-विमर्श, पृ० ७१।
२२. साहित्य निबन्धावलि, पृ० १२४।
२३. वही, पृ० ३५।
२४. वही, पृ० ३-४।
२५. वही, पृ० १३।
२६. वही, पृ० ४।
२७. वही, पृ० १३।
२८. वही, पृ० १५९।
२९. वही, पृ० २७।
३०-३१. वही, पृ० ११-१२।
३२. वही, पृ० १४।
३३. वही।
३४. वही, पृ० ३८।
३५. वही, पृ० २१, १४८।
३६. वही, पृ० ५।
३७. वही, पृ० १६।
३८. वही, पृ० १४।
३९. आज की समस्याएँ, पृ० ३०।
४०. साहित्य निबन्धावलि, पृ० ८०।
४१. वही, पृ० ८४-८५।
४२. आज की समस्याएँ, पृ० ३७।

४३-४४. साहित्य निबन्धावलि, पृ० १, २।
४५. वही, पृ० ३।
४६. वही, पृ० ६।
४७. वही, पृ० २६।
४८-४९. वही, पृ० १२७।
५०. वही, पृ० १२६।
५१. आज की समस्याएँ, पृ० ४४।
५२. वही, पृ० ४५।
५३. वही, पृ० ४७।
५४. वही, पृ० ४८।
५५. वही, पृ० ५१।
५६. वही, पृ० ५३।
५७-५८. वही, पृ० ६१।
५९. वही, पृ० ५३।
६०. अतीत से वर्तमान,पृ० १५२-१५३।
६१. निबन्धकार रामचन्द्र शुक्ल, पृ० १२८ से उद्धृत।
६२-६३. तुम्हारी क्षय, पृ० १-४।
६४. वही, पृ० ३।
६५. साम्यवाद ही क्यों ?, पृ० ५३।
६६-६७. वही, पृ० ५६।
६८ दिमागी गुलामी, पृ० २५-२६।
६९. तुम्हारी क्षय, पृ० २७।
७०. वही, पृ० २८।
७१. साम्यवाद ही क्यों ?, पृ० ६६-६७।
७२. दिमागी गुलामी, पृ० ११।
७३. वही, पृ० १६।
७४. साम्यवाद ही क्यों ? पृ० ७०।
७५. वही, पृ० ७४।
७६. तुम्हारी क्षय, पृ० १७।
७७. साहित्य निबन्धावलि, पृ० २८।
७८. तुम्हारी क्षय, पृ० १५।
७९. वही, पृ० १६।
८०. वही, पृ० २२-२३।
८१. साम्यवाद ही क्यों ?, पृ० ७७।
८२. वही, पृ० ७२।
८३. दिमागी गुलामी, पृ० ७।
८४. अतीत से वर्तमान, पृ० १५८, १५९, १६१।
८५. साहित्य-निबन्धावलि, पृ० ७१।
८६. तुम्हारी क्षय, पृ० ५०।
८७. दिमागी गुलामी, पृ० ५।
८८. वही, पृ० ६।

८९. अतीत से वर्तमान, पृ० १७६।
९०. साहित्य निबन्धावलि, पृ० १९-२०।
९१. साम्यवाद ही क्यों ?, पृ० ६।
९२ वही, पृ० २६।
९३. वही, पृ० ३६।
९४ वही, पृ० ४०-४२।
९५. वही, पृ० ३६।
९६. वही, पृ० ४४।
९७. वही, पृ० ५५।
९८-९९ वही, पृ० ६२-६३।
१००. तुम्हारी क्षय, पृ० ६०।
१०१. साहित्य निबन्धावलि, पृ० २०६।
१०२. वही, पृ० १६६।
१०३. वही, पृ० १६३।
१०४. वही, पृ० ११४।
१०५. वही, पृ० १६६।
१०६. वही, पृ० ६४।
१०७. अतीत से वर्तमान, पृ० १८६।
१०८. वही।
१०९. वही, पृ० १८०।
११०. पुरातत्त्व निबन्धावली, पृ० १।
१११ फण्डामेण्टल्स ऑफ मार्क्स-इज्म एण्ड लेनिन-इज्म, पृ० १७५।
११२. तुम्हारी क्षय, पृ० ४३।
११३. वही।
११४. दिमागी गुलामी, पृ० ८।
११५. घुमक्कड़-शास्त्र, पृ० १, २, ५।
११६. वही, पृ० २, ७।
११७ वही, पृ० ३६।
११८. वही, पृ० ४७-४८।
११९. वही, पृ० १४०।
१२०-१२१. वही, पृ० १४४।
१२२. तुम्हारी क्षय, पृ० १७-१८।
१२३. साम्यवाद ही क्यों ?, पृ० ५३।
१२४. तुम्हारी क्षय, पृ० २३।
१२५. साहित्य-निबन्धावलि, पृ० ६६।
१२६-१२७. दिमागी गुलामी, पृ० २१।
१२८. घुमक्कड़-शास्त्र, पृ० ३।
१२९. साहित्य निबन्धावलि, पृ० १६४।
१३०. पुरातत्त्व निबन्धावलि, पृ० १११।
१३१. अतीत से वर्तमान, पृ० १२३।
१३२ साहित्य-निबन्धावलि, पृ० २४।

पंचम खण्ड नौवाँ परिवर्त

उपसंहार

अब हम महापण्डित राहुल सांकृत्यायन के रचना-संसार और अनुभव-संसार की एक लम्बी यात्रा कर आए हैं। अतः अब राहुल जी की उपलब्धि तथा आधुनिक साहित्य में उनका प्रभाव और भविष्य में उनकी महत्ता एवं मूल्यांकन, पुनरनुसंधान एवं सम्भावनाओं आदि पर भी विचार हो सकता है। हम यह मानते हैं कि राहुल सांकृत्यायन वर्तमान-आज तथा भविष्य-कल के कलाकृती एवं संस्कृति-सारथी हैं।

राहुल सांकृत्यायन ने अपने बृहद्, उपयोगी एवं सर्जनात्मक साहित्य की रचना द्वारा भारतीय समाज को प्रभावित किया है, उसे दिशा-निर्देश दिया है, स्वस्थ एवं स्वच्छ जीवन-दृष्टि प्रदान की है। उन्होंने किसी एक साहित्यिक विधा में सीमित होकर नहीं लिखा, किसी विशेष विषय में आबद्ध होकर लेखनी नहीं चलाई, प्रत्युत हिन्दी भाषा के जिस क्षेत्र में अभाव को देखा, वह चाहे विधात्मक या अथवा विषया-त्मक, उसी की पूर्ति के लिए उन्होंने अपनी लेखनी का चमत्कार दिखाया। अपने विराट् व्यक्तित्व के अनुरूप ही उन्होंने साहित्य-सर्जना की तथा विभिन्न साहित्यिक विधाओं को सम्पन्न बनाया। महापण्डित राहुल के मानस के तीन आयाम हैं—साहित्य-कार, इतिहासकार विद्वान् तथा पुरातत्ववेत्ता, और मार्क्सवादी एवं बौद्ध दार्शनिक। साहित्यकार राहुल ने उपन्यास, कहानी, जीवनी, आत्मकथा, पत्र, दैनन्दिनी, संस्मरण, यात्रा-साहित्य, निबन्ध, नाटक, साहित्येतिहास—इन सभी गद्य-रूपों में साहित्य-सर्जना की तथा मनीषी दार्शनिक राहुल ने इतिहास, पुरातत्व, समाज-शास्त्र, दर्शन, भाषा, सभ्यता, संस्कृति, धर्म, राजनीति, विज्ञान आदि अनेक विषयों को लेकर हिन्दी-साहित्य की ज्ञानराशि को सम्पन्न बनाया। हमारे अध्ययन-विषय की सीमा राहुल जी के सर्जना-त्मक साहित्य तक ही रही है, लेकिन इतिहासकार, साहित्यकार और दार्शनिक राहुल में एक ही विचार-दृष्टिकोण परिव्याप्त है। अतः उनका सर्जनात्मक साहित्य समाज-शास्त्र और दर्शन-शास्त्र दोनों से सम्बद्ध हुआ है। हम यह मानते हैं कि राहुल ने यह सर्वप्रथम प्रदर्शित किया कि शुद्ध साहित्य कितना सीमित, एकभावात्मक, अपर्याप्त, अव्यावहारिक तथा कई सीमाओं तक निरर्थक होता है। यह उनके सम्पूर्ण जीवन तथा समग्र रचना संसार का निष्कर्ष है। अतः महान् मनीषी सामाजिक और दार्शनिक

होकर ही राष्ट्रीय-संस्कृति को साकार कर सकता है। फलस्वरूप राहुल जी के सर्जनात्मक साहित्य को राष्ट्रीय और सांस्कृतिक साहित्य की नई संज्ञा दी जा सकती है। यह कलात्मक होने के अतिरिक्त राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक है। किन्तु अन्ततोगत्वा हम यही देखते हैं कि साहित्यकार राहुल और मनीषी राहुल पर दार्शनिक राहुल का अभिताभ छाया हुआ है। कभी-कभी तो यह प्रतीत होता है कि विश्व संस्कृति के निर्माताओं में राहुल भी एक हस्ताक्षर होंगे। आधुनिक युग में उनकी तुलना केवल फ्रांसीसी लेखक-दार्शनिक-विचारक जॉ पाल सार्त्र से की जा सकती है (यद्यपि दोनों के दृष्टिकोण में पर्याप्त समानताएँ और विभिन्नताएँ भी हैं)। इस तरह हमारा यह अध्ययन राहुल का विश्व-संस्कृति के आयाम में मूल्यांकन करने का भी मुख्य द्वार खोल देता है।

राहुल जी के साहित्य की अपनी सीमाएँ एवं सम्भावनाएँ हैं। उनकी सर्जनात्मक साहित्य को सर्वाधिक उल्लेखनीय देन उपन्यासकार के रूप में है। यहाँ हमें इस बात का स्पष्टीकरण पुनः करना पड़ेगा कि राहुल शास्त्रीय उपन्यासकार न होकर एक दार्शनिक उपन्यासकार, मार्क्सवादी एवं बौद्ध ऐतिहासिक उपन्यासकार, विश्वयात्री उपन्यासकार तथा पुरातन जनगायिनो, कुशीलवों और सूतों की परम्परा में चले आते हुए गुणाढ्य एवं सोमदेव-की परम्परा का वहन करते हुए एक आधुनिक कथा-शिल्पी बन जाते हैं। अतः उनके उपन्यास हिन्दी में प्रयोगात्मक उपन्यासों (एक्सपेरीमेंण्टल नॉवल्ज़),प्र-उपन्यासों(एण्टी-नावल्ज़)तथा मिथक-सास्कृतिक उपन्यासों(मिथो-कल्चरल नॉवल्ज़) का समर्थ एवं सशक्त प्रारम्भ करते हैं। 'सिंह सेनापति', 'मधुर स्वप्न', 'जय यौधेय' आदि ऐतिहासिक उपन्यासों में राहुल ने ऐतिहासिक यथार्थ को अपनी विचारधारा के अनुरूप रूपायित किया है। इन उपन्यासों में कल्पना की अपेक्षा तथ्यों एवं व्याख्याओं की प्रधानता है। प्राचीन भारत के सास्कृतिक परिवेश के अंकन के साथ-साथ ईरान के सांस्कृतिक जीवन के एक विस्मृत अध्याय को उन्होंने अपने एक उपन्यास में बिम्बात्मक रूप में प्रस्तुत किया है। राहुल ने अपने ऐतिहासिक उपन्यासों में प्राचीन गणतन्त्रयुगीन भारत के चित्र अंकित कर वर्तमान भारत के सम्मुख गणतंत्र-शासन-प्रणाली का आदर्श प्रस्तुत किया है। बौद्ध दर्शन एवं द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के समन्वय का नवोन्मेष राहुल जी की मौलिक कल्पना है। हमने इस विषय की विशेष रूप से खोज की है और हमारा विश्वास है कि इस पर आगे महत्त्वपूर्ण कार्य किया जा सकेगा। 'सिंह सेनापति' के माध्यम से राहुल ने ऐतिहासिक उपन्यास को नया वर्ण्य-विषय एवं शैली प्रदान की है जिसका अनुकरण 'वैशाली की नगरवधू' (चतुरसेन शास्त्री) एवं 'बाणभट्ट की आत्मकथा' (हजारीप्रसाद द्विवेदी) में मिलता है। राहुल के 'जय यौधेय' की हिन्दी के दस सर्वश्रेष्ठ उपन्यासों में गणना की जा सकती है तथा 'मधुर स्वप्न' विदेशी वातावरण को चित्रित करने वाला प्रथम हिन्दी उपन्यास माना जा

है। इस प्रकार हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यास के क्षेत्र में राहुल की देन स्तुत्य। राहुल के ऐतिहासिक उपन्यासों की अपनी सीमाएँ भी हैं। उसका कारण, राहुल की

उपयोगितावादी कला-दृष्टि है। मार्क्सवाद के प्रचार के उद्देश्य से उन्होंने ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना की है। यह सोद्देश्यता उनके उपन्यासों को इतना अधिक अभिभूत किये हुए है कि वे औपन्यासिक शिल्प के निखार की ओर विशेष ध्यान नहीं दे पाये। फिर भी वातावरण-सर्जना तथा स्वस्थ एवं स्पष्ट जीवन-दर्शन के अतिरिक्त इतिहास-तत्त्व तथा आत्मकथात्मक एवं वर्णनात्मक शैलियाँ उनके ऐतिहासिक उपन्यासों की हिन्दी को विशिष्ट देन है। राहुल के सामाजिक उपन्यासों का महत्त्व कलागत न मान कर विचारगत ही समझना चाहिए। सौन्दर्यशास्त्र का एक समाजशास्त्रीय सिद्धान्त है कि इतिहास-व्याख्या और कला-रचना दोनों ही जब प्रतिबद्ध लेखक (कोमिटड राइटर) के द्वारा की जाती हैं तब उसमें प्रकट प्रवृत्यात्मकता (ओवन टैण्डैंसीयसनेस) का आविर्भाव होता है जो एक साथ प्रखर, विवादपूर्ण, संघर्षमय तथा शिवसाधक होती है। इसी के पूरक रूप में समाजशास्त्र का एक सौन्दर्यशास्त्रीय सिद्धांत है कि जब सामग्री (सब्जेक्ट मैटर), विपुल, विविध एवं विराट् होती है तो उपन्यास की विषयवस्तु (कण्टैण्टस) का स्वरूप पाणिवृत्तीय (पेनोरमिक) हो जाता है। फलस्वरूप सामग्री और विषयवस्तु से संचालित होने के कारण कलात्मक रूप (आर्टिस्टिक फार्म) में तनाव और तेज दोनों का विधान होता है। राहुल जी के सर्जनात्मक कृतित्व में उक्त दोनों सौन्दर्य-सामाजिक सूत्रों के परिप्रेक्ष्य में उनकी सम्भावनाओं को हमने उद्घाटित किया है।

जनसाधिन राहुल ने हिन्दी कहानी को नवीन दिशाएँ प्रदान की हैं। 'वोल्गा से गंगा' तथा 'कनैला की कथा' द्वारा राहुल ने ऐतिहासिक कहानी को नई दृष्टि प्रदान की है। इतिहास, पुरातत्त्व, समाजशास्त्र, संस्कृति, सभ्यता, दर्शन— सभी को वर्ण्य-विषय बनाती मानव-समाज के विकास के आठ सहस्र वर्षों के इतिहास का निरीक्षण एवं विश्लेषण करने वाली राहुल की कथा-सृष्टि हिन्दी के लिए वरदान है। अपनी सामाजिक कहानियों में राहुल ने जनजीवन के यथार्थ, करुण एवं मार्मिक चित्र प्रस्तुत किये हैं। उपन्यास-शिल्प की तरह राहुल का कहानी-शिल्प भी प्रौढ़ एवं विकसित नहीं है। इतिहास एवं पुरातत्त्व के विद्वान् से इसकी सम्भावना भी नहीं की जा सकती। राहुल जी ने हिन्दी कथा-साहित्य को नवीन वर्ण्य प्रदान किया है। एक ओर ऐतिहासिक-सांस्कृतिक कहानियों की उन्होंने रचना की है तो दूसरी ओर आंचलिक एवं संस्मरणात्मक कहानियों के लिए भी पथ-निर्देश किया है। 'वोल्गा से गंगा' तो हिन्दी-कहानी के क्षेत्र में एक उपलब्धि है। इसकी प्रत्येक कहानी का प्रयोजन है। यहाँ भी राहुल जी की मौलिक सर्जना-शक्ति का एक नया हाशिया उभरता है। उन्होंने वस्तुतः 'वोल्गा से गंगा' में भारतीय इतिहास की मार्क्सवादी व्याख्या को नारों से हटा कर कला के सम्प्रेषण से जोड़ा है। 'कनैला की कथा' में उन्होंने निजंधरों तथा अवशेषों के आधार पर लोक-इतिहास (फोक-हिस्ट्री) रचने की नई शैली को जन्म दिया है। इस दृष्टि से दोनों कृतियाँ इतिहास-लेखन (हिस्टोरियोग्राफी) की दो आधुनिक पद्धतियों का अनुप्रवेश कराती हैं। ऐतिहासिक उपन्यासों के अपने दर्शन को उन्होंने इन

दोनों कहानी-संग्रहों में प्रौढ़ता से लागू किया है। राहुल की इस देन का भी परवर्ती आधुनिक साहित्य पर प्रभाव पड़ा है। विशेष रूप से 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' द्रष्टव्य है। उर्दू-लेखक कुर्तुल ऐनहैदर का 'आग का दरिया' मानों 'वोल्गा से गंगा' से ही अनुप्राणित है। इस तरह राहुल जी कथाओं में नाट्य की सम्भावनाएँ उद्घाटित करते हैं।

राहुल जी का जीवनीपरक साहित्य पर्याप्त विशद है। हिन्दी में कलात्मक जीवनियों का अभाव ही है। इस दृष्टि से 'वीर चन्द्रसिंह गढ़वाली' तथा 'घुमक्कड़ स्वामी' जैसी जीवनीकृतियाँ राहुल के स्तुत्य प्रयास हैं। ये जीवनियाँ जीवनी-साहित्य का मार्ग-दर्शन कर सकती हैं। 'मेरी जीवन यात्रा' राहुल जी की बृहत् आत्मकथा है, जिसमें वर्ण्य-विषय की यथार्थता, तटस्थता एवं निष्पक्षता के साथ-साथ भाषा-शैली की चारुता एवं मधुरता विद्यमान है। राहुल जी की संस्मरण-रचनाएँ सामान्य व्यक्तियों तथा असहयोग आन्दोलन के विस्मृत जननायकों एवं लब्धप्रतिष्ठ साहित्यकारों, भाषा-शास्त्रियों, इतिहासकारों तथा यायावरों से सम्बन्धित हैं। इस प्रकार गुण एवं परिमाण दोनों दृष्टियों से राहुल जी का जीवनीपरक साहित्य विशद है। परन्तु यहाँ भी उनकी सीमाएँ एवं न्यूनताएँ स्पष्टतः लक्षित हैं। राहुल का विवरण-मोह, अवान्तर प्रसंगों की अवतारणा, निजी दृष्टिकोण की यत्र-तत्र अभिव्यक्ति आदि दोष उनके जीवनीपरक साहित्य को आक्रान्त किये हुए हैं जिसके कारण वे कलात्मक संस्मरण एवं लघु जीवनियाँ नहीं दे सके। उनकी आत्मकथा तो बहुविस्तृत है ही, उनके संस्मरण संस्मरणात्मक निबन्ध से प्रतीत होते हैं। कलागत प्रौढ़ता का उनके संस्मरणों में अभाव ही है। फिर भी राहुल की मनुष्य-सम्बन्धी धारणा को उनका जीवनीपरक साहित्य बखूबी प्रकाशित करता है।

यायावर के रूप में राहुल आधुनिक स्मृतिज्ञानकीर्ति तथा मार्कोपोलो माने जा सकते हैं। उनके यायावर-साहित्यकार के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति उनके यात्रा-संबंधी साहित्य में प्राप्त होती है। राहुल की यात्राओं में वर्णित यात्रा-क्षेत्र विविध हैं, भौगोलिक एवं ऐतिहासिक सूक्ष्म पर्यवेक्षण तथा परिवेश का यथार्थ अंकन है, अनेकत्र निबन्धकार की-सी मस्ती तथा भावुक कलाकार की संवेदनीयता भी उनमें प्राप्य है। हिन्दी के यात्रा-साहित्य के इने-गिने लेखकों मे राहुल शीर्षस्थ हैं, इसमें सन्देह नहीं। फिर भी उनके अधिकांश यात्रा-वर्णन भौगोलिक एवं ऐतिहासिक वर्णनों की दृष्टि से ही अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। वे ज्ञानवर्धक एवं रोचक यात्रा-वृत्तान्त हैं। 'हिमालय-परिचय', 'कुमाऊँ', 'किन्नर देश' आदि ऐसी ही रचनाएँ हैं। राहुल की 'मेरी लद्दाख-यात्रा', 'मेरी यूरोप-यात्रा' तथा तिब्बत-सम्बन्धी यात्राओं में प्रौढ़ यात्रा-साहित्य की सम्भावनाएँ निहित हैं। 'घुमक्कड़-शास्त्र' में राहुल के यात्रा-सम्बन्धी विचार हैं। घुमक्कड़ राहुल की यह अमर कृति है। इसीलिए हमने राहुल को घुम्कीरथा कहने वाला बताया है। वास्तव में कलात्मक यात्रा-साहित्य का समारम्भ राहुल से होता है। अज्ञेय, मोहन राकेश तथा निर्मल वर्मा इन्हीं की परम्परा में आते हैं। इस दृष्टि

परिशिष्ट ७

साहित्येतिहासकार राहुल

राहुल हिन्दी के विद्वान्, पुरातत्ववेत्ता एवं इतिहासकार हैं। 'मध्य एशिया का इतिहास' राहुल की गवेषणात्मक ऐतिहासिक प्रतिभा की परिचायिका कृति है। साहित्येतिहासकार के रूप में भी राहुल जी की महती देन है। उन्होंने संस्कृत, पालि, अपभ्रंश एवं हिन्दी-साहित्य के इतिहास-क्षेत्र में नवीन तथ्यों को प्रकाशित किया है। उनकी प्रमुख साहित्येतिहासविषयक कृतियाँ हैं – (१) संस्कृत-काव्यधारा (२) पालि साहित्य का इतिहास (३) पालि-काव्यधारा (अप्रकाशित) (४) हिन्दी-काव्यधारा (५) दक्खिनी हिन्दी-काव्यधारा (६) आदि हिन्दी की कहानियाँ और गीतें (संकलन) तथा (७) हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास (हिन्दी का लोक-साहित्य, सम्पादित)। इन रचनाओं में राहुल जी ने भारतीय आर्य- भाषाओं के श्रेष्ठ कवियों की रचनाओं का संकलन, साहित्यकारों का जीवन एवं साहित्यिक परिचय प्रस्तुत किया है तथा इनकी भूमिकाओं के रूप में धारा-विशेष की सामान्य प्रवृत्तियों का विवेचन भी। यहाँ हिन्दी-साहित्य के इतिहास-लेखक के रूप में उनकी देन पर विचार किया जाएगा।

हिन्दी-साहित्य के शोधपरक इतिहास-लेखकों में राहुल उल्लेख्य हैं। राहुल ने शुक्ल की तरह हिन्दी-साहित्य का सर्वांगीण इतिहास नहीं लिखा, उनका ऐतिहासिक शोध प्रमुखतः आदिकाल से सम्बन्धित है। इस क्षेत्र में उनकी महत्वपूर्ण रचना है 'हिन्दी-काव्यधारा'। इसके अतिरिक्त 'पुरातत्व-निबन्धावली' में बौद्ध-सिद्धों के विषय में लिखे गये निबन्ध भी इस दिशा में कम महत्वपूर्ण नहीं। डॉ० रामदरश मिश्र शोध और गवेषणा के क्षेत्र में राहुल सांकृत्यायन की 'हिन्दी काव्यधारा' को विशेष उल्लेखनीय कृति मानते हैं।[1] डॉ० शम्भूनाथ सिंह 'पुरातत्व निबन्धावली' के निबन्धों के विषय में अपना मत इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं—'राहुल सांकृत्यायन की 'पुरातत्व निबन्धावली' में 'महायान बौद्धधर्म की उत्पत्ति','वज्रयान और चौरासी सिद्ध', 'हिन्दी के प्राचीनतम कवि और कविताएँ' आदि ऐसे निबन्ध हैं, जिनसे मध्यकालीन निर्गुण काव्यधारा की पूर्वपरम्परा तथा उसके मूलस्रोतों पर बहुत ही अधिक प्रकाश पड़ता है।"[2]

हिन्दी-साहित्य का काल-विभाजन और नामकरण हिन्दी के इतिहासकारों के लिए एक समस्या बनी हुई है और हिन्दी-साहित्य के आदिकाल के नामकरण

कथात्मक, संवादात्मक, पत्रात्मक, हास्यव्यंग्यात्मक आदि विभिन्न शैलियों के प्रयोग किये हैं, परन्तु उन्हें सर्वाधिक सफलता वर्णनात्मक शैली में ही मिली है। उनके समग्र साहित्य में प्रधान रूप से यही शैली रही है। भाषा के क्षेत्र में भी राहुल एक महत् विचार से सचालित हैं। भाषा किसी व्यक्ति अथवा वर्ग अथवा समूह की एकान्तिक सम्पत्ति नहीं होती। यह एक पूरे समाज की सम्पत्ति होती है। किन्तु इसका परिष्कार और इसका व्यवहार विभिन्न प्रकारों से होता है। राहुल ने भाषा को धर्म से हटाकर कला से जोड़ा, कुलीन संस्कारों से हटाकर समाज-व्यवहार से जोड़ा तथा कलात्मक पहेलिकाओं से हटाकर जीवन्त कर्म से जोड़ा। सारांश में उन्होंने भाषा और धर्म की सामन्ती मैत्री समाप्त करके भाषा और जनसमाज की मैत्री कायम की। इस दृष्टि से आज राष्ट्रीय एकता और राष्ट्रभाषा की समस्या को दिशा देने में राहुल प्रेमचन्द की तरह एक उदाहरण बन सकते हैं।

इस प्रकार राहुल के सर्जनात्मक साहित्य की अपनी सीमाएँ एवं संभावनाएँ हैं। उनका समग्र साहित्य विचारों की प्रौढ़ता, उदात्तता एवं गरिमा से युक्त है, उसमें वर्तमान समाज के निर्माण के लिए उदात्त संदेश एवं जीवन-दर्शन है, समाज के विकृताओं पर व्यंग्य है तथा उसमें व्याप्त राहुल का प्रगतिशील चिन्तक सर्वत्र मानवतावाद के विकास का स्वप्न देखता है। राहुल की भाषा सर्वत्र उनके विचारों को वहन करने में समर्थ है। वस्तुतः राहुल के ऐतिहासिक उपन्यास, ऐतिहासिक कहानियाँ, यात्रा एवं जीवनीइतियाँ अपनी अनेक विशेषताओं के कारण हिन्दी-साहित्य में अक्षुण्ण महत्त्व की हैं, इसमें संदेह नहीं। निष्कर्ष रूप में हम उपसंहार की प्रारंभिक पंक्ति ही दुहराते हैं कि राहुल वर्तमान-प्राज तथा भविष्य-काल के कलाकृती एवं संस्कृति-मार्गी हैं।

परिशिष्ट ७

साहित्येतिहासकार राहुल

राहुल हिन्दी के विद्वान, पुरातत्ववेत्ता एवं इतिहासकार हैं। 'मध्य एशिया का इतिहास' राहुल की सर्वोत्तम ऐतिहासिक प्रतिभा की परिचायिका कृति है। साहित्येतिहासकार के रूप में भी राहुल जी की बड़ी देन है। उन्होंने संस्कृत, पालि, अपभ्रंश एवं हिन्दी-साहित्य के इतिहास क्षेत्र में नवीन तथ्यों को प्रकाशित किया है। उनकी प्रमुख साहित्येतिहासविषयक कृतियाँ हैं - (१) संस्कृत-काव्यधारा (२) पालि साहित्य का इतिहास (३) पालि-काव्यधारा (अप्रकाशित) (४) हिन्दी-काव्यधारा (५) दक्खिनी हिन्दी-काव्यधारा (६) आदि हिन्दी की कहानियाँ और गीतें (सम्पादन) तथा (७) हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास (हिन्दी का लोक-साहित्य, सम्पादित)। इन रचनाओं में राहुल जी ने भारतीय आर्य-भाषाओं के श्रेष्ठ कवियों की रचनाओं का संकलन, साहित्यकारों का जीवन एवं साहित्यिक परिचय प्रस्तुत किया है तथा इनकी भूमिकाओं के रूप में भाषा-विशेष की सामान्य प्रवृत्तियों का विवेचन भी। यहाँ हिन्दी-साहित्य के इतिहास-लेखक के रूप में उनकी देन पर विचार किया जाएगा।

हिन्दी-साहित्य के शोधपरक इतिहास-लेखकों में राहुल उल्लेख्य हैं। राहुल ने शुक्ल की तरह हिन्दी-साहित्य का सर्वांगीण इतिहास नहीं लिखा, उनका ऐतिहासिक शोध प्रमुखतः आदिकाल से सम्बन्धित है। इस क्षेत्र में उनकी महत्वपूर्ण रचना है 'हिन्दी-काव्यधारा'। इसके अतिरिक्त 'पुरातत्व-निबन्धावली' में बौद्ध-सिद्धों के विषय में लिखे गये निबन्ध भी इस दिशा में कम महत्वपूर्ण नहीं। डॉ० रामदरश मिश्र शोध और गवेषणा के क्षेत्र में राहुल सांकृत्यायन की 'हिन्दी काव्यधारा' को विशेष उल्लेखनीय कृति मानते हैं।[1] डॉ० शम्भूनाथ सिंह 'पुरातत्व निबन्धावली' के निबन्धों के विषय में अपना मत इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं—'राहुल सांकृत्यायन की 'पुरातत्व निबन्धावली' में 'महायान बौद्धधर्म की उत्पत्ति', 'वज्रयान और चौरासी सिद्ध', 'हिन्दी के प्राचीनतम कवि और कविताएँ' आदि ऐसे निबन्ध हैं, जिनसे मध्यकालीन निर्गुण काव्यधारा की पूर्वपरम्परा तथा उसके मूलस्रोतों पर बहुत ही अधिक प्रकाश पड़ता है।'[2]

हिन्दी-साहित्य का काल-विभाजन और नामकरण हिन्दी के इतिहासकारों के लिए एक समस्या बनी हुई है और हिन्दी-साहित्य के आदिकाल के नामकरण की

समस्या तो सर्वाधिक जटिल है। 'साहित्य के इतिहास का काल-विभाजन सांस्कृतिक (राजनीतिक, सामाजिक, कला-विषयक आदि) परिस्थितियों में परिवर्तन होने के फलस्वरूप उत्पन्न साहित्यिक प्रवृत्तियों के आधार पर होना ही संगत माना जा सकता है।'[3] इस दृष्टि से आदिकाल के नामकरण और पूर्वापर सीमा-निर्धारण के विषय में राहुल जी का कार्य प्रशंसनीय है। आदिकाल के लिए राहुल जी ने 'सिद्ध-सामन्त युग' नामकरण सुझाया है।[4] 'सिद्ध-सामन्त युग' नामकरण विषय-वस्तु एवं साहित्यिक प्रवृत्तियों के परिप्रेक्ष्य में सार्थक प्रतीत होता है। इस विषय में हजारीप्रसाद द्विवेदी का कथन द्रष्टव्य है—'विषयवस्तु को दृष्टि में रखकर राहुल जी ने एक और नाम सुझाया है जो बहुत दूर तक तत्कालीन प्रवृत्ति को स्पष्ट करता है। यह नाम है सिद्ध-सामन्त-काल। इस काल में जो साहित्य मिलता है, उसमें सिद्धों का लिखा साहित्य ही प्रधान है..............सामन्तकाल में सामन्त शब्द से उस युग की राजनीतिक स्थिति का पता चलता है और अधिकांश चारण जाति के कवियों की राजस्तुति-परक रचनाओं के प्रेरणा-स्रोतों का भी पता चलता है। सामन्त जिस काव्य का प्रधान आश्रयदाता है, उसमें उसकी झूठी-सच्ची विजयगाथाओं और कल्पित-अकल्पित प्रेम-प्रसंगों का होना उचित ही है। एक के द्वारा वह वीर रस का आश्रय बनता है, दूसरे के द्वारा शृंगार रस का आलम्बन। सामन्त को दोनों ही चाहिए। इस प्रकार इस शब्द में इस काल की मुख्य-प्रवृत्तियों को स्पष्ट करने का गुण है।'[5] नामकरण के साथ-साथ इस काल की पूर्वापर सीमा का निर्धारण भी राहुल जी ने किया है। सरहपा से लेकर राजशेखर सूरि तक के कवियों को इस काल में ग्रहण कर राहुल आदिकाल की सीमा ७६० से १३००ई० तक मानते हैं। इस प्रकार उन्होंने हिन्दी-साहित्य का आरम्भ दसवीं-ग्यारहवीं शती से न मानकर आठवीं शती से माना है। राहुल आठवीं से तेरहवीं शती की भाषा को हिन्दी कहते हैं, जिस प्रकार आज की मालवी, मारवाड़ी, मल्ली (भोजपुरी) और मैथिली।[6] राहुल की मान्यता है कि इस काल की भाषा संस्कृत-प्राकृत नहीं, हिन्दी है और इसमें तत्सम के स्थान पर तद्भव शब्दों का प्रयोग है।[7] वे इसके अपभ्रंश तथा देसीभाषा के नाम का भी उल्लेख करते हैं और अपभ्रंश होने को दूषण नहीं, भूषण मानते हैं।[8] इस प्रकार राहुल अपभ्रंश को हिन्दी मानकर चलते हैं, पर साथ ही इसे सम्मिलित भाषा कहते हैं और सिद्ध-सामन्त-युगीन साहित्य को वे सारे उत्तर भारत की भाषाओं की सम्मिलित निधि मानते हैं।[9] यहाँ राहुल के कथन में असंगति-सी प्रतीत होती है। एक ओर वे इस युग की भाषा को सभी भाषाओं की सम्मिलित निधि मानते हैं और दूसरी ओर इसे 'हिन्दी' अथवा 'पुरानी हिन्दी' कहते हैं। राहुल का अपभ्रंश को हिन्दी मानना भाषा-वैज्ञानिक दृष्टि से संगत नहीं। अस्तु, अपभ्रंश एवं देशी भाषा में रचित सिद्ध-चारण कवियों की साहित्यिक प्रवृत्तियों के लिए 'सिद्ध-सामन्त-युग' नामकरण कुछ सीमा तक सार्थक है, यद्यपि इन सभी कवियों की भाषा को हिन्दी भाषा मानना भाषा-वैज्ञानिक दृष्टि से स्वीकार्य नहीं हो सकता।

नामकरण और सीमा-निर्धारण के अतिरिक्त राहुल ने 'हिन्दी-काव्यधारा' में सिद्ध-सामन्त-युग के साहित्य की प्रेरक परिस्थितियों का भी विस्तृत विवेचन किया है। वे 'सिद्ध-सामन्त-युग' की कविताओं की सृष्टि को अपने देश की ठोस धरती की उपज मानते हैं। फलतः उन्होंने तत्कालीन आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं साहित्यिक अवस्था का यथार्थ विवेचन किया है। राहुल अपभ्रंश के साहित्य को हिन्दी साहित्य के लिए प्रेरणा स्रोत मानते हैं—'हमारे विद्यापति, कबीर, सूर, जायसी और तुलसी के ये ही उज्जीवक और प्रथम प्रेरक रहे हैं।'[१०] निस्सन्देह सरहपा, स्वयंभू आदि कवियों के साहित्य में नये चमत्कार, नये भाव एवं नये छन्दों की सृष्टि मिलती है, जिससे परवर्ती हिन्दी-साहित्य पर्याप्त प्रभावित हुआ है।

इस प्रकार 'हिन्दी-काव्यधारा' में एक ओर हिन्दी के आदिकाल के नामकरण की समस्या को हल करने का प्रयास है, तो दूसरी ओर अपभ्रंश के अनेक कवियों की रचनाओं का संग्रह, परिचय तथा उनके परवर्ती साहित्य पर प्रभाव का विश्लेषण है। बौद्ध-सिद्धों के साहित्य को प्रकाश में लाने का बहुत बड़ा श्रेय राहुल को है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी लिखते हैं—'बौद्ध-सिद्धों की रचनाओं के प्रकाशन में राहुल के प्रयत्नों से महत्त्वपूर्ण कार्य और नयी सामग्री प्राप्त हुई है।'[११] वस्तुत 'हिन्दी काव्य-धारा' का लेखक शोधकर्त्ता इतिहासकार है और इस क्षेत्र में वह डॉ० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल के समक्ष है। डॉ० शम्भूनाथ सिंह लिखते हैं—'शोध और साहित्य के इतिहास के क्षेत्र में राहुल सांकृत्यायन का कार्य मौलिक एवं महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने न केवल शोध-कार्य का दिशा-निर्देश किया, बल्कि ऐसे भूले-बिसरे तथ्यों का भी पता लगाया है जिनके सूत्र को पकड़कर आगे के शोधकर्त्ताओं ने अधिकाधिक कार्य किया। हिन्दी-काव्य की निर्गुणधारा के मूल स्रोतों के सम्बन्ध में डॉ० बड़थ्वाल और राहुल सांकृत्यायन के कार्य ने तो हिन्दी-साहित्य के इतिहास में नये अध्याय ही खोल दिये।'[१२] वस्तुतः 'हिन्दी काव्यधारा' से ग्रन्थ-सम्पादन, शोधकार्य और ग्रंथ-संचय[१३] जैसे महत्त्व-पूर्ण कार्य का सम्पादन हुआ है, जिसका हिन्दी में उस समय तक प्रायः अभाव ही दृष्टिगोचर होता है। 'सरह दोहा कोश' भी इस दिशा में उनकी महत्त्वपूर्ण सम्पादित कृति है।

साहित्येतिहासकार राहुल की दूसरी कृति है—'दक्खिनी हिन्दी काव्यधारा'। यह रचना भी उनकी शोधपरक-प्रवृत्ति का ही परिणाम है। दक्खिनी हिन्दी राहुल की दृष्टि में हिन्दी की कड़ी है। इस पुस्तक में राहुल की कई मौलिक स्थापनाएँ हैं।[१४] 'हिन्दी काव्यधारा' की तरह इस कृति में भी बन्दा नेवाज़ से लेकर 'तुराब दखनी' तक के साहित्यकारों की गद्य-पद्य रचनाओं का संग्रह किया गया है तथा कवियों और उनकी रचनाओं से सम्बन्धित गवेषणात्मक परिचय भी दिया गया है। दक्खिनी हिन्दी के साहित्य को वे आदिकाल (१४००-१५०० ई०), मध्यकाल (१५००-१६५७ ई०) तथा उत्तरकाल (१६५७ से १८४० ई०) में विभक्त कर उसके प्रमुख कवियों की रचनाओं का संक्षिप्त मूल्यांकन प्रस्तुत करते हैं।

साहित्येतिहासकार के रूप में राहुल का एक अन्य दिशा-निर्देशक कार्य है लोक-साहित्य का संकलन। राहुल जन-साहित्य को विशेष महत्त्व देते थे और उसके संचयन को साहित्य एवं भाषा के इतिहास को जानने के लिए अत्यन्त उपयोगी मानते थे। 'आदि हिन्दी की कहानियां और गीतें' में राहुल ने कौरवी बोली की कुछ कहानियों और गीतों का सग्रह किया है। जन-साहित्य का लोप वे हिन्दी के लिए दुर्भाग्य की बात समझते हैं। वे हिन्दी को जन-भाषा से अपना अविच्छिन्न सम्बन्ध स्थापित करने के लिए कहते हैं—'हिन्दी के लिए यह दुर्भाग्य की बात है कि साहित्यिक भाषा का जन्म लेकर ग्रामवासिनी कौरवी से उसका नाता टूट गया। माता से छिनकर शिशु को धाय के हाथ में सौंप दिया गया। राहुल शिष्ट साहित्य को लोक-साहित्य का विकसित, सस्कृत तथा परिमार्जित स्वरूप मानते हैं।"[५] 'हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास' (षोडश भाग) का सम्पादन इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

इस प्रकार साहित्येतिहासकार राहुल एक ओर हिन्दी के पूर्ववर्ती अपभ्रंश-साहित्य के विषय में शोधपूर्ण सामग्री प्रदान करते हैं तो दूसरी ओर हिन्दी के दक्खिनी रूप-दक्खिनी हिन्दी के साहित्य के महत्त्व की प्रतिष्ठापना करते हैं। जन-साहित्य के संकलन-सम्पादन से वे लोक-साहित्य के इतिहास का दिशा-निर्देश करते हैं। वस्तुतः राहुल शोधकर्त्ता इतिहासकार हैं। उनके अन्वेषणों ने हिन्दी-साहित्य से सम्बन्धित पुरानी धारणाएँ बदली हैं। उनके अनुसन्धानों ने हिन्दी साहित्य को प्रभावित किया है, जिससे साहित्येतिहास में कई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं।

सन्दर्भ

१. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास (त्रयोदश भाग), पृ० ५१४।
२. वही, पृ० ४५०।
३. बीसवीं शताब्दी हिन्दी साहित्य : नये सदर्भ, पृ० २८६।
४. हिन्दी-काव्यधारा (अवतरणिका), पृ० ३।
५. हिन्दी साहित्य का आदिकाल-हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० २४।
६. हिन्दी-काव्यधारा, पृ० ४।
७. वही, पृ० ५।
८. वही।
९. वही, पृ० १२।
१०. हिन्दी-काव्यधारा, पृ० १३।
११. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० २३।
१२. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास (त्रयोदश भाग), पृ० ४५६।
१३. हिन्दी साहित्य की भूमिका-हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० १२२।
१४. आदि हिन्दी की कहानियाँ और गीतें, पृ० २।
१५. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास (षोडश भाग), पृ० १३।

परिशिष्ट २

राहुल जी के भोजपुरी नाटक

राहुल जी हिन्दी भाषा के प्रबल समर्थक होने के साथ-साथ मातृभाषाओं के प्रति विशेष अनुराग रखते थे। हिन्दी उनकी दृष्टि में अन्तःप्रान्तीय भाषा है, उसे मातृभाषाओं के विकास से किसी प्रकार की क्षति नहीं हो सकती।[1] राहुल जी मातृभाषाओं की उपयोगिता को समझते थे। उनके समृद्ध शब्द-भण्डार एवं अभिव्यक्ति की क्षमता से वे परिचित थे।. मातृभाषाओं के प्रति उनका यह आकर्षण रूस-प्रवास के दिनों मे और भी अधिक बढ़ गया था। राहुल जी की मातृभाषा भोजपुरी (मल्ली) थी। इसके क्षेत्र के विषय में उनका कथन है—"मल्ली (भोजपुरी) भाषाभाषी आरा, छपरा, मोतीहारी, बलिया के सम्पूर्ण तथा गोरखपुर, आज़मगढ़, गाजीपुर ज़िलों के कितने भागों को मिलाकर एक अलग मल्ल प्रजातन्त्र बनाया जाये।"[2] असहयोग आन्दोलन के दिनों में राहुल सांकृत्यायन भोजपुरी क्षेत्र में (विशेषकर सारन ज़िले में) वैष्णव साधु के रूप मे 'राहुल बाबा' के नाम से प्रसिद्ध थे। इन दिनों मे और बाद मे भी इस क्षेत्र में उनके व्याख्यानों की भाषा 'मल्लिका' (भोजपुरी) ही होती थी। इसी प्रदेश में जनजागृति लाने के उद्देश्य से राहुल जी ने भोजपुरी नाटकों की रचना की है।

राहुल जी स्वयं अपनी आत्मकथा में लिखते हैं—'मैं देख रहा था कि हमारे किसान-मजूरों को हिन्दी समझना आसान नहीं है, यदि उनकी मातृभाषा (मल्लिका) में लिखा-बोला जाय, तो वह अच्छी तरह समझ सकते हैं।'[3] राहुल जी ने केवल स्वयं ही भोजपुरी भाषा को विकसित नहीं किया, प्रत्युत भोजपुरी मे लिखने के लिए अन्य साहित्यिकों को भी प्रेरणा प्रदान की वसन्तकुमार जैसे कवि उन्ही से प्रेरित होकर भोजपुरी मे काव्य-रचना करने लगे।[4] विश्राम जैसे विस्मृत कवियो को प्रकाश मे लाने का श्रेय भी राहुल जी को है।[5]

भोजपुरी तथा अन्य जनभाषाओं मे लिखित साहित्य का प्रायः अभाव ही है। डॉ० विश्वनाथ प्रसाद हिन्दी और भोजपुरी के सम्बन्ध एवं भोजपुरी मे साहित्य-रचना के अभाव के विषय मे लिखते हैं—"भोजपुरी भाषा-भाषियों का हिन्दी प्रदेश से इतना अधिक ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक सम्बन्ध रहता आया है कि उसमें कभी हिन्दी से स्वतन्त्र साहित्य की परम्परा विकसित करने की आवश्यकता का बोध ही नहीं

हुआ।"[६] स्पष्ट है कि भोजपुरी साहित्यकारों ने अधिकांशतः हिन्दी में ही काव्य-रचना की है। गद्य का तो इसमें नितान्त अभाव ही दृष्टिगत होता है। इस दृष्टि से राहुल जी के नाटकों के गद्य का विशेष महत्त्व है।

राहुल जी ने भोजपुरी में आठ नाटकों की रचना की है जो 'तीन नाटक' तथा 'पाँच नाटक' संग्रहों में प्रकाशित हैं। ये नाटक राहुल जी ने सन् १६४२ में लिखे थे। इनकी रचना साम्यवादी दृष्टिकोण से हुई है। साम्यवादी सिद्धान्तों का प्रचार-प्रसार ही लेखक को अभीष्ट है। भोजपुरी समाज का चित्रण भी इनमें सुन्दर रूप में हुआ है। डॉ० सुबोधचन्द्र के शब्दों में, "उनका उद्देश्य भारतीय भोजपुरी जनता में उसकी मातृभाषा द्वारा जागृति फैलाना है। अतः इनका मूल स्वर सामाजिक एवं राजनीतिक क्रांति है। यह कार्य भी उनकी शोषित जनता के प्रति असीम सहानु-भूति या व्यापक मानवता का परिणाम है।"[७] स्वयं राहुल जी अपनी नाट्य-कृतियों के वर्ण्य-विषय एवं उद्देश्य के सम्बन्ध में संकेत करते हैं —'जपनिया राछछ', 'देस रच्छक', 'जरमनवाँ के हार निहिचय', 'ई हमार लड़ाई', फासिस्ट-विरोधी भावों को फैलाने के लिए लिखे गये थे। 'ढुनमुन नेता' में भिन्न-भिन्न राजनीतिक विचारधाराओं का विश्लेषण किया गया था। 'नइकी दुनिया' और 'जोंक' में साम्यवादी विचारों और साम्यवाद की आवश्यकता को और 'मेहरारुन के दुरदसा' में स्त्रियों की हीनावस्था को दिखलाया गया था।"[८] इस प्रकार इन नाटकों का उद्देश्य जनता की निर्धनता का वर्णन, भारतीय समाज में नारी की दयनीय दशा तथा द्वितीय महायुद्ध के समय जापान एवं जर्मनी द्वारा की गई नृशंसता का चित्रण करना है।

तीन नाटक

इस संग्रह में 'मेहरारुन के दुरदसा', 'नइकी दुनिया' तथा 'जोंक' संग्रहीत हैं। 'मेहरारुन के दुरदसा' चार (अंकों १० पृष्ठों) का नाटक है। ये अंक छोटे-छोटे हैं, जिन्हें दृश्यों की संज्ञा देना ही उचित प्रतीत होता है। लेखक ने साम्यवादी दृष्टिकोण से नारी तथा पुरुष के समान अधिकार पर विचार किया है। नारी की आर्थिक एवं सामाजिक दुर्दशा का अंकन इसमें मार्मिक बन पड़ा है। डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय लिखते हैं, "भोजपुरी समाज में स्त्रियों को कौन-कौन से कष्ट भुगतने पड़ते हैं, युग-युग से पुरुष जाति ने स्त्रियों पर कितना भयंकर अत्याचार करके उन्हें घर में बन्दी बना रखा है, उन्हें किस प्रकार अधिकार से वंचित कर रखा है—इन सभी का वर्णन राहुल जी ने अपनी कुशल लेखनी से किया है।"[९] इस लघु नाटक की नायिका लक्ष्मी है, उसे आधुनिक युग की नारी-चेतना का प्रतीक माना जा सकता है। वह नारी जाति को उसकी दुर्दशा से उबारना चाहती है। लक्ष्मी, जसोदरा और सोना के संवादों एवं गीतों द्वारा नारी की स्थिति का चित्रण है। हिन्दू समाज में पुत्रोत्पत्ति पर मंगलगीत गाये जाते हैं, परन्तु पुत्री के उत्पन्न होने पर घर भर में शोक छा जाता है। माताएँ ही सम्पूर्ण पुरुष जाति का लालन-पालन करती हैं, परन्तु पितृ-प्रधान समाज में पुत्र ही अपनी माताओं पर अत्याचार करते हैं। पुरुष वेश्याओं को घर में रखकर विवाहिता

सती-साध्वी धर्मपत्नी को मारते-पीटते हैं। नाटक के संवाद संक्षिप्त एवं रोचक हैं। गीतों से नाटकीय सौन्दर्य में वृद्धि हुई है। नाटक की भाषा सरल, सुन्दर तथा मुहावरेदार है।

'नइकी दुनिया' (चार अंक, ४० पृष्ठ) में साम्यवादी समाज के निर्माण का स्वप्न है। इस समाज में "न तो जात-पाँत का विचार रह जाता है और न ऊँच-नीच का ख्याल ही। सब लोग सहभोजी हो जाते हैं और सभी जातियों में पारस्परिक शादी-ब्याह होने लगता है। रूस की तरह सम्मिलित-खेती होती है और सब लोग सुख-समृद्धि से रहने लगते हैं।"[१४] राहुल जी कई स्थलों पर गाँधीवाद की निस्सारता सिद्ध करके साम्यवाद की स्थापना के लिए जन-सामान्य को प्रेरित करते हैं। उनका विश्वास है कि साम्यवाद ही मानव-समाज के कष्टों को दूर करने में समर्थ है। इस नाटक में १२ पात्र हैं, जिनमें बटुक, सोना और जगरानी प्रमुख हैं। जगरानी धर्मपरायणा है, उसका पुत्र बटुक नये विचारों का है। वह माँ के धार्मिक अन्ध-विश्वासों को दूर करने का प्रयत्न करता है। बटुक देश के लिए युद्ध करता है, कारावास जाता है। वह ऐसे स्वराज्य का आकांक्षी है, जिसमें सभी प्रकार की समानता हो।" बटुक और सोना के गीत द्वारा नई दुनिया का स्वरूप अंकित किया गया है। जगरानी इस नई दुनिया से प्रभावित होती है। 'नई दुनिया' के कार्यकलाप में पुरानी विचारधारा के लोग प्रसन्न हैं। नाटक की भाषा अत्यन्त ठेठ भोजपुरी है, मुहावरों का इसमें प्रचुर प्रयोग हुआ है।

'जोंक' (चार अंक, पृ० ३२) नाटक में शोषक वर्ग द्वारा शोषण से उत्पन्न जन-सामान्य की स्थिति का चित्रण तथा शोषकों के हथकण्डों का पर्दाफाश किया गया है। समाज के शोषक वर्ग-ज़मींदार, साहूकार, मिल-मालिक, राजा-महाराजा की पोल खोली गई है। देहाती किसान साहूकार और मिल-मालिक के दोहरे पाट के बीच में पड़कर किस प्रकार पीसा जाता है, इसका चित्रण निम्न गीत में द्रष्टव्य है[१५] :—

हाइ हो देहिया लगली जोंक।
रात-दिन हम कमवा म खटलीं, कबरा लेहुली टोक।
देहु कमाई सहुआ करते हेते करेजवा माँक॥
धरति [illegible] [illegible] लूटे, केहो के नाहीं रोक।
मिल में [illegible] मजुरवा रोज, [illegible] देहुँ [illegible]॥

साम्यवादी आन्दोलन के अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र के अनुसार के बाद इस नाटक की रचना [illegible] प्रभावपूर्ण ढंग से हुई है। नाटक में भाषा भी [illegible] है, पर नाटकीय दृष्टि से इस लघु नाटक के अनुकूल नहीं।

पाँच नाटक

इस संग्रह में 'अवलिया राक्षस', [illegible], '[illegible] के हार [illegible]', '[illegible] लड़ाई' तथा 'दुनमुन नेता' — ये पाँच लघु नाटक हैं। इनमें चार नाटकों में

लेखक की फासिस्ट-विरोधी विचारधारा अभिव्यक्त हुई है। 'जपनिया राछछ' (चार अंक, २८ पृ०) में जापानियों की क्रूरता, बर्बरता एवं दुष्टता का वर्णन है। जापानियों ने कोरिया तथा चीन में जो अत्याचार किया, वह अत्यन्त नृशंसतापूर्ण था, उसका हृदयद्रावक वर्णन इस नाटक का प्रतिपाद्य है। 'देस रच्छक' (चार अंक, ३४ पृष्ठ) में देश की रक्षा करने वाले सैनिकों का वर्णन है। बर्मा में भारतीय सैनिकों ने प्राणपन से देश की रक्षा की। उनके गौरवपूर्ण वीरकृत्यों का वर्णन राहुल जी के इस नाटक का प्रतिपाद्य है। दूसरे अंक में जापान की बम-वर्षा के कारण बर्मा से भागे भारतीयों का बड़ा हृदयद्रावक वर्णन हुआ है। 'जरमनवा के हार निहिचय' (चार अंक, ३६ पृष्ठ) में हिटलर के अत्याचारों का उल्लेख है। रूस पर जर्मन सैनिकों के अत्याचारों का संक्षिप्त विवरण नाटक में दिया गया है। नाटक के प्रथम अंक में जर्मनी के परास्त होने की भविष्यवाणी की गई है, जो अन्त में सत्य होती है। इसमें दो प्रधान पात्र हैं—भुसुण्डी तथा धरबरन। भुसुण्डी जर्मनी का प्रसंशक है और धरबरन उसका विरोधी है। नाटक में अन्त में किसान और मजदूर साम्यवादी सिद्धान्तों से प्रभावित होते हैं। 'ई हमार लड़ाई' द्वितीय विश्वयुद्ध से सम्बन्धित है। साम्यवादी देशों ने इसे जनयुद्ध (पीपुल्स वार) कहकर जनता को इसमें भाग लेने के लिए प्रेरित किया था, इसी को राहुल जी ने नाटक की प्रतिपाद्य-वस्तु बनाया है।

'ढुनमुन नेता' (चार अंक, ४४ पृष्ठ) में अवसरवादी नेताओं का चित्रण किया गया है, जिनका अपना कोई सिद्धान्त नहीं होता। वे कभी किसी पार्टी के प्रत्याशी के रूप में दिखाई पड़ते हैं, परन्तु अपने स्वार्थ की सिद्धि न पाते देख दूसरी पार्टी में सम्मिलित हो जाते हैं। नाटक के नायक ढुनमुन सिंह कांग्रेसी नेता हैं, जिन का कोई सिद्धान्त नहीं। वे स्वयं जमींदार हैं, पर मत लेने के लिए मजदूरों का पक्ष लेते हैं। राहुल जी के निम्न गीत में ऐसे नेताओं का यथार्थ चित्रण है—

एन कर ढुनमुन हृ नाम।
ई नेता हवें बड़ भारी।
कबहुँ चरखवा सुदरवा के गीत गावें,
मिलवों कबहुँ महँतारी।
कबहुँ मजुरवा-किसनवा के रजवा,
सेठन के कबहुँ पुछारी।

इस नाटक में हरनाल महतो ढुनमुन सिंह के प्रतिद्वन्द्वी हैं। वे साम्यवादी हैं। किसान एवं मजदूर राज का समर्थन तथा गांधीवादी सिद्धान्तों की आलोचना इन्हीं द्वारा करवाई गई है। इस नाटक का सम्बन्ध बिहार से है जहाँ पर बकास्त जमीन को लेकर स्वामी सहजानन्द के नेतृत्व में जमींदारों के विरुद्ध लड़ाई हुई थी। राहुल जी ने स्वयं इस लड़ाई में भाग लिया था।[13] अतएव बिहार की तत्कालीन स्थिति (१९३९-४०) का चित्रण इस नाटक में हुआ है। 'ढुनमुन नेता' यथार्थवाद पर आधारित इस संग्रह की सशक्त रचना है।

अविस्मरणीय है। महापण्डित ने सीधी-सादी एवं चलती भाषा में अपने भावों को प्रकट किया है। डॉ० उपाध्याय राहुल जी के भोजपुरी गद्य को नितान्त प्रांजल, प्रवाहपूर्ण और सुष्ठु स्वीकारते है।[15]

राहुल जी के नाटकों के वर्ण्य-विषय, उद्देश्य एवं भाषा के उक्त विवेचन के अनन्तर निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि राहुल जी भोजपुरी-गद्य के प्रतिष्ठापक एवं उन्नायक हैं। डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय उन्हें भोजपुरी नाटककारों का पथप्रदर्शक स्वीकारते हैं।[16] उनकी नाट्य-रचनाओं का उद्देश्य भोजपुरी जनता में साम्यवादी सिद्धान्तों का प्रचार करना था, इस दृष्टि से वे सफल रहे। नाटकों में भोजपुरी गीत भी हैं, जिनमें राहुल जी का कवि रूप प्रकट हुआ है। नाटकीय दृष्टि से यद्यपि राहुल जी के नाटक सफल नहीं हैं, पर उद्देश्य, भोजपुरी भाषा, गीतों, संक्षिप्त संवादों की दृष्टि से वे अवश्य ही महत्त्वपूर्ण स्थान के अधिकारी हैं। विशेषकर भोजपुरी के अविकसित नाट्य-साहित्य में राहुल जी के ये नाटक दिशा-निर्देशक हैं। सर्वश्री रविदत्त शुक्ल, भिखारी ठाकुर, गोरखनाथ चौबे, रामविचार पाण्डेय तथा वीरेन्द्र किशोर सिन्हा जैसे-इने-गिने भोजपुरी नाटककारों में राहुल जी का स्थान अद्वितीय है।

परिशिष्ट ३

शोधकर्त्ता के नाम पत्र

(क) श्रीमती डॉ० कमला सांकृत्यायन के पत्र

(१)

बुद्ध विहार,
रिसालदार पार्क,
लखनऊ।
१०-११-६४।

महोदय,

मैं पिछले महीने दार्जिलिंग गयी थी, तब आपके दो पत्र मेरी प्रतीक्षा में पड़े मिले। मैं १ नवम्बर को यहाँ लौट आई। जुलाई से मैं यहाँ सूचना-विभाग की हिन्दी-समिति में सम्पादक के पद पर नियुक्त हुई हूँ, इसलिए मैं घर पर कम रहती हूँ। पत्र-व्यवहार के लिए पता ऊपर दिया है, कृपया नोट कर लें।

स्व० राहुल जी पर आप अनुसन्धान कर रहे हैं इसका समाचार मुझे श्री मदन गुलाटी से मिल चुका था। बताइए, आपकी मैं किस तरह सहायता कर सकती हूँ। राहुल जी के सभी अप्रकाशित ग्रन्थ दार्जिलिंग में हैं। मैंने उन पर करीब २० लेख लिखे हैं, उनकी कटिंग भी वहीं हैं। अन्य बहुत से लोगों ने भी उन पर लिखा है। सामग्री प्राप्त करने के सम्बन्ध में कृपया आप डॉ० महादेव साहा, एशियाटिक सोसायटी, १ पार्क स्ट्रीट, कलकत्ता-१६ को भी लिखें। वे आपकी मदद करेंगे।

मैं फरवरी में घर जाऊँगी और संभवतः वहीं रह जाऊँ, तब मैं आपके लिए सामग्री जुटा सकती हूँ।

आप एक काम कीजिए—जो बातें आप मुझ से जानना चाहते हैं—उनकी एक प्रश्नावली बनाकर मुझे भेजें। उसी के अनुसार मैं उत्तर लिखूँगी। अन्य शोध-कर्त्ताओं ने भी यही किया है।

आशा है आपका कार्य तीव्रगति से चल रहा होगा। पत्र निस्संकोच लिखें।

भवदीया,
कमला सांकृत्यायन।

सन्दर्भ

१ आज की समस्याएं, पृ० ४२-४३।
२. वही, पृ० ४२।
३. मेरी जीवन-यात्रा (२), पृ० ५०७।
४. भोजपुरी के कवि और काव्य, पृ० २७६ ।
५. आज की समस्याएं, पृ० ४३।
६. भोजपुरी के कवि और काव्य (सम्पादक का मन्तव्य), पृ० ७।
७. राहुल का कथा-साहित्य (टंकित शोध-प्रबन्ध), पृ० ५३५।
८. मेरी जीवन-यात्रा (२), पृ० ५८६।
९. भोजपुरी और उसका साहित्य-डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय, पृ० १०८।
१०. भोजपुरी भाषा और साहित्य-डॉ० उदयनारायण तिवारी, पृ० ६१-६२।
११. तीन नाटक, पृ० ४६।
१२. वही, पृ० ७५।
१३. भोजपुरी भाषा और साहित्य, पृ० ६३।
१४. वही, पृ० ६५।
१५. तीन नाटक, पृ० ६।
१६. भोजपुरी और उसका साहित्य, पृ० ११०।
१७. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास (षोडश भाग, प्रथम खण्ड), पृ० १२९।

परिशिष्ट ३

शोधकर्त्ता के नाम पत्र

(क) श्रीमती डॉ० कमला सांकृत्यायन के पत्र

(१)

बुद्ध विहार,
रिसालदार पार्क,
लखनऊ।
१०-११-६४।

महोदय,

मैं पिछले महीने दार्जिलिंग गयी थी, तब आपके दो पत्र मेरी प्रतीक्षा में पड़े मिले। मैं १ नवम्बर को यहाँ लौट आई। जुलाई से मैं यहाँ सूचना-विभाग की हिन्दी-समिति में सम्पादक के पद पर नियुक्त हुई हूँ, इसलिए मैं घर पर कम रहती हूँ। पत्र-व्यवहार के लिए पता ऊपर दिया है, कृपया नोट कर लें।

स्व० राहुल जी पर आप अनुसन्धान कर रहे हैं इसका समाचार मुझे श्री यश गुलाटी से मिल चुका था। बताइए, आपकी मैं किस तरह सहायता कर सकती हूँ। राहुल जी के सभी अप्रकाशित ग्रन्थ दार्जिलिंग में हैं। मैंने उन पर करीब २० लेख लिखे हैं, उनकी कटिंग भी वहीं हैं। अन्य बहुत से लोगों ने भी उन पर लिखा है। सामग्री प्राप्त करने के सम्बन्ध में कृपया आप डॉ० महादेव साहा, एशियाटिक सोसायटी, १ पार्क स्ट्रीट, कलकत्ता-१६ को भी लिखें। ये आपकी मदद करेंगे।

मैं फरवरी में घर जाऊँगी और सम्भवतः वहीं रह जाऊँ, तब मैं आपके लिए सामग्री जुटा सकती हूँ।

आप एक काम कीजिए—जो बातें आप मुझ से जानना चाहते हैं—उनकी एक प्रश्नावली बनाकर मुझे भेजें। उसी के अनुसार मैं उत्तर लिखूँगी। अन्य शोध-कर्त्ताओं ने भी यही किया है।

आशा है आपका कार्य तीव्रगति से चल रहा होगा। पत्र निस्संकोच लिखें।

भवदीया,
कमला सांकृत्यायन।

(२)

दार्जिलिंग
११ - १ - ६७

श्री आनन्द भाई,

आपके सभी पत्र यथासमय मिल गये हैं। आपने जो प्रस्ताव मेरे सामने रखे हैं, उन्हें पूरा करने में मुझे कठिनाई हो रही है।

मेरे लेखों की कटिंग मैं भेज न पाऊँगी, क्योंकि मेरे पास उनके अतिरिक्त प्रतियाँ नहीं हैं।

राहुल जी की 'जीवनी' का तीसरा खण्ड दिल्ली से इसी वर्ष अप्रैल माह उनकी जयन्ती और पुण्यतिथि के अवसर पर प्रकाशित हो रहा है। प्रतीक्षा कीजिए

राहुल जी की सम्पूर्ण कृतियों की सूची तो अभी छपी ही नहीं। वैसे आप हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद से प्रकाशित 'सम्मेलन पत्रिका' के १९६६ के मई-जून जुलाई का अंक देख लीजिए। उसमें मैंने पूरी सूची छपवा दी है। वहाँ किसी पुस्तकालय में यह अंक उपलब्ध हो सकता है।

इधर राहुल जी का एक नया ग्रन्थ दिल्ली से ही इसी वर्ष प्रकाशित होने जा रहा है। ग्रन्थ का नाम है—'पाँच बौद्ध दार्शनिक एवं बौद्ध साहित्य।'

यदि आप एक पत्र में एक ही प्रश्न पूछें तो मुझे उत्तर देने में सुविधा रहती, क्योंकि मैं भी व्यस्त ही रहती हूँ। आशा है आप आगे से ऐसा ही करेंगे।

नव वर्ष के लिए मंगलकामना सहित—

भवदीया,
कमला सांकृत्यायन।

(३)

राहुल निवास,
२१ कचहरी रोड,
दार्जिलिंग।
३-१०-६७

आनन्द जी,

२९ सितम्बर का पत्र मिला।

१. 'कनैला की कथा' कहानी-संग्रह ही है।

२. राहुल जी की अप्रकाशित रचनाओं में से 'मेरी जीवन-यात्रा' (३-खण्ड) ४-५ खण्ड के रूप में राजकमल प्रकाशन, ८-फ़ैज़ बाज़ार, दिल्ली-६ से प्रकाशित हुई है।

'हिमाचल-प्रदेश' का कुछ अंश हिमाचल-प्रदेश की सरकारी मासिक पत्रिका ... में धारावाहिक छप रहा है, मई में छपना आरम्भ हुआ है।

'पालि काव्य-धारा', 'नेपाल' ये पुस्तकें अपनी अमुद्रित हालत में हैं।

३. हो सकता है इस जाड़े में मैं दिल्ली की तरफ आऊँ, तब मुलाकात सकती है। वर्ना आपको गर्मियों में यहीं आने का कष्ट करना होगा।

आशा है, शोधकार्य समाप्ति पर होगा।

मंगलाकांक्षिणी,
कमला सांकृत्यायन

(ख) डा॰ महादेव साहा के पत्र

(१)

प्रियवर, ४-३-६७

पत्र के लिए धन्यवाद।

सुबोधचन्द्र सक्सेना दार्जिलिंग में पढ़ाते हैं, पहाड़ों में इन दिनों छुट्टियाँ रह हैं। सक्सेना स्टोर्स, हरदोई के पते पर शायद उन्हें चिट्ठी मिल जाएगी।

राहुल सांकृत्यायन की जीवन-यात्रा का तीसरा खण्ड (६ अप्रैल, १९५६ दिल्ली में छप रहा है। उनकी डायरियाँ दार्जिलिंग में है।

'कर्नैला की कथा' में जहाँ-तहाँ इतिहास का पुट है मगर वह ऐतिहासिक रचन नहीं है। बंगला अनुवादक-प्रकाशक ने इसे 'वोल्गा से गंगा' भाग २ के नाम से प्रक शित किया है ताकि बिक्री अधिक हो।

'वोल्गा से गंगा' का तीसरा संस्करण मैंने संशोधित कर दिया है। बहुत-सी इतिहास-सम्बन्धी और उद्धरणों की गलतियाँ ठीक कर दी हैं। आशा है इसे देखा है मेरे दोस्त श्री भगवतशरण उपाध्याय ने 'कसौटी पर' (रीगल बुक डिपो, नई सड़क, दिल्ली, १९५५) में (पृ॰ ७४-१०६) इसकी अच्छी आलोचना लिखी है। देखी होगी।

मित्रवर राहुल सांकृत्यायन के कुछ उपन्यासों और कहानियों को अच्छी तरह से समझने के लिए वैदिक साहित्य, बौद्ध साहित्य का ज्ञान आवश्यक है, कुछ के लिए (जहाँ तक कुछ कहानियों का सम्बन्ध है) भारतीय इतिहास की अच्छी जानकारी भी जरूरी है। आशा है छन्दस्, संस्कृत और पालि आती है। मूल न सही, अनुवाद पढ़े हैं।

राहुल की किन रचनाओं को लिया है लिखना तो शायद कुछ बता सकूँ। अनूदित रचनाओं को भी लिया है क्या ?

राहुल सांकृत्यायन से मेरी मित्रता १० साल तक रही। मैं उन्हें कम्युनिस्ट पार्टी में लाया। जीवन-यात्रा में इसका ज़िक्र मिलेगा। ज़िन्दगी के कई वर्ष हमने एक साथ बिताए। मेरे पास उनकी लिखी कई सौ चिट्ठियाँ हैं। उनकी ज़िन्दगी के तीस साल की करीब सभी बातों से वाकिफ हूँ और यह सब लिखने-लिखाने की बात नहीं है।

थीसिस क्या पंजाब विश्वविद्यालय के लिए होगी ? श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी मेरे पचीस साल पुराने दोस्त हैं।

मैं विज्ञान का विद्यार्थी रहा। अपने विषय की हाल की जानकारी के लिए छः-छः भाषाओं में लिखी सामग्री पढ़ते थे। अपनी डी०एस-सी० के लिए मुझे यही करना पड़ा। यूरोप में इसके बिना चारा भी नहीं था।

हां, अप्रकाशित (पुस्तकाकार में) रचनाओं के बारे में पूछा था। ताजिक भाषा से ऐनी की रचनाओं की तरह एक दूसरे लेखक का उपन्यास-शादी-का भी राहुल जी ने अनुवाद किया था। वह बनारस से छप रहा है। करीब दो सौ विभिन्न विषयों के निबन्ध पुस्तकाकार में अप्रकाशित हैं। 'पालि काव्य-धारा' 'तिब्बती-हिन्दी-कोश' भी अप्रकाशित हैं। राहुल ने जो कुछ लिखा उसे अनकरीब अपने जीवन-काल में ही प्रकाशित करा गये।

स्नेह लेना।

—महादेव साहा

(७)

एशियाटिक सोसाइटी,
कलकत्ता-१६
३१-१-६७

प्रियवर,

२५ जनवरी के पत्र के लिए धन्यवाद।

'मेरी जीवन-यात्रा' (१९४६-५६) राजकमल छाप रहा है। अभी-अभी प्रेस में गई है।

ताजिक से राहुल जी द्वारा अनूदित 'शादी' (उपन्यास) हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, पिशाचमोचन, वाराणसी-१ ने छापा है।

'शैतान की आँख', 'विस्मृति के गर्भ में', 'सोने की ढाल', 'जादू का मुल्क' के मूल लेखकों की जानकारी मुझे नहीं है। लेखक का पता लगाना भी कठिन है। आगे कभी समय मिला तो कोशिश करूँगा।

डॉ० सुबोधचन्द्र सक्सेना अब हरदोई में ही पढ़ा रहे हैं। आशा है पत्र-व्यवहार शुरू कर दिया है।

स्नेह लेना।

—महादेव साहा

(ग) भदन्त आनन्द कौसल्यायन के पत्र

(१)

८-७-६५

प्रिय आनन्द जी,

आपका ३१/५ का पत्र बहुत विलम्ब से मिला। जब से धनुषकोडी का रास्ता बंद हुआ है, तब से डाक की काफी अव्यवस्था है।

यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आप राहुल जी के साहित्य का विशेष अध्ययन कर रहे हैं। दार्जिलिंग के एक सज्जन ने राहुल जी के उपन्यासों पर ही एक 'थीसिस' लिखा है। उनका पत्र कभी-कभी मेरे पास आता रहा है। फिर कभी आया तो आप का और उनका परिचय करा दूँगा। दो समान-धर्मी इकट्ठे हो जायेंगे।

मैं इसी महीने की २३ तारीख को भारत आ रहा हूँ। दो महीने भारत में ही रहूँगा। मैं अम्बाला शहर से अच्छी तरह परिचित हूँ। मेरा बचपन अम्बाला छावनी में बीता है। पंजाब आना हुआ और अम्बाला से गुजरना हुआ, तो आप को सूचित कर दूँगा। भेंट होने पर कुछ अधिक चर्चा हो सकेगी।

आशा है आप प्रसन्न हैं।

शुभेच्छु
आनन्द कौसल्यायन।

(२)

हिन्दी नगर,
वर्धा
(महाराष्ट्र)
३-१-६७

प्रिय प्रोफेसर साहब,

आपका १०/१२ का 'अन्तर्देशीय' श्रीलंका से लौटाया जाकर आज ही मुझ तक पहुँचा। उससे पहले लिखा कोई पत्र मुझे नहीं मिला। अपेक्षित जानकारी के लिए निवेदन है कि राहुल जी ने स्वयं अपने बारे में (देखें 'मेरी जीवन-यात्रा' प्रथम खण्ड, द्वितीय खण्ड, तृतीय खण्ड—अप्रकाशित) इतना लिखा है, और दूसरों ने भी लिखा ही है कि अब मेरे लिए शेष कुछ लिखने को नहीं। आपके कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय से भी राहुल जी के बारे में एक अनुस्मरण ग्रन्थ निकल रहा है।

राहुल जी द्वारा किये गए बौद्ध-धर्म और साम्यवाद के समन्वय के बारे में उन्हीं के द्वारा लिखी गई 'साम्यवाद ही क्यों ?', 'बौद्ध-दर्शन' आदि पुस्तकों का देखना उपयोगी होगा।

'वोल्गा से गंगा' की ऐतिहासिकता के बारे में 'वोल्गा से गंगा' के नवीन संस्करणों में मेरे द्वारा लिखी गई एक समालोचना पुस्तक के अन्त में छापी जा रही है।

बौद्ध दर्शन —राहुल सांकृत्यायन—किताब महल, इलाहाबाद से प्राप्य।

बौद्ध दर्शन—आचार्य नरेन्द्रदेव—राष्ट्रभाषा-परिषद् पटना, (बिहार) से प्राप्य।

मैं २३ सितम्बर से उक्त पते पर हूँ। अप्रैल के अन्त तक भारत में ही रहूँगा। जनवरी के अन्त में दिल्ली की ओर आने की सम्भावना भी है।

शुभेच्छु,
आनन्द कौसल्यायन।

रामराज्य और मार्क्सवाद — दूसरा संस्करण १९६४, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।

वैज्ञानिक भौतिकवाद — द्वितीय संस्करण १९४५, किताब महल, इलाहाबाद।

(ख) हिन्दी एवं संस्कृत ग्रन्थों की सूची

अन्धकार-युगीन भारत — डॉ० काशीप्रसाद जायसवाल, प्रथम संस्करण १९६५, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।

अशोक के फूल — डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, सातवीं बार १९६२, सस्ता साहित्य मण्डल, दिल्ली।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी : व्यक्तित्व एवं साहित्य — सं० डॉ० गणपतिचन्द्र गुप्त, १९६३, भारतेन्दु भवन, चण्डीगढ़।

आज का हिन्दी साहित्य — प्रकाशचन्द्र गुप्त, प्रथम संस्करण १९६६, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।

आत्मकथा रामप्रसाद 'बिस्मिल' — सं० बनारसीलाल चतुर्वेदी, प्रथम संस्करण, आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली।

आदर्शालोचन — टेकचन्द शर्मा, द्वितीय संस्करण १९६०, राज पब्लिशर्ज, जालन्धर।

आधुनिक कहानी का परिपार्श्व — डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, प्रथम संस्करण १९६६, साहित्य भवन, इलाहाबाद।

आधुनिक हिन्दी कथा-साहित्य और चरित्र-विकास — डॉ० वेचन, प्रथम संस्करण १९६५, सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली।

आधुनिक हिन्दी का जीवनीपरक साहित्य (टंकित शोध-प्रबन्ध) — डॉ० शान्ति खन्ना, १९६६, पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़।

आधुनिक हिन्दी कथा-साहित्य और मनोविज्ञान — डॉ० देवराज उपाध्याय, प्रथम संस्करण १९५६, साहित्य भवन, इलाहाबाद।

आधुनिक हिन्दी गद्य और गद्यकार — डॉ० जेकब पी० जार्ज, प्रथम संस्करण १९६६, ग्रन्थम्, कानपुर।

आधुनिक हिन्दी साहित्य — डॉ० रामगोपालसिंह चौहान, प्रथम संस्करण १९६५, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।

उपन्यास और लोकजीवन — रैल्फ फॉक्स, भूमिका लेखक डॉ० रामविलास शर्मा, प्रथम संस्करण १९५७, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।

उपन्यास का रूप-विधान — श्रीनारायण अग्निहोत्री, प्रथम संस्करण १९६२, आचार्य शुक्ल साधना सदन, कानपुर।

एक आलोचक की नोटबुक — शरद देवड़ा, प्रथम संस्करण १९६४, अपरा प्रकाशन, कलकत्ता।

एक बूँद सहसा उछली — अज्ञेय, सच्चिदानन्द वात्स्यायन, प्र० सं० १९६०, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी।

ऐतरेय ब्राह्मण — १९३१, आनन्दाश्रम मुद्रणालय।

ऐतिहासिक उपन्यास और उपन्यासकार — डॉ० गोपीनाथ तिवारी, प्रथम संस्करण १९५८, साहित्यरत्न भण्डार, आगरा।

ऐतिहासिक उपन्यासों में कल्पना और सत्य — बी० एम० चिन्तामणि, प्रथम संस्करण १९५९, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी।

कला, साहित्य और समीक्षा — डॉ० भगीरथ मिश्र, १९६१, भारती साहित्य मन्दिर, दिल्ली।

कसौटी पर — डॉ० भगवतशरण उपाध्याय, प्रथम संस्करण, रीगल बुक डिपो, दिल्ली।

कहानी और कहानीकार — मोहनलाल जिज्ञासु, द्वितीय संस्करण १९६३, आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली।

कहानी-कला — विनोदशंकर व्यास, पंचम संस्करण, संवत् २०१२, हिन्दी साहित्य कुटीर, बनारस।

कहानी का रचना-विधान — डॉ० जगन्नाथप्रसाद शर्मा, प्रथम संस्करण १९५६, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, बनारस।

कहानी-दर्शन — मालचन्द्र गोस्वामी, १९५६, साहित्य रत्न भण्डार, आगरा।

कामायनी — जयशंकर प्रसाद, नवम संस्करण सं० २०१३, भारती भण्डार, इलाहाबाद।

कालिदास का भारत (१, २) — भगवतशरण उपाध्याय, प्रथम संस्करण १९५५, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी।

काव्य के रूप — गुलाबराय, चतुर्थ संस्करण १९५८, आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली।

कुट्टनीमतम् काव्यम् — दामोदर गुप्त, अनुवादक जगन्नाथ पाठक, संवत् २०१७, मित्र प्रकाशन, इलाहाबाद।

कुछ विचार (भाग--१) — प्रेमचन्द, चतुर्थ संस्करण १९४६, सरस्वती प्रेस, बनारस।

क्रान्ति-पथ का पथिक — पृथ्वीसिंह, प्रथम संस्करण १९६४, प्रज्ञा प्रकाशन, चण्डीगढ़।

खून के छींटे इतिहास के पन्नों — भगवतशरण उपाध्याय, प्रथम संस्करण, हिन्दुस्तानी पब्लिशिंग हाउस, बनारस।

. . . का इतिहास (भाग १, २) — डॉ० वासुदेव उपाध्याय, द्वितीय संस्करण १९५७, इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद।

चिन्तामणि (भाग १) — आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, १९५०, इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद।
चित्र का शीर्षक — यशपाल, १९५२, साहित्य रत्न भण्डार, आगरा।
चीनी बौद्ध धर्म का इतिहास — डॉ० चाउ सिआग कुआग, प्रथम संस्करण, सवत् २०१३, भारती भण्डार, इलाहाबाद।
जो लिखना पडा — भदन्त आनन्द कौसल्यायन, प्रथम संस्करण सवत् २००२, हिन्दुस्तानी पब्लिकेशन्स, इलाहाबाद।
तुला और तारे — डॉ० सावित्री सिन्हा, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।
द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद क्या है? — ग्रो-यारवोत, १९६५, पीपुल्स बुक हाउस प्रकाशन, पटना।
नया साहित्य : नये प्रश्न — नन्ददुलारे वाजपेयी, १९५५, विद्यामन्दिर बनारस।
निबन्धकार रामचन्द्र शुक्ल — डॉ० कृष्णदेव झारी, प्रथम सस्करण १९५८, साहित्यिक प्रकाशन, अम्बाला छावनी।
निबन्धायन — डॉ० नगेन्द्रनाथ उपाध्याय, प्रथम संस्करण १९६७, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।
पद्माकर पंचामृत — विश्वनाथप्रसाद मिश्र, प्रथम संस्करण सं० १९९२, श्री रामरत्न पुस्तक भवन, काशी।
प्रगतिशील साहित्य की समस्याएँ — डॉ० रामविलास शर्मा, १९५४, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
प्राचीन भारत — डॉ० राधाकुमुद मुकर्जी, प्रथम संस्करण १९६२, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।
प्राचीन भारत का इतिहास — डॉ० भगवतशरण उपाध्याय, १९५७, ग्रन्थमाला कार्यालय, पटना।
प्राचीन भारत का इतिहास — डॉ० रमाशंकर त्रिपाठी, १९५६, नन्दकिशोर एण्ड ब्रदर्स, बनारस।
प्राचीन भारतीय परम्परा और इतिहास — डॉ० रांगेय राघव, १९५३, आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली।
बाणभट्ट की आत्मकथा — आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, १९५६, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर, बम्बई।
बीसवीं शताब्दी हिन्दी साहित्य : नये संदर्भ — डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, प्रथम संस्करण १९६६, साहित्य भवन, इलाहाबाद।
बुद्ध और बौद्ध धर्म — चतुरसेन शास्त्री, तृतीयावृत्ति १९६४, भारतीय प्रकाशन, लखनऊ।
बौद्ध दर्शन तथा अन्य भारतीय — भरतसिंह उपाध्याय, प्रथम संस्करण सं० २०११,

दर्शन (प्रथम भाग) — बंगाल हिन्दी मण्डल, कलकत्ता।

बौद्ध दर्शन-मीमांसा — बलदेव उपाध्याय, १९५४, चौखम्बा विद्याभवन, बनारस।

बौद्ध धर्म और बिहार — हवलदार त्रिपाठी, प्रथम संस्करण सं० २०१६, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना।

बौद्ध धर्म-दर्शन — आचार्य नरेन्द्र देव, प्रथम संस्करण १९५६, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना।

भारत का प्राचीन इतिहास — डॉ० मन्मथनाथ घोष, १९६२, इण्डियन प्रेस, प्रयाग।

भारत का सांस्कृतिक इतिहास — सत्यकेतु विद्यालंकार, मदनचन्द कपूर एण्ड सन्स, दिल्ली।

भारत की संस्कृति और कला — राधाकमल मुकर्जी, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली।

भारतवर्ष का इतिहास — पं० भगवद्दत्त, द्वितीय संस्करण सं० २००३, वैदिक अनुसंधान संस्थान, माडल टाउन, लाहौर।

भारतीय दर्शन — डॉ० राधाकृष्णन्, अनुवादक नन्दकिशोर, प्रथम संस्करण १९६६, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली।

भारतीय दर्शन — वाचस्पति गैरोला, प्रथम संस्करण १९६२, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद।

भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति का विकास — बी० एन० लूनिया, १९५५।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र — ब्रजरत्नदास, प्रथम संस्करण १९४८, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद।

भोजपुरी और उसका साहित्य — डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय, प्रथम संस्करण १९५७, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।

भोजपुरी के कवि और काव्य — दुर्गाशंकरप्रसाद सिंह, प्रथम संस्करण सं० २०१५, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना।

भोजपुरी भाषा और साहित्य — डॉ० उदयनारायण तिवारी, प्रथम संस्करण १९५४, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना।

भोजपुरी लोक-साहित्य का अध्ययन — डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय, प्रथम संस्करण १९६०, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी।

मार्क्सवाद — यशपाल, द्वितीय संस्करण, विप्लव कार्यालय, लखनऊ।

मार्क्सवाद और साहित्य — महेन्द्रचन्द्र राय, प्रथम संस्करण १९५७, आराधना प्रकाशन, वाराणसी।

स्वप्न कामायनी — डॉ० रमेश कुन्तल मेघ, प्रथम संस्करण १९६७,

की मनस्सौन्दर्य सामाजिक भूमिका — ग्रन्थम्, कानपुर।

मेरी कहानी — जवाहरलाल नेहरू, अनुवादक हरिभाऊ उप १९३७, सस्ता साहित्य मण्डल, दिल्ली।

राहुल का कथा-साहित्य (टंकित शोध-प्रबन्ध) — डॉ० सुबोधचन्द्र सक्सेना, १९६५ लखनऊ विश्व लय, लखनऊ।

राहुल जी का कथा-साहित्य (टंकित शोध-प्रबन्ध) — डॉ० मुकटलाल गुप्त, १९६६, आगरा विश्वविद आगरा।

राहुल सांकृत्यायन — भदन्त आनन्द कौसल्यायन, १९६७ पीपुल्स पब्लि हाउस, दिल्ली।

राहुल सांकृत्यायन का कथा-साहित्य — डॉ० प्रभाशंकर मिश्र, प्रथम संस्करण १९६७, प्र प्रकाशन, दिल्ली।

रेखाचित्र — बनारसीदास चतुर्वेदी, प्रथम संस्करण १९ भारतीय ज्ञानपीठ, काशी।

रेल का टिकट — भदन्त आनन्द कौसल्यायन, प्रथम संस्करण, प्र प्रकाशन, नई दिल्ली।

वृन्दावनलाल वर्मा : व्यक्तित्व और कृतित्व — डॉ० पद्मसिंह शर्मा कमलेश, १९५८, बंसल ए कम्पनी, दिल्ली।

वाङ्मय-विमर्श — आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र, चतुर्थ संस्कर सं० २०१८, हिन्दी साहित्य कुटीर, वाराणसी।

विचार और विवेचन — डॉ० नगेन्द्र, द्वितीय संस्करण १९५३, नेशनल पब्लि शिंग हाउस, दिल्ली।

विचार और विश्लेषण — डॉ० नगेन्द्र, १९५५, नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली।

वैदिक इन्डेक्स — मेकडोनल तथा कीथ, अनुवादक रामकुमार राय प्रथम संस्करण १९६२, चौखम्भा संस्कृत पुस्तकालय वाराणसी।

वैदिक देवशास्त्र — अनुवादक डॉ० सूर्यकान्त, प्रथम संस्करण १९६१, भारत भारती, दिल्ली।

शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त (भाग २) — डॉ० गोविन्द त्रिगुणायत, १९५६, भारती साहित्य मन्दिर, दिल्ली।

सत्यं शिवं सुन्दरं (भाग १) — डॉ० रामानन्द तिवारी, प्रथम संस्करण १९६३, भारती मन्दिर, भरतपुर।

सन्तुलन — प्रभाकर माचवे, १९५४, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली।

समाजवादी विचारधारा और संस्कृति — लेनिन, प्रगति प्रकाशन, मास्को।
समीक्षा के सिद्धान्त — डॉ० सत्येन्द्र, सं० २००६, मेहरचन्द, मु दिल्ली।
समीक्षा-तत्त्व — डॉ० ओमप्रकाश शास्त्री, द्वितीय संस्करण हिन्दी साहित्य संसार, दिल्ली।
समीक्षा-शास्त्र — डॉ० दशरथ ओझा, द्वितीय संस्करण राजपाल एण्ड संस, दिल्ली।
समीक्षा-शास्त्र — सीताराम चतुर्वेदी, सं० २०१०, अखिल विक्रम परिषद्, काशी।
सामयिकी — शान्तिप्रिय द्विवेदी, सं० २००१, ज्ञानमण्डल,
साहित्य का श्रेय और प्रेय — जैनेन्द्र, प्रथम संस्करण १९५३, पूर्वोदय प्र दिल्ली।
साहित्य की मान्यताएँ — भगवतीचरण वर्मा, प्रथम संस्करण, हिन्दु एकेडेमी, इलाहाबाद।
साहित्य-दर्शन — शचीरानी गुर्टू, १९५०, गौतम बुक डिपो, दिल
साहित्य-रूप — डॉ० रामअवध द्विवेदी, प्रथम संस्करण सं० २ भारती भण्डार, इलाहाबाद।
साहित्य-विवेचन — क्षेमचन्द्र सुमन, द्वितीय संस्करण १९५४, आत्म एण्ड संस, दिल्ली।
साहित्य-शास्त्र — डॉ० रामकुमार वर्मा, प्रथम संस्करण, भारतीय भवन, इलाहाबाद।
साहित्य-शिक्षा — सं० पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, १९६२, हिन्दी रत्नागार, बम्बई।
साहित्य-सहचर — आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, प्रथम संस्करण, निकेतन, वाराणसी।
साहित्यालोचन — श्यामसुन्दर दास, नवीं आवृत्ति २००६, इण्डियन प्रयाग।
स्वतन्त्रता और साहित्य — रत्नाकर पाण्डेय, १९६३, उदय प्रकाशन, वाराण
हिन्दी उपन्यास — डॉ० सुषमा धवन, प्रथम संस्करण १९६१, राज प्रकाशन, दिल्ली।
हिन्दी उपन्यास : एक सर्वेक्षण — महेन्द्र चतुर्वेदी, प्रथम संस्करण, १९६२, ने पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।
,, उपन्यास और यथार्थवाद — डॉ० त्रिभुवनसिंह, सं० २०१२, हिन्दी प्रचारक कालय, वाराणसी।